नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर-गुरुभ्यो नमः

सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

भाग 20



आगम १५

“प्रज्ञापना” मूलं एवं वृत्तिः [3]

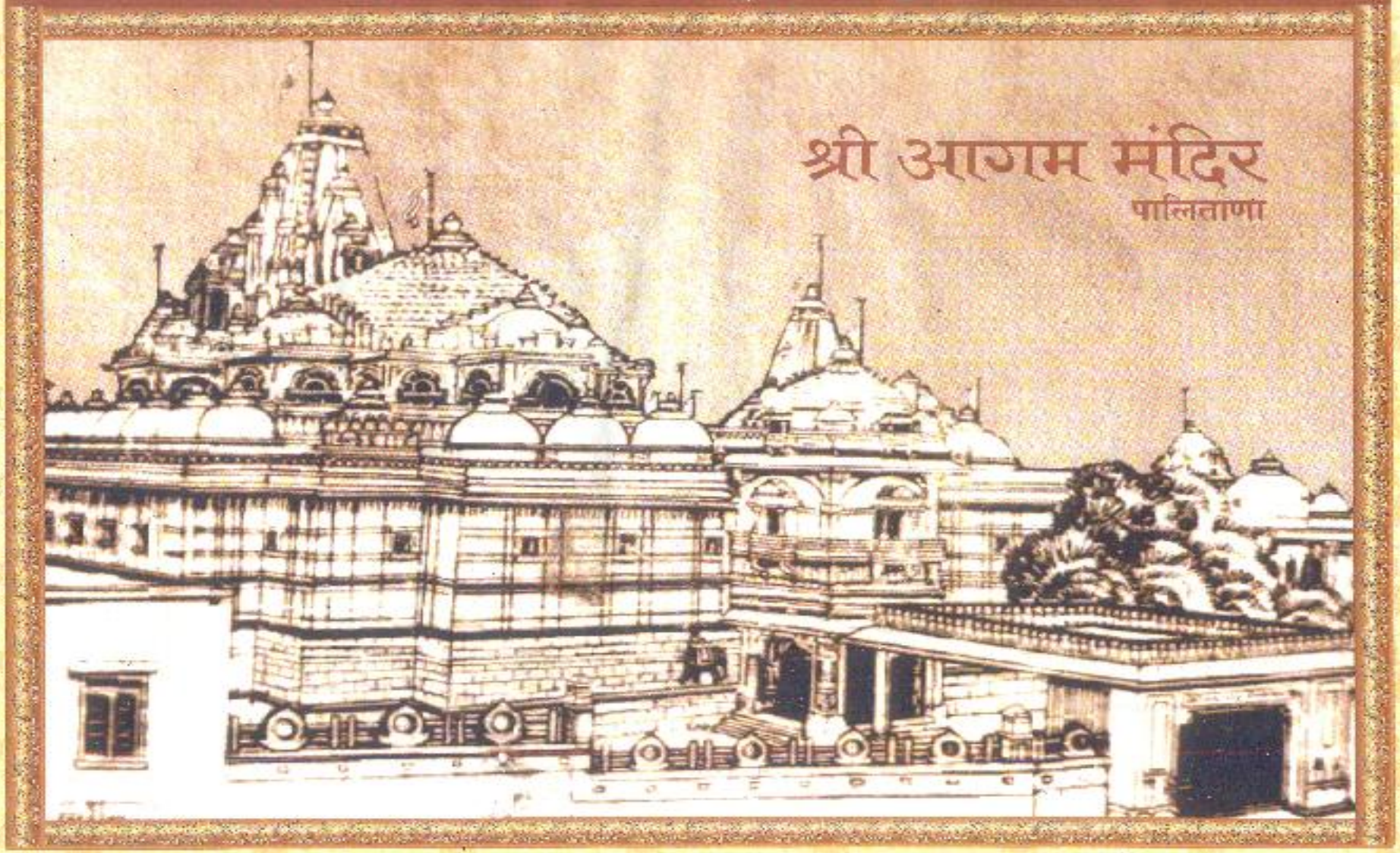
मूल संशोधक :- पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

अभिनव-संकलनकर्ता :- आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी [M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

पूज्य शासनप्रभावक आचार्यश्री हर्षसागरसूरिजी की प्रेरणा से

‘वर्धमान जैन आगम मंदिर संस्था’ पालिताणा

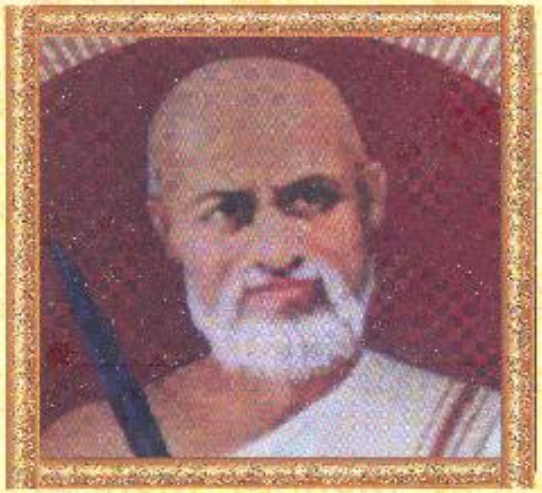
ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता



नमो नमो निम्मलदंसणस्स

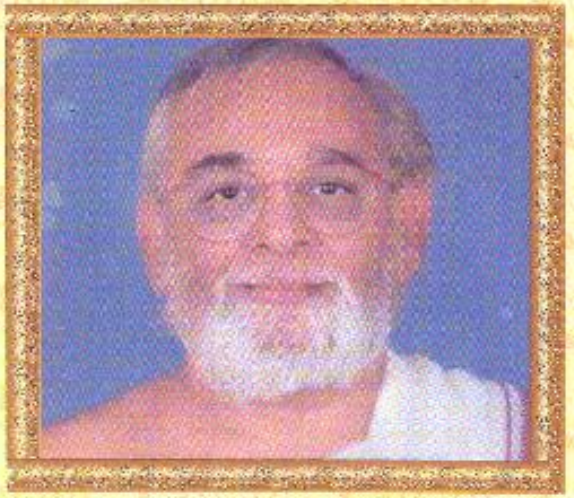
सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

मूल संशोधक



पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य
श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

अभिनव-संकलनकर्ता



आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी
[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका
मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदाबाद Mo 9825598855 / 9825306275


आगम
वाचना शताब्दी वर्ष

[भाग-२०] श्री प्रज्ञापना (उपांगसूत्रम्-१५/३)

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य श्रीआनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

"प्रज्ञापना" मूलं एवं वृत्ति: (भाग-३)

[मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीत वृत्ति:]

[आद्य संपादकश्री]

पूज्य आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागर सूरीश्वरजी म॰ सा॰

(किञ्चित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

पुन: संकलनकर्ता→ मुनि दीपरत्नसागर (M.Com., M.Ed., Ph.D.श्रुतमहर्षि)

28/07/2017, शुक्रवार, २०७३ श्रावण शुक्ल ५ 'सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' श्रेणि भाग-२०

श्री आगमोद्धारक-वाचना-शताब्दी-वर्ष-निमित्त 'आगम-वृत्ति-मुद्रण-प्रोजेक्ट':

सामाचारी-संरक्षक, ज्ञानधनी, आगम-संशोधक, तीव्र-मेधावी, समाधिमृत्यु-प्राप्त, बहुमुखीप्रतिभाधारक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

◆ जिन्होने शुद्ध-श्रद्धा, सम्यक्-श्रुत आराधना, यथाख्यातचारित्र के प्रति गति और अंत समय देह-ममत्व के त्याग के द्वारा कायोत्सर्ग नामक अभ्यंतर-तप कि मिशाल कायम कि है ऐसे बहुश्रुत आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरजी महाराज का परिचय कराना मेरे लिए नामुमकिन है, फ़िर भी गुरुभक्ति बुद्धि से श्रद्धांजली स्वरुप एक मामुली सी झलक पैस करने का यह प्रयास मात्र है |

◆ चारित्र-ग्रहण के बाद अल्प कालमे जो अपने गुरुदेव की छत्रछाया से दूर हो गये, तो भी गुरुदेव के स्वर्ग-गमन को सिर्फ़ कर्मो का प्रभाव मानकर अपने संयम के लक्ष्य प्रति स्थिर रहते हुए अकेले ज्ञान-मार्ग कि साधना के पथ पर चले | पढाई के लिए ही कितने महिनो तक रोज एकासणा तप के साथ बारह किल्लोमिटर पैदल विहार भी किया | लेकिन अपने मंझिल पे डटे रहे, और परिणाम स्वरुप संस्कृत एवं प्राकृत भाषा का, प्राचीन लिपिओ का, व्याकरण-न्याय-साहित्य आदि का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया | जैन आगमशास्त्रो के समुद्र को भी पार कर गए|

◆ एक अकेला आदमी भी क्या नहीं कर शकता? इस प्रश्न का उत्तर हमें इस महापुरुष के जीवन और कवन से मिल गया, जब वे चल पड़े देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के स्थापित पथ पर. बिना किसी सहाय लिए हुए सिर्फ अकेले ही "जैन-आगम-शास्त्रो" को दीर्घजीवी बनाने के लिए अनेक हस्तप्रतो से शुद्ध-पाठ तैयार किये | दो वैकल्पिक आगम, कल्पसूत्र और निर्युक्तिओ को जोड़कर ४५ आगम-शास्त्रो को संशोधित कर के संपादित किया | फिर पालीताणामें आगम मंदिर बनवाकर आरस-पत्थर के ऊपर ये सभी आगम-साहित्य को कंडारा, सूरतमें ताम्रपत्र पर भी अंकित करवाए और "आगम मंजूषा" नाम से मुद्रण भी करवा के बड़ी बड़ी पेटीमें रखवा के गाँव गाँव भेज दिए | वर्तमानकालमे सर्व प्रथमबार ऐसा कार्य हुआ |

◆ सिर्फ मूल आगम के कार्य से ही उन के कदम रुके नही थे, उन्होंने आगमो की वृत्ति, चूर्णि, निर्युक्ति, अवचूरी, संस्कृत-छाया आदि का भी संशोधन-सम्पादन किया | उपयोगी विषयो के लिए उन्होंने एक लाख श्लोक प्रमाण संस्कृत-प्राकृत नए ग्रंथो की रचना भी की | कितने ही ग्रंथो की प्रस्तावना भी लिखी | ये सम्यक्-श्रुत मुद्रित करवाने के लिए आगमोदय समिति, देवचंद लालभाई इत्यादि विभिन्न संस्था की स्थापना भी की |

◆ ज्ञानमार्ग के अलावा सम्मेतशिखर, अंतरीक्षजी, केशरियाजी आदि तीर्थरक्षा कर के सम्यक-दर्शन-आराधना का परिचय भी दिया | राजाओं को प्रतिबोध कर के और वाचनाओ द्वारा अपनी प्रवचन-प्रभावकता भी उजागर करवाई | बालदिक्षा, देवद्रव्य-संरक्षण, तिथि-प्रश्न इत्यादि विषयोमे सत्य-पक्षमें अंत तक दृढ़ रहे | जैनशासन के लिए जब जरुरत पड़ी तब अदालती कारवाईंओ का सामना भी बड़ी निडरता से किया था |

◆ सागरानंदजी के नाम से मशहूर हो चुके पूज्य आनंदसागरसूरीश्वरजीने अपने परिवार स्वरुप ८७० साधू-साध्वीजी भी शासन को भेट किये |

...ये थे हमारे गुरुदेव "सागरजी"... *.....मुनि दीपरत्नसागर...*

संयमैकलक्षी, उपधान-तप-प्रेरक, चारित्र-मार्ग-रागी, प्रवचन-पटु, सुपरिवार-युक्त

पूज्य गच्छाधिपतिआचार्यदेव श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

*** परमपूज्य आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी के पाट-परंपरामे हुए तिसरे गच्छाधिपति थे पूज्य आचार्य श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी, जो एक पून्यवान् आत्मा थे, दीक्षा ग्रहण के बाद अल्पकालमे ही एक शिष्य के गुरु बन गये | फ़िर क्या ! शिष्यो कि संख्या बढती चली, बढ़ते हुए पुन्य के साथ-साथ वे आखिर 'गच्छाधिपति' पद पे आरूढ़ हो गए | इस महात्मा का पुन्य सिर्फ शिष्यों तक सिमित नही था, वे जहा कहीं भी 'उपधान-तप' की प्रेरणा करते थे, तुरंत ही वहां 'उपधान' हो जाते थे | प्रवचनपटुता एवं पर्षदापुन्य के कारण उन के उपदेश-प्राप्त बहोत आत्माओने संयम-मार्ग का स्वीकार किया | खुद भी संयमैकलक्षी होने के कारण चारित्रमार्ग के रागी तो थे ही, साथसाथ ज्ञानमार्ग का स्पर्श भी उन का निरंतर रहेता था | आप कभी भी दुपहर को चले जाइए, वे खुद अकेले या शिष्य-परिवार के साथ कोई भी ग्रन्थ के अध्ययन-अध्यापनमें रत दिखाई देंगे |

*** ये तो हमने उनके जीवन के दो-तीन पहेलु दिखाए | एक और भी अनुसरणीय बात उन के जीवनमें देखने को मिली थी- 'आराधना-प्रेम'. कैसी भी शारीरिक स्थिति हो, मगर उन्होंने दोनों शाश्वती ओलीजी, [पोष}दशमी, शुक्ल पंचमी, त्रिकाल देववंदन, पर्व या पर्वतिथि के देववंदन आदि आराधना कभी नहीं छोड़ी | आखरी सालोमें जब उन को एहसास हो गया की अब 'अंतिम-आराधना' का अवसर नजदीक है, तब उन के मुहमें एक ही रटण बारबार चालु हो गया- "*अरिहंतनुं शरण, सिद्धनुं शरण, साधुनुं शरण, केवली भगवंते भाखेला धर्मनुं शरण*" इसी चार शरणो के रटण के साथ ही वे समाधि-मृत्यु-रूप सम्यक् निद्रा को प्राप्त हुए थे | ऐसे महान् सूरिवर को भावबरी वंदना |

*** मुनि दीपरत्नसागर...

◆◆◆ श्री वर्धमान जैन आगम मंदिर संस्था, पालिताणा ◆◆◆

पूज्यपाद आनंदसागर-सूरीश्वरजी की बौद्धिक-प्रतिभा का मूर्तिमंत स्वरुप ऐसी इस संस्था की स्थापना विक्रम-संवत १९९९ मे महा-वद ५ को हुइ| *पूज्य आचार्य हर्षसागरसूरिजी की प्रेरणा से* जिन की तरफ़ से इस *सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि* के लिए संपूर्ण द्रव्य-सहाय की प्राप्ति हुइ |

शिल्प-स्थापत्य, शिलोत्कीर्ण आगम और समवसरण स्थित नयनरम्य ४५ चौमुख जिन-प्रतिमाजी से सुशोभित ऐसा ये 'आगममंदिर' है, जो शत्रुंजय-गिरिराज कि तलेटीमे स्थित है | वर्तमान २४ जिनवर, २० विहरमान जिनवर और १ शाश्वत मिलाकर ४५ चौमुखजी यहा बिराजमान है | जहां ४० समवसरण की रचना मेरु पर्वत के तिनो काण्ड के वर्णो के अनुसार चार अलग-अलग रंगो के आरस-पत्थर से बना है, देवो द्वारा रचित समवसरण के शास्त्र वर्णन-अनुसार आगम-मंदिर कि समवसरण का स्थापत्य है | ऐसी अनेक विशेषता से युक्त ये आगममंदिर है |

**** मुनि दीपरत्नसागर...*

'सागर-समुदाय-एकता-संरक्षक, तीर्थ-उद्धार-कार्य-प्रवृत्त, गुणानुरागी'

इस "सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' श्रेणि भाग १ से ४० के संपूर्ण अनुदान के प्रेरणादाता

पूज्य शासनप्रभावक आचार्य श्री हर्षसागरसूरिजी महाराज साहेब

पूज्यपाद स्व॰ गच्छाधिपति देवेन्द्रसागर-सूरीश्वरजी के विनयी शिष्य एवं दो गच्छाधिपतिओ के मुख्य सहायक के रुपमे 'सागर समुदाय' के सुचारु संचालक पूज्य हर्षसागरसूरिजी, जिन की प्रेरणा से ये "सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि" के मुद्रण के लिए संपूर्ण द्रव्यराशि प्राप्त हुई, उनका अत्यल्प परिचय यहां करेंगे| समुदाय-एकता के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हुए ये महात्मा *समुदाय के साधु-साध्वीजी* की आवश्यकताओकी पूर्ती के लिए भी प्रवृत्त रहेते है, प्राचीन-अर्वाचीन तीर्थो के जीर्णोद्धार एवं विकाश के लिए भी उत्साहित रहेते है, ज्ञान-क्षेत्र अछूता न रहे इसीलिए अनुमोदना, अनुदान एवं समय मिलने पर शास्त्र-वांचनमें भी रूचि रखते है | समुदाय के जरूरतमंद साध्वीजी भगवंतो के आवास का विषय हो या साध्वीजी के विहारमें मजदूर का वेतन चुकाना हो, ऐसे छोटे-छोटे कार्यो के प्रति भी उन का लक्ष्य रहेता है | दर्शन-शुद्धि के लिए जब उन्होंने समग्र भारतवर्ष के १०० साल तक के पुराने जिनालयो में १८ अभिषेक की प्रेरणा की, उस वक्त लगभग सभी अभिषेक-सामग्री की द्रव्य-शुद्धि का ख़याल रखते हुए अपनी मेधावी बुद्धि का परिचय दिया था, साथमे अनुकंपा भाव से पुजारी या विधि करानेवाले को यत्किंचित् बहुमान प्रगट करते हुए कुछ धन-राशि प्रदान करवाई |

ऐसे बहुगुण-संपन्न महात्मा पूज्य आचार्यश्री हर्षसागर-सूरिजी को हम भावभरी वंदना करते हुए इस श्रुतकार्य का प्रारंभ करने जा रहे है |

**** मुनि दीपरत्नसागर*

[कात्रज]पूना, कपडवंज, प्रभासपाटण आदि स्थानोमे आगममंदिर के प्रेरक, कर्मग्रंथ अभ्यासु, निस्पृह महात्मा

पूज्यपाद गच्छाधिपति आचार्य श्री दौलतसागर-सूरीश्वरजी महाराज साहेब

(एवं) अजातशत्रु, स्वाध्याय-रसिक, प्रशांतमूर्ती और अपने गुरु के प्रीतिपात्र

परम पूज्य आचार्य श्री नंदीवर्धनसागर-सूरिजी महाराज साहेब

इस पवित्र श्रुत-कार्यमे दोनो सूरिवरो का स्मरण करते हुए कोटि कोटि वंदना के साथ

.....मुनि दीपरत्नसागर

मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:	मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:	मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:
००१	पद ०१- प्रज्ञापना		---	पद ०३- बहूवक्तव्यता (वर्तते)		३५३	पद ०७- उच्छवास:	
१९२	पद ०२- स्थानं		---	--द्वार् २०- संज्ञी		३५४	पद ०८- संज्ञा	
२५७	पद ०३- बहूवक्तव्यता		---	--द्वार् २१- भवसिद्धिक:		३५६	पद ०९- योनि:	
---	--द्वार् ०१- दिशा		---	--द्वार् २२- अस्तिकाय:		३६१	पद १०- चरिम:	
---	--द्वार् ०२- गतिः		---	--द्वार् २३- चरम:				
---	--द्वार् ०३- इन्द्रियं		---	--द्वार् २४- जीव:		३७५	पद ११- भाषा	
---	--द्वार् ०४- काय:		---	--द्वार् २५- क्षेत्रं		४००	पद १२- शरीरं	
---	--द्वार् ०५- योग:		---	--द्वार् २६- बन्धं		४०५	पद १३- परिणाम:	
---	--द्वार् ०६- वेद:		---	--द्वार् २७- पुद्गल, दिशा-		४१३	पद १४- कषाय:	
---	--द्वार् ०७- कषाय:			आदि अल्पबहूत्वं				
---	--द्वार् ०८- लेश्या					४१९	पद १५- इन्द्रियं	
---	--द्वार् ०९- द्रष्टि:		२९८	पद ०४- स्थितिः		---	--उद्देशक: ०१- नामादि	
---	--द्वार् १०- ज्ञानं		३०७	पद ०५- विशेषं		---	--उद्देशक: ०२- उपचयादि	
---	--द्वार् ११- अज्ञानं		३२६	पद ०६- व्युत्क्रान्ति:		४३८	पद १६- प्रयोग:	
---	--द्वार् १२- दर्शनं		---	--द्वार् ०१- द्वादश:				
---	--द्वार् १३- संयत:		---	--द्वार् ०२- चतुर्विंशति:		४४२	पद १७- लेश्या	
---	--द्वार् १४- उपयोग:		---	--द्वार् ०३- सांतरं		---	--उद्देशक: ०१- समाहारादि	
---	--द्वार् १५- आहारक:		---	--द्वार् ०४- एकसमयं		---	--उद्देशक: ०२- षड्भेदा:	
---	--द्वार् १६- भाषक:		---	--द्वार् ०५- आगति:		---	--उद्देशक: ०३- उपपातादि	
---	--द्वार् १७- परित्त:		---	--द्वार् ०६- उद्वर्तना/गति:		---	--उद्देशक: ०४- परिणामादि	
---	--द्वार् १८- पर्याप्त:		---	--द्वार् ०७- परभवायु:		---	--उद्देशक: ०५- वर्णादि	
---	--द्वार् १९- सूक्ष्मं		---	--द्वार् ०८- आकर्ष:/आयुबंध:		---	--उद्देशक: ०६- मनुष्यापेक्षया	

मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:	मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:	मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:
४७१	पद १८- कायस्थिति:		---	पद १८- बहुवक्तव्यता (वर्तते)		---	पद २८-आहार/उद्देशक:२-वर्तते	-----
---	--द्वार् ०१- जीव:		---	--द्वार् २१- अस्तिकाय:		---	--द्वार् ०२- भवसिद्धिकत्वं	१३०
---	--द्वार् ०२- गति:		----	--द्वार् २२- चरिम:		---	--द्वार् ०३- संज्ञी	१३०
---	--द्वार् ०३- इन्द्रियं					---	--द्वार् ०४- लेश्या	१३८
---	--द्वार् ०४- काय:		४९५	पद १९- सम्यकत्वं		---	--द्वार् ०५- द्रष्टि:	१३८
---	--द्वार् ०५- योग:		४९६	पद २०- अंतक्रिया		---	--द्वार् ०६- संयत:	१३८
---	--द्वार् ०६- वेदं		५०९	पद २१- अवगाहनासंस्थान/शरीर		---	--द्वार् ०७- कषाय:	१३८
---	--द्वार् ०७- कषाय:		५२५	पद २२- क्रिया		---	--द्वार् ०८- ज्ञानं	१४६
---	--द्वार् ०८- लेश्या					---	--द्वार् ०९- योग:	१४६
---	--द्वार् ०९- सम्यकत्वं		५३४	पद २३- कर्मप्रकृत्ति:	०१२	---	--द्वार् १०- उपयोग:	१४६
---	--द्वार् १०- ज्ञानं		---	--उद्देशक: ०१- अष्टविधा	०१२	---	--द्वार् ११- वेद:	१४६
			----	--उद्देशक: ०२- भेद-प्रभेदा:	०३७	---	--द्वार् १२- शरीरं	१४६
---	--द्वार् ११- दर्शनं					---	--द्वार् १३- पर्याप्ति:	१४६
---	--द्वार् १२- संयत:		५४६	पद २४- कर्मबन्धं	०८९			
---	--द्वार् १३- उपयोग:		५४७	पद २५- कर्मवेदनं	०९४	५७२	पद २९- उपयोग:	१५६
---	--द्वार् १४- आहार:		५४८	पद २६- कर्मवेदबन्धं	०९६	५७३	पद ३०- पश्यता	१६३
---	--द्वार् १५- भाषक:		५४९	पद २७- कर्मवेदवेदनं	१०१	५७५	पद ३१- संज्ञी	१७२
---	--द्वार् १६- परित:					५७७	पद ३२- संयत:	१७५
---	--द्वार् १७- पर्याप्त:		५७०	पद २८- आहार:	१०३	५७९	पद ३३- अवधि:	१७९
---	--द्वार् १८- सूक्ष्मं		---	--उद्देशक: ०१- सचित्तादि	१०३	५८४	पद ३४- प्रविचारणा	१९२
---	--द्वार् १९- संज्ञी		---	--उद्देशक: ०२-	१२९	५९५	पद ३५- वेदना	२१३
---	--द्वार् २०- भवसिद्धिक:		---	--द्वार् ०१- आहारकत्वं	१४०	५९९-६२२	पद ३६- समुद्घात:	२२४

['प्रज्ञापना' - मूलं एवं वृत्तिः] इस प्रकाशन की विकास-गाथा

यह प्रत सबसे पहले "प्रज्ञापना सूत्रम्" के नामसे सन १९ १८ (विक्रम संवत १९ ७४) में आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित हुई, इस के संपादक-महोदय थे पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी (सागरानंदसूरिजी) महाराज साहेब |

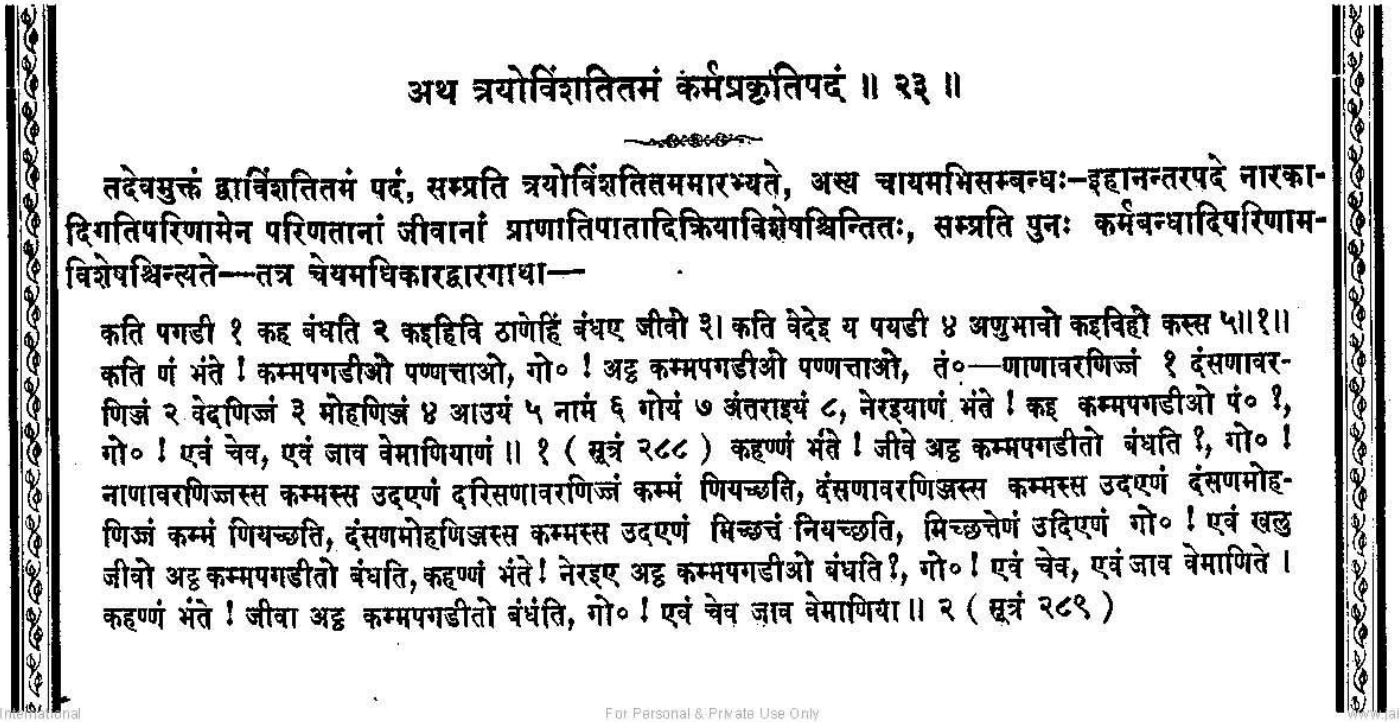
इसी प्रत को फिर से दुसरे पूज्यश्रीओने अपने-अपने नामसे भी छपवाई, जिसमे उन्होंने खुदने तो कुछ नहीं किया, मगर इसी प्रत को ऑफसेट करवा के, अपना एवं अपनी प्रकाशन संस्था का नाम छाप दिया. जिसमे किसीने पूज्यपाद् सागरानंदसूरिजी के नाम को आगे रखा, और अपनी वफादारी दिखाई, तो किसीने स्वयं को ही इस पुरे कार्य का कर्ता बता दिया और श्रीमद्सागरानंदसूरिजी तथा प्रकाशक का नाम ही मिटा दिया |

✤ हमारा ये प्रयास क्यों? ✤ आगम की सेवा करने के हमें तो बहोत अवसर मिले, ४५-आगम सटीक भी हमने ३० भागोमे १२५०० से ज्यादा पृष्ठोमें प्रकाशित करवाए है, किन्तु लोगो की पूज्य श्री सागरानंदसूरीश्वरजी के प्रति श्रद्धा तथा प्रत स्वरुप प्राचीन प्रथा का आदर देखकर हमने इसी प्रत को स्केन करवाई, उसके बाद एक स्पेशियल फोरमेट बनवाया, जिसमे बीचमे पूज्यश्री संपादित प्रत ज्यों की त्यों रख दी, ऊपर शीर्षस्थानमे आगम का नाम, फिर पद, उद्देश, द्वार्, और मूलसूत्र के क्रमांक लिख दिए, ताँकि पढ़नेवाले को प्रत्येक पेज पर कौनसा पद, उद्देश, द्वार् एवं मूलसूत्र चल रहे है उसका सरलता से ज्ञान हो शके, बायीं तरफ आगम का क्रम और इसी प्रत का सूत्रक्रम दिया है, उसके साथ वहाँ 'दीप अनुक्रम' भी दिया है, जिससे हमारे प्राकृत, संस्कृत, हिंदी गुजराती, इंग्लिश आदि सभी आगम प्रकाशनोमें प्रवेश कर शके | हमारे अनुक्रम तो प्रत्येक प्रकाशनोमें एक सामान और क्रमशः आगे बढते हुए ही है, इसीलिए सिर्फ क्रम नंबर दिए है, मगर प्रत में गाथा और सूत्रों के नंबर अलग-अलग होने से हमने जहां सूत्र है वहाँ कौंस [-] दिए है और जहां गाथा है वहाँ ||-|| ऐसी दो लाइन खींची है या फिर गाथा शब्द लिख दिया है |

हमने एक अनुक्रमणिका भी बनायी है, जिसमे प्रत्येक पद, उद्देश, द्वार् और मूल लिख दिये है और साथमें इस सम्पादन के पृष्ठांक भी दे दिए है, जिससे अभ्यासक व्यक्ति अपने चहिते विषय तक आसानी से पहुँच शकता है | अनेक पृष्ठ के नीचे विशिष्ठ फूटनोट भी लिखी है, जिसमे उस पृष्ठ पर चल रहे ख़ास विषयवस्तु की, मूल प्रतमें रही हुई कोई-कोई मुद्रण-भूल की या क्रमांकन सम्बन्धी जानकारी प्राप्त होती है |

शासनप्रभावक पूज्य आचार्यश्री हर्षसागरसूरिजी म०सा० की प्रेरणासे और श्री वर्धमान जैन आगममंदिर, पालिताणा की संपूर्ण द्रव्य सहाय से ये 'सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' भाग-२० का मुद्रण हुआ है, हम उन के प्रति हमारा आभार व्यक्त करते है |

.....मुनि दीपरत्नसागर.



अथ त्रयोविंशतितमं कर्मप्रकृतिपदं ॥ २३ ॥

तदेवमुक्तं द्वाविंशतितमं पदं, सम्प्रति त्रयोविंशतितममारभ्यते, अस्य चायमभिसम्बन्धः—इहानन्तरपदे नारकादिगतिपरिणामेन परिणतानां जीवानां प्राणातिपातादिक्रियाविशेषश्चिन्तितः, सम्प्रति पुनः कर्मबन्धादिपरिणामविशेषश्चिन्त्यते—तत्र चेयमधिकारद्वारगाथा—

कति पगडी १ कह बंधति २ कहिहिवि ठाणेहिं बंधए जीवो ३। कति वेदेइ य पयडी ४ अणुभावो कहविहो कस्स ५॥१॥
कति णं भंते ! कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ, गो० ! अट्ठ कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ, तं०—णाणावरणिज्जं १ दंसणावरणिज्जं २ वेदणिज्जं ३ मोहणिज्जं ४ आउयं ५ नामं ६ गोयं ७ अंतराइयं ८, नेरइयाणं भंते ! कह कम्मपगडीओ पं० ?, गो० ! एवं चेव, एवं जाव वेमाणियाणं ॥ १ (सूत्रं २८८) कहण्णं भंते ! जीवे अट्ठ कम्मपगडीतो बंधति ?, गो० ! नाणावरणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं दरिसणावरणिज्जं कम्मं णियच्छति, दंसणावरणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं दंसणमोहणिज्जं कम्मं णियच्छति, दंसणमोहणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं मिच्छत्तं नियच्छति, मिच्छत्तेणं उदिएणं गो० ! एवं खलु जीवो अट्ठ कम्मपगडीतो बंधति, कहण्णं भंते ! नेरइए अट्ठ कम्मपगडीओ बंधति ?, गो० ! एवं चेव, एवं जाव वेमाणिते । कहण्णं भंते ! जीवा अट्ठ कम्मपगडीतो बंधंति, गो० ! एवं चेव जाव वेमाणिया ॥ २ (सूत्रं २८९)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ पद (२३) “कर्मप्रकृति” आरब्धम्

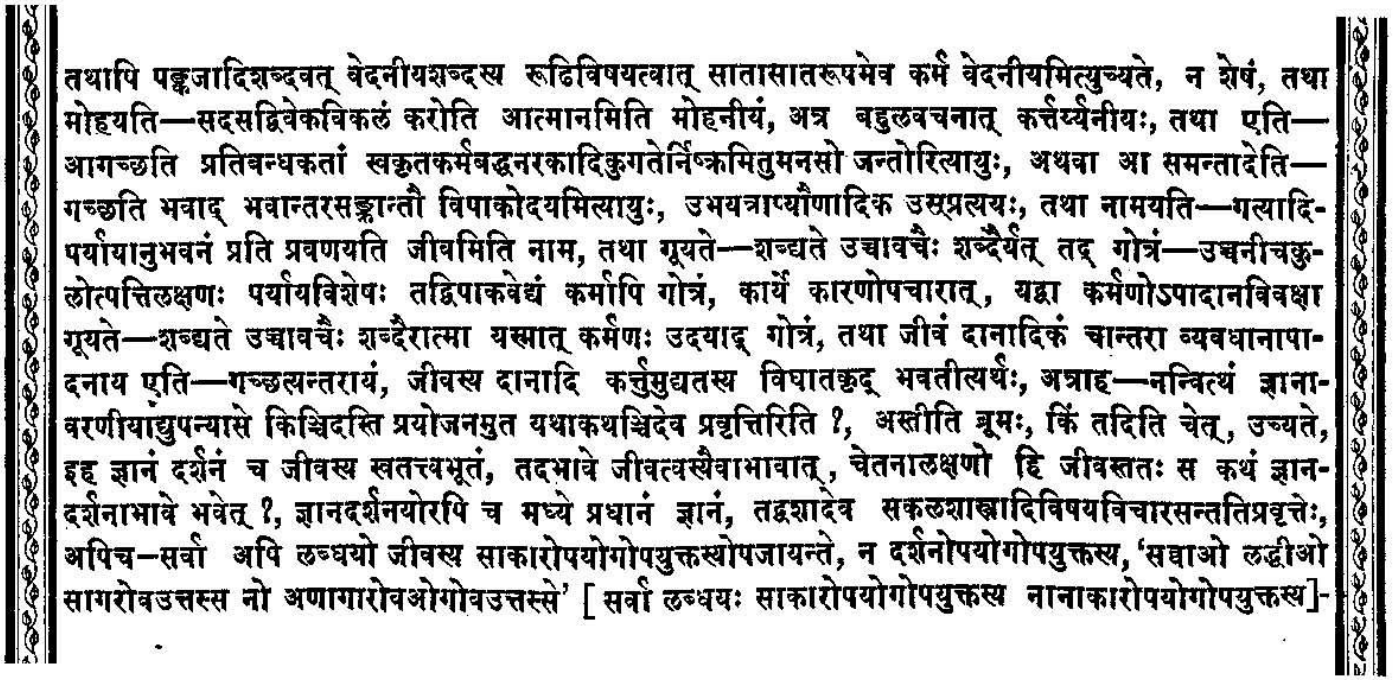
अथ (२३) कर्मप्रकृति-पदे उद्देशक: (१) आरब्ध:, अत्र (२३) कर्मप्रकृति-पदे प्रथमे उद्देशके अधिकार: (१, २) आरब्ध:,

प्रत सूत्रांक [२८८--२८९] + गाथा

दीप अनुक्रम [५३४--५३६]

'कइ पगडी' इत्यादि, कति प्रकृतयो भवन्तीत्यादि प्रथमोऽधिकारः, तथा कथं–केन प्रकारेण ताः प्रकृतीर्बध्नातीति द्वितीयः, कतिभिः स्थानैर्बध्नातीति तृतीयः, कति प्रकृतीर्वेदयते इति चतुर्थः, कस्य कर्मणः कतिविधोऽनुभागः पञ्चमः। तत्र प्रथमाधिकारनिरूपणार्थमाह—'कति णं भंते ! कम्मपयडीओ पण्णत्ताओ' इति, ननूक्तमेव क्रियापदे कति कर्मप्रकृतय इति ततः किमर्थमिह प्रकृतिसङ्ख्यार्थः प्रश्नः ?, उच्यते, विशेषप्रतिपादनार्थः, स चायं विशेषः–पूर्वं ज्ञानावरणीयादि कर्म बध्नन् कतिभिः क्रियाभिर्युज्यते इत्युक्तं, क्रियाश्च प्राणातिपातहेतवः, प्राणातिपातश्च बाह्यं ज्ञानावरणीयादिकर्मबन्धकारणं, कर्मबन्धः कार्यं, इह तु ज्ञानावरणीयादिकर्म एवान्तरं कर्मबन्धकारणं प्रतिपाद्यमिति, भगवन्निर्वचनमाह—गौतम ! अष्टौ कर्मप्रकृतयः प्रज्ञप्ताः, एता एव नामग्राहं दर्शयति—'ज्ञानावरणीयं दर्शनावरणीयं' इत्यादि, ज्ञायते—परिच्छिद्यते वस्त्वनेनेति ज्ञानं—सामान्यविशेषात्मके वस्तुनि विशेषग्रहणात्मको बोधः, आव्रियते—आच्छाद्यते अनेनेत्यावरणीयं 'कृद्बहुल'मिति वचनात् करणेऽनीयप्रत्ययः, ज्ञानस्यावरणीयं ज्ञानावरणीयं, दृश्यतेऽनेनेति दर्शनं—सामान्यविशेषात्मके वस्तुनि सामान्यग्रहणात्मको बोधः, उक्तं च—"जं सामन्नग्गहणं भावाणं नेय कट्टु आगारं। अविसेसिऊण अत्थे दंसणमिइ वुच्चए समए ॥ १ ॥" [यत् सामान्यग्रहणं भावानां नैव कृत्वाऽऽकारम्। अर्थानविशेष्य दर्शनमित्युच्यते समये ॥ १ ॥] तस्यावरणीयं दर्शनावरणीयं, तथा वेद्यते—आह्लादादिरूपेण यदनुभूयते तद्वेदनीयं, अत्र कर्मण्यनीयः, यद्यपि च सर्वं कर्म वेद्यते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



तथापि पङ्कजादिशब्दवत् वेदनीयशब्दस्य रूढिविषयत्वात् सातासातरूपमेव कर्म वेदनीयमित्युच्यते, न शेषं, तथा मोहयति—सदसद्विवेकविकलं करोति आत्मानमिति मोहनीयं, अत्र बहुलवचनात् कर्त्तरि अनीयः, तथा एति—आगच्छति प्रतिबन्धकतां स्वकृतकर्मबद्धनरकादिकुगतेर्निष्क्रमितुमनसो जन्तोरित्यायुः, अथवा आ समन्तादेति—गच्छति भवाद् भवान्तरसङ्क्रान्तौ विपाकोदयमित्यायुः, उभयत्राप्यौणादिक उस्प्रत्ययः, तथा नामयति—गत्यादिपर्यायानुभवनं प्रति प्रवणयति जीवमिति नाम, तथा गूयते—शब्द्यते उच्चावचैः शब्दैर्यत् तद् गोत्रं—उच्चनीचकुलोत्पत्तिलक्षणः पर्यायविशेषः तद्विपाकवेद्यं कर्मापि गोत्रं, कार्ये कारणोपचारात्, यद्वा कर्मणोऽपादानविवक्षा गूयते—शब्द्यते उच्चावचैः शब्दैरात्मा यस्मात् कर्मणः उदयाद् गोत्रं, तथा जीवं दानादिकं चान्तरा व्यवधानापादनाय एति—गच्छत्यन्तरायं, जीवस्य दानादि कर्तुमुद्यतस्य विघातकृद् भवतीत्यर्थः, अत्राह—नन्वित्थं ज्ञानावरणीयाद्युपन्यासे किञ्चिदस्ति प्रयोजनमुत यथाकथञ्चिदेव प्रवृत्तिरिति ?, अस्तीति ब्रूमः, किं तदिति चेत्, उच्यते, इह ज्ञानं दर्शनं च जीवस्य स्वतत्त्वभूतं, तदभावे जीवत्वस्यैवाभावात्, चेतनालक्षणो हि जीवस्ततः स कथं ज्ञानदर्शनाभावे भवेत् ?, ज्ञानदर्शनयोरपि च मध्ये प्रधानं ज्ञानं, तद्वशादेव सकलशास्त्रादिविषयविचारसन्ततिप्रवृत्तेः, अपिच—सर्वा अपि लब्धयो जीवस्य साकारोपयोगोपयुक्तस्योपजायन्ते, न दर्शनोपयोगोपयुक्तस्य, 'सव्वाओ लद्धीओ सागरोवउत्तस्स नो अणागारोवओगोवउत्तस्से' [सर्वा लब्धयः साकारोपयोगोपयुक्तस्य नानाकारोपयोगोपयुक्तस्य]-

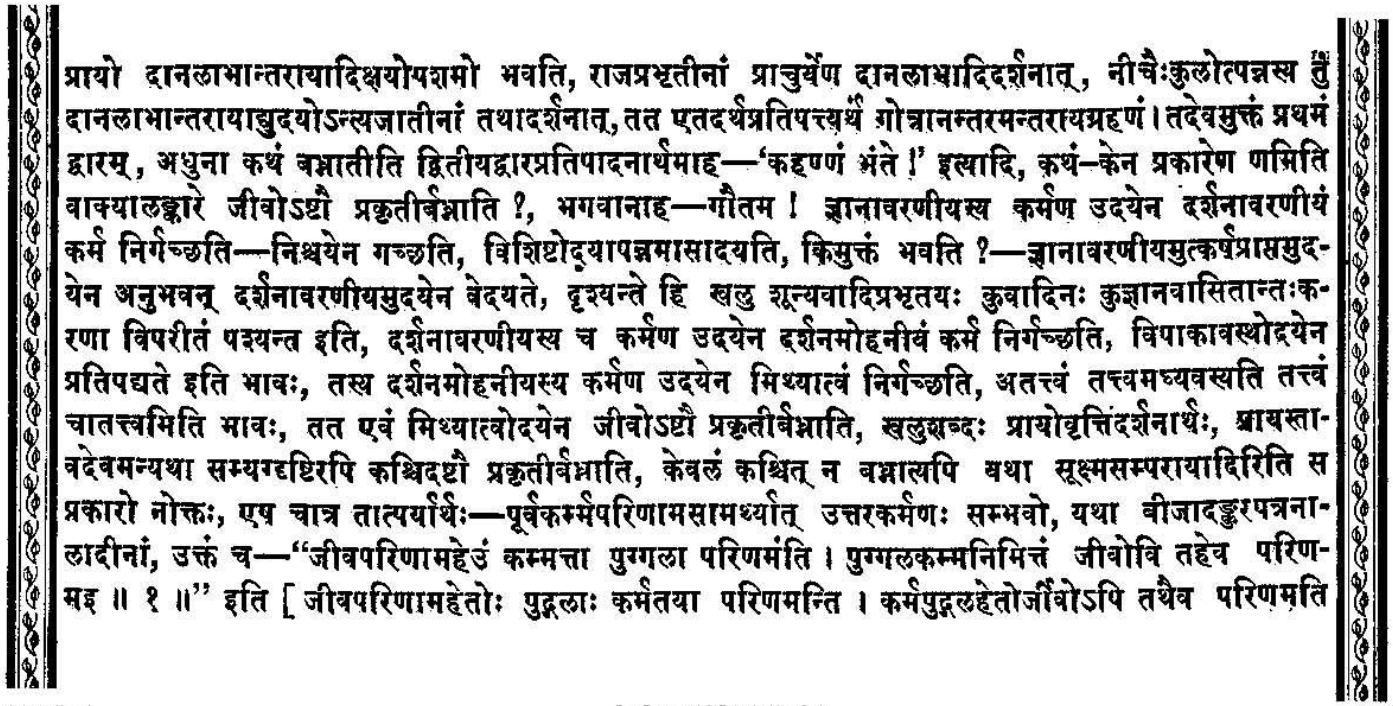
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१५],उपांगसूत्र-[४] "प्रज्ञापना" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२८८--२८९] + गाथा दीप अनुक्रम [५३४--५३६]

ति वचनप्रामाण्यात्, अन्यच—यस्मिन् समये सकलकर्मविनिर्मुक्तस्वरूपो जीवः सम्पद्यते तस्मिन् समये ज्ञानोपयोगोपयुक्त एव न दर्शनोपयुक्तो, दर्शनोपयोगस्य द्वितीयसमये भावात्, ततो ज्ञानं प्रधानं, तदावारकं च ज्ञानावरणीयं कर्म ततस्तत्प्रथममुक्तं, ततस्तदनन्तरं दर्शनावरणीयं ज्ञानोपयोगाच्युतस्य दर्शनोपयोगेऽवस्थानात्, एते च ज्ञानदर्शनावरणीये स्वविपाकमुपदर्शयतो यथायोगमवश्यं सुखदुःखस्वरूपवेदनीयकर्मविपाकोदयनिमित्ते भवतः, तथाहि—ज्ञानावरणमुपचयोत्कर्षमधिरूढं विपाकतोऽनुभवन् सूक्ष्म २ तरवस्तुविचारासमर्थमात्मानं जानानः खिद्यते भूरिलोकः, ज्ञानावरणकर्मक्षयोपशमपाटवोपेतश्च सूक्ष्मसूक्ष्मतराणि वस्तूनि निजप्रज्ञया भिन्दानो बहुजनातिशायिबमात्मानं पश्यन् सुखं वेदयते, तथाऽतिनिबिडदर्शनावरणविपाकोदये जात्यन्धादिरनुभवति दुःखमद्भुतं, दर्शनावरणकर्मक्षयोपशमपटिष्टतापरिकरितश्च स्पष्टचक्षुराद्युपेतो यथावद् वस्तूनि पश्यन् वेदयते प्रमोदम्, तत एतदर्थप्रतिपत्त्यर्थं दर्शनावरणीयानन्तरं वेदनीयग्रहणं, वेदनीयं च सुखदुःखे जनयत्यभीष्टानभीष्टविषयसम्बन्धात्, अभीष्टानभीष्टविषयसम्बन्धे चावश्यं संसारिणां रागद्वेषौ तौ च मोहनीयहेतुकौ तत एतदर्थप्रतिपत्त्यर्थं वेदनीयानन्तरं मोहनीयग्रहणं, मोहनीयमूढाश्च जन्तवो बह्वारम्भपरिग्रहाद्यासक्ता नरकाद्यायुष्कमाबध्नन्ति ततो मोहनीयानन्तरमायुष्कग्रहणं, नरकाद्यायुष्कोदये चावश्यं नरकगत्यादीनि नामान्युदयमायान्ति तत आयुष्कानन्तरं नामग्रहणं, नामकर्मोदये च नियमादुच्चनीचान्यतरगोत्रकर्मविपाकोदयेन भवितव्यमतो नामग्रहणानन्तरं गोत्रग्रहणं, गोत्रोदये चोच्चैःकुलोत्पन्नस्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

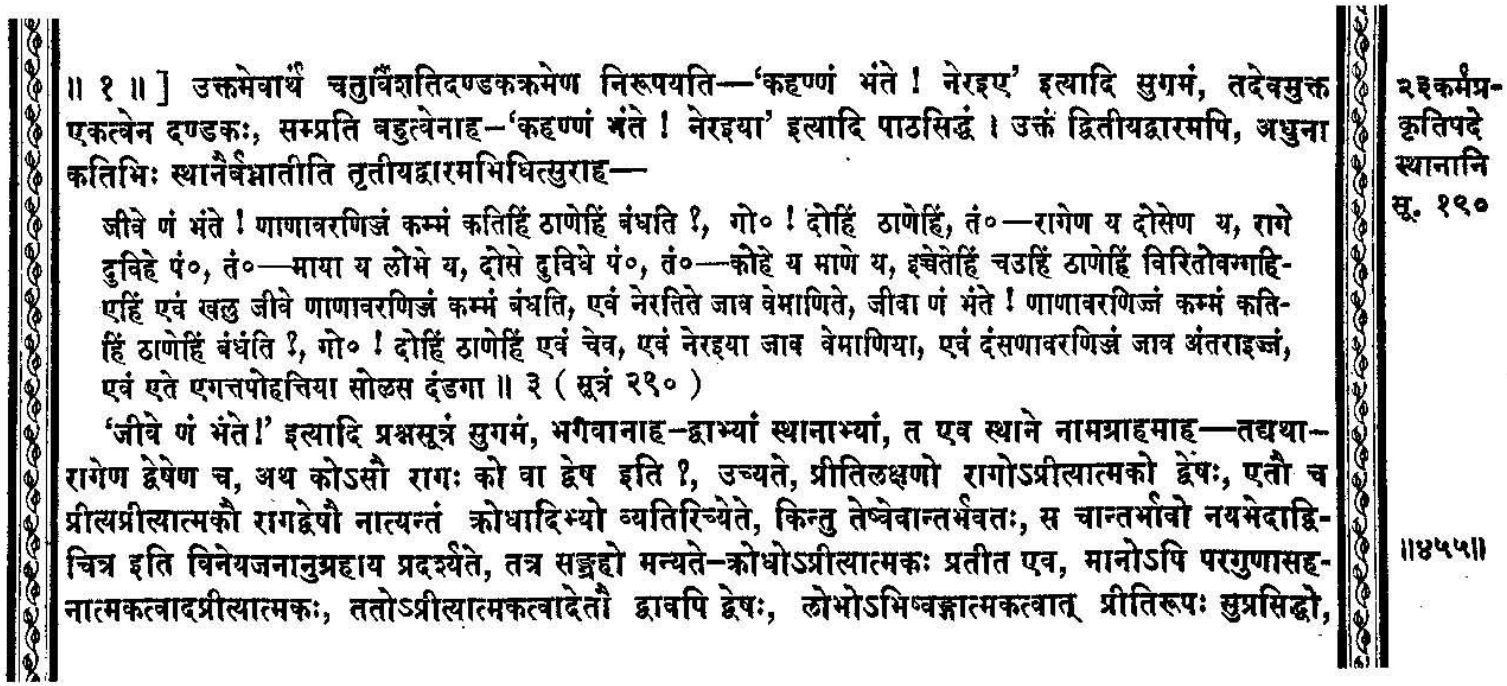


प्रायो दानलाभान्तरायादिक्षयोपशमो भवति, राजप्रभृतीनां प्रायुर्येण दानलाभादिदर्शनात्, नीचैःकुलोत्पन्नस्य तु दानलाभान्तरायाद्युदयोऽन्त्यजातीनां तथादर्शनात्, तत एतदर्थप्रतिपत्त्यर्थं गोत्रानन्तरमन्तरायग्रहणं। तदेवमुक्तं प्रथमं द्वारम्, अधुना कथं बध्नातीति द्वितीयद्वारप्रतिपादनार्थमाह—'कहण्णं भंते !' इत्यादि, कथं–केन प्रकारेण णमिति वाक्यालङ्कारे जीवोऽष्टौ प्रकृतीर्बध्नाति ?, भगवानाह—गौतम ! ज्ञानावरणीयस्य कर्मण उदयेन दर्शनावरणीयं कर्म निर्गच्छति—निश्चयेन गच्छति, विशिष्टोदयापन्नमासादयति, किमुक्तं भवति ?—ज्ञानावरणीयमुत्कर्षप्राप्तमुदयेन अनुभवन् दर्शनावरणीयमुदयेन वेदयते, दृश्यन्ते हि खलु शून्यवादिप्रभृतयः कुवादिनः कुज्ञानवासितान्तःकरणा विपरीतं पश्यन्त इति, दर्शनावरणीयस्य च कर्मण उदयेन दर्शनमोहनीयं कर्म निर्गच्छति, विपाकावस्थोदयेन प्रतिपद्यते इति भावः, तस्य दर्शनमोहनीयस्य कर्मण उदयेन मिथ्यात्वं निर्गच्छति, अतत्त्वं तत्त्वमध्यवस्यति तत्त्वं चातत्त्वमिति भावः, तत एवं मिथ्यात्वोदयेन जीवोऽष्टौ प्रकृतीर्बध्नाति, खलुशब्दः प्रायोवृत्तिदर्शनार्थः, प्रायस्तावदेवमन्यथा सम्यग्दृष्टिरपि कश्चिदष्टौ प्रकृतीर्बध्नाति, केवलं कश्चित् न बध्नात्यपि यथा सूक्ष्मसम्परायादिरिति स प्रकारो नोक्तः, एष चात्र तात्पर्यार्थः—पूर्वकर्मपरिणामसामर्थ्यात् उत्तरकर्मणः सम्भवो, यथा बीजादङ्कुरपत्रनालादीनां, उक्तं च—"जीवपरिणामहेउं कम्मत्ता पुग्गला परिणमंति। पुग्गलकम्मनिमित्तं जीवोवि तहेव परिणमइ ॥ १ ॥" इति [जीवपरिणामहेतोः पुद्गलाः कर्मतया परिणमन्ति। कर्मपुद्गलहेतोर्जीवोऽपि तथैव परिणमति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२८८--२८९] + गाथा

दीप अनुक्रम [५३४--५३६]



प्रज्ञापना-याः मल-य० वृत्तौ. ॥४५५॥

॥ १ ॥] उक्तमेवार्थं चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण निरूपयति—'कहण्णं भंते ! नेरइए' इत्यादि सुगमं, तदेवमुक्त एकत्वेन दण्डकः, सम्प्रति बहुत्वेनाह—'कहण्णं भंते ! नेरइया' इत्यादि पाठसिद्धं । उक्तं द्वितीयद्वारमपि, अधुना कतिभिः स्थानैर्बध्नातीति तृतीयद्वारमभिधित्सुराह—

जीवे णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं कतिहिं ठाणेहिं बंधति ?, गो० ! दोहिं ठाणेहिं, तं०—रागेण य दोसेण य, रागे दुविहे पं०, तं०—माया य लोभे य, दोसे दुविधे पं०, तं०—कोहे य माणे य, इच्चेतेहिं चउहिं ठाणेहिं विरितोवग्गहिएहिं एवं खलु जीवे णाणावरणिज्जं कम्मं बंधति, एवं नेरतिते जाव वेमाणिते, जीवा णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं कतिहिं ठाणेहिं बंधंति ?, गो० ! दोहिं ठाणेहिं एवं चेव, एवं नेरइया जाव वेमाणिया, एवं दंसणावरणिज्जं जाव अंतराइज्जं, एवं एते एगत्तपोहत्तिया सोलस दंडगा ॥ ३ (सूत्रं २९०)

'जीवे णं भंते!' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–द्वाभ्यां स्थानाभ्यां, त एव स्थाने नामग्राहमाह—तद्यथा–रागेण द्वेषेण च, अथ कोऽसौ रागः को वा द्वेष इति ?, उच्यते, प्रीतिलक्षणो रागोऽप्रीत्यात्मको द्वेषः, एतौ च प्रीत्यप्रीत्यात्मकौ रागद्वेषौ नात्यन्तं क्रोधादिभ्यो व्यतिरिच्येते, किन्तु तेष्वेवान्तर्भवतः, स चान्तर्भावो नयभेदाद्विचित्र इति विनेयजनानुग्रहाय प्रदर्श्यते, तत्र सङ्ग्रहो मन्यते–क्रोधोऽप्रीत्यात्मकः प्रतीत एव, मानोऽपि परगुणासहनात्मकत्वादप्रीत्यात्मकः, ततोऽप्रीत्यात्मकत्वादेतौ द्वावपि द्वेषः, लोभोऽभिष्वङ्गात्मकत्वात् प्रीतिरूपः सुप्रसिद्धो,

२३कर्मप्रकृतिपदे स्थानानि सू. १९० ॥४५५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र (२३) कर्मप्रकृति-पदे प्रथमे उद्देशके अधिकारः (३) आरब्धः,

मायामपि परवञ्चनात्मिकां किञ्चिदभिलषन् प्रयुङ्क्ते अभिलाषश्च प्रीतिस्वभाव इति साऽपि प्रीत्यात्मिका, तत एतौ मायालोभौ प्रीत्यात्मकत्वात् रागः, उक्तं च—"कोहं माणं चापीइजाइतो बेइ संगहो दोसं। मायाए लोभेण य स पीइसामण्णतो रागं ॥ १ ॥" अत्र उत्तरार्द्धस्याक्षरयोजना—मायया लोभेन सह प्रीतिजातिसामान्यात् स मान-प्रीतिजातिभावात् द्वावपि मायालोभौ स सङ्ग्रहो रागमाचष्टे इति। व्यवहारः पुनर्ब्रूते—माया खलु परोपघाताय प्रयुज्यते परोपघातपरिणामश्च द्वेष इति मायाया अपि द्वेषेऽन्तर्भावः, या तु न्यायोपादानेनार्थे मूर्च्छा स परोप-घातरहितः शुद्धो लोभ इति रागः, एवं चेदमस्य मतेन वस्तु व्यवस्थितं—क्रोधमानमाया द्वेषो लोभो राग इति, आह च—"मायंपि दोसमिच्छइ ववहारो जं परोवघायाय। नायोवायाणे चिय मुच्छा लोभेत्ति तो रागो ॥ १ ॥" ऋजुसूत्रः पुनराह—क्रोधो नियमादप्रीत्यात्मकः, ततः स परोपघातात्मकत्वात् द्वेषः, ये तु मानमायालोभास्ते द्विधाऽपि सम्भवन्ति—प्रीत्यात्मका अप्रीत्यात्मकाश्च, तथाहि—मानः स्वाहङ्कारोपयोगकाले प्रीत्यात्मकः स्वगुणब-हुमानभावात्, परगुणद्वेषोपयोगवेलायामप्रीत्यात्मको मात्सर्यादिभावात्, मायाऽपि परवञ्चनोपयोगप्रवृत्तौ परोप-घातरूपत्वात् अप्रीत्यात्मिका परगतद्रव्योपादानचिन्तायां त्वभिष्वङ्गात्मकत्वात् प्रीतिरूपा, लोभोऽपि क्षत्रियादीनां परिचिन्त्यमानः प्रीत्यप्रीत्यात्मकः सुप्रतीतः, तथाहि—क्षत्रिया एवं मन्यन्ते परविषयापहारोऽस्माकं न्यायो 'वीर-भोग्या वसुन्धरा' इति न्यायात्, ततो यदा परविषयापहाराय तेषामत्यर्थमभियोगस्तदाऽसौ अप्रीत्यात्मकः, परोप-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२९०]

दीप अनुक्रम [५३७]

घातहेतुत्वात्, यदा तु परविषयजिघृक्षोपयोगस्तदा सोऽभिष्वङ्गात्मकत्वात् प्रीत्यात्मकः, तत एवं मानमायालोभा उभयरूपा अपि संवेद्यन्ते, यदा च प्रीत्युपयोगो न तदाऽप्रीत्युपयोगः, यदा चाप्रीत्युपयोगो न तदा प्रीत्युपयोगः, एकस्मिन् समये उपयोगद्वयाभावात्, ततो मानमायालोभाः प्रीत्युपयोगकाले रागोऽप्रीत्युपयोगकाले द्वेषः, उक्तं च—"उजुसुयमयं कोहो दोसो सेसाणमयमणेगंतो । रागोत्ति य दोसोत्ति य परिणाम वसेण उ विसेसो ॥ १ ॥ माणो रागोत्ति मओ साहंकारोवओगकालंमि । सो चेव होइ दोसो परगुणदोसोवयोगंमि ॥ २ ॥ मायालोभा चेवं परोवघाओवओगतो दोसो । मुच्छोवओगकाले रागोऽभिस्संगलिंगोत्ति ॥ ३ ॥" शब्दादयस्त्रयः पुनरेवमाहुः—इह द्वावेव कषायौ—क्रोधो लोभश्च, ये तु मानमाये ते क्रोधलोभयोरन्तर्भवतः, तथाहि—माने मायायां च ये परोपघातहेतवोऽध्यवसायास्ते क्रोधोऽप्रीत्यात्मकत्वात् ये तु स्वगुणोत्कर्षपरद्रव्यमूर्च्छात्मकास्ते लोभोऽभिष्वङ्गरूपत्वात्, लोभोऽपि च लोकप्रसिद्धो द्विधा—परोपघातात्मको मूर्च्छात्मकश्च, तत्र परोपघातात्मको यथा क्षत्रियाणां परराष्ट्रापहारे, मूर्च्छात्मको न्यायोपात्ते निजद्रव्ये, तत्र यः परोपघातात्मकः स क्रोधो भवति, क्रोधश्च सर्वोऽपि यथोक्तस्वरूपो द्वेषोऽप्रीत्यात्मकत्वात्, केवलस्तु मूर्च्छात्मकोऽध्यवसायो लोभः स च रागः, तथा चोक्तम्—"सद्दाइमयं माणे मायाए य सगुणोवरागा य । उवओगो लोहो चिय जतो स तत्थेव उवरद्धो ॥ १ ॥ सेसंसा कोहो चिय सपरोवघायमइओत्ति तो दोसो । तल्लक्खणो य लोभो अह मुच्छा केवलो रागो ॥ १ ॥" इति, तत्र सङ्ग्रहनयमतेनाह—

२३कर्मप्रकृतिपदे स्थानानि सू. २९० ॥४५६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२९०]

दीप अनुक्रम [५३७]

'रागे दुविहे पण्णत्ते' इत्यादि सुगमं, भावितत्वात्, उपसंहारमाह—'इच्चेतेहिं चउहिं ठाणेहिं' इत्यादि, एवं खलु इत्येतैरनन्तरोक्तैश्चतुर्भिः स्थानैः, कथंभूतैरित्याह—वीर्योपगूहीतैर्जीववीर्योपस्थापितैरित्यर्थः, ज्ञानावरणीयं कर्म जीवो बध्नाति, अमुमेवार्थं चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण चिन्तयति–'एवं नेरइए जाव वेमाणिए' सुगमं, नवरमेवं सूत्रपाठः 'नेरइए णं भंते ! नाणावरणिज्जं कम्मं कइहिं ठाणेहिं बंधइ' इत्यादि। तदेवमेकत्वेन चिन्ता कृता, सम्प्रति बहुत्वेन तां कुर्वन्नाह–'जीवा णं भंते !' इत्यादि सुगमं, यथा च ज्ञानावरणीयमेकत्वबहुत्वाभ्यां दण्डकद्वयेन चिन्तितं तथा दर्शनावरणीयादीन्यपि चिन्तनीयानि, सर्वसङ्ख्यया षोडश दण्डकाः। तदेवमुक्तं तृतीयं द्वारम्, सम्प्रति कति प्रकृतीर्वेदयते इति चतुर्थं द्वारमभिधित्सुराह—

जीवे णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं वेदेति ?, गो० ! अत्थेगइए वेदेति अत्थेगइए नो वेएइ, नेरइए णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं वेदेति ?, गो० ! नियमा वेदेति, एवं जाव वेमाणिते, णवरं मणूसे जहा जीवे। जीवा णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं वेदेंति ?, गो० ! वेदेंति एवं चेव, एवं जाव वेमाणिया, एवं जहा णाणावरणिज्जं तहा दंसणावरणिज्जं मोहणिज्जं अंतराइयं च, वेयणिज्जाउनामगोताइं एवं चेव, नवरं मणूसेवि नियमा वेदेति, एवं एते एगत्तपोहत्तिया सोलस दंडगा ॥ ४ (सूत्रं २९१)

'जीवे णं भंते !' इत्यादि, अस्त्येककः कश्चित् यो वेदयतेऽस्त्येककः कश्चिद् यो न वेदयते अक्षीणघातिकर्मा वेद-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र (२३) कर्मप्रकृति-पदे प्रथमे उद्देशके अधिकार: (४) आरब्धः,

यते क्षीणघातिकर्मा तु न वेदयते इति भावः, अमुमेवार्थं चतुर्विंशतिदण्डककमेण चिन्तयति–'नेरइए णं भंते !' इत्यादि सुगमं, मनुष्यं मुक्त्वा शेषेषु सर्वेष्वपि स्थानेषु नियमाद्वेदयते इति वक्तव्यं, सर्वेषामक्षीणघातिकर्मत्वात्, मनुष्ये यथा जीवपदेऽभिहितं तथाऽभिधातव्यं, क्षीणघातिकर्मणोऽपि मनुष्यस्य लभ्यमानत्वात्, एवमेष एकत्वेन दण्डक उक्तः, एवं बहुत्वेनापि वक्तव्यः, यथा च ज्ञानावरणीयमेकत्वपृथक्त्वाभ्यां भावितं एवं दर्शनावरणीयमोहनीयान्तरायाण्यपि भावनीयानि, वेदनीयायुर्नामगोत्राणि तु जीवपदे भजनीयानि, यतः—सिद्धा न वेदयन्ते शेषा वेदयन्ते इति, शेषास्तु नैरयिकादयो मनुष्या अपि च नियमाद्वेदयन्ते, आसंसारचरमसमयमवश्यममीषामुदयसम्भवात्, सर्वसङ्ख्यया चास्मिन्नप्यधिकारे एकत्वपृथक्त्वाभ्यां षोडश दण्डका भवन्ति। गतं चतुर्थद्वारम्, इदानीं तु अनुभावः कस्य कर्मणः कतिविध इति पञ्चमद्वारमभिधित्सुराह–

णाणावरणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स पुट्ठस्स बद्धफासपुट्ठस्स संचियस्स चियस्स उवचियस्स आवागपत्तस्स विवागपत्तस्स फलपत्तस्स उदयपत्तस्स जीवेणं कयस्स जीवेणं निव्वत्तियस्स जीवेणं परिणामियस्स सयं वा उदिण्णस्स परेण वा उदीरियस्स तदुभएण वा उदीरिज्जमाणस्स गतिं पप्प ठितिं पप्प भवं पप्प पोग्गलपरिणामं पप्प कतिविधे अणुभावे पण्णत्ते ?, गो० ! णाणावरणिज्जस्स णं कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पोग्गलपरिणामं पप्प दसविधे अणुभावे पं०, तं०–सोतावरणे सोयविण्णाणावरणे नेत्तावरणे नेत्तविण्णाणावरणे घाणावरणे घाणविण्णाणावरणे रसावरणे रस-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र (२३) कर्मप्रकृति-पदे प्रथमे उद्देशके अधिकारः (५) आरब्धः,

विण्णाणावरणे फासावरणे फासविण्णाणावरणे, जं वेदेति पोग्गलं वा पोग्गले वा पोग्गलपरिणामं वा वीससा वा पोग्गलाणं परिणामं तेसिं वा उदएणं जाणियव्वं ण जाणति जाणिउकामे ण याणति जाणित्तावि न याणति उच्छन्ननाणी यावि भवति णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं, एस णं गोयमा ! णाणावरणिज्जे कम्मे एस णं गोयमा ! णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पोग्गलपरिणामं पप्प दसविधे अणुभावे पं० । दरिसणावरणिज्जस्स णं भंते! कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पोग्गलपरिणामं पप्प कतिविधे अणुभावे पं० ?, गो० ! दरिसणावरणिज्जस्स कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पोग्गलपरिणामं पप्प णवविधे अणुभावे पं०, तं०—णिद्दा णिद्दा २ पयला पयला २ थीणद्धी चक्खुदंसणावरणे अचक्खुदंसणावरणे ओहिदंसणावरणे केवलदंसणावरणे, जं वेदेति पोग्गलं वा पोग्गले वा पोग्गलपरिणामं वा वीससा वा पोग्गलाणं परिणामं तेसिं वा उदएणं पासियव्वं वा ण पासति पासिउकामेवि ण पासति पासित्ता वि ण पासति, उच्छन्नदंसणी यावि भवति दरिसणावरणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं, एस णं गो० ! दरिसणावरणिज्जे कम्मे एस णं गोयमा ! दरिसणावरणिज्जस्स कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पोग्गलपरिणामं पप्प णवविधे अणुभावे पण्णत्ते, सायावेयणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पोग्गलपरिणामं पप्प कतिविधे अणुभावे पं० ?, गो० ! सातावेदणिज्जस्स णं कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव अट्ठविधे अणुभावे पं० तं०—मणुण्णा सद्दा १ मणुण्णा रूवा २ मणुण्णा गंधा ३ मणुण्णा रसा ४ मणुण्णा फासा ५ मणोसुहता ६ वयसुहया ७ कायसुहता ८ जं वेदेति पोग्गलं वा पोग्गले वा पोग्गलपरिणामं वा वीससा वा पोग्गलाणं परिणामं तेसिं वा उदएणं सातावेदणिज्जं कम्मं वेदेति, एस णं गो० ! सायावेय-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णिज्जे कम्मे एस णं गो० ! सातावेयणिज्जस्स जाव अट्ठविधे अणुभावे पं० । असातावेयणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स जीवेणं तहेव पुच्छा, उत्तरं च, नवरं अमणुण्णा सद्दा जाव कायदुहया एस णं गो० ! असायावेयणिज्जे कम्मे एस णं गो० ! असातावेदणिज्जस्स जाव अट्ठविधे अणुभावे पं० । मोहणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव कतिविधे अणुभावे पं० ?, गो० ! मोहणिज्जस्स कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पंचविधे अणुभावे पं०, तं०—सम्मत्तवेयणिज्जे मिच्छत्तवेयणिज्जे सम्मामिच्छत्तवेयणिज्जे कसायवेयणिज्जे नोकसायवेयणिज्जे जं वेदेति पोग्गलं वा पोग्गले वा पोग्गलपरिणामं वा वीससा वा पोग्गलाण परिणामं तेसिं वा उदएणं मोहणिज्जं कम्मं वेएइ वा एस णं गोयमा ! मोहणिज्जस्स कम्मस्स जाव पंचविधे अणुभावे पं० । आउस्स णं भंते ! कम्मस्स जीवेणं तहेव पुच्छा, गो० ! आउयस्स णं कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव चउविहे अणुभावे पं०, तं०—नेरइयाउते तिरियाउते मणुयाउए देवाउए, जं वेदेति पोग्गलं वा पोग्गले वा पोग्गलपरिणामं वा वीससा वा पोग्गलाणं परिणामं तेसिं वा उदएणं आउयं कम्मं वेदेति वा एस णं गो० ! आउए कम्मे एस णं गो० ! आउकम्मस्स जाव चउविहे अणुभावे पण्णत्ते । सुहनामस्स णं भंते ! कम्मस्स जीवेणं पुच्छा, गो० ! सुहणामस्स णं कम्मस्स जीवेणं चउद्दसविधे अणुभावे पं० तं०—इट्ठा सद्दा १ इट्ठा रूवा २ इट्ठा गंधा ३ इट्ठा रसा ४ इट्ठा फासा ५ इट्ठा गती ६ इट्ठा ठिती ७ इट्ठे लावण्णे ८ इट्ठा जसोकित्ती ९ इट्ठे उट्ठाणकम्मबलवीरियपुरिसकारपरक्कमे १० इट्ठस्सरया ११ कंतस्सरया १२ पियस्सरया १३ मणुण्णस्सरया १४ जं वेदेति पोग्गलं वा पोग्गले वा पोग्गलपरिणामं वा वीससा वा पोग्गलाणं परिणामं तेसिं वा उदएणं सुभणामं कम्मं वेएइ एस णं गो० ! सुहनामकम्मे एस णं गो० ! सुभणामस्स कम्मस्स जाव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चउहसविधे अणुभावे पं०, दुहनामस्स णं भंते! पुच्छा, गो०! एवं चेव, णवरं असिट्ठा सद्दा जाव हीणस्सरया दीणस्सरया अकंतस्सरया जं वेदेति सेसं तं चेव जाव चउहसविधे अणुभावे पण्णत्ते। उच्चागोतस्स णं भंते! कम्मस्स जीवेणं पुच्छा, गो०! उच्चागोतस्स कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव अट्ठविहे अणुभावे पं० तं०–जातिविसिट्ठया १ कुलविसिट्ठया २ बलविसिट्ठया ३ रूवविः ४ तवविः ५ सुयविः ६ लाभविः ७ इस्सरियविः ८ जं वेदेति पोग्गलं वा पोग्गले वा पोग्गलपरिणामं वा वीससा वा पोग्गलाणं परिणामं तेसिं वा उदएणं जाव अट्ठविधे अणुभावे पं०, णीयागोयस्स णं भंते! पुच्छा, गो०! एवं चेव, णवरं जातिविहीणया जाव इस्सरियविहीणया जं वेदेति पुग्गलं वा पोग्गले वा पोग्गलपरिणामं वा वीससा वा पोग्गलाणं परिणामं तेसिं वा उदएणं जाव अट्ठविधे अणुभावे पण्णत्ते, अंतरायस्स णं भंते! कम्मस्स जीवेणं पुच्छा, गो०! अंतराइयस्स कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पंचविधे अणुभावे पं०, तं०—दाणंतराए लाभंतराए भोगंतराए उवभोगंतराए वीरियंतराए, जं वेदेति पोग्गलं जाव वीससा वा० तेसिं वा उदएणं अंतराइयं कम्मं वेदेति, एस णं गो०! अंतराइए कम्मे, एस णं गो०! जाव पंचविधे अणुभावे पं० (सूत्रं २९२) ॥ पण्णवणाए तेवीसतितमस्स पयस्स पढमो उद्देसो २३–१ ॥

'नाणावरणिज्जस्स णं भंते!' इत्यादि, ज्ञानावरणीयस्य णमिति वाक्यालङ्कारे भदन्त! जीवेन बद्धस्य—रागद्वेषपरिणामवशतः कर्मरूपतया परिणमितस्य स्पृष्टस्य—आत्मप्रदेशैः सह संश्लेषमुपगतस्य 'बद्धफासपुट्ठस्से'ति पुन-

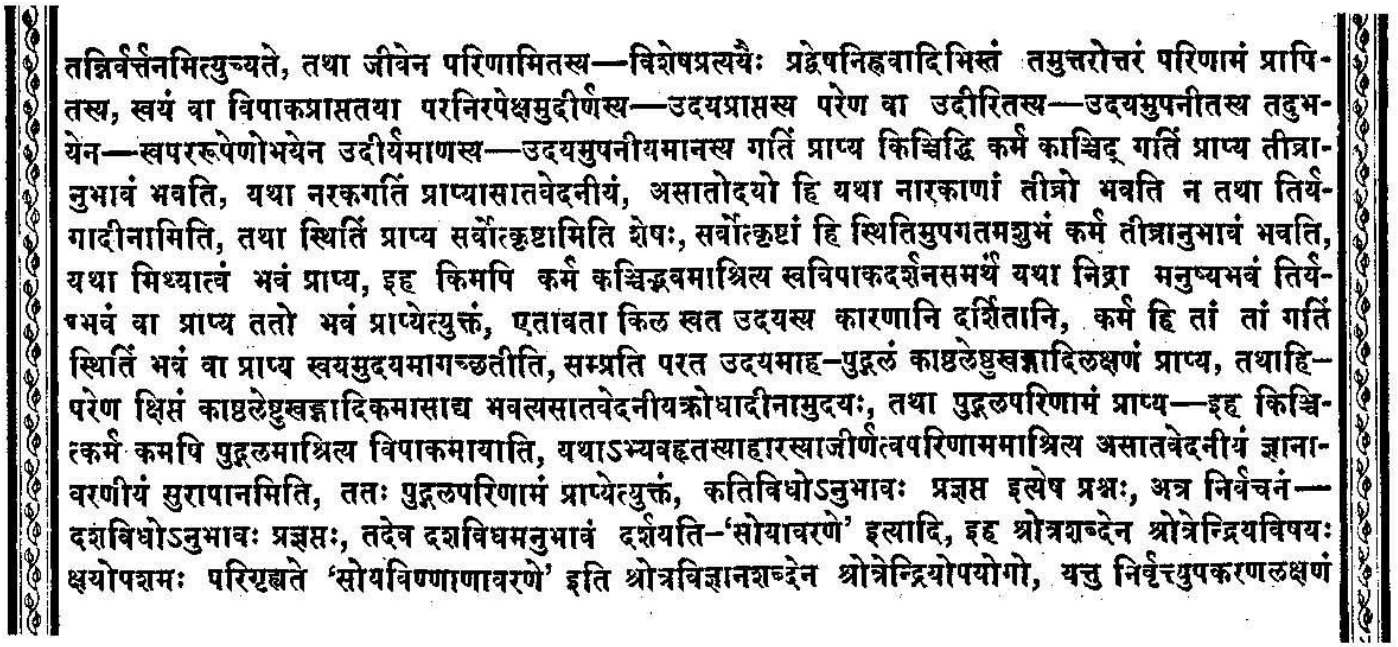
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रपि गाढतरं बद्धस्यातीव स्पर्शेन स्पृष्टस्य च, किमुक्तं भवति ?—आवेष्टनपरिवेष्टनरूपतयाऽतीव सोपचयं गाढतरं च बद्धस्येति, 'सञ्चितस्य' आबाधाकालातिक्रमेणोत्तरकालवेदनयोग्यतया निषिक्तस्य 'चितस्य' उत्तरोत्तरस्थितिषु प्रदेशहान्या रसवृद्ध्याऽवस्थापितस्य 'उपचितस्य' समानजातीयप्रकृत्यन्तरदलिकसङ्क्रमेणोपचयं नीतस्य 'आपाकप्राप्तस्य' ईषत्पाकाभिमुखीभूतस्य 'विपाकप्राप्तस्य' विशिष्टपाकमुपगतस्य अत एव 'फलप्राप्तस्य' फलं दातुमभिमुखीभूतस्य ततः सामग्रीवशादुदयप्राप्तस्य, एते चापाकप्राप्तत्वादयः कर्मधर्माः यथा आम्रफलस्य, तथाहि—आम्रफलं प्रथमत ईषत्पाकाभिमुखं भवति, ततो विशिष्टं पाकमुपागतं तदनन्तरं तृप्तिप्रमोदादि फलं दातुमुचितं ततः सामग्रीवशादुपभोगप्राप्तं भवति, एवं कर्मापीति, तत् पुनर्जीवेन कथं बद्धमित्यत आह—'जीवेण कयस्स' जीवेन कर्मबन्धनबद्धेनेति गम्यते 'कृतस्य' निष्पादितस्य जीवो ह्युपयोगस्वभावस्ततोऽसौ रागादिपरिणतो भवति, न शेषो, रागादिपरिणतश्च सन् कर्म करोति, सा च रागादिपरिणतिः कर्मबन्धनबद्धस्य भवति, न तद्वियोगे, अन्यथा मुक्तानामप्यवीतरागत्वप्रसक्तेः, ततः कर्मबन्धनबद्धेन सता जीवेन कृतस्येति द्रष्टव्यं, उक्तं च—'जीवस्तु कर्मबन्धनबद्धो वीरस्य भगवतः कर्त्ता । सन्तत्याऽनाद्यं च तदिष्टं कर्मात्मनः कर्तुः ॥ १ ॥" इति, तथा जीवेन निर्वर्त्तितस्य, इह बन्धसमये जीवः प्रथमतोऽविशिष्टान् कर्मवर्गणान्तःपातिनः पुद्गलान् गृह्णन् अनाभोगिकेन वीर्येण तस्मिन्नेव बन्धसमये ज्ञानावरणीयादितया व्यवस्थापयत्याहारमिव रसादिसप्तधातुरूपतया यच्च ज्ञानावरणीयादितया व्यवस्थापनं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२९२]

दीप अनुक्रम [५३९]

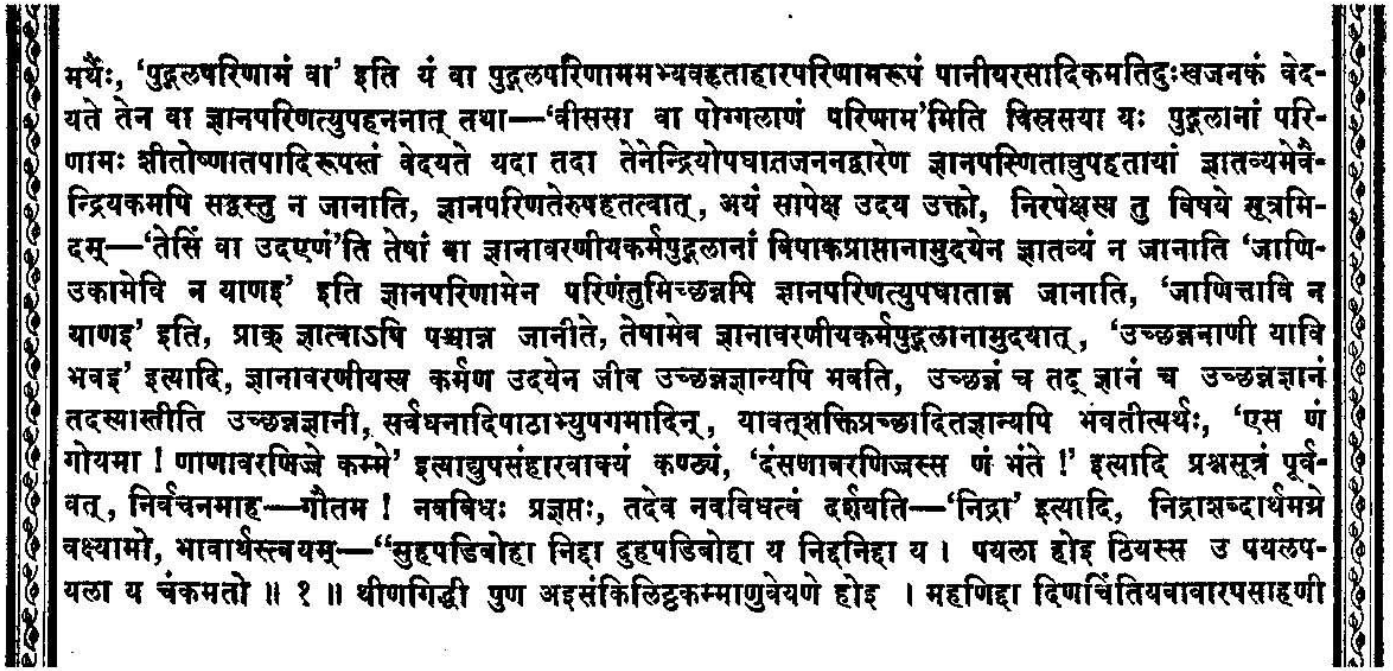


तन्निर्वर्त्तनमित्युच्यते, तथा जीवेन परिणामितस्य—विशेषप्रत्ययैः प्रद्वेषनिह्नवादिभिस्तं तमुत्तरोत्तरं परिणामं प्रापितस्य, स्वयं वा विपाकप्राप्ततया परनिरपेक्षमुदीर्णस्य—उदयप्राप्तस्य परेण वा उदीरितस्य—उदयमुपनीतस्य तदुभयेन—स्वपररूपेणोभयेन उदीर्यमाणस्य—उदयमुपनीयमानस्य गतिं प्राप्य किञ्चिद्धि कर्म काञ्चिद् गतिं प्राप्य तीव्रानुभावं भवति, यथा नरकगतिं प्राप्यासातवेदनीयं, असातोदयो हि यथा नारकाणां तीव्रो भवति न तथा तिर्यगादीनामिति, तथा स्थितिं प्राप्य सर्वोत्कृष्टामिति शेषः, सर्वोत्कृष्टां हि स्थितिमुपगतमशुभं कर्म तीव्रानुभावं भवति, यथा मिथ्यात्वं भवं प्राप्य, इह किमपि कर्म कञ्चिद्भवमाश्रित्य स्वविपाकदर्शनसमर्थं यथा निद्रा मनुष्यभवं तिर्यग्भवं वा प्राप्य ततो भवं प्राप्येत्युक्तं, एतावता किल स्वत उदयस्य कारणानि दर्शितानि, कर्म हि तां तां गतिं स्थितिं भवं वा प्राप्य स्वयमुदयमागच्छतीति, सम्प्रति परत उदयमाह–पुद्गलं काष्ठलेष्टुखड्गादिलक्षणं प्राप्य, तथाहि–परेण क्षिप्तं काष्ठलेष्टुखड्गादिकमासाद्य भवत्यसातवेदनीयक्रोधादीनामुदयः, तथा पुद्गलपरिणामं प्राप्य—इह किञ्चित्कर्म कमपि पुद्गलमाश्रित्य विपाकमायाति, यथाऽभ्यवहृतस्याहारस्याजीर्णत्वपरिणाममाश्रित्य असातवेदनीयं ज्ञानावरणीयं सुरापानमिति, ततः पुद्गलपरिणामं प्राप्येत्युक्तं, कतिविधोऽनुभावः प्रज्ञप्त इत्येष प्रश्नः, अत्र निर्वचनं—दशविधोऽनुभावः प्रज्ञप्तः, तदेव दशविधमनुभावं दर्शयति–'सोयावरणे' इत्यादि, इह श्रोत्रशब्देन श्रोत्रेन्द्रियविषयः क्षयोपशमः परिगृह्यते 'सोयविण्णाणावरणे' इति श्रोत्रविज्ञानशब्देन श्रोत्रेन्द्रियोपयोगो, यत्तु निर्वृत्त्युपकरणलक्षणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्येन्द्रियं तदङ्गोपाङ्गनामकर्मनिर्वर्त्त्यं न ज्ञानावरणविषय इति न श्रोत्रशब्देन गृह्यते, एवं नेत्रावरणे इत्याद्यपि भावनीयं, तथैकेन्द्रियाणां रसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रविषयाणां लब्ध्युपयोगानां प्राय आवरणं, प्रायोग्रहणं च बकुलादिव्यवच्छेदार्थं, बकुलादीनां हि यथायोगं पञ्चानामपीन्द्रियाणां लब्ध्युपयोगाः फलतोऽस्पष्टा उपलक्ष्यन्ते, आगमेऽपि च प्रोच्यन्ते—"पंचिंदियोवि बउलो नरोव पंचिंदिओवओगाओ । तहवि न भण्णइ पंचिंदिओत्ति दविंदियाभावा ॥ १ ॥" तथा "जह सुहुमं भाविंदियनाणं दविंदियावरोहेवि । दव्वसुयाभावंमिवि भावसुयं पत्थिवाईणं ॥ २ ॥" इति [पञ्चेन्द्रियोऽपि बकुलो नर इव पञ्चेन्द्रियोपयोगात् । तथापि न भण्यते पञ्चेन्द्रिय इति द्रव्येन्द्रियाभावात् ॥ १ ॥ यथा सूक्ष्मं भावेन्द्रियज्ञानं द्रव्येन्द्रियावरोधेऽपि । द्रव्यश्रुताभावेऽपि भावश्रुतं पार्थिवादीनां ॥ २ ॥] ततः प्राय इत्युक्तं, द्वीन्द्रियाणां घ्राणचक्षुःश्रोत्रेन्द्रियविषयाणां लब्ध्युपयोगानां त्रीन्द्रियाणां चक्षुःश्रोत्रविषयाणां चतुरिन्द्रियाणां श्रोत्रेन्द्रियलब्ध्युपयोगावरणं सर्वेषामपि स्पर्शनेन्द्रियलब्ध्युपयोगावरणं कुष्ठादिव्याधिभिरुपहतदेहस्य द्रष्टव्यं, पञ्चेन्द्रियाणामपि जात्यन्धादीनां पश्चाद्वा अन्धबधिरीभूतानां चक्षुरादीन्द्रियलब्ध्युपयोगावरणं भावनीयं, कथमेवमिन्द्रियाणां लब्ध्युपयोगावरणमिति चेत्, उच्यते, स्वयमुदीर्णस्य परेण वा उदीरितस्य ज्ञानावरणीयकर्मण उदयेन, तथा चाह—'जं वेएइ' इति, यद्वेदयते परेण क्षिप्तं काष्ठलेष्वसङ्गादिलक्षणं पुद्गलं तेनाभिघातजननसमर्थेन 'पुग्गले वा' इति यावद्बहून् पुद्गलान् काष्ठादिलक्षणान् परेण क्षिप्तान् वेदयते, तैरभिघातजननस-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



मर्थैः, 'पुद्गलपरिणामं वा' इति यं वा पुद्गलपरिणाममभ्यवहृताहारपरिणामरूपं पानीयरसादिकमतिदुःखजनकं वेदयते तेन वा ज्ञानपरिणत्युपहननात् तथा—'वीससा वा पोग्गलाणं परिणाम'मिति विस्रसया यः पुद्गलानां परिणामः शीतोष्णातपादिरूपस्तं वेदयते यदा तदा तेनेन्द्रियोपघातजननद्वारेण ज्ञानपरिणतावुपहतायां ज्ञातव्यमेवेन्द्रियकमपि सद्वस्तु न जानाति, ज्ञानपरिणतेरुपहतत्वात्, अयं सापेक्ष उदय उक्तो, निरपेक्षस्य तु विषये सूत्रमिदम्—'तेसिं वा उदएणं'ति तेषां वा ज्ञानावरणीयकर्मपुद्गलानां विपाकप्राप्तानामुदयेन ज्ञातव्यं न जानाति 'जाणिउकामेवि न याणइ' इति ज्ञानपरिणामेन परिणंतुमिच्छन्नपि ज्ञानपरिणत्युपघातान्न जानाति, 'जाणित्तावि न याणइ' इति, प्राक् ज्ञात्वाऽपि पश्चान्न जानीते, तेषामेव ज्ञानावरणीयकर्मपुद्गलानामुदयात्, 'उच्छन्ननाणी यावि भवइ' इत्यादि, ज्ञानावरणीयस्य कर्मण उदयेन जीव उच्छन्नज्ञान्यपि भवति, उच्छन्नं च तद् ज्ञानं च उच्छन्नज्ञानं तदस्यास्तीति उच्छन्नज्ञानी, सर्वधनादिपाठाभ्युपगमादिन्, यावत्शक्तिप्रच्छादितज्ञान्यपि भवतीत्यर्थः, 'एस णं गोयमा ! णाणावरणिज्जे कम्मे' इत्याद्युपसंहारवाक्यं कण्ठ्यं, 'दंसणावरणिज्जस्स णं भंते !' इत्यादि प्रश्नसूत्रं पूर्ववत्, निर्वचनमाह—गौतम ! नवविधः प्रज्ञप्तः, तदेव नवविधत्वं दर्शयति—'निद्रा' इत्यादि, निद्राशब्दार्थमग्रे वक्ष्यामो, भावार्थस्त्वयम्—"सुहपडिबोहा निद्दा दुहपडिबोहा य निद्दनिद्दा य । पयला होइ ठियस्स उ पयलपयला य चंकमतो ॥ १ ॥ थीणगिद्धी पुण अइसंकिलिट्ठकम्माणुवेयणे होइ । महणिद्दा दिणचिंतियवावारपसाहणी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पायं ॥ २ ॥" [सुखप्रतिबोधा निद्रा दुःखप्रतिबोधा च निद्रानिद्रा च । प्रचला भवति स्थितस्य तु प्रचलाप्रचला च चङ्क्रमतः ॥ १ ॥ स्त्यानर्द्धिः पुनरतिसंक्लिष्टकर्माणुवेदने भवति । महानिद्रा दिनचिन्तितव्यापारप्रसाधनी प्रायः ॥२॥] चक्षुर्दर्शनावरणं—चक्षुःसामान्योपयोगावरणं, एवं शेषेष्वपि भावनीयं, 'जं वेयइ' इत्यादि, यं वेदयते पुद्गलं मृदुशयनादिकं 'पुग्गले वा' इति यान् पुद्गलान् बहून् मृदुशयनीयादीन् वेदयते पुद्गलपरिणामं माहिषदध्याद्यभ्यवहृताहारपरिणाममित्यर्थः, 'वीससा पोग्गलाण परिणाम'मिति वर्षास्वभ्रसम्भृतनभोरूपं धाराम्बुनिपातरूपं वा यं वेदयते तेन निद्राद्युदयापेक्षया दर्शनपरिणत्युपघाते एतावता परत उक्तः, सम्प्रति स्वत उदयमाह—'तेसिं वा उदएणं'ति तेषां वा दर्शनावरणीयकर्मपुद्गलानामुदयेन परिणतिविघातेन द्रष्टव्यं न पश्यति, तथा कश्चित् दर्शनपरिणामेन परिणन्तुमिच्छन्नपि जात्यन्धत्वादिना दर्शनपरिणत्युपघातान्न पश्यति, प्राग् दृष्ट्वापि पश्चान्न पश्यति, दर्शनावरणीयकर्मपुद्गलानामुदयात्, किं बहुना ?, दर्शनावरणीयस्य कर्मण उदयेन जीव उच्छन्नदर्शन्यपि यावच्छक्तिप्रच्छादितदर्शन्यपि भवति, 'एस णं गोयमा ! दरिसणावरणिज्जे कम्मे' इत्याद्युपसंहारवाक्यं । 'सायावेयणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स' इत्यादि प्रश्नसूत्रं प्राग्वत्, निर्वचनमाह—गौतम ! अष्टविधोऽनुभावः प्रज्ञप्तः, अष्टविधत्वमेव दर्शयति—'मणुन्ना सद्दा' इत्यादि, मनोज्ञाः शब्दा आगन्तुका वेणुवीणादिसम्बन्धिनः, अन्ये आत्मीया इत्याहुस्तदयुक्तं, आत्मीयशब्दानां वाक्सुखेनेत्यनेनैव गृहीतत्वात्, मनोज्ञा रसा—इक्षुरसप्रभृतयः, मनोज्ञा गन्धाः—कर्पूरादिसम्बन्धिनः,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२९२]

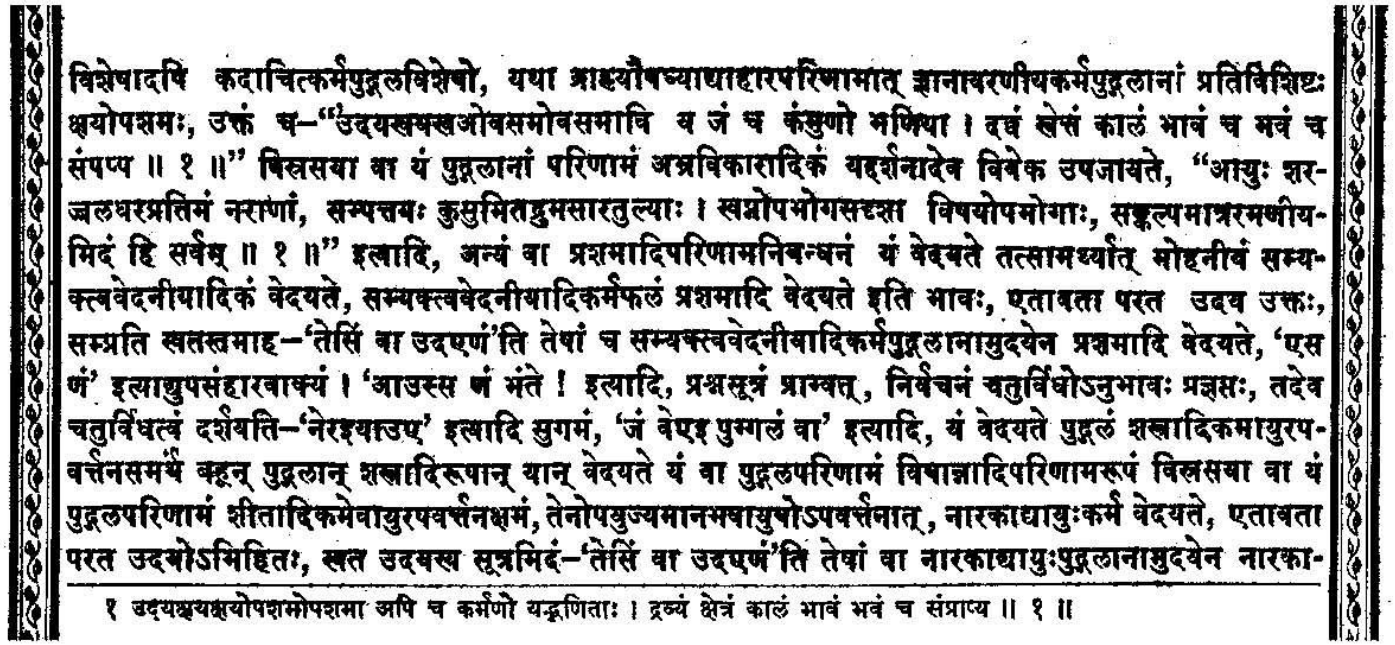
दीप अनुक्रम [५३९]

मनोज्ञानि रूपाणि–स्वगतस्वस्त्रीगतचित्रादिगतानि मनोज्ञाः स्पर्शा–हंसतूल्यादिगता 'मणोसुहया' इति मनसि सुखं यस्यासौ मनःसुखस्तस्य भावो मनःसुखता, सुखितं मन इत्यर्थः, वाचि सुखं यस्यासौ वाक्सुखस्तस्य भावो वाक्-सुखता, सर्वेषां श्रोत्रमनःप्रल्हादकारिणी वागिति तात्पर्यार्थः, काये सुखं यस्यासौ कायसुखस्तद्भावः कायसुखता, सुखितः काय इत्यर्थः, एते चाष्टौ पदार्थाः सातावेदनीयस्योदयेन प्राणिनामुपतिष्ठन्ते तत उक्तोऽष्टविधः सातवेद-नीयस्यानुभावः, परतः सातावेदनीयस्योदयमुपदर्शयति–'जं वेएइ पुग्गल'मित्यादि, यद्वेदयते पुद्गलं स्रक्चन्दनादि यान् वेदयते पुद्गलान् बहून् स्रक्चन्दनादीन् यं वा वेदयते पुद्गलपरिणामं देशकालवयोऽवस्थानुरूपाहारपरिणामं, 'वीससा वा पुग्गलाण परिणामं' विस्रसया वा यं पुद्गलानां परिणामं कालेऽभिलषितं शीतोष्णादिवेदनाप्रतीकार-रूपं, तेन मनसः समाधानसम्पादनात् सातवेदनीयं कर्मानुभवति, सातवेदनीयकर्मफलं सातं वेदयते इत्यर्थः, उक्तः परत उदयः, सम्प्रति स्वत उदयमाह–'तेसिं वा उदएणं'ति तेषां वा सातवेदनीयकर्मपुद्गलानामुदयेन मनोज्ञशब्दा-दिव्यतिरेकेणापि कदाचित् सुखं वेदयते, यथा नैरयिकास्तीर्थकरजन्मादिकाले 'एस णं गोयमा !' इत्याद्युपसंहार-वाक्यं, 'असायावेयणिज्जस्स णं भंते !' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, निर्वचनं पूर्ववत्, तथा चाह—'तहेव पुच्छा उत्तरं च' नवरमित्यादिना पूर्वसूत्रादस्य विशेषमुपदर्शयति, 'अमणुण्णा सद्दा' इत्यादि, अमनोज्ञाः शब्दाः–खरोष्ट्राश्वादिस-म्बन्धिन आगन्तुका अमनोज्ञा रसाः—स्वस्याप्रतिभासिनो दुःखजनकाः अमनोज्ञा गन्धा–गोमहिषादिमृतकडेवरा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दिगन्धा अमनोज्ञानि रूपाणि–स्वगतस्त्रीगतादीनि अमनोज्ञाः स्पर्शाः–कर्कशादयः, 'मणोदुहिया' इति दुःखितं मन इति 'वइदुहिया' इति अभव्या वाक् इति भावार्थः, 'कायदुहिया' इति काये दुःखं यस्यासौ कायदुःखस्तद्भावः कायदुःखिता दुःखितकाय इत्यर्थः, 'जं वेएइ' इत्यादि, यं वेदयते पुद्गलं—विषशस्त्रकण्टकादि 'पुग्गले वा' इति यान् वा पुद्गलान् बहून् विषशस्त्रकण्टकादीन् वेदयते पुद्गलपरिणाममपथ्याहारलक्षणं, चित्तसया वा यं वेदयते पुद्गलपरिणामं अकालेऽनभिलषितं शीतोष्णादिपरिणामं, तेन मनसोऽसमाधानसम्पादनात्, असातवेदनीयं कर्मानुभवति, असातवेदनीयकर्मफलमसातं वेदयते इति भावः, एतेन परत उदय उक्तः, सम्प्रति स्वत उदयमाह–'तेसिं वा उदएणं'ति तेषां वा असातवेदनीयकर्मपुद्गलानामुदयेनासातं वेदयते, 'एस णं गोयमा !' इत्याद्युपसंहारवाक्यं। 'मोहणिज्जस्स णं भंते !' इत्यादि प्रश्नसूत्रं प्राग्वत्, निर्वचनं पञ्चविधोऽनुभावः प्रज्ञप्तः, तदेव पञ्चविधत्वं दर्शयति–'सम्यक्त्ववेदनीय'मित्यादि, सम्यक्त्वरूपेण यद्वेद्यं तत्सम्यक्त्ववेदनीयं, एवं शेषपदेष्वपि शब्दार्थो भावनीयः, भावार्थस्त्वयं–यदिह वेद्यमानं प्रश्नमादिपरिणामं करोति तत्सम्यक्त्ववेदनीयं, यत्पुनरदेवादिबुद्धिहेतुस्तन्मिथ्यात्ववेदनीयं, मिश्रपरिणामहेतुः सम्यग्मिथ्यात्ववेदनीयं, क्रोधादिपरिणामकारणं कषायवेदनीयं हास्यादिपरिणामकारणं नोकषायवेदनीयं, 'जं वेएइ पुग्गल'मित्यादि, यं वेदयते पुद्गलविषयं प्रतिमादिकं पुद्गलान् वा यान् वेदयते बहून् प्रतिमादीन् वं वा पुद्गलपरिणामं देशाद्यनुरूपाहारपरिणामं कर्मपुद्गलविशेषोपादानसमर्थं भवति, आहारपरिणाम-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



विशेषादपि कदाचित्कर्मपुद्गलविशेषो, यथा आहार्यौषध्याद्याहारपरिणामात् ज्ञानावरणीयकर्मपुद्गलानां प्रतिविशिष्टः क्षयोपशमः, उक्तं च–"उदयखयखओवसमोवसमावि य जं च कंसुणो भणिया । दव्वं खेत्तं कालं भावं च भवं च संपप्प ॥ १ ॥" विस्रसया वा यं पुद्गलानां परिणामं अभ्रविकारादिकं यदर्शनादेव विवेक उपजायते, "आयुः शरज्जलधरप्रतिमं नराणां, सम्पत्तयः कुसुमितद्रुमसारतुल्याः । स्वप्नोपभोगसदृशा विषयोपभोगाः, सङ्कल्पमात्ररमणीयमिदं हि सर्वम् ॥ १ ॥" इत्यादि, अन्यं वा प्रशमादिपरिणामनिबन्धनं यं वेदयते तत्सामर्थ्यात् मोहनीयं सम्यक्त्ववेदनीयादिकं वेदयते, सम्यक्त्ववेदनीयादिकर्मफलं प्रशमादि वेदयते इति भावः, एतावता परत उदय उक्तः, सम्प्रति स्वतस्तमाह–'तेसिं वा उदएणं'ति तेषां च सम्यक्त्ववेदनीयादिकर्मपुद्गलानामुदयेन प्रशमादि वेदयते, 'एसणं' इत्याद्युपसंहारवाक्यं । 'आउस्स णं भंते ! इत्यादि, प्रश्नसूत्रं प्राग्वत्, निर्वचनं चतुर्विधोऽनुभावः प्रज्ञप्तः, तदेव चतुर्विधत्वं दर्शयति–'नेरइयाउए' इत्यादि सुगमं, 'जं वेएइ पुग्गलं वा' इत्यादि, यं वेदयते पुद्गलं शस्त्रादिकमायुरपवर्त्तनसमर्थं बहून् पुद्गलान् शस्त्रादिरूपान् यान् वेदयते यं वा पुद्गलपरिणामं विषान्नादिपरिणामरूपं विस्रसया वा यं पुद्गलपरिणामं शीतादिकमेवायुरपवर्त्तनक्षमं, तेनोपयुज्यमानमप्यायुषोऽपवर्त्तनात्, नारकाद्यायुःकर्म वेदयते, एतावता परत उदयोऽभिहितः, स्वत उदयस्य सूत्रमिदं–'तेसिं वा उदएणं'ति तेषां वा नारकाद्यायुःपुद्गलानामुदयेन नारका-

१ उदयक्षयक्षयोपशमोपशमा अपि च कर्मणो यद्भणिताः । द्रव्यं क्षेत्रं कालं भावं भवं च संप्राप्य ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

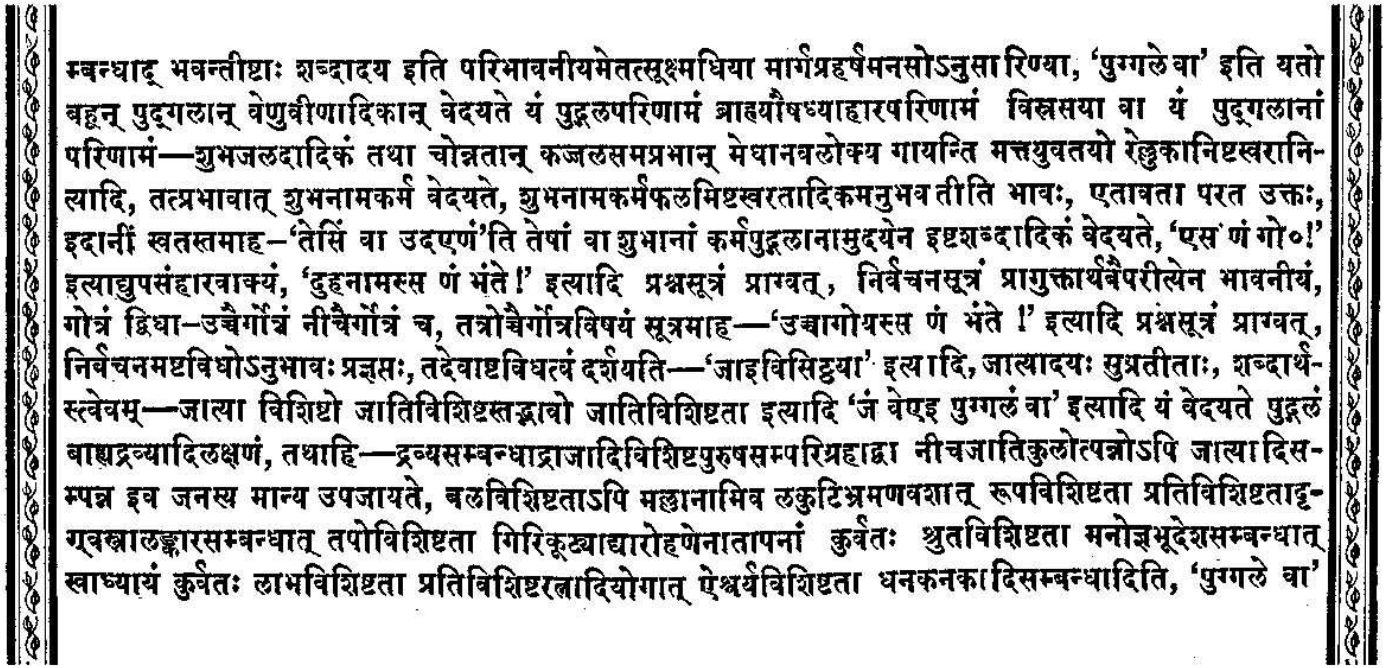
द्यायुर्वेदयते 'एस ण'मित्याद्युपसंहारवाक्यं। नामकर्म द्विधा–शुभनामकर्म अशुभनामकर्म च, तत्र शुभनामकर्माधिकृत्य सूत्रमाह—'सुभनामकम्मस्स णं भंते !' इत्यादि प्रश्नसूत्रं प्राग्वत्, निर्वचनं चतुर्दशविधोऽनुभावः प्रज्ञप्तः, तदेव च चतुर्दशविधत्वं दर्शयति–'इट्ठा सद्दा' इत्यादि, एते शब्दादय आत्मीया एव परिगृह्यन्ते, नामकर्मविपाकस्य चिन्त्यमानत्वात्, तत्र वादित्राद्युत्पादिता इत्येके, तदयुक्तं, तेषामन्यकर्मोदयनिष्पाद्यत्वात्, इष्टा गतिर्मत्तवारणाद्यनुकारिणी शिविकाद्यारोहणतश्चेत्येके, इष्टा स्थितिः सहजा सिंहासनादौ चान्ये, इष्टं लावण्यं–छायाविशेषलक्षणं कुङ्कुमाद्यनुलेपनजमित्यपरे इष्टा यशःकीर्त्तिः यशसा युक्ता कीर्त्तिः २, यशःकीर्त्योश्चायं विशेषः–'दानपुण्यकृता कीर्त्तिः, पराक्रमकृतं यशः' 'इट्ठे उट्ठाणकम्मबलवीरियपुरिसकारपरक्कमे' इति उत्थानं–देहचेष्टाविशेषः कर्म—आरेचनभ्रमणादि बलं–शारीरसामर्थ्यविशेषः वीर्यं—जीवप्रभवः स एव पुरुषकारः–अभिमानविशेषः स एव निष्पादितस्वविषयः पराक्रमः इष्टस्वरता–वल्लभस्वरता, तत्र इष्टाः शब्दा इति सामान्योक्तावियं विशेषोक्तिस्तदन्यबहुतमत्वापेक्षाऽवगन्तव्या, 'कांतस्वरते'ति कान्तः–कमनीयः सामान्यतोऽभिलषणीय इत्यर्थः, कान्तः स्वरो यस्य स तथा तद्भावः कान्तस्वरता, 'प्रियस्वरते'ति प्रियो—भूयोऽभिलषणीयः प्रियः स्वरो यस्य स तथा तद्भावः प्रियस्वरता, 'मणुण्णस्सरता' इति उपरतभावोऽपि स्वालम्बनप्रीतिजनको मनोज्ञः स स्वरो यस्य स मनोज्ञस्वरस्तद्भावो मनोज्ञस्वरता, 'जं वेएइ' इत्यादि, यं वेदयते पुद्गलं वीणावर्णकगन्धताम्बूलपट्टशिबिकासिंहासनकुङ्कुमदानराजयोगगुलिकादिलक्षणं, तथा च वीणादिसं-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२९२]

दीप अनुक्रम [५३९]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१५],उपांगसूत्र-[४] “प्रज्ञापना” मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः



म्बन्धाद् भवन्तीष्टाः शब्दादय इति परिभावनीयमेतत्सूक्ष्मधिया मार्गप्रहर्षमनसोऽनुसारिण्या, 'पुग्गले वा' इति यतो बहून् पुद्गलान् वेणुवीणादिकान् वेदयते यं पुद्गलपरिणामं ग्राह्यौषध्याहारपरिणामं विस्रसया वा यं पुद्गलानां परिणामं—शुभजलदादिकं तथा चोन्नतान् कज्जलसमप्रभान् मेघानवलोक्य गायन्ति मत्तयुवतयो रेल्लुकानिष्टस्वरानित्यादि, तत्प्रभावात् शुभनामकर्म वेदयते, शुभनामकर्मफलमिष्टस्वरतादिकमनुभवतीति भावः, एतावता परत उक्तः, इदानीं स्वतस्तमाह–'तेसिं वा उदएणं'ति तेषां वा शुभानां कर्मपुद्गलानामुदयेन इष्टशब्दादिकं वेदयते, 'एस णं गो०!' इत्याद्युपसंहारवाक्यं, 'दुहनामस्स णं भंते!' इत्यादि प्रश्नसूत्रं प्राग्वत्, निर्वचनसूत्रं प्रागुक्तार्थवैपरीत्येन भावनीयं, गोत्रं द्विधा–उच्चैर्गोत्रं नीचैर्गोत्रं च, तत्रोच्चैर्गोत्रविषयं सूत्रमाह—'उच्चागोयस्स णं भंते !' इत्यादि प्रश्नसूत्रं प्राग्वत्, निर्वचनमष्टविधोऽनुभावः प्रज्ञप्तः, तदेवाष्टविधत्वं दर्शयति—'जाइविसिट्ठया' इत्यादि, जात्यादयः सुप्रतीताः, शब्दार्थस्त्वेवम्—जात्या विशिष्टो जातिविशिष्टस्तद्भावो जातिविशिष्टता इत्यादि 'जं वेएइ पुग्गलं वा' इत्यादि यं वेदयते पुद्गलं बाह्यद्रव्यादिलक्षणं, तथाहि—द्रव्यसम्बन्धाद्राजादिविशिष्टपुरुषसम्परिग्रहाद्वा नीचजातिकुलोत्पन्नोऽपि जात्यादिसम्पन्न इव जनस्य मान्य उपजायते, बलविशिष्टताऽपि मल्लानामिव लकुटिभ्रमणवशात् रूपविशिष्टता प्रतिविशिष्टतादृग्वस्त्रालङ्कारसम्बन्धात् तपोविशिष्टता गिरिकूट्याद्यारोहणेनातापनां कुर्वतः श्रुतविशिष्टता मनोज्ञभूदेशसम्बन्धात् स्वाध्यायं कुर्वतः लाभविशिष्टता प्रतिविशिष्टरत्नादियोगात् ऐश्वर्यविशिष्टता धनकनकादिसम्बन्धादिति, 'पुग्गले वा'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इति यान् बहून् पुद्गलान् वेदयते पुद्गलपरिणामं–दिव्यफलाद्याहारपरिणामरूपं विस्रसया वा यं पुद्गलानां परिणामं-अकस्मादभिहितजलदागमसंवादादिलक्षणं तत्प्रभावादुच्चैर्गोत्रं वेदयते–उच्चैर्गोत्रकर्मफलं जातिविशिष्टत्वादिकं वेदयते, एतेन परत उदय उक्तः, सम्प्रति स्वतस्तमाह–'तेसिं वा उदएणं' तेषां वा उच्चैर्गोत्रकर्मपुद्गलानां उदयेन जातिविशिष्टत्वादिकं भवति, 'एस णं गोयमा' इत्याद्युपसंहारवाक्यं, 'नीयागोयस्स णं भंते !' इत्यादि प्रश्नसूत्रं प्राग्वत्, निर्वचनमष्टविधोऽनुभावः, तमेवाष्टविधमनुभावं दर्शयति–'जाइविहीणया' इत्यादि, सुप्रतीतं, 'जं वेएइ पुग्गल'मिति यं वेदयते पुद्गलं नीचकर्मासेवनरूपं नीचपुरुषसम्बन्धलक्षणं वा, तथाहि—उत्तमजातिसम्पन्नोऽपि उत्तमकुलोत्पन्नोऽपि यदि नीचैःकर्मवशात् यथा (अधम) जीविकारूपमासेवते चाण्डालीं वा गच्छति तदा भवति चाण्डालादिरिव जनस्य निन्द्यः, बलहीनता सुखशयनीयादिसम्बन्धतः रूपविहीनता कुत्सितवस्त्रादिसम्बन्धात् तपोविहीनता पार्श्वस्थादिसंसर्गात् श्रुतविहीनता विकथापरसाध्वाभासादिसंसर्गात् लाभविहीनता देशकालानुचितकुक्रयाणकसम्पर्कतः ऐश्वर्यविहीनता कुग्रहकुकलत्रादिसम्पर्कत इति 'पुग्गले' इति यान् बहून् पुद्गलान् वेदयते यं वा पुद्गलपरिणामं वृन्ताकीफलाद्याहारपरिणामरूपं, वृन्ताकीफलं ह्यभ्यवहृतं कण्डूत्युत्पादनेन रूपविहीनतामापादयतीत्यादि, विश्रसया वा पुद्गलानां परिणामं अभिहितजलदागमविसंवादलक्षणं वेदयते, तत्प्रभावात् नीचैःकर्म वेदयते, नीचैःकर्मफलं जात्यादिविहीनतारूपं वेदयते इत्यर्थः, एतावता परत उदय उक्तः, सम्प्रति स्वत उदयमाह—'तेसिं वा उदए-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णं'ति तेषां वा–नीचैर्गोत्रकर्मपुद्गलानामुदयेन जात्यादिविहीनतामनुभवति, 'एस णं गोयमा!' इत्याद्युपसंहारवाक्यं, 'अंतरायस्स णं भंते!' इत्यादि प्रश्नसूत्रं प्राग्वत्, निर्वचनं पञ्चविधोऽनुभावः प्रज्ञप्तः, तदेव पञ्चविधत्वं दर्शयति–'दाणंतराए' इत्यादि, दानस्यान्तरायो–विघ्नः दानान्तरायः, एवं सर्वत्र भावनीयं, तत्र दानान्तरायो दानान्तरायस्य कर्मणः फलं लाभान्तरायादयो लाभान्तरायादिकर्मणामिति 'जं वेएइ पुग्गलं वा' इत्यादि, यं वेदयते पुद्गलं तथाविधविशिष्टरत्नादिलक्षणं, तथाहि–प्रतिविशिष्टरत्नादिसम्बन्धात् दृश्यते तद्विषये एव दानान्तरायोदयः, सन्धिच्छेदनाद्युपकरणसम्बन्धाल्लाभान्तरायकर्मोदयः प्रतिविशिष्टाहारसम्बन्धादनर्घार्थसम्बन्धाद्वा लोभतो भोगान्तरायोदयः एवमुपभोगान्तरायकर्मोदयोऽपि भावनीयः, तथा लकुटादिअभिघाताद्वीर्यान्तरायकर्मोदय इति, 'पुग्गले वा' बहून् तथाविधान् यान् पुद्गलान् वेदयते यं वा पुद्गलपरिणामं तथाविधाहारौषध्यादिपरिणामरूपं, तथाहि–दृश्यते तथाविधाहारौषधपरिणामाद्वीर्यान्तरायकर्मोदयः मन्त्रापसिक्तवासादिगन्धपुद्गलपरिणामात् भोगान्तरायादयो यथा सुबन्धुसचिवस्य, विस्रसया वा यं पुद्गलानां परिणामं चित्रं शीतादिलक्षणं, तथाहि–दृश्यन्ते वस्त्रादिकं दातुकामा अपि शीतादि निपतन्तमालोक्य दानान्तरायादयात् तस्यादातार इति तत्प्रभावात्, एष परत उदय उक्तः, स्वतस्तमाह–'तेसिं वा उदएणं'ति तेषां वा–अन्तरायकर्मपुद्गलानामुदयेन अन्तरायकर्मफलं दानान्तरायादिकं वेदयते–'एस ण'मित्याद्युपसंहारवाक्यम्। इति श्रीमलयगिरिविरचितायां प्र० त्रयोविंशतितमस्य कर्मप्रकृतिपदस्य प्रथमोद्देशकः ॥१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१५],उपांगसूत्र-[४] "प्रज्ञापना" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२९३]

दीप अनुक्रम [५४०]

व्याख्यातः प्रथमोद्देशकः, इदानीं द्वितीयो व्याख्येयः, तस्य चायमभिसम्बन्धः, इहानन्तरोद्देशके ज्ञानावरणीयादीनामनुभाव उक्तः, इह तु तेषामेव ज्ञानावरणीयादीनामुत्तरप्रकृतिविभाग उच्यते, तत्र विशेषपरिज्ञानार्थं भूयोऽपि मूलप्रकृतिविषयं प्रश्ननिर्वचनसूत्रमाह—

कति णं भंते ! कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ, गो० ! अट्ठ कम्मपगडीओ पं०, तं०—णाणावरणिज्जं जाव अंतराइयं, णाणावरणिज्जे णं भंते ! कम्मे कतिविधे पं० ?, गो० ! पंचविधे पं०, तं०–आभिणिबोहियनाणावरणिज्जे जाव केवलनाणावरणिज्जे, दंसणावरणिज्जे णं भंते ! कम्मे कतिविधे पं० ?, गो० ! दु० पं०, तं०—निद्दापंचए य दंसणचउक्कए य, निद्दापंचए णं भंते ! कतिविधे पं० ?, गो० ! पंचविहे पं०, तं०–निद्दा जाव थिणद्धी, दंसणचउक्कए णं पुच्छा, गो० ! चउविधं पं०, तं०– चक्खुदंसणावरणिज्जे जाव केवलदंसणावरणिज्जे, वेयणिज्जे णं भंते ! कम्मे कतिविधे पं० ?, गो० ! दुविहे पं०, तं०—सायावेयणिज्जे य असायावेयणिज्जे य, सातावेयणिज्जे णं भंते ! कम्मे पुच्छा, गो० ! अट्ठविधे पं०, तं०—मणुण्णा सद्दा जाव कायसुहया, असायावेदणिज्जे णं भंते ! कम्मे कतिविधे पं० ?, गो० ! अट्ठविधे पं०, तं०—अमणुण्णा सद्दा जाव कायदुहया, मोहणिज्जे णं भंते ! कम्मे कतिविधे पं० ?, गो० ! दु० पं०, तं०–दंसणमोहणिज्जे य चरित्तमोहणिज्जे य, दंसणमोहणिज्जे णं भंते ! कम्मे कतिविधे पं० ?, गो० ! तिविहे पं०, तं०–सम्मत्तवेदणिज्जे मिच्छत्तवेयणिज्जे सम्मामिच्छत्तवेयणिज्जे, चरित्तमोहणिज्जे णं भंते ! कम्मे कतिविधे पं० ?, गो० ! दुविधे पं०, तं०–कसायवे०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ (२३) कर्मप्रकृति-पदे उद्देशक: (२) आरब्ध:

नोकसायवेद०, कसायवेदणिज्जे णं भंते! कतिविधे पं० ?, गो०! सोलसविधे पं०, तं०–अणंताणुबंधी कोहे अणंताणुबंधी माणे अ० माया अ० लोभे, अपच्चक्खाणे कोहे एवं माणे माया लोभे, पच्चक्खाणावरणे कोहे एवं माणे माया लोभे, संजलणकोहे एवं माणे माया लोभे, नोकसायवेयणिज्जे णं भंते ! कम्मे कतिविधे पं० ?, गो० ! णवविहे पं०, तं०–इत्थीवेयवेयणिज्जे पुरिसवे० नपुंसगवे० हासे रती अरती भए सोगे दुगुंछा, आउए णं भंते! कम्मे कतिविधे पं० ?, गो० ! चउव्विधे पं०, तं०–नेरइयाउए जाव देवाउए, णामे णं भंते! कम्मे कतिविधे पं० ?, गो० ! बायालीसतिविहे पण्णत्ते, तं०—गतिनामे १ जातिनामे २ सरीरनामे ३ सरीरोवंगनामे ४ सरीरबंधणनामे ५ सरीरसंघयणनामे ६ संघायणनामे ७ संठाणनामे ८ वण्णणामे ९ गंधणामे १० रसणामे ११ फासणामे १२ अगुरुलघुनामे १३ उवघायणामे १४ पराघायणामे १५ आणुपुव्विणामे १६ उस्सासणामे १७ आयवणामे १८ उज्जोयणामे १९ विहायगतिणामे २० तसनामे २१ थावरणामे २२ सुहुमनामे २३ बादरणामे २४ पज्जत्तणामे २५ अपज्जत्तणामे २६ साहारणसरीरणामे २७ पत्तेयसरीरणामे २८ थिरणामे २९ अथिरणामे ३० सुभणामे ३१ असुभणामे ३२ सुभगणामे ३३ दुभगणामे ३४ सूसरनामे ३५ दूसरनामे ३६ आदेज्जनामे ३७ अणादेज्जनामे ३८ जसोकित्तिणामे ३९ अजसोकित्तिणामे ४० णिम्माणणा० ४१ तित्थगरणा० ४२ । गतिनामे णं भंते! कम्मे कतिविहे पं० १, गो० ! चउव्विहे पं०, तं०—निरय० तिरिय० मणु० देवगतिणामे, जातिणामे णं भंते ! कम्मे पुच्छा, गो० ! पंच० पं०, तं० एगिंदियजातिणामे जाव पंचिंदियजातिणा०, सरीरनामे णं भंते! कम्मे कतिविधे पं०?, गो० ! पंच० पं०, तं०–ओरालियसरीरनामे जाव कम्मगसरीरणामे, सरीरो-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वंगनामे णं भंते ! कतिविधे पं० ?, गो० ! तिविधे पं० तं०—ओरालियसरीरोवंगणामे वेउव्वियसरीरोवंग० आहारगसरीरोवं०, सरीरबंधणनामे णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते ?, गो० ! पंचविधे पं० तं०–ओरालियसरीरबंधणणामे जाव कम्मगसरीरबंधणनामे, सरीरसंघायणामे णं भंते ! कति० ?, गो० ! पंचविधे पं०, तं०—ओरालियसरीरसंघायनामे जाव कम्मगसरीरसंघायनामे, संघयणनामे णं भंते ! कतिविधे पं० ?, गो० ! छविहे पं०, तं०–वइरोसभनारायसंघयणनामे उसहनारायसं० नारायसंघ० अद्धनारायसं० कीलियासंघ० छेवट्टसंघयणनामे, संठाणनामे णं भंते ! कतिविधे पं० ?, गो० ! छविहे पं०, तं०–समचउरंससंठाणनामे निग्गोहपरिमंडलसंठा० साइसं० वामणसं० खुज्जसं० हुंडसंठाणनामे, वण्णनामे णं भंते ! कम्मे कतिविधे पं० ?, गो० ! पंचविधे पं०, तं०—कालवण्णनामे जाव सुक्किलवण्णनामे, गंधनामे णं भंते ! कम्मे पुच्छा, गो० ! दु० पं०, तं०–सुरभिगंधनामे दुरभिगंधनामे, रसनामे णं पुच्छा, गो० ! पंचविधे पं०, तं०—तित्तरसनामे जाव महुररसनामे, फासनामे णं पुच्छा, गो० ! अट्ठविहे पं०, तं०–कक्खडफासनामे जाव लहुयफासनामे, अगुरुलहुयनामे एगागारे पं०, उवघायनामे एगागारे पं०, पराघातनामे एगागारे पं०, आणुपुव्विणामे चउविहे पं०, तं०–नेरइयआणुपुव्वीणामे जाव देवाणुपुव्वीणामे, उस्सासनामे एगागारे पं०, सेसाणि सव्वाणि एगागाराइं पण्णत्ताइं जाव तित्थगरनामे, णवरं विहायगतिनामे दुविधे पं०, तं०—पसत्थविहायगइनामे अपसत्थविहायगतिनामे य। गोए णं भंते ! कम्मे कइविहे पं० ?, गो० ! दुविहे पं०, तं०–उच्चागोए य नीयागोए य, उच्चागोए णं भंते ! कइविधे पं० ?, गो० ! अट्ठविधे पं०, तं०–जाइविसिट्ठया जाव इस्सरियविसिट्ठया, एवं नीयागोएवि, णवरं जातिविहीणता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

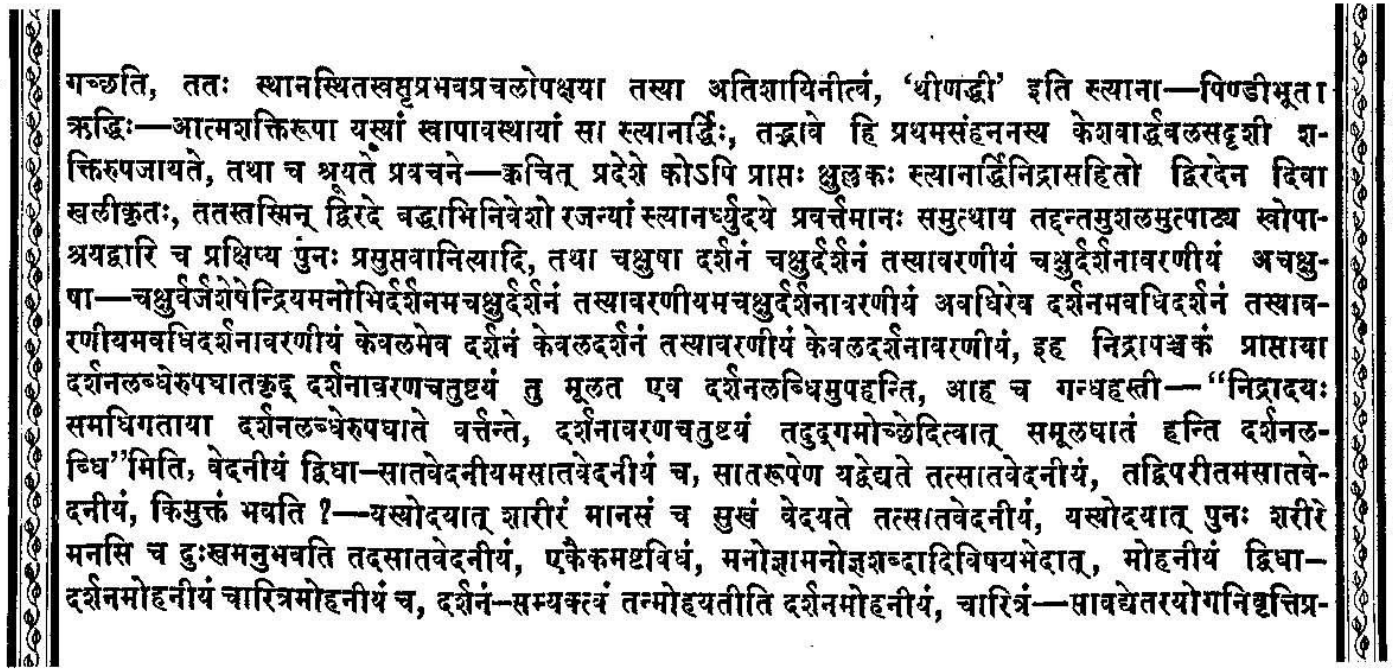
प्रत सूत्रांक [२९३]

दीप अनुक्रम [५४०]

जाव इस्सरियविहीणया। अंतराए णं भंते ! कम्मे कतिविधे पं० ?, गो० ! पंचविधे पं० तं०–दाणंतराइए जाव वीरियंतराइए। (सूत्रं २९३)

'कइ णं भंते !' इत्यादि पूर्ववत्, सम्प्रति 'यथोद्देशं [तथा] निर्देश' इति न्यायात् ज्ञानावरणीयोत्तरप्रकृतिविषयं सूत्रमाह—'नाणावरणिज्जे णं भंते !' इत्यादि, इह आभिनिबोधिकादि इत्यादिशब्दार्थं उपयोगपदे वक्ष्यते, विग्रहभावना त्वियम्—आभिनिबोधिकज्ञानस्यावरणीयं आभिनिबोधिकज्ञानावरणीयं, एवं श्रुतज्ञानावरणीयमित्यादिष्वपि भावनीयं। दर्शनावरणीयोत्तरप्रकृतीराह—'दरिसणावरणिज्जे णं भंते !' इत्यादि, 'द्रा कुत्सायां' नियतं द्राति-कुत्सितत्वमविस्पष्टत्वं गच्छति चैतन्यं यस्यां स्वापावस्थायां सा निद्रा, यदिवा 'द्रै स्वप्ने' निद्राणं निद्रा, नखच्छोटिकामात्रेण यस्यां प्रबोध उपजायते सा स्वापावस्था निद्रा, तद्विपाकवेद्या कर्मप्रकृतिरपि निद्रा कारणे कार्योपचारात्, 'निद्दानिद्द'त्ति निद्रातोऽतिशायिनी निद्रानिद्रा, शाकपार्थिवादिदर्शनात् 'मयूरव्यंसकादय' इति मध्यमपदलोपी समासः, तस्यां हि चैतन्यस्यात्यन्तमस्फुटीभूतत्वात् बहुभिर्घोलनाप्रकारैः प्रबोधो भवति, ततः सुखप्रबोधहेतुनिद्रातोऽस्या अतिशायिनीत्वं, तद्विपाकवेद्या कर्मप्रकृतिरपि निद्रानिद्रा उपचारात्, तथा उपविष्ट ऊर्ध्वस्थितो वा प्रचलयति—घूर्णयति यस्यां स्वापावस्थायां सा प्रचला, तद्विपाकवेद्या कर्मप्रकृतिरपि प्रचला, 'पयलापयला' इति प्रचलातोऽतिशायिनी प्रचलाप्रचला, पूर्ववत् मध्यमपदलोपी समासः, सा हि चङ्क्रमणादिकमपि कुर्वत उदयमधि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



प्रज्ञापनायाः मलय० वृत्तौ. ॥४६७॥

गच्छति, ततः स्थानस्थितस्वसृप्रभवप्रचलोपक्षया तस्या अतिशायिनीत्वं, 'थीणद्धी' इति स्त्याना—पिण्डीभूता ऋद्धिः—आत्मशक्तिरूपा यस्यां स्वापावस्थायां सा स्त्यानर्द्धिः, तद्भावे हि प्रथमसंहननस्य केशवार्द्धबलसदृशी शक्तिरुपजायते, तथा च श्रूयते प्रवचने—क्वचित् प्रदेशे कोऽपि प्रायः क्षुल्लकः स्त्यानर्द्धिनिद्रासहितो द्विरदेन दिवा खलीकृतः, ततस्तस्मिन् द्विरदे बद्धाभिनिवेशो रजन्यां स्त्यानर्ध्युदये प्रवर्त्तमानः समुत्थाय तद्दन्तमुशलमुत्पाट्य स्वापाश्रयद्वारि च प्रक्षिप्य पुनः प्रसुप्तवानित्यादि, तथा चक्षुषा दर्शनं चक्षुर्दर्शनं तस्यावरणीयं चक्षुर्दर्शनावरणीयं अचक्षुषा—चक्षुर्वर्जशेषेन्द्रियमनोभिर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनं तस्यावरणीयमचक्षुर्दर्शनावरणीयं अवधिरेव दर्शनमवधिदर्शनं तस्यावरणीयमवधिदर्शनावरणीयं केवलमेव दर्शनं केवलदर्शनं तस्यावरणीयं केवलदर्शनावरणीयं, इह निद्रापञ्चकं प्राप्तायां दर्शनलब्धेरुपघातकृद् दर्शनावरणचतुष्टयं तु मूलत एव दर्शनलब्धिमुपहन्ति, आह च गन्धहस्ती—"निद्रादयः समधिगतायां दर्शनलब्धेरुपघाते वर्त्तन्ते, दर्शनावरणचतुष्टयं तदुद्गमोच्छेदित्वात् समूलघातं हन्ति दर्शनलब्धि"मिति, वेदनीयं द्विधा—सातवेदनीयमसातवेदनीयं च, सातरूपेण यद्वेद्यते तत्सातवेदनीयं, तद्विपरीतमसातवेदनीयं, किमुक्तं भवति ?—यस्योदयात् शारीरं मानसं च सुखं वेदयते तत्सातवेदनीयं, यस्योदयात् पुनः शरीरे मनसि च दुःखमनुभवति तदसातवेदनीयं, एकैकमष्टविधं, मनोज्ञामनोज्ञशब्दादिविषयभेदात्, मोहनीयं द्विधा—दर्शनमोहनीयं चारित्रमोहनीयं च, दर्शनं—सम्यक्त्वं तन्मोहयतीति दर्शनमोहनीयं, चारित्रं—सावद्येतरयोगनिवृत्तिप्र-

२३कर्मप्रकृतिपदे २ उद्देशः सू. २९३

॥४६७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वृत्तिगम्यं शुभात्मपरिणामरूपं तन्मोहयतीति चारित्रमोहनीयं, चशब्दौ स्वगतानेकभेदसूचकौ, दर्शनमोहनीयं त्रिविधं, तद्यथा–सम्यक्त्ववेदनीयं मिथ्यात्ववेदनीयं मिश्रवेदनीयं, तत्र जिनप्रणीततत्त्वश्रद्धानात्मकेन सम्यक्त्वरूपेण यद्वेद्यते तत्सम्यक्त्ववेदनीयं, यत्पुनर्जिनप्रणीततत्त्वाश्रद्धानात्मकेन मिथ्यात्वरूपेण वेद्यते तन्मिथ्यात्ववेदनीयं, यत्तु मिश्ररूपेण—जिनप्रणीततत्त्वेषु न श्रद्धानं नापि निन्दैत्येवंलक्षणेन वेद्यते तन्मिश्रवेदनीयं, आह–सम्यक्त्ववेदनीयं कथं दर्शनमोहनीयं?, न हि तद्दर्शनं मोहयति, तस्य प्रशमादिपरिणामहेतुत्वात्, उच्यते, इह सम्यक्त्ववेदनीयं मिथ्यात्वप्रकृतिः, ततोऽतिचारसम्भवात्, औपशमिकक्षायिकदर्शनमोहनाच्चेदं दर्शनमोहनीयमित्युच्यते, चारित्रमोहनीयं द्विविधं—कषायवेदनीयं नोकषायवेदनीयं च, तत्र यत्क्रोधादिकषायरूपेण वेद्यते तत्कषायवेदनीयं, यत्पुनः स्त्रीवेदादिनोकषायरूपेण वेद्यते तन्नोकषायवेदनीयं, चशब्दौ स्वगतानेकभेदसूचकौ, तत्र कषायवेदनीयं षोडशविधं, क्रोधमानमायालोभानां प्रत्येकमनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणसञ्ज्वलनरूपत्वात्, तत्रानन्तं संसारमनुबध्नन्तीत्येवंशीला अनन्तानुबन्धिनः, उक्तं च—"अनन्तान्यनुबध्नन्ति, यतो जन्मानि भूतये । ततोऽनन्तानुबन्धाख्या, क्रोधाद्येषु नियोजिता ॥ १ ॥" एषां संयोजना इति द्वितीयमपि नाम, तत्रायमन्वर्थः—संयुज्यन्ते—सम्बध्यन्तेऽनन्तसङ्क्लेशैर्भवैर्जन्तवो यैस्ते संयोजनाः, उक्तं च–'संयोजयन्ति यन्नरमनन्तसङ्क्लेशैर्भवैः कषायास्ते । संयोजनताऽनन्तानुबन्धिता वाप्यतस्तेषाम् ॥ १ ॥" सर्वे प्रत्याख्यानं देशप्रत्याख्यानं च येषामुदये न लभ्यते ते भवन्त्यप्रत्या-

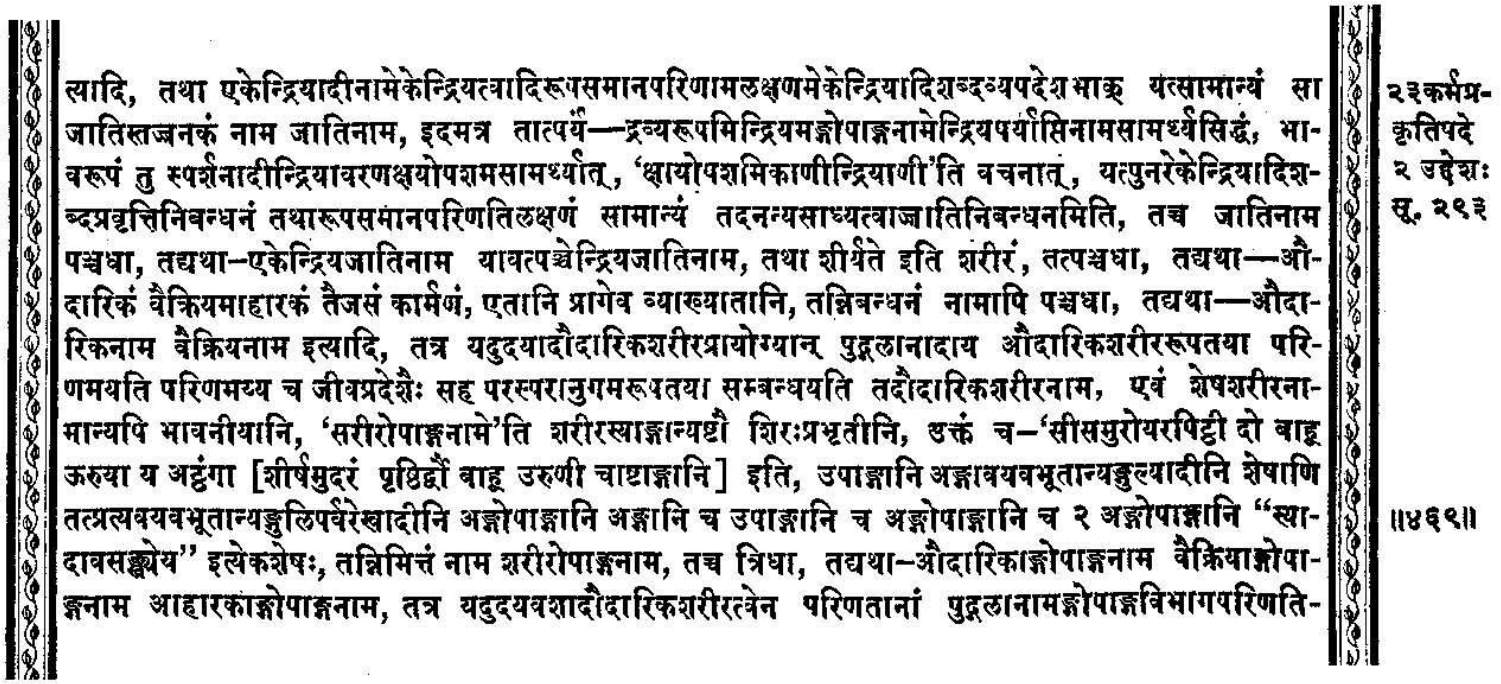
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ख्यानाः, सर्वनिषेधवचनोऽयं नञ्, उक्तं च–'स्वल्पमपि नोत्सहेद्येषां, प्रत्याख्यानमिहोदयात् । अप्रत्याख्यानसंज्ञाऽतो, द्वितीयेषु निवेशिता ॥ १ ॥" तथा प्रत्याख्यानं—सर्वविरतिरूपमाव्रियते यैस्ते प्रत्याख्यानावरणाः, आह च– "सर्वसावद्यविरतिः, प्रत्याख्यानमुदाहृतम् । तदावरणसंज्ञाऽतस्तृतीयेषु निवेशिता ॥१॥" तथा परीषहोपसर्गनिपाते सति चारित्रिणमपि सम्—ईषत् ज्वलयन्तीति सञ्ज्वलनाः, उक्तं च—"संज्वलयन्ति यतिं यत्संविज्ञं सर्वपापविरतमपि । तस्मात् सञ्ज्वलना इत्यप्रशमकरा निरुध्यन्ते ॥ १ ॥" अन्यत्राप्युक्तम्—"शब्दादीन् विषयान् प्राप्य, सञ्ज्वलयन्ति यतो मुहुः । ततः सञ्ज्वलनाह्वानं, चतुर्थानामिहोच्यते ॥ १ ॥" स्वरूपं च पश्चानुपूर्व्याऽमीषामिदं—'जलरेणुपुढविपव्वयराईसरिसो चउव्विहो कोहो । तिणिसलयाकट्ठट्ठियसेलत्थंभोवमो माणो ॥ १ ॥ मायावलेहीगोमुत्तिमिंढसिंगघणवंसमूलसमा । लोहो हलिद्दखंजणकद्दमकिमिरागसारित्थो ॥ २ ॥ पक्खचउम्मासवच्छरजावज्जीवाणुगामिणो कमसो । देवनरतिरियनारयगइसाहणहेयवो भणिया ॥ ३ ॥" [जलरेणुपृथ्वीपर्वतराजीसदृशश्चतुर्विधः क्रोधः । तिनिशलताकाष्ठास्थिशैलस्तम्भोपमो मानः ॥ १ ॥ मायावलेखिकामेण्ढशृङ्गघनवंशमूलसमा । लोभो हरिद्राखञ्जनकर्दमकृमिरागसदृशः ॥ २ ॥ पक्षचतुर्मासवत्सरयावज्जीवानुगामिनः क्रमशः । देवनरतिर्यग्नरकगतिसाधनहेतवो भणिताः ॥ ३ ॥] 'इत्थीवेए' इति वेद्यते इति वेदः स्त्रिया वेदः स्त्रीवेदः, स्त्रियाः पुमांसं प्रत्यभिलाष इत्यर्थः, तद्विपाकवेद्यं कर्मापि स्त्रीवेदः, पुरुषस्य वेदः पुरुषवेदः, पुरुषस्य स्त्रियं प्रत्यभिलाष इत्यर्थः, तद्विपाकवेद्यं क-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

र्मापि पुरुषवेदः, नपुंसकस्य वेदो नपुंसकवेदः, नपुंसकस्य स्त्रियं पुरुषं च प्रत्यभिलाष इत्यर्थः, तद्विपाकवेद्यं कर्मापि नपुंसकवेदः, तथा यदुदयात् सनिमित्तमनिमित्तं वा हसति स्व हासयते वा तत् हास्यमोहनीयं, यदुदयाद्बाह्याभ्यन्तरेषु वस्तुषु प्रमोदमाधत्ते तत् रतिमोहनीयं, यदुदयवशात् पुनर्बाह्याभ्यन्तरेषु वस्तुषु अप्रीतिं करोति तदरतिमोहनीयं, यदुदयात् प्रियविप्रयोगादौ सोरस्ताडमाक्रन्दति परिदेवते भूपीठे च लुठति दीर्घं च निःश्वसिति तत् शोकमोहनीयं, यदुदयवशात् सनिमित्तमनिमित्तं वा तथारूपस्वसङ्कल्पतो बिभेति तद्भयमोहनीयं, यदुदयवशात् पुनः शुभमशुभं वा वस्तु जुगुप्सते तत् जुगुप्सामोहनीयं, जुगुप्साजनकं मोहनीयं जुगुप्सामोहनीयं, एवं सर्वपदेष्वपि विग्रहो भावनीयः, नोकषायता चामीषां हास्यादीनां कषायसहचारित्वात्, कैः कषायैः सहचारितेति चेत्, उच्यते, आद्यैर्द्वादशभिः, तथाहि—नाद्येषु द्वादशकषायेषु क्षीणेषु हास्यादीनामवस्थानसम्भवस्तदनन्तरमेव तेषामपि क्षपणाय प्रवृत्तिः, अथवा एते प्रादुर्भवन्तोऽवश्यं कषायादीनुद्दीपयन्ति ततः कषायसहचारिणः, एवं नोशब्दः साहचर्ये द्रष्टव्यः, कषायैः सहचारिणो नोकषाया इति, उक्तं च–"कषायसहवर्त्तित्वात्, कषायप्रेरणादपि । हास्यादिनवकस्योक्ता, नोकषायकषायता ॥ १ ॥" आयुःकर्मसूत्रं पाठसिद्धं, नामकर्म द्विचत्वारिंशद्विधं, तानेव द्वाचत्वारिंशतं भेदानाह—'गतिनामे'त्यादि, गम्यते–तथाविधकर्मसचिवैः प्राप्यते इति गतिः—नारकत्वादिपर्यायपरिणतिः, सा चतुर्धा, तद्यथा–नरकगतिस्तिर्यग्गतिर्मनुष्यगतिर्देवगतिस्तज्जनकं नाम गतिनाम, तदपि चतुर्द्धा, 'नरकगतिनामे'–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



त्यादि, तथा एकेन्द्रियादीनामेकेन्द्रियत्वादिरूपसमानपरिणामलक्षणमेकेन्द्रियादिशब्दव्यपदेशभाक् यत्सामान्यं सा जातिस्तज्जनकं नाम जातिनाम, इदमत्र तात्पर्यं—द्रव्यरूपमिन्द्रियमङ्गोपाङ्गनामेन्द्रियपर्याप्तिनामसामर्थ्यसिद्धं, भावरूपं तु स्पर्शनादीन्द्रियावरणक्षयोपशमसामर्थ्यात्, 'क्षायोपशमिकाणीन्द्रियाणी'ति वचनात्, यत्पुनरेकेन्द्रियादिशब्दप्रवृत्तिनिबन्धनं तथारूपसमानपरिणतिलक्षणं सामान्यं तदनन्यसाध्यत्वाज्जातिनिबन्धनमिति, तच्च जातिनाम पञ्चधा, तद्यथा–एकेन्द्रियजातिनाम यावत्पञ्चेन्द्रियजातिनाम, तथा शीर्यते इति शरीरं, तत्पञ्चधा, तद्यथा—औदारिकं वैक्रियमाहारकं तैजसं कार्मणं, एतानि प्रागेव व्याख्यातानि, तन्निबन्धनं नामापि पञ्चधा, तद्यथा—औदारिकनाम वैक्रियनाम इत्यादि, तत्र यदुदयादौदारिकशरीरप्रायोग्यान् पुद्गलानादाय औदारिकशरीररूपतया परिणमयति परिणमय्य च जीवप्रदेशैः सह परस्परानुगमरूपतया सम्बन्धयति तदौदारिकशरीरनाम, एवं शेषशरीरनामान्यपि भावनीयानि, 'सरीरोपाङ्गनामे'ति शरीरस्याङ्गान्यष्टौ शिरःप्रभृतीनि, उक्तं च–'सीसमुरोयरपिट्ठी दो बाहू ऊरुया य अट्ठंगा [शीर्षमुदरं पृष्ठिर्द्वौ बाहू उरुणी चाष्टाङ्गानि] इति, उपाङ्गानि अङ्गावयवभूतान्यङ्गुल्यादीनि शेषाणि तत्प्रत्यवयवभूतान्यङ्गुलिपर्वरेखादीनि अङ्गोपाङ्गानि अङ्गानि च उपाङ्गानि च अङ्गोपाङ्गानि च २ अङ्गोपाङ्गानि "स्यादावसङ्ख्येय" इत्येकशेषः, तन्निमित्तं नाम शरीरोपाङ्गनाम, तच्च त्रिधा, तद्यथा–औदारिकाङ्गोपाङ्गनाम वैक्रियाङ्गोपाङ्गनाम आहारकाङ्गोपाङ्गनाम, तत्र यदुदयवशादौदारिकशरीरत्वेन परिणतानां पुद्गलानामङ्गोपाङ्गविभागपरिणति-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रुपजायते तदौदारिकाङ्गोपाङ्गनाम, एवं वैक्रियाहारकाङ्गोपाङ्गनाम्नी अपि वाच्ये, तैजसकार्मणयोस्तु जीवप्रदेशसंस्थानानुरोधित्वान्नास्त्यङ्गोपाङ्गसम्भवः, तथा बध्यतेऽनेनेति बन्धनं, यदौदारिकपुद्गलानां गृहीतानां गृह्यमाणानां च परस्परं तैजसादिपुद्गलैर्वा सह सम्बन्धजनकं तद्बन्धननाम, आह च मूलटीकाकारः—"विद्यते तत्कर्म यन्निमित्ता द्यादिसंयोगापत्तिराविर्भवति, यथा काष्ठद्वयभेदैक्यस्य करणे जतु कारण"मिति, तच्च पञ्चधा, तद्यथा—औदारिकबन्धननाम वैक्रियबन्धननाम आहारकबन्धननाम तैजसबन्धननाम कार्मणबन्धननाम, तत्र यदुदयवशात् औदारिकपुद्गलानां गृहीतानां गृह्यमाणानां च परस्परं तैजसादिपुद्गलैश्च सह सम्बन्ध उपजायते तदौदारिकबन्धनं, यदुदयाद्वैक्रियपुद्गलानां गृहीतानां गृह्यमाणानां च परस्परं तैजसकार्मणपुद्गलैश्च सह सम्बन्धः तद्वैक्रियबन्धनं, यदुदयादाहारकशरीरपुद्गलानां गृहीतानां गृह्यमाणानां च परस्परं तैजसकार्मणपुद्गलैश्च सह सम्बन्धस्तदाहारकबन्धनं, यदुदयात्तैजसपुद्गलानां गृहीतानां गृह्यमाणानां च परस्परं कार्मणपुद्गलैश्च सह सम्बन्धस्तत्तैजसबन्धननाम, यदुदयात् कार्मणपुद्गलानां गृहीतानां गृह्यमाणानां च परस्परं सम्बन्धस्तत्कार्मणबन्धननाम, तथा सङ्घात्यन्ते–पिण्डीक्रियन्ते औदारिकादिपुद्गला येन तत्सङ्घातं तच्च तन्नाम च सङ्घातनाम, तदपि पञ्चधा, तद्यथा—औदारिकसङ्घातनाम वैक्रियसङ्घातनाम आहारकसङ्घातनाम तैजससङ्घातनाम कार्मणसङ्घातनाम, तत्र यदुदयवशादौदारिकशरीररचनाऽनुकारिसङ्घातरूपा जायते तदौदारिकसङ्घातनाम, एवं वैक्रियादिशरीरसङ्घातनामस्वपि भावनीयं, 'संघयण-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नामे' इति संहननंनाम, संहननं—अस्थिरचनाविशेषः, आह च मूलटीकाकारः—"संहननमस्थिरचनाविशेषः" इति, तेन यः प्राह सूत्रे शक्तिविशेष एव संहननमिति, तथा च तद्ग्रन्थः—'सुत्ते सत्तिविसेसो संघयण'मिति स भ्रान्तः, मूलटीकाकारेणापि सूत्रानुयायिना संहननस्यास्थिरचनाविशेषात्मकस्य प्रतिपादितत्वात्, यत्त्वेकेन्द्रियाणां सेवार्त्तसंहननमन्यत्रोक्तं तत् टीकाकारेण समाहितं, औदारिकशरीरत्वादुपचारत इदमुक्तं द्रष्टव्यं न तु तत्त्ववृत्त्येति, यदि पुनः शक्तिविशेषः स्यात् ततो देवानां नैरयिकाणां च संहननमुच्येत अथ च ते सूत्रे साक्षादसंहननिन उक्ता इत्यलं उत्सूत्रप्ररूपकविस्पंन्दितेषु, स चास्थिरचनाविशेष औदारिकशरीर एव नान्येषु तेषामस्थिरहितत्वात्, तच्च षोढा,

१ मतमिदं जिनवल्लभीयं यतस्ततो न श्रीमद्धरिभद्रसूरिसूत्रितायां वृत्तौ कथञ्चिदप्युल्लेखः, न चानुक्तोपालम्भसंभावना यतः तेन जिनवल्लभेन विहिते तदनुसारिभिश्च विवृते सूक्ष्मार्थसार्धशतके स्पष्टमवलोक्यते चतुर्दश्यां गाथायां "सुत्ते सत्तिविसेसो संघयणमिहट्ठिनिचउ"त्ति सूत्रे, व्याख्याने च--तथा सूत्रे—आगमे शक्तिविशेषः संहननमुच्यते, कोऽभिप्रायः ?--वज्रर्षभनाराचादिशब्दस्य संहननाभिधायकस्य शक्तिविशेषाभिधायकतया व्याख्यातत्वात् शक्तिविशेषः संहननमागमे प्रोच्यते । ईदृशं च संहननं देवनारकयोरपीष्यत एव, तेन देवा वज्रर्षभनाराचसंहननिनो नारकाः सेवार्तसंहननिन इत्यागमाभिप्रायतो बोद्धव्यं । इह तु ग्रन्थेऽस्थिनिचयकीलिकादिरूपाणामस्थ्नामेव रचनाविशेषः संहननं बोद्धव्यं, एतच्चास्थिनिचयरूपं संहननमौदारिकशरीर एव, नान्येषु शेषाणामरुथ्याद्यभावादिति गाथार्थः ॥ व्याख्याकारः पञ्चदश्यामपि गाथायां साक्षेपमभिदधौ यथा अत्राह—ननु "नरतिरियाणं छप्पिय, हवंति विगलिंदियाण छेवट्ठ"मिति वचनात् यो विकलेन्द्रियाणां पि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पीलिकादीनां छेदवृत्तसंहननोदयोऽभ्युपगतः सोऽस्थ्यभावे कथं संगच्छते ? इत्यत्रोच्यते—योऽयमस्थिविन्यासप्रयत्नोऽभिहितोऽसौ बलप्रकर्षव्यापकोऽत एव सूत्रे शक्तिविशेषः संहननमुक्तं, अन्यथोभयमर्कटग्रहपट्टकीलिकाप्रयत्ने सति गात्रसंकोचविकाशाभावो भाव्येत । अतः पिपीलिकादीनां क्षुद्रसत्त्वानां यद्यप्यस्थीनि न संभाव्यन्ते तथापि कायबलमधिकृत्य संहननमुच्यते, तथाह—लोकेऽस्थिसद्भावेऽप्यल्पबलः पुरुषोऽसंहनन एव व्यपदिश्यते । ततः शक्तिमपेक्ष्य तेषां संहननं वेदितव्यं । अथवा शङ्खादीनां द्वीन्द्रियाणामपि दृश्यन्ते एवास्थीनि, पिपीलिकादीनां तु सूक्ष्मत्वात्केवलगम्यानीति न कश्चिद्विरोध इति पञ्चसङ्ग्रहाभिप्रायः । इतीदं षड्विधं संहननमस्थिसंनिचयात्मकं यदुदयाद्भवति शरीरे तदपि तत्संज्ञितं षड्विधं संहननमकर्म्मेति गाथार्थः ॥ प्रसारकसभामुद्रिते प्रस्तावनाकारैर्भिर्विवेचितं च तत्र "संहननव्याख्याधिकारे यदुक्तं—"सुत्ते सत्तिविसेसो" तत्र समयविद्भिः समालोचनीयं समयेष्वस्थिरचनात्मकस्यैव स्वीकृतत्वात्, यदुक्तं विवाहप्रज्ञप्तिवृत्तौ सूक्ष्मसूक्ष्मतरपदार्थसार्थवर्णनोद्वेधानादिकालसंबद्धमिथ्यात्वाविरतकषायाद्यन्तरारातिवर्गस्वान्तव्यापारार्जितमूलककर्माष्टकमहामलापनयनक्षमनानाविधयमनियमव्रातोर्मियुक्तचारित्रभुवनापूर्णगाढतरदुःखदसमर्थकषायतापभीत्यागतचिरंतनमुनिपुङ्गवजीवनचरनिर्भयक्रीडोपशोभिते सिद्धान्तरत्नाकरे दुष्षमारकराक्षसेन कवलीयमानमेधायुर्बलानामैदंयुगीनजनानां प्रवेशाय सरलनवाङ्ग्यादिवृत्त्या बद्धतटैः विबुधेनार्चनीयक्रमकजैः श्रीमदभयदेवसूरिपादैः—"इह संहननं अस्थिरचनाविशेषः" । तथा चरणसंस्पर्शीरजोभिः पवित्रितभूमण्डलैः श्रीमद्देवभद्रसूरिपादैः त्रैलोक्यदीपिकावृत्तावपि तथैवाभिधानात् । तत्पाठश्चायम्—"संहन्यन्ते संहतिविशेषं प्राप्यन्ते शरीरास्थ्यवयवाः यैस्तानि संहननानि दृढदृढतरादयः शरीरबंधाः" । ननु तर्हि एकेन्द्रियाणां सेवार्त्तसंहननं जीवाभिगमोपाङ्गे विबुधानां च वज्रर्षभनाराचं प्रज्ञापनादौ प्रोक्तमस्ति तत्र भवतां का गतिरिति चेत्, न, एकाक्षाणां सुधाशिनां च शक्तिमपेक्ष्यौपचारिकमुक्तं, तथाहि—एकाक्षाणामत्यन्ताल्पीयसी शक्तिरेतदशक्तिविषय-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१५],उपांगसूत्र-[४] "प्रज्ञापना" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२९३]

दीप अनुक्रम [५४०]

अत्र सेवार्तसंहननस्य तदौदारिकशरीरसंबंधमात्रमपेक्ष्य द्रष्टव्यं, निर्जराणामपि चक्रवर्तिभ्योऽप्यत्यन्तमहती शक्तिः सा च प्रथमसंहननविषया इति । न चैतत्ग्रंथकृद्भिः सूत्रे शक्तिविशेषं(षः) संहननमुक्तं, वृत्तिकृता तु तदभिप्रायः प्रकटीकृतः, तत् किमर्थं भवद्भिः समालोचनीयमुच्यत इति वाच्यं, ग्रंथकृद्भिस्तु "सुत्ते सत्तिविसेसो" इत्यनेन सूत्रे शक्तिविशेषं(षः) संहननं संस्थापितं, वृत्तिकारेणापि तदेवातिदृढीकृतं, न त्वौपचारिकमुक्तं, ननूपचारोऽपि सद्वस्तुन एव क्रियते, नत्वसद्वस्तुन इति चेत्, सत्यं, परम्–"अतस्मिन् तदध्यवसायः उपचारः" इति वचनात् उपचारोऽप्यसत्येव सद्वस्तुनो न तु सद्वस्तुनि सद्वस्तुनः । अपि च सूत्रे शक्तिविशेषः संहननं स्यात् तर्हि जीवाभिगमसूत्रे कथं देवनारका असंहननाः प्रोक्ताः, तथा च तद्ग्रन्थः–"सुरनेरइया छण्हं संघयणाणं असंघयणा" इति, पुनः तत्रैव हेतुमद्भावेनोक्तं–'नेवट्ठी नेव सिरा नेव ण्हारू नेव संघयणमट्ठी'ति । किं च सूत्रे शक्तिविशेषः संहननं तर्हि गर्भजनरतिरश्चामपि ग्रंथकृदभिप्रायेण सूत्रे शक्तिविशेषः संहननमुक्तं स्यात्; तच्च कुत्रचिदागमे नोपलभ्यते इति, एतन्न स्वमनीषिकाया विजृंभितं, किं तूत्पत्तिविनाशादिजीवनापूर्णभवाब्धिनिमज्जत्सत्योद्धरणपोतायमानैः श्रीमन्मलयगिरिसूरिपादैः जीवाभिगमाद्युपांगवृत्तिषु तथैवोल्लेखः कृतः । तद्ग्रंथश्चायम्–"अस्थिनिचयात्मकं च संहननमसोऽस्थ्याद्यभावादसंहननानि शरीराणि, इयमत्र भावना–इह तत्त्ववृत्त्या संहननमस्थिनिचयात्मकं, यत्तु प्रागेकेन्द्रियाणां सेवार्त्तसंहननमभ्यधायि तदौदारिकशरीरसंबंधमात्रमपेक्ष्यौपचारिकं, देवा अपि यदन्यत्र प्रज्ञापनादौ वज्रर्षभनाराचसंहननिनः उच्यन्ते तेऽपि गौणवृत्त्या, तथाहि–इह यादृशी मनुष्यलोके चक्रवर्त्यादेर्विशिष्टवज्रर्षभनाराचसंहननिनः सकलशेषमनुष्यजनासाधारणी शक्तिः–'दो सोला बत्तीसा सट्ठबलेणं तु संकलनिबद्ध'मित्यादिका, ततोऽप्यधिकतरा देवानां पर्वतोत्पाटनादिविषया श्रूयते न च शरीरपरिक्लेश इति तेऽपि वज्रर्षभनाराचसंहननिनः उक्ताः, न पुनः परमार्थतस्ते संहननिनः, ततो नारकाणामस्थ्यभावात् संहननाभावः । एतेन योऽपरिणतभगवत्सिद्धान्तसारो

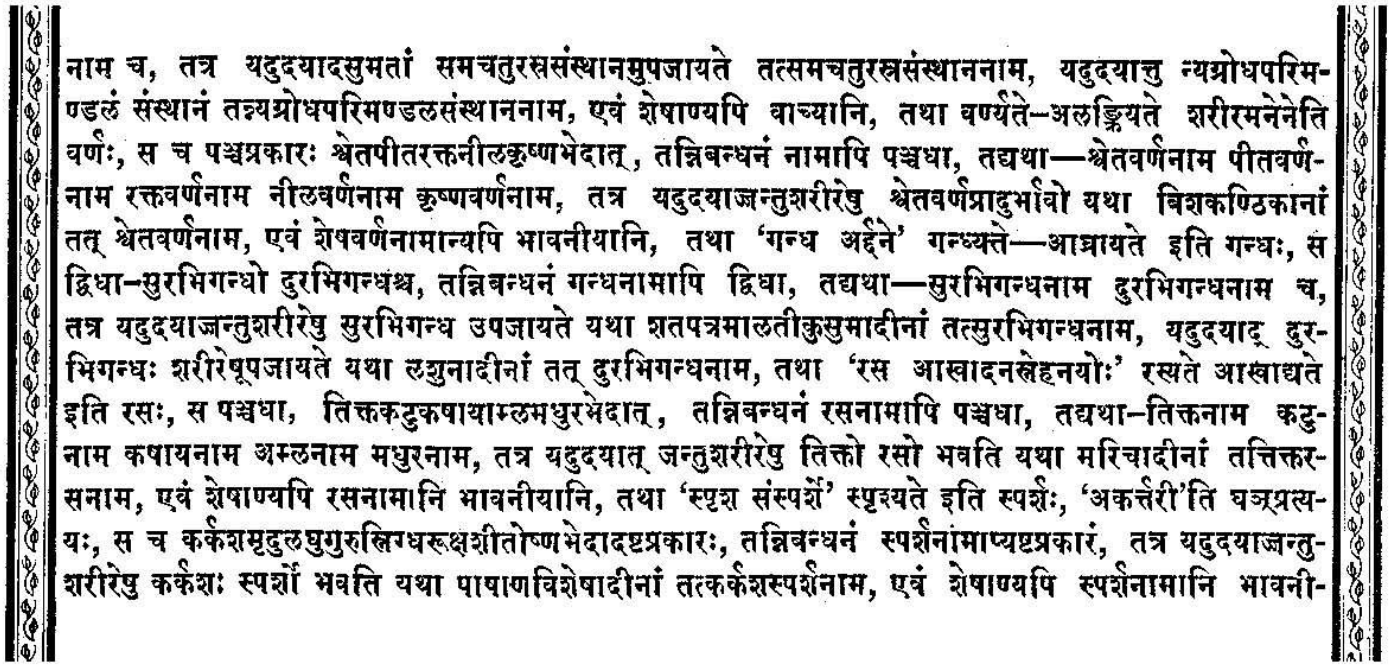
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वावदूकः सिद्धान्तबाहुल्यमात्मनः ख्यापयन्नेवं प्रललाप "सुत्ते सत्तिविसेसो संघयणमिहट्ठिनिचओ"त्ति इति सोऽपाकीर्णो द्रष्टव्यः । साक्षा दत्रैव सूत्रेऽस्थिनिचयात्मकस्य संहननस्याभिधानात् । अस्थ्यभावे संहननप्रतिषेधात् इति (जीवाभिगमसू० ३२) एवमेव त्रैलोक्यदीपिका-वृत्तावप्युल्लेखितं । तत्त्वं पुनः कलहंसा जानन्ति" ॥ अत्र नैवं वाच्यं यदुतोपसर्जनानुपसर्जनकृत एव विशेषो यतः श्रीमद्भिर्हरिभद्रसूरिपादै-रपि आवश्यकबृहद्वृत्तौ "इह चेत्थम्भूतास्थिसंचयोपमितः शक्तिविशेषः संहननमुच्यते न त्वस्थिसंचय एव, देवानामस्थिरहितानामपि प्रथम-संहननयुक्तत्वात्" इति वचनेन शक्तिविशेषरूपस्यैव तस्याङ्गीकारादिति, आदौ तावत् क एष तावदभ्येत् गणनां विबुधेषु यो मुख्यं सूर्यं ज्यो-तिरिङ्गणमाख्याय ज्योतिरिङ्गणमेव ज्योतिष्पतितया व्याहरेत् ?, नैव चेत् कश्चित् कथमिव व्याकृतं सूत्रेऽस्थिनिचयस्य संहननवाच्यतानिषे-धाय 'सुत्ते सत्तिविसेसो' इत्यादि, भवद्दर्शितोक्तावपि अस्थिनिचयस्यैव संहननवाच्यता स्पष्टैव, यत उदितं 'इह चेत्यादि' अन्यच्चाभियुक्त-मतं तु केवलमेवास्थिनिचयं संहननशब्दवाच्यतयाऽपेक्षितमपाकुर्यात् न तु शास्त्रसिद्धं संहननस्यास्थिवाच्यतापक्षं, तथा च देवाना-माद्यसंहननिता शक्तिविशेषापेक्षिणी एकेन्द्रियाणामन्त्यसंहननितौदारिकशरीरसत्ताऽपेक्षिणीत्येवं भवत्यौपचारिकी नतु अस्थिनिचयस्यौपचा-रिकत्वं संहननशब्दवाच्यतायां लेशतोऽपि, ततो युक्तमेवोक्तं श्रीमद्भिष्टीकाकृद्भिर्मलयगिरिसूरिचरणैरुररीकृत्य जिनवल्लभगणिसत्कं 'सुत्ते सत्तिविसेसो' इति वचनं 'इत्यलमुत्सूत्रप्ररूपकविस्पन्दितेषु' इत्येवं कुमार्गगमृगसिंहनादीयं वचनं, एवं च 'साइणा परिनिव्वुडे' इति वचनस्य कल्याणकपरतया व्याख्यानं गर्भापहारस्य षष्ठकल्याणकतया व्यक्तीकृतिश्च तस्यैव मुखमलङ्कुर्वाणा शोभते न सूत्रानुसारिणां श्रीमद्धरिभद्रा-चार्याभयदेवसूरिव्याख्यातवीरवरश्रीमद्वर्धमानस्वामिकल्याणपञ्चकवादिनामित्यलं चसूर्या ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तद्यथा—वज्रर्षभनाराचं ऋषभनाराचं नाराचं अर्द्धनाराचं कीलिका सेवार्त्तं च, तत्र वज्रं—कीलिका ऋषभः—परिवेष्टनपट्टः नाराचं—उभयतो मर्कटबन्धः, उक्तं च—"रिसहो य होइ पट्टो वज्जं पुण कीलिया मुणेयव्वा । उभओ मक्कडबंधो नारायं तं वियाणाहि ॥ १ ॥ [ऋषभश्च भवति पट्टो वज्रं पुनः कीलिका ज्ञातव्या। उभयतो मर्कटबन्धो यस्तं नाराचं विजानीहि ॥ १ ॥] ततश्च द्वयोरस्थ्नोरुभयतो मर्कटबन्धनबद्धयोः पट्टाकृतिना तृतीयेनास्था परिवेष्टितयोरुपरि तदस्थित्रयभेदि कीलिकाख्यं वज्रनामकमस्थि यत्र भवति तद्वज्रर्षभनाराचसंहननं, यत्पुनः कीलिकारहितं संहननं तत् ऋषभनाराचं, यत्र त्वस्थ्नां मर्कटबन्ध एव केवलो भवति तत्संहननं नाराचं, यत्र त्वेकपार्श्वेन मर्कटबन्धो द्वितीयपार्श्वे च कीलिका तदर्द्धनाराचसंहननं, यत्रास्थीनि कीलिकामात्रबद्धान्येव भवन्ति तत्संहननं कीलिकाख्यं, यत्र पुनः परस्परपर्यन्तमात्रसंस्पर्शलक्षणां सेवामागतानि अस्थीनि नित्यमेव स्नेहाभ्यङ्गादिरूपां परिशीलनामाकाङ्क्षन्ति तत्सेवार्त्तसंहननं, एतन्निबन्धनं संहननमपि षोढा, तद्यथा–वज्रर्षभनाराचसंहननं ऋषभनाराचनाम नाराचनाम अर्द्धनाराचनाम कीलिकानाम सेवार्त्तनाम, तत्र यदुदयात् वज्रर्षभनाराचसंहननं भवति तत् वज्रर्षभनाराचसंहननं, एवं शेषसंहननानामप्यपि भावनीयं, तथा संस्थानं-आकारविशेषस्तेष्वेव गृहीतसङ्घातितबद्धेषु औदारिकादिषु पुद्गलेषु संस्थानविशेषो यस्य कर्मण उदयाद् भवति तत्संस्थानं, एतच्च षोढा, तद्यथा–समचतुरस्रसंस्थाननाम न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थाननाम सादिसंस्थाननाम वामनसंस्थाननाम कुब्जसंस्थाननाम हुण्डसंस्थान-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

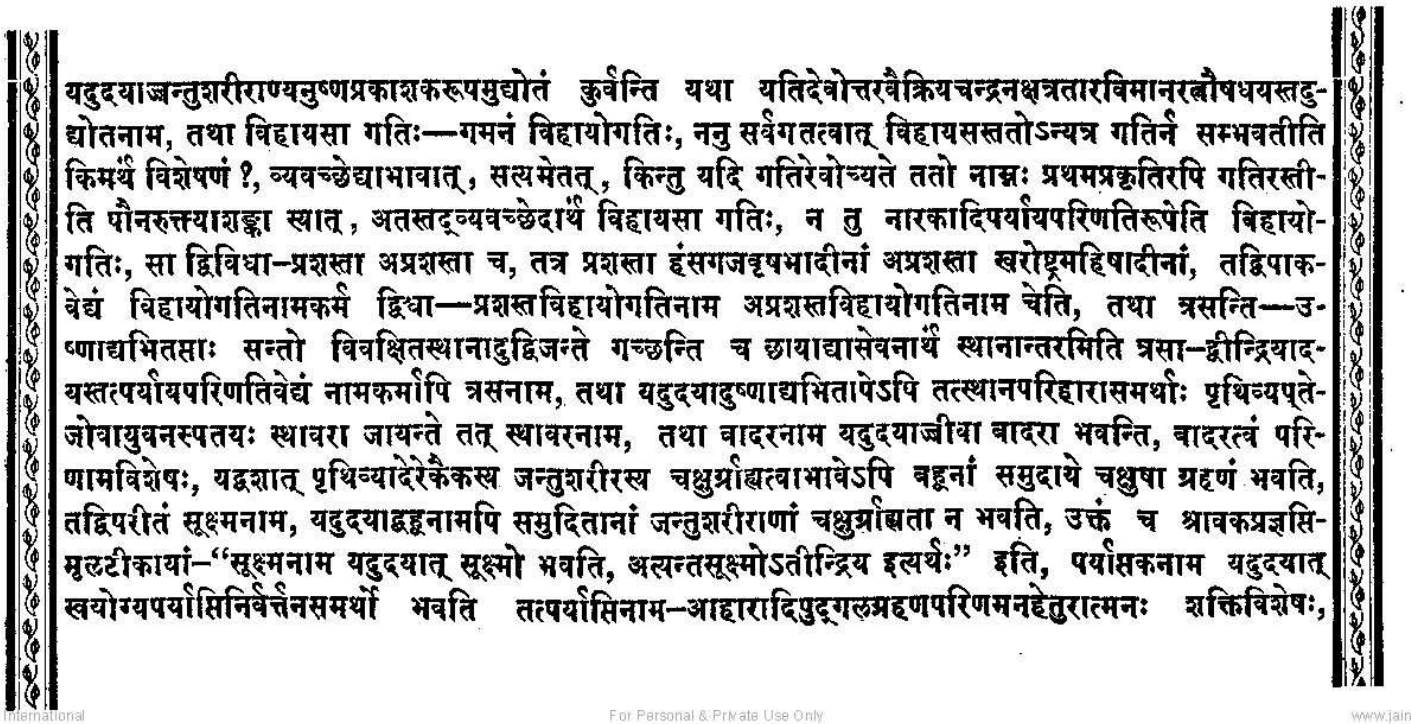


नाम च, तत्र यदुदयादसुमतां समचतुरस्रसंस्थानमुपजायते तत्समचतुरस्रसंस्थाननाम, यदुदयात्तु न्यग्रोधपरिमण्डलं संस्थानं तन्न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थाननाम, एवं शेषाण्यपि वाच्यानि, तथा वर्ण्यते–अलङ्क्रियते शरीरमनेनेति वर्णः, स च पञ्चप्रकारः श्वेतपीतरक्तनीलकृष्णभेदात्, तन्निबन्धनं नामापि पञ्चधा, तद्यथा—श्वेतवर्णनाम पीतवर्णनाम रक्तवर्णनाम नीलवर्णनाम कृष्णवर्णनाम, तत्र यदुदयाज्जन्तुशरीरेषु श्वेतवर्णप्रादुर्भावो यथा बिशकण्ठिकानां तत् श्वेतवर्णनाम, एवं शेषवर्णनामान्यपि भावनीयानि, तथा 'गन्ध अर्दने' गन्ध्यते—आघ्रायते इति गन्धः, स द्विधा–सुरभिगन्धो दुरभिगन्धश्च, तन्निबन्धनं गन्धनामापि द्विधा, तद्यथा—सुरभिगन्धनाम दुरभिगन्धनाम च, तत्र यदुदयाज्जन्तुशरीरेषु सुरभिगन्ध उपजायते यथा शतपत्रमालतीकुसुमादीनां तत्सुरभिगन्धनाम, यदुदयाद् दुरभिगन्धः शरीरेषूपजायते यथा लशुनादीनां तत् दुरभिगन्धनाम, तथा 'रस आस्वादनस्नेहनयोः' रस्यते आस्वाद्यते इति रसः, स पञ्चधा, तिक्तकटुकषायाम्लमधुरभेदात्, तन्निबन्धनं रसनामापि पञ्चधा, तद्यथा–तिक्तनाम कटुनाम कषायनाम अम्लनाम मधुरनाम, तत्र यदुदयात् जन्तुशरीरेषु तिक्तो रसो भवति यथा मरिचादीनां तत्तिक्तरसनाम, एवं शेषाण्यपि रसनामानि भावनीयानि, तथा 'स्पृश संस्पर्शे' स्पृश्यते इति स्पर्शः, 'अकर्त्तरी'ति घञ्प्रत्ययः, स च कर्कशमृदुलघुगुरुस्निग्धरूक्षशीतोष्णभेदादष्टप्रकारः, तन्निबन्धनं स्पर्शनामाप्यष्टप्रकारं, तत्र यदुदयाज्जन्तुशरीरेषु कर्कशः स्पर्शो भवति यथा पाषाणविशेषादीनां तत्कर्कशस्पर्शनाम, एवं शेषाण्यपि स्पर्शनामानि भावनी-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यानि, तथा यदुदयात् प्राणिनां शरीराणि न गुरूणि नापि लघूनि किन्त्वगुरुलघुरूपाणि भवन्ति तदगुरुलघुनाम, तथा यदुदयात् स्वशरीरावयवैरेव शरीरान्तः परिवर्द्धमानैः प्रतिजिह्वागलवृन्दलम्बकचोरदन्तादिभिरुपहन्यते यद्वा स्वयंकृतोद्बन्धनभैरवप्रपातादिभिस्तदुपघातनाम, यदुदयात् पुनरोजस्वी दर्शनमात्रेण वाक्सौष्ठवेन वा महानृपसभामपि गतः सभ्यानामपि त्रासमापादयति प्रतिवादिनश्च प्रतिभाविघातं करोति तत्पराघातनाम, तथा कूर्परलाङ्गलगोमूत्रिकाकारेण यथाक्रमं द्वित्रिचतुःसमयप्रमाणेन विग्रहेण भवान्तरोत्पत्तिस्थानं गच्छतो जीवस्यानुश्रेणिनियता गमनपरिपाटी आनुपूर्वी, तद्विपाकवेद्यं नामकर्मापि कारणे कार्योपचारात् आनुपूर्वी नाम, तच्च चतुर्द्धा, तद्यथा— नैरयिकानुपूर्वीनाम तिर्यगानुपूर्वीनाम मनुष्यानुपूर्वीनाम देवानुपूर्वीनाम, तथा यदुदयवशादात्मन उच्छ्वासनिःश्वासलब्धिरुपजायते तदुच्छ्वासनाम, आह–यद्येवमुच्छ्वासपर्याप्तिनाम्नः कोपयोगः ?, उच्यते, उच्छ्वासनाम्न उच्छ्वासनिःश्वासयोग्यपुद्गलग्रहणमोक्षविषया लब्धिरुपजायते, सा च लब्धिर्नोच्छ्वासपर्याप्तिमन्तरेण स्वफलं साधयति, न खलु इषुक्षेपणशक्तिमानपि धनुर्ग्रहणशक्तिमन्तरेण क्षेप्तुमलं, तत उच्छ्वासपर्याप्तिनिष्पादनार्थमुच्छ्वासपर्याप्तिनाम्न उपयोगः, एवमन्यत्रापि यथायोगं भिन्नविषयता सूक्ष्मधिया भावनीया, तथा यदुदयात् जन्तुशरीराणि स्वरूपेणानुष्णान्यपि उष्णप्रकाशलक्षणमातपं कुर्वन्ति तदातपनाम, तद्विपाकश्च भानुमण्डलगतेषु पृथिवीकायिकेष्वेव न वह्नौ, प्रवचनेऽपि निषेधात्, तत्रोष्णत्वमुष्णस्पर्शनामोदयात् उत्कटलोहितवर्णनामोदयाच्च प्रकाशकत्वमिति, तथा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



यदुदयाज्जन्तुशरीराण्यनुष्णप्रकाशकरूपमुद्योतं कुर्वन्ति यथा यतिदेवोत्तरवैक्रियचन्द्रनक्षत्रतारविमानरत्नौषधयस्तदुद्योतनाम, तथा विहायसा गतिः—गमनं विहायोगतिः, ननु सर्वगतत्वात् विहायसस्ततोऽन्यत्र गतिर्न सम्भवतीति किमर्थं विशेषणं ?, व्यवच्छेद्याभावात्, सत्यमेतत्, किन्तु यदि गतिरेवोच्यते ततो नाम्नः प्रथमप्रकृतिरपि गतिरस्तीति पौनरुक्त्याशङ्का स्यात्, अतस्तद्व्यवच्छेदार्थं विहायसा गतिः, न तु नारकादिपर्यायपरिणतिरूपेति विहायोगतिः, सा द्विविधा–प्रशस्ता अप्रशस्ता च, तत्र प्रशस्ता हंसगजवृषभादीनां अप्रशस्ता खरोष्ट्रमहिषादीनां, तद्विपाकवेद्यं विहायोगतिनामकर्म द्विधा—प्रशस्तविहायोगतिनाम अप्रशस्तविहायोगतिनाम चेति, तथा त्रसन्ति—उष्णाद्यभितप्ताः सन्तो विवक्षितस्थानादुद्विजन्ते गच्छन्ति च छायाद्यासेवनार्थं स्थानान्तरमिति त्रसा–द्वीन्द्रियादयस्तत्पर्यायपरिणतिवेद्यं नामकर्मापि त्रसनाम, तथा यदुदयादुष्णाद्यभितापेऽपि तत्स्थानपरिहारासमर्थाः पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावरा जायन्ते तत् स्थावरनाम, तथा बादरनाम यदुदयाज्जीवा बादरा भवन्ति, बादरत्वं परिणामविशेषः, यद्वशात् पृथिव्यादेरेकैकस्य जन्तुशरीरस्य चक्षुर्ग्राह्यत्वाभावेऽपि बहूनां समुदाये चक्षुषा ग्रहणं भवति, तद्विपरीतं सूक्ष्मनाम, यदुदयाद्बहूनामपि समुदितानां जन्तुशरीराणां चक्षुर्ग्राह्यता न भवति, उक्तं च श्रावकप्रज्ञप्तिमूलटीकायां–"सूक्ष्मनाम यदुदयात् सूक्ष्मो भवति, अत्यन्तसूक्ष्मोऽतीन्द्रिय इत्यर्थः" इति, पर्याप्तकनाम यदुदयात् स्वयोग्यपर्याप्तिनिर्वर्त्तनसमर्थो भवति तत्पर्याप्तिनाम–आहारादिपुद्गलग्रहणपरिणमनहेतुरात्मनः शक्तिविशेषः,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एतच्च प्रागेवोक्तमिति, तद्विपरीतमपर्याप्तकनाम, तथा यदुदयात् जीवं जीवं प्रति भिन्नं शरीरं तत्प्रत्येकनाम, यदुदयवशात् पुनरनन्तानां जीवानामेकं शरीरं भवति तत्साधारणनाम, तथा यदुदयवशात् शरीरावयवानां शिरोऽस्थिदन्तानां स्थिरता भवति तत्स्थिरनाम, तद्विपरीतमस्थिरनाम, यदुदयवशाज्जिह्वादीनामवयवानामस्थिरता भवति तदस्थिरनाम, तथा यदुदयान्नाभेरुपरितना अवयवाः शुभा जायन्ते तत् शुभनाम, यदुदयवशात् नाभेरधस्तना पादादयोऽवयवा अशुभा भवन्ति तदशुभनाम, तथाहि–शिरसा स्पृष्टस्तुष्यति पादेन तु रुष्यति, कामिन्या पादेनापि स्पृष्टः तोषमुपयाति ततो व्यभिचार इति चेत्, न, तस्य परितोषस्य मोहनीयनिबन्धनत्वात्, वस्तुस्थितिश्चेह चिन्त्यते इत्यदोषः, तथा यदुदयवशादनुपकृदपि सर्वस्य मनःप्रियो भवति तत्सुभगनाम, तद्विपरीतं दुर्भगनाम, यदुदयादुपकारकृदपि जनस्य द्वेष्यो भवति, उक्तं च—"अणुवकएवि बहूणं जो हु पिओ तस्स सुभगनामुदओ। उवगारकारगोवि हु न रुच्चए दुब्भगस्सुदए ॥ १ ॥ सुभगुदएवि हु कोई किंची आसज्ज दुब्भगो जइवि । जायइ तद्दोसाओ जहा अभव्वाण तित्थयरो ॥ २ ॥" [अनुपकृतेऽपि बहूनां यः प्रियस्तस्य सुभगनाम्न उदयः । उपकारकारकोऽपि न रोचते दौर्भाग्यस्योदये ॥१॥ सुभगस्योदयेऽपि कश्चित्कश्चिदासाद्य दुर्भगो यद्यपि। जायते तद्दोषात् यथाऽभव्यानां तीर्थकरः ॥ २ ॥] तथा यदुदयवशात् जीवस्य स्वरः श्रोतॄणां प्रीतिहेतुरुपजायते तत्सुस्वरनाम, तद्विपरीतं दुःस्वरनाम यदुदयात् स्वरः श्रोतॄणामप्रीतये भवति, तथा यदुदयवशात् यच्चेष्टते भाषते वा तत्सर्वं लोकः प्रमाणीकरोति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दर्शनसमनन्तरमेव च जनोऽभ्युत्थानादि समाचरति तदादेयनाम, तद्विपरीतमनादेयं, यदुदयवशादुपपन्नमपि ब्रुवाणो नोपादेयवचनो भवति नाप्युपक्रियमाणोऽपि जनस्तस्याभ्युत्थानादि समाचरति, तथा तपःशौर्यत्यागादिना समुपार्जितेन यशसा कीर्त्तनं—संशब्दनं यशःकीर्त्तिः, यद्वा यशः—सामान्येन ख्यातिः कीर्त्तिः—गुणोत्कीर्त्तनरूपा प्रशंसा अथवा सर्वदिग्गामिनी पराक्रमकृता वा सर्वजनोत्कीर्त्तनीयगुणता यशः एकदेशगामिनी पुण्यकृता वा कीर्त्तिः ते यदुदयवशाद्भवतस्तद्यशःकीर्त्तिनाम, यदुदयवशात् मध्यस्थस्यापि जनस्याप्रशस्यो भवति तदयशःकीर्त्तिनाम, तथा यदुदयवशाज्जन्तुशरीरेषु स्वस्वजात्यनुसारेणाङ्गप्रत्यङ्गानां प्रतिनियतस्थानवर्त्तिता भवति तन्निर्माणनाम, तच्च सूत्रधारकल्पं, तदभावे हि तद्भूतककल्पैरङ्गोपाङ्गनामादिभिर्निर्वर्त्तितानामपि शिरउरउदरादीनां स्थानवृत्तेरनियमः स्यात्, तथा यदुदयवशात् अष्टमहाप्रातिहार्यप्रमुखाश्चतुस्त्रिंशदतिशयाः प्रादुष्यन्ति तत्तीर्थकरनाम, तदेवमुक्ताः नामकर्मणो द्विचत्वारिंशद्भेदाः, सम्प्रत्येतेषामेव गत्यादीनामवान्तरभेदप्रतिपादनार्थमाह—'गइनामे णं भंते! कम्मे कइविहे पं०' इत्यादि, समस्तमपि निगदसिद्धम्, उक्ता नामकर्मणो भेदाः, सम्प्रति गोत्रकर्मभेदानाह—'गोए णं भंते!' इत्यादि, यदुदयवशादुत्तमजातिकुलबलतपोरूपैश्वर्यश्रुतसत्काराभ्युत्थानासनप्रदानाञ्जलिप्रग्रहादिसम्भवस्तदुच्चैर्गोत्रं, यदुदयवशात् पुनर्ज्ञानादिसम्पन्नोऽपि निन्दां लभते हीनजात्यादिसम्भवं च तत् नीचैर्गोत्रं, उक्तौ गोत्रभेदौ, सम्प्रति तयोरेव भेदानाह–'उच्चगोए णं भंते! कम्मे कइविहे पं०' इत्यादि सुगमं, सम्प्रति अन्तरायभेदानाह–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'अंतराए णं भंते ! कम्मे कइविहे' इत्यादि, तत्र यदुदयवशात् सति विभवे समागते च गुणवति पात्रे दत्तमस्मै महाफलमिति जानन्नपि दातुं नोत्सहते तद्दानान्तरायं, तथा यदुदयवशाद्दानगुणेन प्रसिद्धादपि दातुर्गृहे विद्यमानमपि देयमर्थजातं याच्ञाकुशलोऽपि गुणवानपि याचको न लभते तल्लाभान्तरायं, तथा यदुदयवशात् सत्यपि विशिष्टाहारादिसम्भवेऽसति च प्रत्याख्यानपरिणामे वैराग्ये वा केवलकार्पण्यान्नोत्सहते भोक्तुं तद्भोगान्तरायमेवमुपभोगान्तरायमपि भावनीयं, नवरं भोगोपभोगयोरयं विशेषः—सकृद् भुज्यते इति भोगः—आहारमाल्यादि, पुनः पुनर्भुज्यते इत्युपभोगो—वस्त्रालङ्कारादि, उक्तं च—"सह भुज्जइत्ति भोगो सो पुण आहारपुप्फमाईओ। उवभोगो उ पुणो पुण उवभुज्जइ वत्थविलयाइ ॥ १ ॥" [सकृद्भुज्यते इति भोगः स पुनराहारपुष्पादिकः। उपभोगस्तु पुनः पुनरुपभुज्यते वस्त्रवनितादिः ॥ १ ॥] तथा यदुदयात् सत्यपि नीरुजि शरीरे यौवनिकायामपि वर्त्तमानोऽल्पप्राणो भवति यद्वा बलवत्यपि शरीरे साध्येऽपि प्रयोजने हीनसत्त्वतया न प्रवर्त्तते तद्वीर्यान्तरायं, उक्तो मूलोत्तरप्रकृतिविभागः, सम्प्रति उत्तरप्रकृतीनां जघन्योत्कृष्टस्थितिप्रतिपादनं चिकीर्षुः प्रथमतो ज्ञानावरणीयस्य पञ्चप्रकारस्यापि विषये प्रश्नसूत्रमाह—

णाणावरणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स केवतितं कालं ठिती पं० ?, गो० ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तीसं सागरोवमकोडाकोडीतो तिण्णि य वाससहस्साइं अबाहा, अबाहूणिया कम्मठिती कम्मनिसेगो, निद्दापंचगस्स णं भंते ! कम्मस्स

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

केवतितं कालं ठिती पं० ?, गो० ! जह० सागरोवमस्स तिण्णि सत्तभागा पलितोवमस्स असंखेज्जतिभागेणं ऊणिया, उक्कोसेणं तीसं सागरोवमकोडाकोडीतो, तिण्णि य वाससहस्साइं अबाहा, अबाहूणिया कम्मट्ठिती कम्मनिसेगो, दंसण-चउक्कस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिती पं० ?, गो० ! जहन्ने० अंतो० उ० तीसं सागरोवमकोडाकोडीतो, तिण्णि य वाससहस्साइं अबाहा०, सायावेयणिज्जस्स ईरियावहियं बंधगं पडुच्च अजहण्णमणुक्कोसेणं दो समया संपराइय-बंधगं पडुच्च ज० बारस मुहुत्ता, उ० पण्णरस सागरोवमकोडाकोडीतो, पण्णरस वाससयाइं अबाहा०, असातावेदणिज्जस्स जह० सागरोवमस्स तिण्णि सत्तभागा पलितोवमस्स असंखेज्जतिभागेणं ऊणया उ० तीसं सागरोवमकोडाकोडीतो, तिण्णि य वाससहस्साइं अबाहा, सम्मत्तवेयणिज्जस्स पुच्छा, गो० ! ज० अंतो० उ० छावट्ठिं सागरोवमाइं सातिरेगाति, मिच्छत्तवेयणिज्जस्स जह० सागरोवमं पलितोवमस्स असंखेज्जतिभागेण ऊणगं उ० सत्तरि कोडाकोडीतो, सत्त य वाससहस्साइं अबाहा, अबाहूणिया०, सम्मामिच्छत्तवेयणिज्जस्स ज० अंतो० उ० अंतो०, कसायचारसगस्स ज० सागरोवमस्स चत्तारि सत्तभागा पलितोवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणया, उक्को० चत्तालीसं सागरोवमकोडाकोडीतो, चत्तालीसं वाससताइं अबाहा जाव निसेगो, कोहसंजलणे पुच्छा, गो० ! जह० दो मासा उक्को० चत्तालीसं सागरोवमकोडाकोडीतो चत्तालीसं वाससताइं अबाहा जाव निसेगो, माणसंजलणाते पुच्छा, गो० ! ज० मासं उ० जहा कोहस्स, मायासंजलणाते पुच्छा, गो० ! ज० अद्धं मासं उ० जहा कोहस्स, लोहसंजलणाए पुच्छा, गो० ! ज० अंतो० उ० जहा कोहस्स, इत्थिवेयस्स पुच्छा, गो० ! जहन्नेणं सागरोवमस्स दिवड्ढं सत्तभागं पलितोवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणयं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२९४]

दीप अनुक्रम [५४१]

उक्को० पण्णरस सागरोवमकोडाकोडीतो पण्णरस वाससताइं अबाहा०, पुरिसवेदस्स णं पुच्छा, गो० ! जह० अट्ठ संवच्छरातिं० उक्को० दस सागरोवमकोडाकोडीतो दस वाससताइं अबाहा जाव णिसेगो, णपुंसगवेदस्स णं पुच्छा, गो० ! जह० सागरोवमस्स दोण्णि सत्तभागा पलितोवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणया, उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीतो वीस य वाससताइं अबाहा०, हासरतीणं पुच्छा गो० ! जह० सागरोवमस्स एक्कं सत्तभागं पलितोवमस्स असंखेज्जतिभागेणं ऊणं उक्को० दस सागरोवमकोडाकोडीओ दस वाससताइं अबाहा, अरतिभयसोगदुगुंछाणं पुच्छा, गो० ! जह० सागरोवमस्स दोण्णि सत्तभागा पलितोवमस्स असंखेज्जतिभागेणं उणया, उक्को० वीसं सागरोवमकोडाकोडीतो वीसं वाससताइं अबाहा०, नेरइयाउयस्स णं पुच्छा, गो० ! जह० दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं उक्को० तेत्तीसं सागरोवमाइं पुव्वकोडीतिभागमब्भहियातिं, तिरिक्खजोणियाउयस्स पुच्छा, गो० ! जह० अंतो० उक्को० तिण्णि पलितोवमाइं पुव्वकोडितिभागमब्भहियाइं, एवं मणूसाउयस्सवि, देवाउयस्स जहा नेरइयाउयस्स ठितित्ति, निरयगतिनामए णं पुच्छा गो० ! जह० सागरोवमसहस्सस्स दो सत्तभागा पलितोवमस्स असंखिज्जतिभागेणं ऊणया, उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीतो वीसं वाससताइं अबाहा। तिरियगतिनामए जहा नपुंसगवेदस्स, मणुयगतिनामते पुच्छा, ज० सागरोवमस्स दिवड्ढं सत्तभागं पलितोवमस्स असंखेज्जतिभागेणं ऊणगं उक्को० पण्णरस सागरोवमकोडाकोडीतो पण्णरसवाससताइं अबाहा। देवगतिनामए णं पुच्छा, गो० ! जह० सागरोवमसहस्सस्स एगं सत्तभागं पलितोवमस्स असंखेज्जतिभागेणं ऊणयं उक्को० जहा पुरिसवेदस्स, एगिंदियजातिनामए णं पुच्छा, गो० ! जह० सागरोवमस्स दोण्णि सत्तभागा पलि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तोवमस्स असंखेज्जतिभागेणं ऊणया उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीतो वीसति वाससताइं अबाहा, बेइंदियजाति-
नामेणं पुच्छा, गो० ! जह० सागरोवमस्स नव पणतीसतिभागा पलितोवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणया उ० अट्ठारस
सागरोवमकोडाकोडीतो अट्ठारस य वाससयाइं अबाहा, तेइंदियजातिनामए णं जहण्णेणं एवं चेव, उक्को० अट्ठारससागरो-
वमकोडाकोडीतो अट्ठारस वाससताइं अबाहा, चउरिंदियजातिनामाए पुच्छा, गो० ! जह० सागरोवमस्स णव पणती-
सतिभागा पलितोवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणया उक्को० अट्ठारस सागरोवमकोडाकोडीतो अट्ठारस वाससताइं अबाहा,
पंचिंदियजातिनामाए पुच्छा, गो० ! जह० सागरोवमस्स दोण्णि सत्तभागा पलितोवमस्स असंखेज्जतिभागेणं ऊणया
उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीतो वीस य वाससताइं अबाहा, ओरालियसरीरएवि एवं चेव, वेउव्वियसरीरनामाए
णं भंते ! पुच्छा, गो० ! जह० सागरोवमसहस्सस्स दो सत्तभागा पलितोवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणया, उक्को० वीसं
सागरोवमकोडाकोडीओ वीसइ वाससयाइं अबाहा, आहारगसरीरनामए जह० अंतोसागरोवमकोडाकोडीओ उक्को०
अंतोसागरकोडाकोडीओ, तेयाकम्मसरीरनामाए जहण्णेणं दोण्णि सत्तभागा पलितोवमस्स असंखेज्जतिभागेणं ऊणया
उक्को० वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ वीस य वाससताइं अबाहा, ओरालियवेउव्वियआहारगसरीरोवंगनामाए तिण्णिवि
एवं चेव, सरीरबंधणनामाएवि पंचण्हवि एवं चेव, सरीरसंघायनामाए पंचण्हवि जहा सरीरनामाए कम्मस्स ठिइत्ति,
वइरोसभनारायसंघयणनामाए जहा रइनामाए, उसभनारायसंघयणनामाए पुच्छा, गो० ! सागरोवमस्स छ पणतीसति-
भागा पलितोवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणया, उक्को० बारस सागरोवमकोडाकोडीओ, बारस वाससताइं अबाहा०, नारा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

थसंघयणनामस्स जह० सागरोवमस्स सत्त पणतीसतिभागा पलितोवमस्स असंखेज्जतिभागेणं ऊणया उक्को० चोद्दस सागरोवमकोडाकोडीतो चउद्दस वाससताइं अबाहा०, अद्धनारायसंघयणनामस्स जह० सागरोवमस्स अट्ठ पणतीसतिभागा पलितोवमस्स असंखेज्जतिभागेणं ऊणया उक्को० सोलस सागरोवमकोडाकोडीतो सोलस वाससताइं अबाहा०, खीलियासंघयणे णं पुच्छा, गो० ! ज० सागरोवमस्स नव पणतीसतिभागा पलितोवमस्स असंखेज्जतिभागेणं ऊणया, उक्कोसेणं अट्ठारस सागरोवमकोडाकोडीओ अट्ठारस वाससताइं अबाहा, छेवट्ठसंघयणनामस्स पुच्छा, गो० ! जह० सागरोवमस्स दोण्णि सत्तभागा पलितोवमस्स असं० ऊणया, उक्को० वीसं सागरोवमको० वीस य वाससताइं अबाहा, एवं जहा संघयणनामाते छब्भणिया एवं संठाणावि छब्भाणितव्वा, सुक्किल्लवण्णणामते पुच्छा, गो० ! जह० सागरोवमस्स एगं सत्तभागं पलितो० असं० ऊणगं, उक्को० दस सागरोवमकोडाकोडीतो, दस वाससताइं अबाहा, हालिद्दवण्णणामए णं पुच्छा, गो० ! ज० सागरोवमस्स पंच अट्ठावीसतिभागा पलितोवमस्स अ० भा० ऊ० उ० अद्धतेरससागरोवमकोडाकोडी, अद्धतेरस वाससयाइं अबाहा, लोहितवण्णणामए णं पुच्छा, गो० ! जह० सागरोवमस्स छ अट्ठावीसतिभागा पलितोवमस्स असं० भागेहिं ऊणया, उ० पण्णरस सागरोवमकोडाकोडीओ पण्णरस वाससयाति अबाहा, नीलवण्णनामाए पुच्छा, गो० ! ज० सागरोवमस्स सत्त अट्ठावीसतिभागा पलितोवमस्स असंखेज्जतिभागेणं ऊणया, उक्को० अद्धट्ठारस सागरोवमकोडाकोडीतो अद्धट्ठारस वाससताइं अबाहा, कालवण्णनामाए जहा छेवट्ठसंघय०, सुब्भिगंधणामाते पुच्छा, गो० ! जह सुक्किल्लवण्णनामस्स, दुब्भिगंधणामाए जहा छेवट्ठसंघयणस्स, रसाणं महुरादीणं जहा वण्णाणं भणितं तहेव परिवाडीते भाणितव्वं, फासा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जे अपसत्था तेसिं जहा छेवट्ठस्स, जे पसत्था तेसिं जहा सुकिल्लवण्णनामस्स, अगुरुलहुनामाते जहा छेवट्ठस्स, एवं उव-
घातनामाएवि, पराघायनामाएवि एवं चेव, निरयाणुपुव्वीनामाए पुच्छा, गो० ! जह० सागरोवमसहस्सस्स दो सत्तभागा
पलितोवमस्स असंखेज्जतिभागेणं ऊणया, उक्को० वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, वीसं वाससताइं अबाहा०, तिरियाणु-
पुव्वीए पुच्छा, गो० ! जह० सागरोवमस्स दो सत्तभागा पलितोवमस्स असंखेज्जतिभागेणं ऊणया उक्कोसेणं वीसं
सागरोवमकोडाकोडीओ वीसति वाससताइं अबाधा०, मणुयाणुपुव्वीनामाए णं पुच्छा, गो० ! जह० सागरोवमस्स दिवड्ढं
सत्तभागं पलितोवमस्स असंखेज्जतिभागेणं ऊणयं, उक्को० पण्णरस सागरोवमकोडाकोडीओ पण्णरस वाससताइं अबाहा०,
देवाणुपुव्वीनामाते पुच्छा, गो०! जह० सागरोवमसहस्सस्स एगं सत्तभागं पलितोवमस्स असंखेज्जतिभागेणं ऊणयं, उक्को०
दस सागरोवमकोडाकोडीओ दस य वाससताइं अबाहा०, ऊसासनामाते पुच्छा, गो० ! जहा तिरियाणुपुव्वीए, आयवना-
माए वि एवं चेव, उज्जोयनामाएवि, पसत्थविहायोगतिनामाएवि पुच्छा, गो० ! जह० एगं सागरोवमस्स सत्तभागं उ०
दस सागरोवमकोडाकोडीओ, दस वाससताइं अबाहा०, अपसत्थविहायोगतिनामस्स पुच्छा, गो० ! ज० सागरोवमस्स
दोण्णि सत्तभागा पलितोवमस्स असंखेज्जतिभागेणं ऊणया उ० वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ वीस य वाससताइं अबा-
हा०, तसनामाए थावरनामाए य एवं चेव, सुहुमनामाए पुच्छा, गो० ! जह० सागरोवमस्स णव पणतीसतिभागा
पलितोवमस्स असंखेज्जतिभागेण ऊणया, उक्को० अट्ठारस सागरोवमकोडाकोडीतो अट्ठारस य वाससताइं अबाहा०,
बादरनामाए जहा अप्पसत्थविहायोगतिनामस्स, एवं पज्जत्तनामाएवि, अपज्जत्तनामाए जहा सुहुमनामस्स, पत्तेयसरीर-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नामाएवि दो सत्तभागा, साहारणसरीरनामाए जहा सुहुमस्स, थिरनामाए एगं सत्तभागं अथिरनामाए दो सुभनामाए एगो असुभनामाए दो सुभगनामाए एगो दूभगनामाए दो सूसरनामाए एगो दूसरनामाए दो आदिज्जनामाए एगो अणाइज्जनामाए दो जसोकित्तिनामाए जह० अट्ठ मुहुत्ता उक्को० दस सागरोवमकोडाकोडीतो दस वाससताइं अबाहा०, अजसोकित्तिनामाए पुच्छा, गो० ! जहा अप्पसत्थविहायोगतिनामस्स, एवं णिम्माणनामाएवि, तित्थगरणामाए णं पुच्छा, गो० ! जह० अंतोसागरोवमकोडाकोडीओ उक्कोसेणवि अंतो० कोडाकोडीओ, एवं जत्थ एगो सत्तभागो तत्थ उक्कोसेणं दस सागरोवमकोडाकोडीओ दस वाससताइं अबाहा०, जत्थ दो सत्तभागा तत्थ उक्को० वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ वीस य वाससयाइं अबाहा, उच्चागोयस्स णं पुच्छा, गो० ! जहन्नेणं अट्ठ मुहुत्ता उ० दस सागरोवमकोडाकोडीओ, दस य वाससताइं अबाहा०, णीयागोत्तस्स पुच्छा, गो० ! जहा अप्पसत्थविहायोगतिनामस्स, अंतराए णं पुच्छा, गो० ! जह० अंतो० उक्को० तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ तिण्णि य वाससहस्साइं अबाहा, अबाहूणिया कम्मट्ठिती कम्मनिसेगो । (सूत्रं २९४)

'णाणावरणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं ठिती पं०' इति ज्ञानावरणीयस्य मतिश्रुतावधिमनःपर्याय-केवलावरणभेदतः पञ्चप्रकारस्य कर्मणो भदन्त ! कियन्तं कालं यावत् स्थितिः प्रज्ञप्ता ?, एवमुक्ते भगवानाह— गौतम ! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, तच्च सर्वलघु सूक्ष्मसम्परायस्य क्षपकस्य स्वगुणस्थानकचरमसमये वर्त्तमानस्य वेदितव्यं,

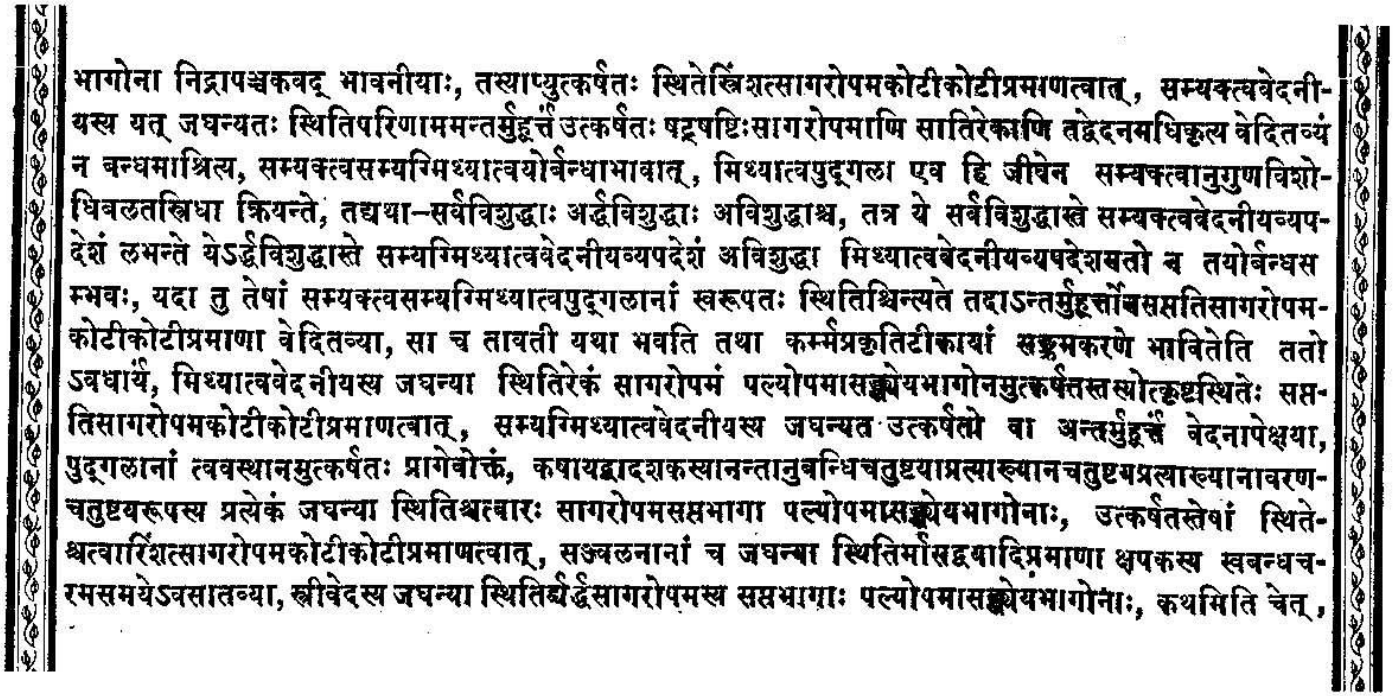
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्कर्षतस्त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यः, सा च मिथ्यादृष्टेरुत्कृष्टे संक्लेशे वर्त्तमानस्यावसातव्या, तदेवं नियता प्रागुक्तस्य प्रश्नोत्तरसिद्धिः, इदमपृष्टव्याकरणं त्रीणि वर्षसहस्राणि अबाधा अबाधोना कर्मस्थितिः कर्मदलिकनिषेक इति, किमर्थमिति चेत्, उच्यते, स्थितिद्वैविध्यप्रदर्शनार्थं, तथाहि—द्विविधा स्थितिः—कर्मरूपतावस्थानलक्षणा अनुभवयोग्या च, तत्र कर्मरूपताऽवस्थानलक्षणां स्थितिमधिकृत्येदमुक्तं त्रिंशत्सागरोपमकोटाकोटय इति, अनुभवयोग्या च वर्षसहस्रत्रयोना यतः, आह च—'त्रीणि वर्षसहस्राणि अबाधा' किमुक्तं भवति ?–ज्ञानावरणीयं कर्म उत्कृष्टस्थितिकं बद्धं सत् बन्धसमयादारभ्य त्रीणि वर्षसहस्राणि यावत् न किञ्चिदपि स्वोदयतो जीवस्य बाधामुत्पादयति, तावत्कालमध्ये दलिकनिषेकस्याभावात्, तत ऊर्ध्वं हि दलिकनिषेकः, तथा चाह—अबाधोना–अबाधाकालपरिहीना अनुभवयोग्या कर्मस्थितिः, किमुक्तं भवति ?–कर्मनिषेकः, स चैवं–प्रथमस्थितौ प्रभूतो द्वितीयस्थितौ विशेषहीनः तृतीयस्थितौ विशेषहीनः एवं विशेषहीनो विशेषहीनश्च तावद् वक्तव्यो यावत्स्थितिचरमसमयः, एतावता च यदुक्तमग्रायणीयाख्ये द्वितीयपूर्वे कर्मप्रकृतिप्राभृते बन्धविधाने स्थितिबन्धाधिकारे—"चत्वार्यनुयोगद्वाराणि, तद्यथा–स्थितिबन्धस्थानप्ररूपणा अबाधाकण्डकप्ररूपणा उत्कृष्टनिषेकप्ररूपणा अल्पबहुत्वप्ररूपणा चे"ति, तत्रोत्कृष्टाऽबाधाकण्डकप्ररूपणा उत्कृष्टनिषेकप्ररूपणा च दर्शिता भवति, अबाधाकालपरिज्ञानोपायश्चायं–यस्य यावत्यः सागरोपमकोटीकोट्यस्तस्य तावन्ति वर्षशतान्यबाधा, यस्य पुनः सागरोपमकोटीकोट्या मध्ये स्थितिस्तस्यायुर्वर्जस्यान्तर्मु-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हूर्त्तमायुषस्तु जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमबाधा उत्कर्षतः पूर्वकोटीत्रिभागः, तत एवमबाधाकालं परिभाव्याबाधाविषयाणि सूत्राणि स्वयं भावनीयानि, निद्रापञ्चकविषयं सूत्रमाह—'निद्दापंचगस्स णं भंते !' इत्यादि, अत्र जघन्यतः स्थितिः त्रयः सागरोपमस्य सप्तभागाः पल्योपमासङ्ख्येयभागोनाः, काऽत्र भावनेति चेत्, उच्यते, पञ्चानां ज्ञानावरणप्रकृतीनां चतसृणां दर्शनावरणप्रकृतीनां चक्षुर्दर्शनावरणादीनां सञ्वलनलोभस्य पञ्चानामन्तरायप्रकृतीनां च जघन्या स्थितिरन्तर्मुहूर्त्त, सातवेदनीयस्य सकषायिकस्य द्वादश मुहूर्त्ता, इतरस्य तु द्वौ समयौ, प्रथमसमये बन्धो द्वितीयसमये वेदनं तृतीयसमये त्वकर्मीभवनमिति, यशःकीर्त्युच्चैर्गोत्रयोरष्टौ मुहूर्त्ताः, पुरुषवेदस्याष्टौ संवत्सराणि, सञ्वलनक्रोधस्य द्वौ मासौ, सञ्वलनमानस्यैको मासः, सञ्वलनमायाया अर्द्धमासः, शेषाणां तु प्रकृतीनां या या स्वकीया उत्कृष्टा स्थितिस्तस्या उत्कृष्टायाः सप्ततिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणाया मिथ्यात्वस्थित्या भागे हृते यल्लभ्यते तत्पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनं जघन्यस्थितिपरिमाणं, तत्र निद्रापञ्चकस्योत्कृष्टा स्थितिस्त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यः, तासां मिथ्यात्वस्थित्या सप्ततिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणया भागे ह्रियमाणे 'शून्यं शून्येन पातये'दिति वचनात् लब्धास्त्रयः सागरोपमस्य सप्तभागाः, ते पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनाः क्रियन्ते, ततो भवति यथोक्तं जघन्यस्थितिपरिमाणमिति, 'सायावेयणिज्जस्स ईरियावहियबंधगं पडुच्च अजहण्णमणुक्कोसेणं दो समया संपराइयबंधगं पडुच्च जहण्णेणं बारस मुहुत्ता' इति प्रागेव भावितं, असातावेदनीयस्य जघन्यतस्त्रयः सप्तभागाः पल्योपमासङ्ख्येय-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

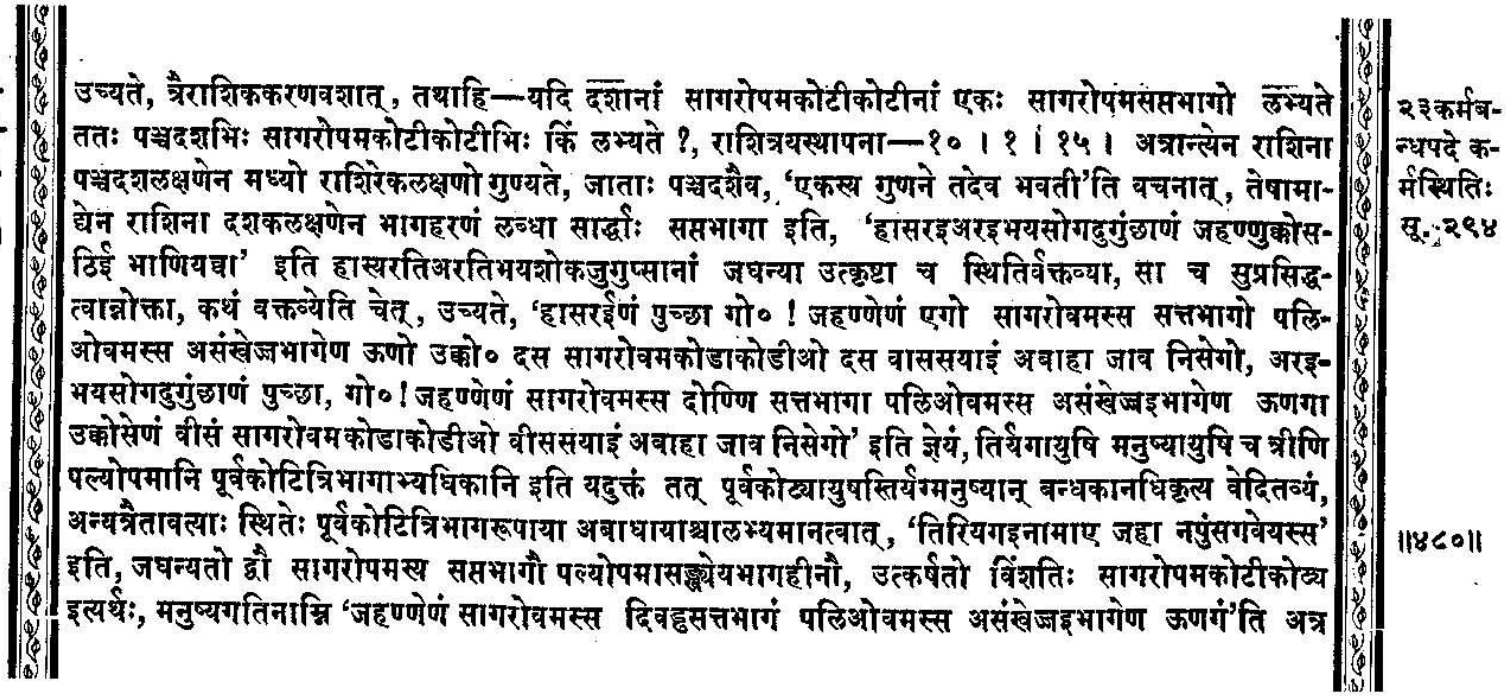


भागोना निद्रापञ्चकवद् भावनीयाः, तस्याप्युत्कर्षतः स्थितेस्त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटीप्रमाणत्वात्, सम्यक्त्ववेदनीयस्य यत् जघन्यतः स्थितिपरिणाममन्तर्मुहूर्त्तं उत्कर्षतः षट्षष्टिःसागरोपमाणि सातिरेकाणि तद्वेदनमधिकृत्य वेदितव्यं न बन्धमाश्रित्य, सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वयोर्बन्धाभावात्, मिथ्यात्वपुद्गला एव हि जीवेन सम्यक्त्वानुगुणविशोधिबलतस्त्रिधा क्रियन्ते, तद्यथा–सर्वविशुद्धाः अर्द्धविशुद्धाः अविशुद्धाश्च, तत्र ये सर्वविशुद्धास्ते सम्यक्त्ववेदनीयव्यपदेशं लभन्ते येऽर्द्धविशुद्धास्ते सम्यग्मिथ्यात्ववेदनीयव्यपदेशं अविशुद्धा मिथ्यात्ववेदनीयव्यपदेशवतो न तयोर्बन्धसम्भवः, यदा तु तेषां सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वपुद्गलानां स्वरूपतः स्थितिश्चिन्त्यते तदाऽन्तर्मुहूर्त्तोनसप्ततिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणा वेदितव्या, सा च तावती यथा भवति तथा कर्म्मप्रकृतिटीकायां सङ्क्रमकरणे भावितेति ततोऽवधार्य, मिथ्यात्ववेदनीयस्य जघन्या स्थितिरेकं सागरोपमं पल्योपमासङ्ख्येयभागोनमुत्कर्षतस्तस्योत्कृष्टस्थितेः सप्ततिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणत्वात्, सम्यग्मिथ्यात्ववेदनीयस्य जघन्यत उत्कर्षतो वा अन्तर्मुहूर्त्तं वेदनापेक्षया, पुद्गलानां त्ववस्थानमुत्कर्षतः प्रागेवोक्तं, कषायद्वादशकस्यानन्तानुबन्धिचतुष्टयाप्रत्याख्यानचतुष्टयप्रत्याख्यानावरणचतुष्टयरूपस्य प्रत्येकं जघन्या स्थितिश्चत्वारः सागरोपमसप्तभागा पल्योपमासङ्ख्येयभागोनाः, उत्कर्षतस्तेषां स्थितेश्चत्वारिंशत्सागरोपमकोटीकोटीप्रमाणत्वात्, सञ्ज्वलनानां च जघन्या स्थितिर्मासद्वयादिप्रमाणा क्षपकस्य स्वबन्धचरमसमयेऽवसातव्या, स्त्रीवेदस्य जघन्या स्थितिर्द्वर्द्धसागरोपमस्य सप्तभागाः पल्योपमासङ्ख्येयभागोनाः, कथमिति चेत्,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२९४]

दीप अनुक्रम [५४१]



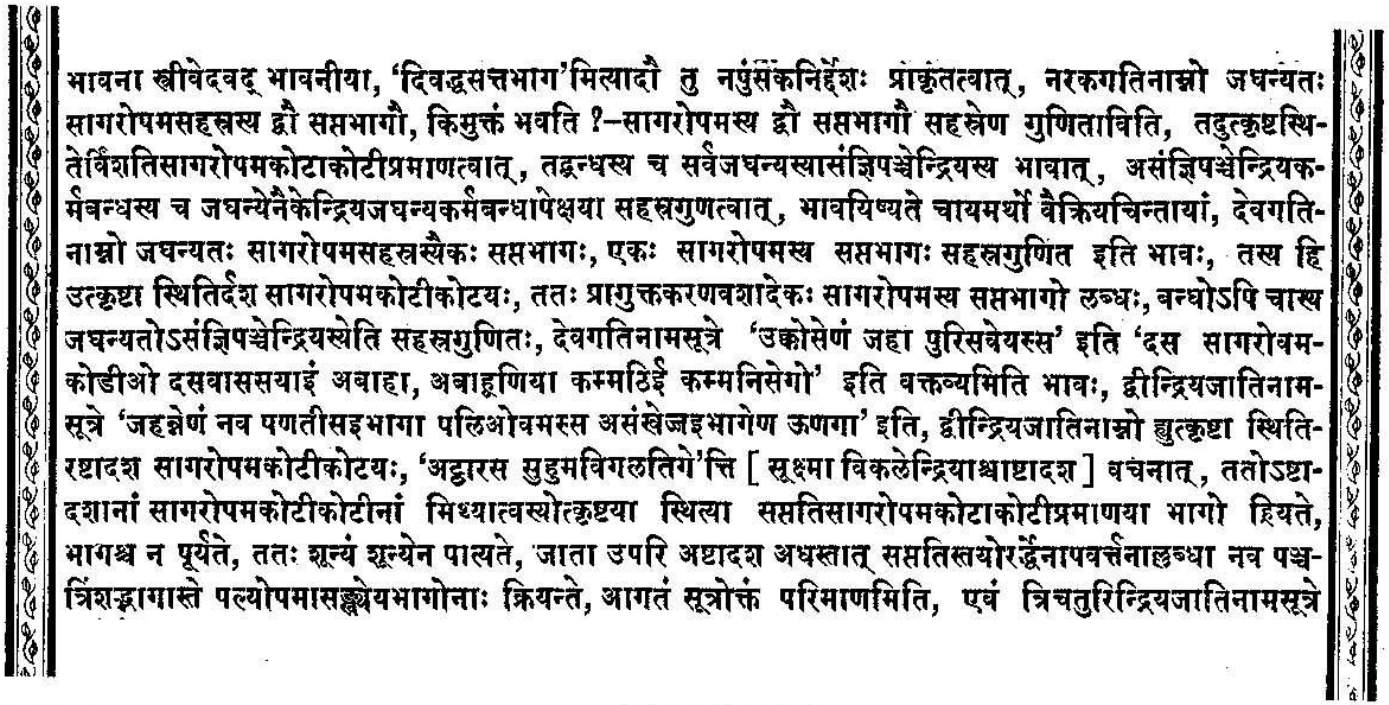
प्रज्ञापनायाः मलय० वृत्तौ. ॥४८०॥

उच्यते, त्रैराशिककरणवशात्, तथाहि—यदि दशानां सागरोपमकोटीकोटीनां एकः सागरोपमसप्तभागो लभ्यते ततः पञ्चदशभिः सागरोपमकोटीकोटीभिः किं लभ्यते ?, राशित्रयस्थापना—१० । १ । १५ । अत्रान्त्येन राशिना पञ्चदशलक्षणेन मध्यो राशिरेकलक्षणो गुण्यते, जाताः पञ्चदशैव, 'एकस्य गुणने तदेव भवती'ति वचनात्, तेषामाद्येन राशिना दशकलक्षणेन भागहरणं लब्धा सार्द्धाः सप्तभागा इति, 'हासरइअरइभयसोगदुगुंछाणं जहण्णुक्कोसठिई भाणियव्वा' इति हास्यरतिअरतिभयशोकजुगुप्सानां जघन्या उत्कृष्टा च स्थितिर्वक्तव्या, सा च सुप्रसिद्धत्वान्नोक्ता, कथं वक्तव्येति चेत्, उच्यते, 'हासरईणं पुच्छा गो० ! जहण्णेणं एगो सागरोवमस्स सत्तभागो पलिओवमस्स असंखेज्जभागेण ऊणो उक्को० दस सागरोवमकोडाकोडीओ दस वाससयाइं अबाहा जाव निसेगो, अरइभयसोगदुगुंछाणं पुच्छा, गो०! जहण्णेणं सागरोवमस्स दोण्णि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणगा उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ वीससयाइं अबाहा जाव निसेगो' इति ज्ञेयं, तिर्यगायुषि मनुष्यायुषि च त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटित्रिभागाभ्यधिकानि इति यदुक्तं तत् पूर्वकोट्यायुषस्तिर्यग्मनुष्यान् बन्धकानधिकृत्य वेदितव्यं, अन्यत्रैतावत्याः स्थितेः पूर्वकोटित्रिभागरूपाया अबाधायाश्चालभ्यमानत्वात्, 'तिरियगइनामाए जहा नपुंसगवेयस्स' इति, जघन्यतो द्वौ सागरोपमस्य सप्तभागौ पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनौ, उत्कर्षतो विंशतिः सागरोपमकोटीकोट्य इत्यर्थः, मनुष्यगतिनाम्नि 'जहण्णेणं सागरोवमस्स दिवड्ढसत्तभागं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणगं'ति अत्र

२३कर्मबन्धपदे कर्मस्थितिः सू. २९४

॥४८०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



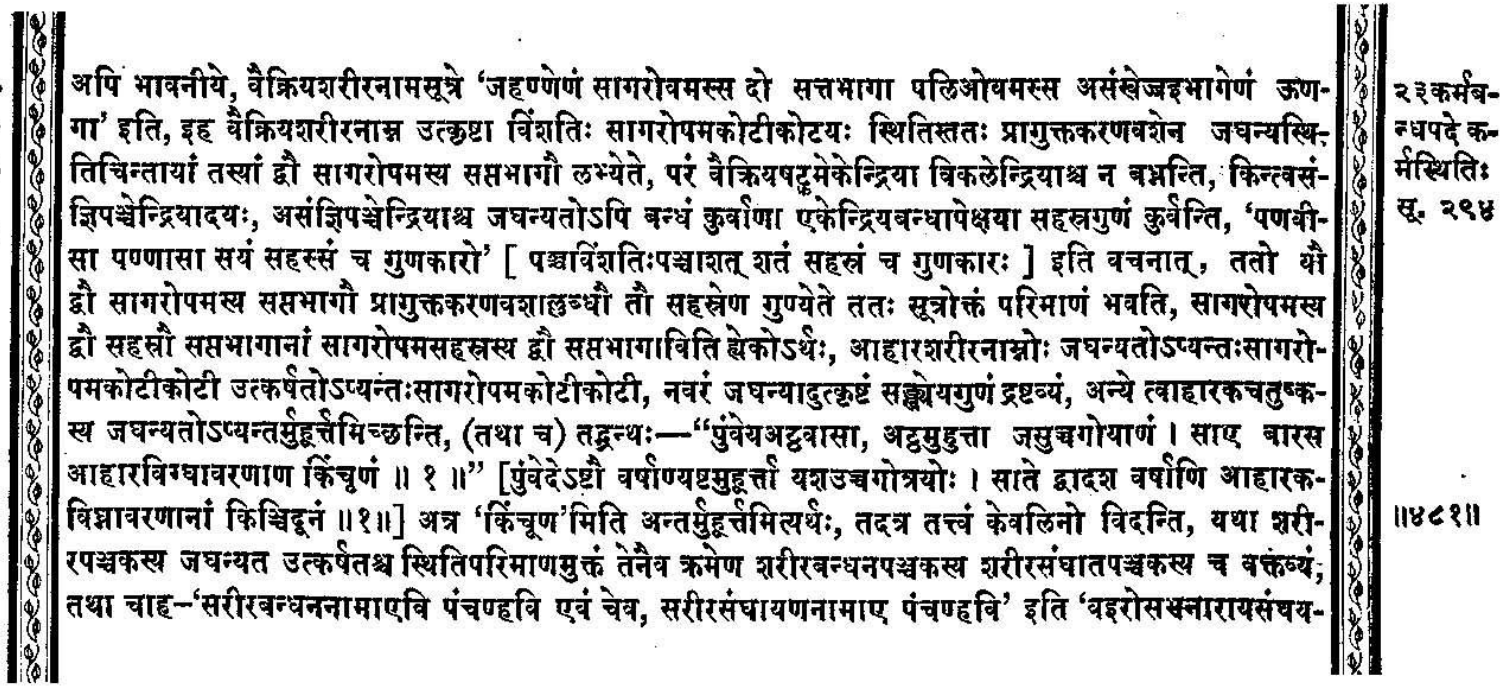
भावना स्त्रीवेदवद् भावनीया, 'दिवड्ढसत्तभाग'मित्यादौ तु नपुंसकनिर्देशः प्राकृतत्वात्, नरकगतिनाम्नो जघन्यतः सागरोपमसहस्रस्य द्वौ सप्तभागौ, किमुक्तं भवति ?–सागरोपमस्य द्वौ सप्तभागौ सहस्रेण गुणिताविति, तदुत्कृष्टस्थितेर्विंशतिसागरोपमकोटाकोटीप्रमाणत्वात्, तद्बन्धस्य च सर्वजघन्यस्यासंज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य भावात्, असंज्ञिपञ्चेन्द्रियकर्मबन्धस्य च जघन्येनैकेन्द्रियजघन्यकर्मबन्धापेक्षया सहस्रगुणत्वात्, भावयिष्यते चायमर्थो वैक्रियचिन्तायां, देवगतिनाम्नो जघन्यतः सागरोपमसहस्रस्यैकः सप्तभागः, एकः सागरोपमस्य सप्तभागः सहस्रगुणित इति भावः, तस्य हि उत्कृष्टा स्थितिर्दश सागरोपमकोटीकोटयः, ततः प्रागुक्तकरणवशादेकः सागरोपमस्य सप्तभागो लब्धः, बन्धोऽपि चास्य जघन्यतोऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियस्येति सहस्रगुणितः, देवगतिनामसूत्रे 'उक्कोसेणं जहा पुरिसवेयस्स' इति 'दस सागरोवमकोडीओ दसवाससयाइं अबाहा, अबाहूणिया कम्मठिई कम्मनिसेगो' इति वक्तव्यमिति भावः, द्वीन्द्रियजातिनामसूत्रे 'जहन्नेणं नव पणतीसइभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणगा' इति, द्वीन्द्रियजातिनाम्नो ह्युत्कृष्टा स्थितिरष्टादश सागरोपमकोटीकोटयः, 'अट्ठारस सुहुमविगलतिगे'त्ति [सूक्ष्मा विकलेन्द्रियाश्चाष्टादश] वचनात्, ततोऽष्टादशानां सागरोपमकोटीकोटीनां मिथ्यात्वस्योत्कृष्टया स्थित्या सप्ततिसागरोपमकोटाकोटीप्रमाणया भागो ह्रियते, भागश्च न पूर्यते, ततः शून्यं शून्येन पात्यते, जाता उपरि अष्टादश अधस्तात् सप्ततिस्तयोरर्द्धेनापवर्त्तनाल्लब्धा नव पञ्चत्रिंशद्भागास्ते पल्योपमासङ्ख्येयभागोनाः क्रियन्ते, आगतं सूत्रोक्तं परिमाणमिति, एवं त्रिचतुरिन्द्रियजातिनामसूत्रे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१५],उपांगसूत्र-[४] "प्रज्ञापना" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२९४]

दीप अनुक्रम [५४१]



प्रज्ञापनायाः मल० वृत्तौ. ॥४८१॥

अपि भावनीये, वैक्रियशरीरनामसूत्रे 'जहण्णेणं सागरोवमस्स दो सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगा' इति, इह वैक्रियशरीरनाम्न उत्कृष्टा विंशतिः सागरोपमकोटीकोटयः स्थितिस्ततः प्रागुक्तकरणवशेन जघन्यस्थितिचिन्तायां तस्यां द्वौ सागरोपमस्य सप्तभागौ लभ्येते, परं वैक्रियषट्कमेकेन्द्रिया विकलेन्द्रियाश्च न बध्नन्ति, किन्त्वसंज्ञिपञ्चेन्द्रियादयः, असंज्ञिपञ्चेन्द्रियाश्च जघन्यतोऽपि बन्धं कुर्वाणा एकेन्द्रियबन्धापेक्षया सहस्रगुणं कुर्वन्ति, 'पणवीसा पण्णासा सयं सहस्सं च गुणकारो' [पञ्चविंशतिःपञ्चाशत् शतं सहस्रं च गुणकारः] इति वचनात्, ततो यौ द्वौ सागरोपमस्य सप्तभागौ प्रागुक्तकरणवशाल्लब्धौ तौ सहस्रेण गुण्येते ततः सूत्रोक्तं परिमाणं भवति, सागरोपमस्य द्वौ सहस्रौ सप्तभागानां सागरोपमसहस्रस्य द्वौ सप्तभागाविति ह्येकोऽर्थः, आहारशरीरनाम्नोः जघन्यतोऽप्यन्तःसागरोपमकोटीकोटी उत्कर्षतोऽप्यन्तःसागरोपमकोटीकोटी, नवरं जघन्यादुत्कृष्टं सङ्ख्येयगुणं द्रष्टव्यं, अन्ये त्वाहारकचतुष्कस्य जघन्यतोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तमिच्छन्ति, (तथा च) तद्ग्रन्थः—"पुंवेयअट्ठवासा, अट्ठमुहुत्ता जसुच्चगोयाणं । साए बारस आहारविग्घावरणाण किंचूणं ॥ १ ॥" [पुंवेदेऽष्टौ वर्षाण्यष्टमुहूर्त्ता यशउच्चगोत्रयोः । साते द्वादश वर्षाणि आहारकविघ्नावरणानां किञ्चिदूनं ॥१॥] अत्र 'किंचूण'मिति अन्तर्मुहूर्त्तमित्यर्थः, तदत्र तत्त्वं केवलिनो विदन्ति, यथा शरीरपञ्चकस्य जघन्यत उत्कर्षतश्च स्थितिपरिमाणमुक्तं तेनैव क्रमेण शरीरबन्धनपञ्चकस्य शरीरसंघातपञ्चकस्य च वक्तव्यं; तथा चाह–'सरीरबन्धननामाएवि पंचण्हवि एवं चेव, सरीरसंघायणनामाए पंचण्हवि' इति 'वइरोसभनारायसंघय-

२३कर्मबन्धपदे कर्मस्थितिः सू. २९४

॥४८१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णनामाए जहा रइनामाए' इति, वज्रर्षभनाराचसंहननानाम्नो यथा प्राक् रतिनाम्नो मोहनीयस्योक्तं तथा वक्तव्यं, तद्यथा– 'वइरोसभनारायसंघयणनामाए भंते! कम्मस्स केवइयं कालं ठिती पं० ?, गो० ! जह० एक्कं सत्तभागं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणं, उक्को० दस सागरोवमकोडाकोडीओ' इति, ऋषभनाराचसूत्रे 'सागरोवमस्स छप्पण्णतीसभागा पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेण ऊणगा' इति, ऋषभनाराचसंहननस्य ह्युत्कृष्टा स्थितिर्द्वादश सागरोपमकोटीकोट्यः, तासां मिथ्यात्वस्थित्या सप्ततिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणया भागो ह्रियते, तत्र भागहारासम्भवात् शून्यं शून्येन पातयित्वा छेद्यच्छेदकराश्योरर्द्धनापवर्त्तनाल्लब्धाः सागरोपमस्य षट् पञ्चत्रिंशद्भागाः [६/३५], ते पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनाः क्रियन्ते, एवं नाराचसंहननानाम्नो जघन्यस्थितिचिन्तायां सप्त पञ्चत्रिंशद्भागाः [७/३५] पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनाः, उत्कृष्टस्थितेश्चतुर्दशसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणत्वात्, अर्द्धनाराचसंहननानाम्नः अष्टौ पञ्चत्रिंशद्भागाः [८/३५] पल्योपमासङ्ख्येयभागोनाः, उत्कृष्टस्थितेः षोडशसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणत्वात्, कीलिकासंहननानाम्नो नव पञ्चत्रिंशद्भागाः [९/३५] पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनाः, उत्कृष्टस्थितेरष्टादशसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणत्वात् परिभावनीयाः, सेवार्त्तसंहननसूत्रं तु सुगमं, यथा संहननषट्कस्य स्थितिपरिमाणमुक्तं तेनैव क्रमेण संस्थानषट्कस्यापि वक्तव्यं, तथाचाह—'एवं जहा संघयणनामा छब्भणिया एवं संठाणा छब्भाणियव्वा' उक्तश्चायमर्थोऽन्यत्रापि 'संघयणे संठाणे पढमे दस उवरिमेसु दुगवुड्ढी' इति [संहनने संस्थाने प्रथमे दश उपरितनेषु द्विकवृद्धिः] हारिद्रवर्णनामसूत्रे 'जह-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञेणं सागरावमस्स पंच अट्ठावीसइभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणगा' इति, हारिद्रवर्णनाम्नो हि सार्द्धा द्वादशसागरोपमकोटीकोटयः, तथा चोक्तमन्यत्रापि—"सुकिलसुरभिमहुराण दस उ तहा सुभगउण्हफासाणं। अट्ठाइज्जपवुड्ढी अंबिलहालिद्दपुव्वाणं ॥ १ ॥" [शुक्लसुरभिमधुराणां दशैव तथा सुभगोष्णस्पर्शयोः सार्धद्वयप्रवृद्धिरम्लहारिद्रपूर्वाणाम् ॥ १ ॥] तासां मिथ्यात्वस्थित्या सप्ततिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणया भागो ह्रियते, तत्र शून्येन शून्यस्य पातनात्तेन उपरितनो राशिः सांश इति सामस्त्येन चतुर्भागकरणार्थं चतुर्भिर्गुण्यते जाताः पञ्चाशत्, अधस्तनोऽपि सप्ततिलक्षणच्छेदराशिश्चतुर्भिर्गुण्यते जाते द्वे शते अशीत्यधिके, ततो भूयोऽपि शून्यं शून्येन पातनाल्लब्धाः पञ्च अष्टाविंशतिभागाः [२४] ते पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनाः क्रियन्ते, आगतं सूत्रोक्तं परिमाणं, अनेनैव गणितक्रमेण लोहितवर्णनाम्नो जघन्यस्थितौ षट् अष्टाविंशतिभागाः पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनाः, उत्कर्षतस्तस्य स्थितेः पञ्चदशसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणत्वात्, नीलवर्णनाम्नः सप्ताष्टाविंशतिभागाः पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनाः, उत्कर्षतस्तस्य स्थितेः सार्द्धसप्तदशसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणत्वात्, 'कालवण्णनामाए जहा सेवट्टसंघयणस्से'ति सेवार्त्तसंहननस्येव जघन्यतो द्वौ सागरोपमस्य सप्तभागौ पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनौ उत्कर्षतो विंशतिसागरोपमकोटीकोटयः कृष्णवर्णनाम्नोऽपि वक्तव्या इति भावः, सुरभिगन्धनाम्नः शुक्लवर्णनाम्न इव, 'सुकिलसुरभिमहुराण दस उ' इति वचनात्, दुरभिगन्धनाम्नो यथा सेवार्त्तसंहननस्य तथानन्तरमेवोक्तमिति न पुनरुच्यते, 'रसाणं महुरादीणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जहा वण्णाणं भणियं तहा परिवाडीए भाणियव्व' मिति, रसानां मधुरादीनां परिपाट्या—क्रमेण तथा वक्तव्यं यथा वर्णानामुक्तं, तच्चैवं—मधुररसनाम्नो जघन्या स्थितिरेकः सागरोपमस्य सप्तभागः पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनः, उत्कर्षतो दश सागरोपमकोटीकोटयो दश वर्षशतान्यबाधा, अबाधारहिता कर्मस्थितिः कर्मदलिकनिषेकः, अम्लरसनाम्नो जघन्यतः पञ्च सागरोपमस्याष्टाविंशतिभागाः पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनाः, उत्कर्षतोऽर्द्धत्रयोदशसागरोपमकोटीकोटयो अर्द्धत्रयोदश शतान्यबाधा, कषायरसनाम्नो जघन्यतः षट् अष्टाविंशतिभागाः सागरोपमस्य पल्योपमासङ्ख्येयभागोनाः, उत्कर्षतः पञ्चदश सागरोपमकोटीकोटयः, पञ्चदश वर्षशतान्यबाधा, कटुकरसनाम्नो जघन्यतः सागरोपमस्य सप्ताष्टाविंशतिभागाः पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनाः, उत्कर्षतः सार्द्धसप्तदश सागरोपमकोटीकोटयः सार्द्धसप्तदश शतान्यबाधा, तिक्तरसनाम्नो जघन्यतः सागरोपमस्य द्वौ सप्तभागौ पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनौ, उत्कर्षतो विंशतिः सागरोपमकोटीकोटयो विंशतिर्वर्षशतान्यबाधा अबाधाकालहीना च कर्मस्थितिः कर्मदलिकनिषेक इति, स्पर्शा द्विविधाः, तद्यथा–प्रशस्ता अप्रशस्ताश्च, तत्र प्रशस्ता मृदुलघुस्निग्धोष्णरूपाः अप्रशस्ताः कर्कशगुरुरूक्षशीतरूपाः, प्रशस्तानां जघन्यतः स्थितिरेकः सागरोपमस्य सप्तभागः पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनः, उत्कर्षतो दश सागरोपमकोटीकोटयो दश वर्षशतान्यबाधा अबाधाकालहीना कर्मस्थितिः कर्मदलिकनिषेकः, अप्रशस्तानां जघन्यतो द्वौ सागरोपमस्य सप्तभागौ पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनौ उत्कर्षतो विंशतिः सागरोपमकोटीकोटयो विंशतिर्वर्षशतान्यबाधां अबाधा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कालोना कर्मस्थितिः कर्मदलिकनिषेकः, तथा चाह—'फासा जे अप्पसत्था तेसिं जहा सेवट्टस्स जे पसत्था तेसिं जहा सुक्किलवण्णनामस्स' इति, नरकानुपूर्वीनाम्नो जघन्यतः सागरोपमसहस्रस्य द्वौ सप्तभागौ, द्वौ सागरोपमस्य सप्तभागौ सहस्रगुणिताविति भावः, भावना नरकगतिवद् भावयितव्या, मनुष्यानुपूर्वीनामसूत्रे "जहण्णेणं सागरोवमस्स दिवड्ढं सत्तभागं पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेण ऊणगं'ति, तदुत्कृष्टस्थितेः पञ्चदशसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणत्वात्, उक्तं चान्यत्रापि—"तीसं कोडाकोडी असायआवरणअंतरायाणं । मिच्छे सयरी इत्थीमणुदुगसायाण पन्नरस ॥ १ ॥" [त्रिंशत् सागरोपमकोटीकोट्योऽसातावरणान्तरायाणाम् । मिथ्यात्वे सप्ततिः स्त्रीमनुष्यद्विकसातानां पञ्चदश ॥ १ ॥] देवानुपूर्वीनाम्नोऽपि जघन्यतः एकः सागरोपमस्य सप्तभागः सहस्रगुणितः पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनः, उत्कर्षतो हि तत्स्थितेः दशसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणत्वात्, तथा चोक्तम्—"पुंहासरईउच्चे सुभखगतिथिराइछक्कदेवदुगे । दस सेसाणं वीसा एवइयाऽबाह वाससया ॥ १ ॥ ॥" [पुंवेदहास्यरत्युच्चैर्गोत्रशुभविहायोगतिस्थिरादिषट्कदेवद्विकेषु । दश शेषाणां विंशतिः एतावन्त्यबाधा वर्षशतानि ॥ १ ॥] बन्धश्चास्य जघन्यतोऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु इति, तथा सूक्ष्मनामसूत्रे जघन्यतो नव सागरोपमस्य पञ्चत्रिंशद्भागाः पल्योपमासङ्ख्येयभागहीना द्वीन्द्रियजातिनाम्न इव भावनीया, सूक्ष्मनाम्नो ह्युत्कर्षतः स्थितेरष्टादशसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणत्वात्, 'अट्ठारस सुहुमविगलतिगे' इति वचनात्, एवमपर्याप्तसाधारणनाम्नोरपि भावनीयं, बादरपर्याप्तप्रत्येकनाम्नां तु जघन्यतो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वौ सागरोपमस्य सप्तभागौ पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनौ, उत्कर्षतो विंशतिः सागरोपमकोटीकोटयः, तथा चाह— 'बायरनामाए जहा अपसत्थविहायोगइनामाए, एवं पज्जत्तनामाएवि' इत्यादि, स्थिरशुभसुभगसुस्वरादेयरूपाणां पञ्चानां नाम्नां जघन्यतः स्थितिरेकः सागरोपमस्य सप्तभागः पल्योपमासङ्ख्येयभागोनः, यशःकीर्त्तिनाम्नस्तु जघन्यतोऽष्टौ मुहूर्त्ताः, 'अट्ठ मुहुत्ता जसुच्चगोयाण'मिति वचनात्, उत्कृष्टा पुनः षण्णामपि दश सागरोपमकोटीकोटयः 'थिराइछक्कदेवदुगे दसे'ति वचनात्, अस्थिराशुभदुर्भगदुःस्वरानादेययायशःकीर्त्तिनाम्नां तु जघन्यतो द्वौ सागरोपमस्य सप्तभागौ पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनौ, उत्कर्षतो विंशतिः सागरोपमकोटीकोटयः, एवं निर्माणनाम्नोऽपि वक्तव्यं, तीर्थकरनाम्नो जघन्यतोऽप्यन्तःसागरोपमकोटीकोटी उत्कर्षतोऽप्यन्तःसागरोपमकोटीकोटी, ननु यदि जघन्यतोऽपि तीर्थकरनाम्नोऽन्तःसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणा स्थितिः तर्हि तावत्याः स्थितेः तिर्यग्भवभ्रमणमन्तरेण पूरयितुमशक्यत्वात् कियन्तं कालं तीर्थकरनामसत्कर्मापि तिर्यग्भवेत्, अथ चासावागमे निषिद्धः, तथा चोक्तम्—"तिरिएसु नत्थि तित्थयरनाम संतंति देसियं समए । कह य तिरिओ न होही अयरोवमकोडीकोडीओ ॥ १ ॥" [तिर्यक्षु नास्ति तीर्थकरनाम सत्तायां इति देशितं समये । कथं च तिर्यक् न भविष्यति अतरोपमकोटीकोटीस्थितिकत्वात् ? ॥१॥] इति ?, ततः कथमेतदिति चेत्, उच्यते, इह यन्निकाचितं तीर्थकरनामकर्म तत्तिर्यग्गतौ सत्तायां निषिद्धं, यत्पुनरुद्वर्त्तनापवर्त्तनासाध्यं तद्भवेदपि तिर्यग्गतौ न विरोधमास्कन्दति, तथा चोक्तम्—"जमिह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निकाइय तित्थं तिरियभवे तं निसेहियं संतं । इयरंमि नत्थि दोसो उव्वट्टणवट्टणासज्झे ॥१॥" [यदिह निकाचितं तीर्थनाम तिर्यग्भवे तन्निषिद्धं सत्तायाम् । इतरस्मिन् नास्ति दोषः उद्वर्त्तनापवर्त्तनासाध्ये ॥ १ ॥] इति, गोत्रान्तरायसूत्राणि सुप्रतीतानि, नवरं 'अंतराइयस्स णं पुच्छा' इति, पञ्चप्रकारस्यापीति वाक्यशेषः, निर्वचनमपि पञ्चप्रकारस्यापि द्रष्टव्यं । तदेवमुक्तं जघन्यत उत्कर्षतश्च सामान्यतः सर्वासां प्रकृतीनां स्थितिपरिमाणं, साम्प्रतमेकेन्द्रियानधिकृत्य तासां तदभिधित्सुराह—

एगिंदिया णं भंते ! जीवा णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधंति ?, गो० ! जह० सागरोवमस्स तिण्णि सत्तभागा पलितोवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणया उक्कोसेणं ते चेव पडिपुण्णे बंधंति, एवं निद्दापंचगस्सवि, दंसणचउक्कस्सवि, एगिंदिया णं भंते ! सातावेदणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधंति ?, गो० ! ज० सागरोवमदिवड्ढं सत्तभागं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागेणं ऊणयं उ० तं चेव पडिपुण्णं बंधंति, असायवेयणिज्जस्स जहा णाणावरणिज्जस्स, एगिंदिया णं भंते ! जीवा सम्मत्तवेयणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधंति ?, गो० ! णत्थि किंचि बंधंति, एगिंदिया णं भंते ! जीवा मिच्छत्तवेदणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधंति ?, गो० ! ज० सागरोवमं पलितोवमस्स असंखेज्जतिभागेणं ऊणं उ० तं चेव पडिपुण्णं बंधंति, एगिंदिया णं भंते ! जीवा सम्मामिच्छत्तवेयणिज्जस्स किं बंधंति ?, गो० ! णत्थि किंचि बन्धंति, एगिंदिया णं भंते !, जीवा कसायबारसगस्स किं बंधंति ?, गोयमा ! जह० सागरोवमस्स चत्तारि सत्तभागे पलितोवमस्स असंखेज्जतिभागेणं ऊणते उ०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२९५]

दीप अनुक्रम [५४२]

ते चेव पडिपुण्णे बंधंति, एवं जाव कोहसंजलणाएवि जाव लोभसंजलणाएवि, इत्थिवेदस्स जहा सातावेदणिज्जस्स, एगिंदिया पुरिसवेदस्स कम्मस्स जह० सागरोवमस्स एगं सत्तभागं पलितोवमस्स असंखेज्जतिभागेणं ऊणयं उक्को० तं चेव पडिपुण्णं बंधंति, एगिंदिया नपुंसगवेदस्स कम्मस्स जह० सागरोवमस्स दो सत्तभागे पलितोवमस्स असंखेज्जतिभागेणं ऊणए उक्को० ते चेव पडिपुण्णं बंधंति, हासरतीते जहा पुरिसवेदस्स, अरतिभयसोगदुगुंछाए [उक्को० ते चेव पडिपुण्णे बंधंति, हासरतीते जहा पुरिसवेदस्स अरतिभयसोगदुगुंछाए] जहा नपुंसगवेयस्स, नेरइयाऊ देवाऊ य निरयगतिनाम देवगतिनाम वेउव्वियसरीरनाम आहारगसरीरनाम नेरइयाणुपुव्विनाम देवाणुपुव्विनाम तित्थगरणाम एताणि पदाणि ण बंधंति, तिरिक्खजोणियाउयस्स जह० अंतो० उक्कोसेणं पुव्वकोडी सत्तहिं वाससहस्सेहिं वाससहस्सतिभागेण य अहियं बंधंति, एवं मणुस्साउयस्सवि, तिरियगतिनामाए जहा नपुंसगवेदस्स, मणुयगतिनामाए जहा सातावेदणिज्जस्स, एगिंदियनामाए पंचिंदियजातिनामाए य जहा नपुंसगवेदस्स, बेइंदियतेइंदियजातिनामाए पुच्छा, जह० सागरोवमस्स नव पणतीसतिभागे पलितोवमस्स असंखेज्जतिभागेणं ऊणए उक्को० ते चेव पडिपुण्णे बंधंति, चउरिंदियनामाएवि जह० सागरोवमस्स णव पणतीसतिभागे पलितोवमस्स असंखेज्जतिभागेणं ऊणए उ० ते चेव पडिपुण्णे बंधन्ति, एवं जत्थत्थि जहण्णगं दो सत्तभागा तिन्नि वा चत्तारि वा सत्तभागा अट्ठावीसतिभागा भवंति, तत्थ णं जहण्णेणं ते चेव पलितोवमस्स असंखेज्जतिभागेणं ऊणगा भाणितव्वा, उ० ते चेव पडिपुण्णे बंधंति, तत्थ णं जहण्णेणं एगो वा दिवड्ढो वा सत्तभागो तत्थ जह० तं चेव भाणितव्वं उ० तं चेव पडिपुण्णं बंधंति, जसोकित्तिउच्चागोताणं ज० सागरोवमस्स एगं सत्तभागं पलितोवमस्स

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

असं० ऊणं उ० तं चेव पडिपुण्णं बंधंति, अंतराइयस्स णं भंते ! पुच्छा, गो० ! जहा णाणावरणिज्जं उ० ते चेव पडिपुण्णे बंधंति । (सूत्रं २९५)

'एगिंदिया णं भंते ! जीवा णं नाणावरणिजस्स कम्मस्स किं बंधंति ?' इत्यादि, अत्रेयं परिभाषा—यस्य यस्य कर्मणो या या उत्कृष्टा स्थितिः प्रागभिहिता तस्याः २ मिथ्यात्वस्थित्या सप्ततिसागरोकोटीकोटीप्रमाणया भागे हृते यल्लभ्यते तत्पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनं जघन्या स्थितिः, सैव पल्योपमासङ्ख्येयभागसहिता उत्कृष्टेति, एतत्परिभाव्य सकलमप्येकेन्द्रियगतं सूत्रं स्वयं परिभावनीयं, तथापि विनेयजनानुग्रहाय किञ्चिल्लिख्यते—ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणनवकासातवेदनीयान्तरायपञ्चकानां जघन्यत एकेन्द्रियाणां स्थितिबन्धस्त्रयः सागरोपमस्य सप्तभागाः पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनाः, उत्कृष्टतस्त्र एव परिपूर्णास्त्रयः सागरोपमस्य सप्तभागाः, सातवेदनीयस्त्रीवेदमनुष्यगतिमनुष्यानुपूर्वीणां जघन्यतः सार्द्धः सागरोपमस्य सप्तभागः पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनः, उत्कर्षतस्तु स एव सार्द्धः सप्तभागः परिपूर्णः, मिथ्यात्वस्य जघन्यत एकं सागरोपमं पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनमुत्कर्षतः तदेव परिपूर्णं, सम्यक्त्ववेदनीयस्य सम्यग्मिथ्यात्ववेदनीयस्य च न किञ्चिदपि बध्नन्ति, न किञ्चिदपि वेद्यमानतयाऽऽत्मप्रदेशैः सम्बन्धयन्तीति भावः, एकेन्द्रियाणां सम्यक्त्ववेदनीयस्य सम्यग्मिथ्यात्ववेदनस्य चासम्भवात्, यस्तु साक्षाद्बन्धः स सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वयोर्न घटत एवेति प्रागेवाभिहितं, कषायषोडशकस्य जघन्यतश्चत्वारः सागरोपमस्य सप्तभागाः पल्यो-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पमासङ्ख्येयभागोना उत्कर्षतस्त एव परिपूर्णाः, पुरुषवेदहास्यरतिप्रशस्तविहायोगतिस्थिरादिषट्कप्रथमसंस्थानप्रथमसंहननशुक्लवर्णसुरभिगन्धमधुररसोच्चैर्गोत्राणां जघन्यत एकः सागरोपमस्य सप्तभागः पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनः उत्कर्षतः स एव परिपूर्णः, द्वितीयसंस्थानसंहननयोः जघन्यतः षट् पञ्चत्रिंशद्भागाः पल्योपमासङ्ख्येयभागहीना उत्कर्षतस्त एव परिपूर्णाः, तृतीयसंस्थानसंहननयोर्जघन्यतः सप्त सागरोपमस्य पञ्चत्रिंशद्भागाः पल्योपमासङ्ख्येयभागहीना उत्कर्षतस्त एव परिपूर्णाः, लोहितवर्णकषायरसयोर्जघन्यतः षट् सागरोपमस्याष्टाविंशतिभागाः पल्योपमासङ्ख्येयभागहीना उत्कर्षतस्त एव परिपूर्णाः, हारिद्रवर्णाम्लरसयोर्जघन्यतः पञ्च सागरोपमस्याष्टाविंशतिभागाः पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनाः उत्कर्षतस्त एव परिपूर्णाः, नीलवर्णकटुरसयोः सप्त सागरोपमस्याष्टाविंशतिभागाः पल्योपमासङ्ख्येयभागोनाः उत्कर्षतस्त एव परिपूर्णाः, नपुंसकवेदभयजुगुप्साशोकारतितिर्यगौदारिकद्विकचरमसंस्थानचरमसंहननकृष्णवर्णतिक्तरसागुरुलघुपराघातोच्छ्वासोपघातत्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकास्थिराशुभदुर्भगदुःस्वरानादेययायशःकीर्त्तिस्थावरातपोद्योताशुभविहायोगतिनिर्माणैकेन्द्रियजातिपञ्चेन्द्रियजातितैजसकार्मणानां जघन्यतो द्वौ सागरोपमस्य सप्तभागौ पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनौ उत्कर्षतस्तावेव परिपूर्णाविति, नरकद्विकदेवद्विकवैक्रियचतुष्टयाहारकचतुष्टयतीर्थङ्करनाम्नां त्वेकेन्द्रियाणां न बन्धः, आयुश्चिन्तायामपि एकेन्द्रिया देवायुर्नैरयिकायुर्वा न बध्नन्ति, तथा भवस्वाभाव्यात्, किन्तु तिर्यगायुर्मनुष्यायुर्वा, तदपि बध्नन्तो जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं बध्नन्ति, उत्कर्षतः पूर्वकोटिप्रमाणं साधिकं, केवलमुत्कृष्टं चि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

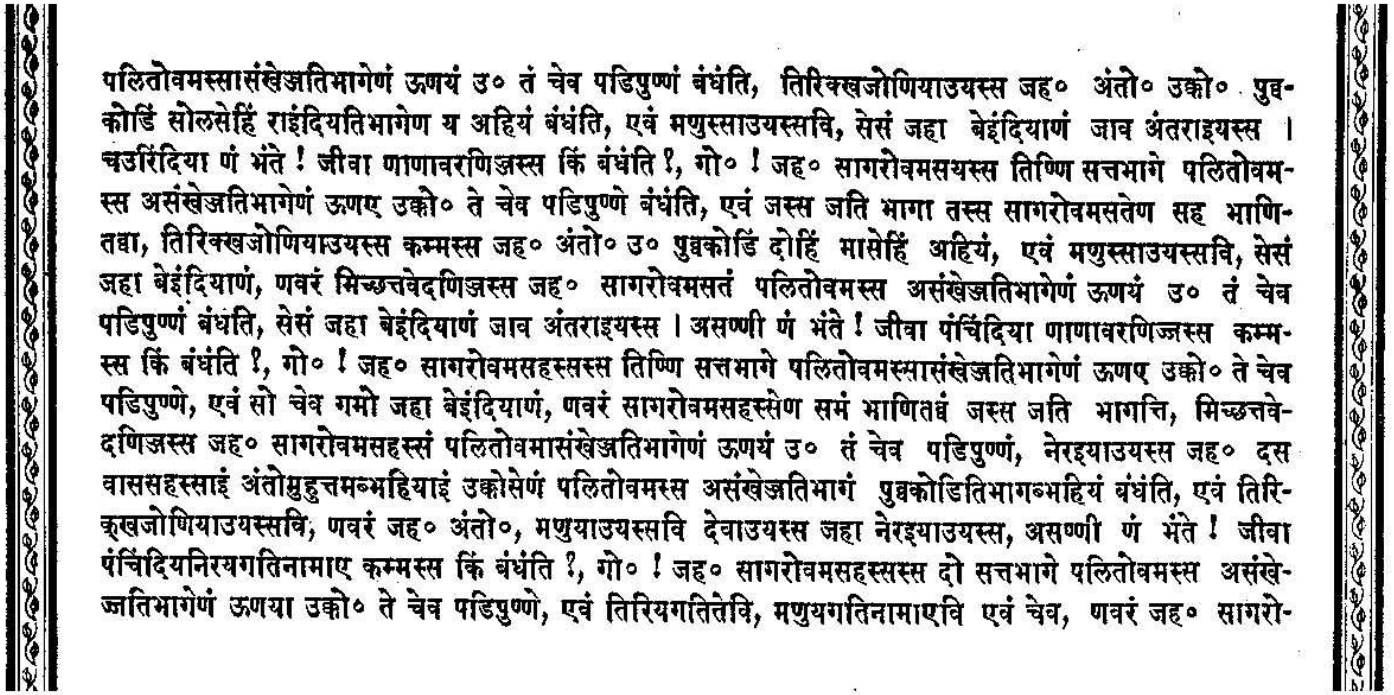
प्रत सूत्रांक [२९५]

दीप अनुक्रम [५४२]

न्यते इत्येकेन्द्रिया द्वाविंशतिर्वर्षसहस्रप्रमाणायुषः स्वायुषश्च त्रिभागावशेषे परभवायुर्बध्नन्तः परिगृह्यन्ते इति सप्त-वर्षसहस्राणि वर्षसहस्रत्रिभागोत्तराण्यधिकानि लभ्यन्ते, ततो भवति तिर्यगायुर्मनुष्यायुश्चिन्तायां सूत्रोक्तं परिमाणमिति। उक्तमेकेन्द्रियबन्धकानधिकृत्य जघन्यत उत्कर्षतश्च स्थितिपरिमाणं, सम्प्रति द्वीन्द्रियानधिकृत्य तमभिधित्सुराह—

बेइंदिया णं भंते ! जीवा णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधंति ?, गो० ! जह० सागरोवमपणवीसाते तिण्णि सत्तभागा पलितोवमस्स असं०ऊणया उ० ते चेव पडिपुण्णे बंधंति, एवं निद्दापंचगस्सवि, एवं जहा एगिंदियाणं भणितं तहा बेइंदियाणवि भाणितव्वं, नवरं सागरोवमपणवीसाए सह भाणितव्वा पलितोवमस्स असंखेज्जतिभागेणं ऊणा सेसा (उ०) तं चेव पडिपुण्णं बंधंति, जत्थ एगिंदिया न बंधंति तत्थ एतेवि न बंधंति, बेइंदिया णं भंते ! जीवा मिच्छत्तवेयणिज्जस्स किं बंधंति ?, गो० !, जह० सागरोवमपणुवीसं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणयं उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति, तिरिक्खजोणियाउ-यस्स जह० अंतो० उक्को० पुव्वकोडिं च्चउहिं वासेहिं अहियं बंधंति, एवं मणुयाउयस्सवि, सेसं जहा एगिंदियाणं जाव अंतराइयस्स। तेइंदिया णं भंते ! जीवा णाणावरणिज्जस्स किं बंधंति ?, गो० ! जह० सागरोवमपण्णासाए तिण्णि सत्त-भागा पलितोवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणया उ० ते चेव पडिपुण्णे बंधंति, एवं जस्स जतिभागा ते तस्स सागरोवमप-ण्णासाए सह भाणितव्वा, तेइंदिया णं भंते ! मिच्छत्तवेदणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधंति ?, गो० ! ज० सागरोवमपण्णासं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



पलितोवमस्सासंखेज्जतिभागेणं ऊणयं उ० तं चेव पडिपुण्णं बंधंति, तिरिक्खजोणियाउयस्स जह० अंतो० उक्को० पुव्व-
कोडिं सोलसेहिं राइंदियतिभागेण य अहियं बंधंति, एवं मणुस्साउयस्सवि, सेसं जहा बेइंदियाणं जाव अंतराइयस्स ।
चउरिंदिया णं भंते ! जीवा णाणावरणिज्जस्स किं बंधंति ?, गो० ! जह० सागरोवमसयस्स तिण्णि सत्तभागे पलितोवम-
स्स असंखेज्जतिभागेणं ऊणए उक्को० ते चेव पडिपुण्णे बंधंति, एवं जस्स जति भागा तस्स सागरोवमसतेण सह भाणि-
तव्वा, तिरिक्खजोणियाउयस्स कम्मस्स जह० अंतो० उ० पुव्वकोडिं दोहिं मासेहिं अहियं, एवं मणुस्साउयस्सवि, सेसं
जहा बेइंदियाणं, णवरं मिच्छत्तवेदणिज्जस्स जह० सागरोवमसतं पलितोवमस्स असंखेज्जतिभागेणं ऊणयं उ० तं चेव
पडिपुण्णं बंधंति, सेसं जहा बेइंदियाणं जाव अंतराइयस्स । असण्णी णं भंते ! जीवा पंचिंदिया णाणावरणिज्जस्स कम्म-
स्स किं बंधंति ?, गो० ! जह० सागरोवमसहस्सस्स तिण्णि सत्तभागे पलितोवमस्सासंखेज्जतिभागेणं ऊणए उक्को० ते चेव
पडिपुण्णे, एवं सो चेव गमो जहा बेइंदियाणं, णवरं सागरोवमसहस्सेण समं भाणितव्वं जस्स जति भागत्ति, मिच्छत्तवे-
दणिज्जस्स जह० सागरोवमसहस्सं पलितोवमासंखेज्जतिभागेणं ऊणयं उ० तं चेव पडिपुण्णं, नेरइयाउयस्स जह० दस
वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं उक्कोसेणं पलितोवमस्स असंखेज्जतिभागं पुव्वकोडितिभागब्भहियं बंधंति, एवं तिरि-
क्खजोणियाउयस्सवि, णवरं जह० अंतो०, मणुयाउयस्सवि देवाउयस्स जहा नेरइयाउयस्स, असण्णी णं भंते ! जीवा
पंचिंदियनिरयगतिनामाए कम्मस्स किं बंधंति ?, गो० ! जह० सागरोवमसहस्सस्स दो सत्तभागे पलितोवमस्स असंखे-
ज्जतिभागेणं ऊणया उक्को० ते चेव पडिपुण्णे, एवं तिरियगतितेवि, मणुयगतिनामाएवि एवं चेव, णवरं जह० सागरो-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वमसहस्सस्स दिवड्ढं सत्तभागं पलितोवमस्सासंखेज्जइभागेण ऊणं उक्को० तं चेव पडिपुण्णं बंधंति, एवं देवगतिनामाए, नवरं ते सागरोवमसहस्सस्स एगं सत्तभागं पलिओवमस्सासंखे० ऊणं उ० तं चेव पडिपुण्णं, वेउव्वियसरीरनामाए पुच्छा, गो० ! ज० सागरोवमसहस्सस्स दो सत्तभागे पलितोवमस्सासंखेज्जतिभागेण ऊणे उक्को० दो पडिपुण्णे बंधंति, सम्मत्तसम्मामिच्छत्तआहारगसरीरनामाते तित्थगरनामाए ण किंचि बंधंति, अवसिट्ठं जहा बेइंदियाणं, णवरं जस्स जत्तिया भागा तस्स सा सागरोवमसहस्सेण सह भाणितव्वा, सव्वेसिं आणुपुव्वीए जाव अंतराइयस्स। सण्णी णं भंते ! जीवा पंचिंदिया णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधंति ?, गो० ! ज० अंतोमु० उ० तीसं सा० कोडाकोडीओ तिण्णि वाससहस्साइं अबाहा, सण्णी णं भंते ! पंचिंदिया णिद्दापंचगस्स किं बंधंति ?, गो० ! जह० अंतो० सागरोवमकोडाकोडीओ उ० तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ तिण्णि य वाससहस्साइं अबाहा, दंसणचउक्कस्स जहा णाणावरणिज्जस्स, सायावेदणिज्जस्स जहा ओहिया ठिती भणिता तहेव भाणितव्वा, ईरियावहियबंधयं पडुच्च संपराइयबंधयं च, असायावेयणिज्जस्स जहा णिद्दापंचगस्स, सम्मत्तवेदणिज्जस्स सम्मामिच्छत्तवेदणिज्जस्स जा ओहिया ठिती भणिता तं बंधंति, मिच्छावेदणिज्जस्स ज० अंतोसागरोवमकोडाकोडीओ उक्को० सत्तरिं सागरोवमकोडाकोडीओ, सत्तरि य वाससहस्साइं अबाहा, कसायबारसगस्स जह० एवं चेव उक्को० चत्तालीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, चत्तालीस य वाससयाणि अबाहा, कोहमाणमायालोभसंजलणाए य दो मासा मासो अद्धमासो अंतोमुहुत्तो, एवं जहन्नगं, उक्कोसगं पुण जहा कसायबारसगस्स, चउण्हवि आउयाणं जा ओहिया ठिती भणिता तं बंधंति, आहारमसरीरस्स तित्थगरनामाए य जहण्णेणं अंतोसागरोवमकोडाकोडीतो उ० अंतोसागरोवमकोडा-

२३कर्मबन्धपदे द्वीन्द्रियादीनां कर्मस्थितिःसू. २९५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२९६]

दीप अनुक्रम [५४३]

कोडीओ, पुरिसवेदणिज्जस्स ज० अट्ठ संवच्छराइं उ० दस सागरोवमकोडाकोडीओ दस य वाससताइं अबाहा, जसोकित्तिणामाए उच्चागोत्तस्स एवं चेव, नवरं जह० अट्ठ मुहुत्ता, अंतराइयस्स जहा णाणावरणिज्जस्स, सेसएसु सव्वेसु ठाणेसु संघयणेसु संठाणेसु वण्णेसु गंधेसु य जह० अंतोसागरोवमकोडाकोडीओ उक्को० जा जस्स ओहिया ठिती भणिता तं बंधंति, णवरं इमं नाणत्तं अबाहा अबाहूणिया ण वुच्चति, एवं आणुपुवीते सव्वेसिं, जाव अंतरायस्स ताव भाणितव्वं (सूत्रं २९६)

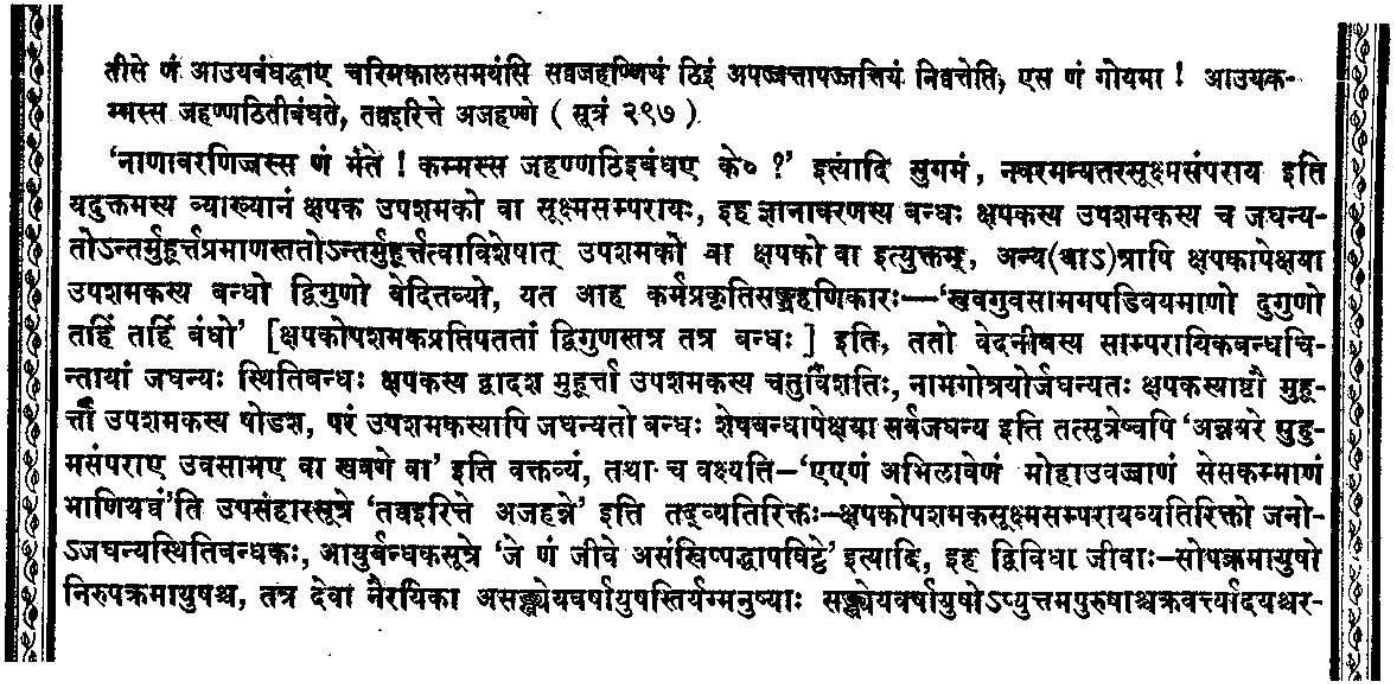
'बेइंदिया णं भंते ! जीवा' इत्यादि, अत्रेयं परिभाषा—यस्य २ कर्मणो या या स्थितिरुत्कृष्टा प्रागभिहिता तस्याः तस्याः मिथ्यात्वस्थित्या सप्ततिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणया भागे हृते यल्लभ्यते तत्पञ्चविंशत्या गुण्यते गुणितं च सत् यावद्भवति तावत्पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनं द्वीन्द्रियाणां बन्धकानां जघन्यस्थितिपरिमाणं तदेव परिपूर्णमुत्कृष्टस्थितिपरिमाणं, तद्यथा—ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणनवकासातवेदनीयान्तरायपञ्चकानां त्रयः सागरोपमस्य सप्तभागाः पञ्चविंशत्या गुणिताः, वस्तुवृत्त्या पञ्चविंशतेः सागरोपमाणां त्रयः सप्तभागाः पल्योपमासङ्ख्येयभागहीना जघन्यस्थितिबन्धपरिमाणं, त एव परिपूर्णा उत्कृष्टमित्यादि। त्रीन्द्रियबन्धचिन्तायां तदेव भागलब्धं पञ्चाशता गुण्यते चतुरिन्द्रियबन्धचिन्तायां शतेन असंज्ञिपञ्चेन्द्रियचिन्तायां सहस्रेण, आह च कर्मप्रकृतिसङ्ग्रहणिकारः—"पणवीसा पन्नासा सयं सहस्सं च गुणकारो। कमसो विगलअसन्नीण"मिति [पञ्चविंशतिः पञ्चाशत् शतं सहस्रं च गुण-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कारः । क्रमेण विकलासंज्ञिनाम् ।] ततः एतदनुसारेण सूत्रं स्वयं मिगमनीयं सुगमत्वात् नवरं 'सागरोवमपण्णवीसाए तिण्णि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगा' इति, अत्रेयं गणितभावना–पञ्चविंशतेः सागरोपमाणां सप्तभिर्भागे हियमाणे यल्लभ्यते तस्त्रिगुणीकृत्य पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनं क्रियते इति, एवं सर्वत्रापि यथायोगं गणितभावना कर्तव्या । संज्ञिपञ्चेन्द्रियबन्धकसूत्रे ज्ञानावरणीयादिकर्मणां जघन्यतः स्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्त्तादिपरिमाणः क्षपकस्य सप्तबन्धचरमसमये प्रतिपत्तव्यः, निद्रापञ्चकासातवेदनीयमिथ्यात्वकषायद्वादशकादीनां तु क्षपणादर्वाक् बन्ध इति तेषां जघन्यतोऽप्यन्तःसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणः उत्कृष्टो मिथ्यादृष्टेः सर्वसङ्क्लिष्टस्य, नवरं तिर्यग्मनुष्यदेवायुषां स्वस्वबन्धकेष्वतिविशुद्धस्येति । इह संज्ञिपञ्चेन्द्रियसूत्रे ज्ञानावरणीयादिकर्म्मणां जघन्यस्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्त्तादिपरिमाण उक्तः, स कस्मिन् स्वामिनि लभ्यते इति जिज्ञासुः पृच्छति—

नाणावरणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स जहण्णट्ठितीबंधए के० ?, गो० ! अण्णयरे सुहुमसंपराये उवसामए वा खवगे वा एस णं गो० ! णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स जहण्णठितीबंधते, तद्वइरित्ते अजहण्णे, एवं एएणं अभिलावेणं मोहाउयवज्जाणं सेसकम्माणं भाणितव्वं, मोहणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स जहण्णठितीबंधते के० ?, गो० ! अन्नयरे बादरसंपराए उवसामए वा खवए वा एस णं गो० ! मोहणिज्जस्स कम्मस्स जहण्णठितीबंधते, तद्वतिरित्ते अजहण्णे, आउयस्स णं भंते ! कम्मस्स जहण्णठितीबंधते के० ?, गो० ! जे णं जीवे असंखेप्पद्धापविट्ठे सत्तमिरुद्धे से आउते, सेसे सत्तमहंतीए आउयबंधद्धाए,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



तीसे णं आउयबंधद्धाए चरिमकालसमयंसि सव्वजहण्णियं ठिइं अपज्जत्तापज्जत्तियं निवत्तेति, एस णं गोयमा ! आउयकम्मस्स जहण्णठितीबंधते, तव्वइरित्ते अजहण्णे (सूत्रं २९७)

'नाणावरणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स जहण्णठिइबंधए के० ?' इत्यादि सुगमं, नवरमन्यतरसूक्ष्मसंपराय इति यदुक्तमस्य व्याख्यानं क्षपक उपशमको वा सूक्ष्मसम्परायः, इह ज्ञानावरणस्य बन्धः क्षपकस्य उपशमकस्य च जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणस्ततोऽन्तर्मुहूर्त्तत्वाविशेषात् उपशमको वा क्षपको वा इत्युक्तम्, अन्य(था)ऽपि क्षपकापेक्षया उपशमकस्य बन्धो द्विगुणो वेदितव्यो, यत आह कर्मप्रकृतिसङ्ग्रहणिकारः—'खवगुवसाममपडिवयमाणो दुगुणो तहिं तहिं बंधो' [क्षपकोपशमकप्रतिपततां द्विगुणस्तत्र तत्र बन्धः] इति, ततो वेदनीयस्य साम्परायिकबन्धचिन्तायां जघन्यः स्थितिबन्धः क्षपकस्य द्वादश मुहूर्त्ता उपशमकस्य चतुर्विंशतिः, नामगोत्रयोर्जघन्यतः क्षपकस्याष्टौ मुहूर्त्ता उपशमकस्य षोडश, परं उपशमकस्यापि जघन्यतो बन्धः शेषबन्धापेक्षया सर्वजघन्य इति तत्सूत्रेष्वपि 'अन्नयरे सुहुमसंपराए उवसामए वा खवगे वा' इति वक्तव्यं, तथा च वक्ष्यति—'एएणं अभिलावेणं मोहाउवज्जाणं सेसकम्माणं भाणियव्वं'ति उपसंहारसूत्रे 'तव्वइरित्ते अजहन्ने' इति तद्व्यतिरिक्तः—क्षपकोपशमकसूक्ष्मसम्परायव्यतिरिक्तो जघन्यस्थितिबन्धकः, आयुर्बन्धकसूत्रे 'जे णं जीवे असंखिप्पद्धापविट्ठे' इत्यादि, इह द्विविधा जीवाः—सोपक्रमायुषो निरुपक्रमायुषश्च, तत्र देवा नैरयिका असङ्ख्येयवर्षायुषस्तिर्यग्मनुष्याः सङ्ख्येयवर्षायुषोऽप्युत्तमपुरुषाश्चक्रवर्त्यादयश्चर-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मशरीरिणश्च निरुपक्रमायुष एव, शेषास्तु सोपक्रमा अपि निरुपक्रमा अपि, उक्तं च—"देवा नेरइया वा असंखवासाउया य तिरिमणुया । उत्तमपुरिसा य तहा चरमसरीरा य निरुवक्कमा ॥१॥ सेसा संसारत्था भइया सोवक्कमा व इयरे वा । सोवक्कमनिरुवक्कमभेओ भणिओ समासेणं ॥ २ ॥" [देवा नैरयिका वा असंख्यवर्षायुष्काश्च नरतिर्यञ्चः । उत्तमपुरुषाश्च तथा चरमशरीराश्च निरुपक्रमाः ॥ १ ॥ शेषाः संसारस्था भक्ताः सोपक्रमा वेतरे वा । सोपक्रमनिरुपक्रमभेदो भणितः समासेन ॥ २ ॥] तत्र देवा नैरयिका असङ्क्षेयवर्षायुषस्तिर्यग्मनुष्याश्च षण्मासावशेषायुषः परभविकायुर्बन्धका एव, ये पुनस्तिर्यग्मनुष्याः संख्येयवर्षायुषोऽपि निरुपक्रमायुषस्ते नियमात्त्रिभागावशेषायुषः परभवायुर्बध्नन्ति, ये तु सो पक्रमायुषस्ते स्यात्त्रिभागावशेषायुषस्त्रिभागत्रिभागावशेषायुषो यावदसङ्क्षेप्याद्धाप्रविष्टा इति, तत आह—'जे णं जीवे' इत्यादि, यो णमिति वाक्यालङ्कारे जीवोऽसङ्क्षेप्याद्धाप्रविष्टः त्रिभागादिना प्रकारेण या सङ्क्षेतुं न शक्यते सा असङ्क्षेप्या सा चासौ अद्धा च असङ्क्षेप्याद्धा तां प्रविष्टः असङ्क्षेप्याद्धाप्रविष्टः, अत आह—'से' तस्यासङ्क्षेप्याद्धाप्रविष्टस्य जीवस्यायुः सर्वनिरुद्धं उपक्रमहेतुभिरतिसङ्क्षिप्तीकृतं, आयुर्बन्धनिवर्त्तनमात्र एव कालः तस्यास्ति न परतो जीवनकाल इति भावः, एतदेव स्पष्टतरमाह—'सेसे सव्वमहंतीए आउयबंधद्धाए' इह सर्वमहती आयुर्बन्धाद्धा अष्टाकर्षप्रमाणा तस्याः शेषः–एकाकर्षप्रमाणा तावन्मात्रं सर्वनिरुद्धं तस्यायुर्वर्त्तते इति भावः, ततोऽसङ्क्षेप्याद्धाप्रविष्टः, स इत्थंभूतः तस्या–आयुर्बन्धाद्धायाश्चरमकालसमये—चरमकालावसरे एकाकर्षप्रमाणे, इह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चरमसमयकालग्रहणेन न परमनिरुद्धः समयः परिगृह्यते किन्तु यथोक्तरूपः कालस्ततो हीनेन कालेनायुर्बन्धस्यासम्भवात्, यत उक्तं प्राक् व्युत्क्रान्तिपदे "जीवा णं भंते ! ठिइनामनिहत्ताउयं कइहिं आगरिसेहिं पकरेइ ?, गो० ! जह० एक्केणं उक्कोसेणं अट्ठहिं आगरिसेहिं' इति, एकेन चाकर्षेणायुर्निर्वर्त्तयति सर्वजघन्यं, यत आह—'सव्वजहन्निय'मिति, सर्वजघन्यां—सर्वलघ्वीं स्थितिमिति गम्यते, निर्वर्त्तयति बध्नातीति भावः, किंविशिष्टामित्याह—'पर्याप्तापर्याप्तिकां' शरीरेन्द्रियपर्याप्तिनिर्वर्त्तनोच्छ्वासपर्याप्त्यनिर्वर्त्तनसमर्थां, कथमेतत् अवसेयं यत्सर्वजघन्यामपि स्थितिं निर्वर्त्तयति जीवः शरीरेन्द्रियपर्याप्तिनिर्वर्त्तनसमर्थो न ततो हीनतरां इति चेत्, उच्यते, युक्तिवशात्, तथाहि—इह सर्व एव देहिनः परभवायुर्बद्ध्वा म्रियन्ते नान्यथा, परभवायुषश्च बन्ध औदारिके वैक्रिये आहारके वा योगे वर्त्तमानस्य न कार्मणे औदारिकादिमिश्रे वा, तथा चाह मूलटीकाकारः—"जेणोरालियाईणं तिण्हं सरीराणं कायजोगे वट्टमाणो आउयबंधगो, न कम्मए ओरालियाइमिस्से वा" इति, औदारिकादिकाययोगश्च विशिष्टो भवति शरीरेन्द्रियपर्याप्त्या, न केवलं शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तस्य, तत एतत्सिद्धं—शरीरपर्याप्त्या इन्द्रियपर्याप्त्या च पर्याप्तस्य मरणं नान्यथेति, सर्वजघन्यामपि स्थितिं निर्वर्त्तयति शरीरेन्द्रियपर्याप्तिनिर्वर्त्तनसमर्थो न ततोऽपि हीनतरामिति, 'एस णं गोयमे'त्याद्युपसंहारवाक्यम् । तदेवमुक्तो जघन्यस्थितिबन्धकः, सम्प्रत्युत्कृष्टस्थितिबन्धके पृच्छति—

उक्कोसकालट्ठितीयं णं भंते ! णाणावरणिज्जं किं नेरइओ बंधति तिरिक्खजोणिओ बंधइ तिरिक्खजोणिणी बंधइ मणुस्सो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बंधइ मणुस्सिणी बंधइ देवो बंधइ देवी बंधइ ?, गो० ! नेरइओवि बंधइ जाव देवीवि बंधइ, केरिसए णं भंते ! नेरइए उक्कोसकालठिइयं णाणावरणिज्जं कम्मं बंधइ ?, गो०! सण्णी पंचिंदिए सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्ते सागारे जागरे सुत्तो(तो)वउत्ते मिच्छादिट्ठी कण्हलेसे य उक्कोससंकिलिट्ठपरिणामे ईसिमज्झिमपरिणामे वा, एरिसए णं गो०! नेरइए उक्कोसकालट्ठितिबं णाणावरणिज्जं कम्मं बंधति, केरिसए णं भंते ! तिरिक्खजोणिए उक्कोसकालठितीयं णाणावरणिज्जं कम्मं बंधति ?, गो० ! कम्मभूमए वा कम्मभूमगपलिभागी वा सण्णी पंचेंदिए सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तए सेसं तं चेव जहा नेरइयस्स, एवं तिरिक्खजोणिणीवि मणूसेवि मणूसीवि, देवदेवी जहा नेरइए, एवं आउयवज्जाणं सत्तण्हं कम्माणं । उक्कोसकाल-ठितीयं णं भंते ! आउयं कम्मं किं नेरइओ बंधति जाव देवी बं०?, गो०! नो नेरइओ बंधइ, तिरिक्खजोणिओ बंधति, नो तिरिक्खजोणिणी बंधति, मणुस्सेवि बंधति मणुस्सीवि बंधति, नो देवो बंधइ नो देवी बंधइ, केरिसए णं भंते ! तिरिक्खजोणिते उक्कोसठितीयं आउयं कम्मं बंधति ?, गो० ! कम्मभूमए वा कम्मभूमगपलिभागी वा सण्णी पंचिंदिए सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तए सागारे जागरे सुत्तोवउत्ते मिच्छद्दिट्ठी परमकण्हलेसे उक्कोससंकिलिट्ठपरिणामे, एरिसए णं गो० ! तिरिक्खजोणिते उक्कोसकालट्ठितीयं आउयं कम्मं बंधति, केरिसए णं भंते ! मणूसे उक्कोसकालट्ठितीयं आउयं कम्मं बंध-ति ?, गो०! कम्मभूमए वा कम्मभूमगपलिभागी वा जाव सुत्तो(तो)वउत्ते सम्मद्दिट्ठी वा मिच्छद्दिट्ठी वा कण्हलेसे वा सुक्कले-से वा णाणी वा अण्णाणी वा उ० संकिलिट्ठपरिणामे वा असंकिलिट्ठपरिणामे वा तप्पाउग्गविसुज्झमाणपरिणामे वा एरिसए णं गो० ! मणूसे उक्कोसकालट्ठितीयं आउयं कम्मं बंधति, केरिसया णं भंते ! मणुसी उक्कोसकालट्ठितीयं आउयं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

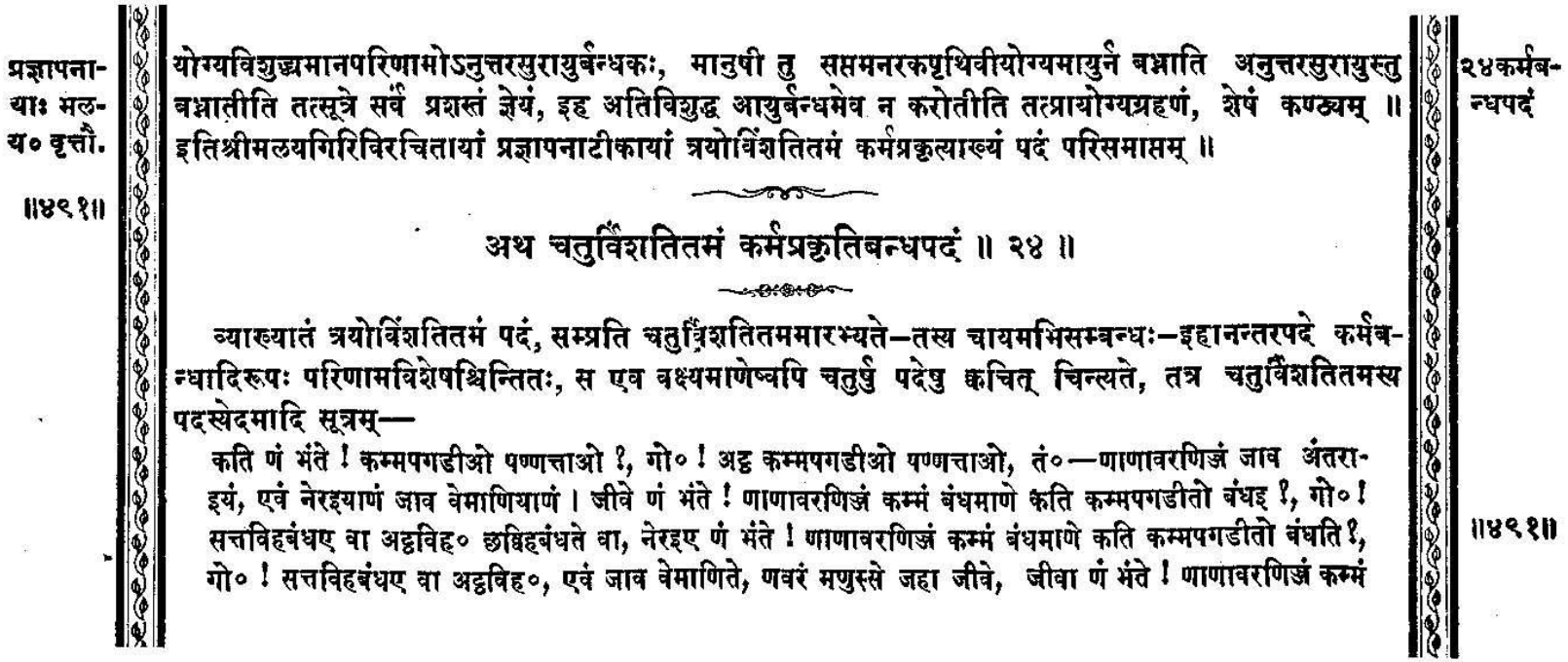
कम्मं बंधइ ?, गो० ! कम्मभूमिया वा कम्मभूमगपलिभागी वा जाव सुत्तोवउत्ता सम्मद्दिट्ठी सुक्कलेसा तप्पाउग्गविसुज्झ-माणपरिणामा, एरिसिया णं गोतमा ! मणूसी उक्कोसकालट्ठिइयं आउयं कम्मं बंधति, अंतराइयं जहा णाणावरणिज्जं (सूत्रं २९८) ॥ पण्णवणाए तेवीसमं पयं समत्तं ॥ २३ ॥

'उक्कोसकालठिइयं णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं किं नेरइओ बंधइ' इत्यादि, सुगमं, नैरयिकसूत्रे 'सागार' इति साकारोपयुक्तः, 'जागरे' इति जाग्रत् नारकाणामपि कियानपि निद्रानुभवोऽस्ति तत उक्तम्–'जाग्र'दिति 'सुत्तो(तो) वउत्ते' इति श्रुतोपयुक्तः साभिलापज्ञानोपयुक्त इति भावः । तिर्यग्योनिकसूत्रे 'कम्मभूमगपलिभागी च' कर्मभूमगाः–कर्मभूमिजातास्तेषां प्रतिभागः–सादृश्यं तदस्यास्तीति कर्मभूमगप्रतिभागी कर्मभूमगसदृश इत्यर्थः, कोऽसाविति चेत्, उच्यते, या कर्मभूमिजा तिर्यक्स्त्री गर्भिणी सती केनाप्यपहृत्याकर्मभूमौ मुक्ता तस्या जातः कर्मभूमगसदृश इत्यर्थः, अन्ये तु व्याचक्षते—कर्म्मभूमग एव यदा केनाप्यकर्मभूमौ नीतो भवति तदा स कर्मभूमगप्रतिभागी व्यपदिश्यते इति । उत्कृष्टस्थितिकायुर्बन्धचिन्तायां नैरयिकतिर्यग्योनिकस्त्रीदेवदेवीनां प्रतिषेधः, तासामुत्कृष्टस्थिति-षु नरकादिषूत्पत्त्यभावात्, मनुष्यसूत्रे 'सम्मद्दिट्ठी वा मिच्छादिट्ठी वा' इति, इह द्वे उत्कृष्टे आयुषी, तद्यथा—सप्त-मनरकपृथिव्यायुर्बध्नाति तदा मिथ्यादृष्टिः, यदा पुनरनुत्तरसुरायुस्तदा सम्यग्दृष्टिः, 'कण्हलेसे वा' नारकायुर्बन्धकः 'सुक्कलेसे वा' इति अनुत्तरसुरायुर्बन्धकः सम्यग्दृष्टिरप्रमत्तयतिः, उत्कृष्टसङ्क्लिष्टपरिणामो नारकायुर्बन्धकस्तत्प्रा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२९८]

दीप अनुक्रम [५४५]



प्रज्ञापना-याः मल-य० वृत्तौ. ॥४९१॥

योग्यविशुद्ध्यमानपरिणामोऽनुत्तरसुरायुर्बन्धकः, मानुषी तु सप्तमनरकपृथिवीयोग्यमायुर्न बध्नाति अनुत्तरसुरायुस्तु बध्नातीति तत्सूत्रे सर्वं प्रशस्तं ज्ञेयं, इह अतिविशुद्ध आयुर्बन्धमेव न करोतीति तत्प्रायोग्यग्रहणं, शेषं कण्ठ्यम् ॥ इतिश्रीमलयगिरिविरचितायां प्रज्ञापनाटीकायां त्रयोविंशतितमं कर्मप्रकृत्याख्यं पदं परिसमाप्तम् ॥

अथ चतुर्विंशतितमं कर्मप्रकृतिबन्धपदं ॥ २४ ॥

व्याख्यातं त्रयोविंशतितमं पदं, सम्प्रति चतुर्विंशतितममारभ्यते—तस्य चायमभिसम्बन्धः—इहानन्तरपदे कर्मबन्धादिरूपः परिणामविशेषश्चिन्तितः, स एव वक्ष्यमाणेष्वपि चतुर्षु पदेषु क्वचित् चिन्त्यते, तत्र चतुर्विंशतितमस्य पदस्येदमादि सूत्रम्—

कति णं भंते ! कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ ?, गो० ! अट्ठ कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ, तं०—णाणावरणिज्जं जाव अंतराइयं, एवं नेरइयाणं जाव वेमाणियाणं । जीवे णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं बंधमाणे कति कम्मपगडीतो बंधइ ?, गो० ! सत्तविहबंधए वा अट्ठविह० छव्विहबंधते वा, नेरइए णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं बंधमाणे कति कम्मपगडीतो बंधति ?, गो० ! सत्तविहबंधए वा अट्ठविह०, एवं जाव वेमाणिते, णवरं मणुस्से जहा जीवे, जीवा णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं

२४कर्मबन्धपदं

॥४९१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र पद (२३) “कर्मप्रकृति” परिसमाप्तम्

अथ पद (२४) “कर्मप्रकृतिबन्ध” आरब्धम्

प्रत सूत्रांक [२९९]

दीप अनुक्रम [५४६]



बंधमाणा कति कम्मपगडीओ बंधंति ?, गो० ! सव्वेवि ताव होज्ज सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य छव्विहबंधगे य अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य छव्विहबंधगा य, णेरइया णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं बंधमाणा कति कम्मपगडीतो बंधंति ? गो० ! सव्वेवि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगे य, अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य तिण्णि भंगा, एवं जाव थणियकुमारा, पुढविकाइया णं पुच्छा, गो० ! सत्तविहबंधगावि अट्ठविहबंधगावि एवं जाव वणप्फइकाइया, विगलाणं पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं तियभंगो सव्वेवि ताव होज्ज सत्तविहबंधगा अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगे य अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य, मणूसा णं भंते ! णाणावरणिज्जस्स पुच्छा, गो० ! सव्वेवि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा १ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगे य २ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य ३ अहवा सत्तविहबंधगा य छव्विहबंधए य ४ अहवा सत्तविहबंधगा य छव्विहबंधगा य ५ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगे य छव्विहबंधगे य ६ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगे य छव्विहबंधगा य ७ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य छव्विहबंधगे य ८ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य छव्विहबंधगा य ९ एवं एते नव भंगा, सेसा वाणमंतरादिया जाव वेमाणिता जहा नेरइया सत्तविहादिबंधगा भाणिता तहा भाणितव्वा, एवं जहा णाणावरणं बंधमाणा जहिं भणिता दंसणावरणंपि बंधमाणा तहिं जीवादीया एगत्तपोहुत्तेहिं भाणितव्वा, वेयणिज्जं बंधमाणे जीवे कति० ?, गो० ! सत्तविहबंधए वा अट्ठविहबंधए वा छव्विहबंधए वा एगविहबंधए वा, एवं मणूसेवि, सेसा नारगादीया सत्तवि[६]० अट्ठविहबंधगा जाव वेमाणिते, जीवा णं



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

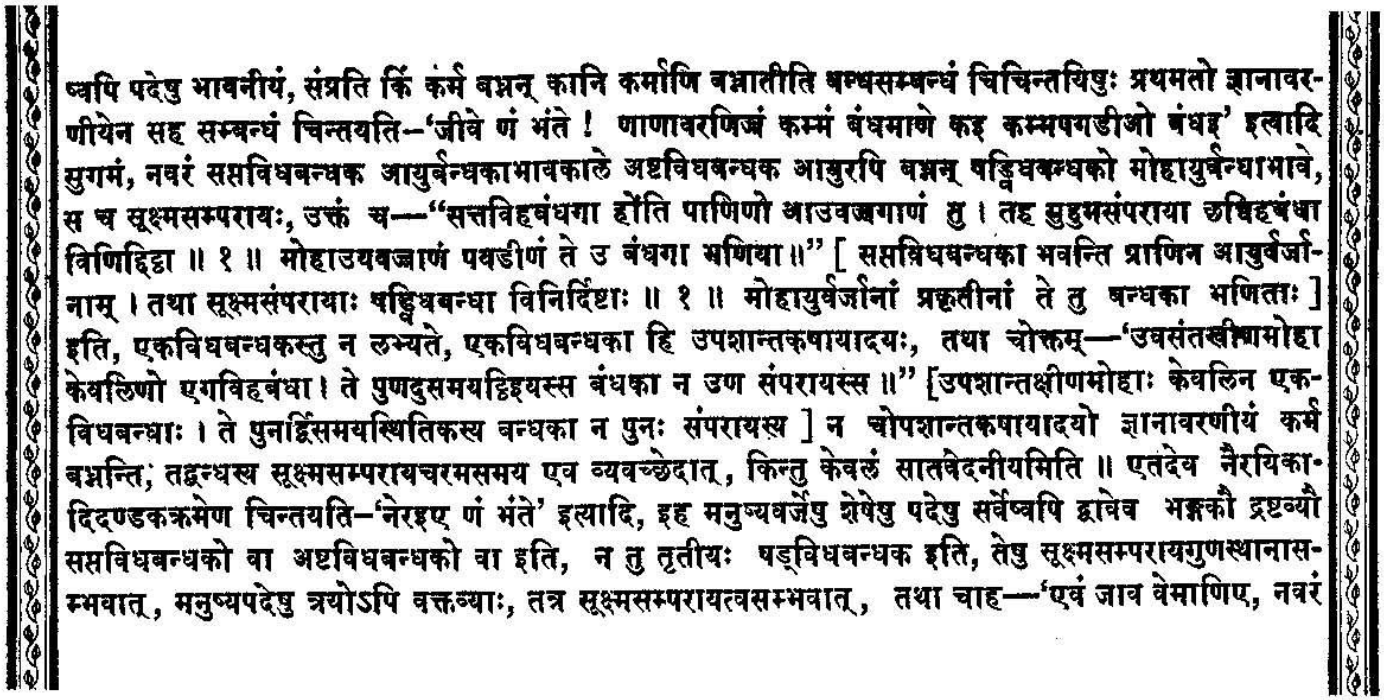
भंते ! वेदणिज्जं कम्मं पुच्छा, गो० ! सव्वेवि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य एगविहबंधगा य छव्विहबंधए य अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य एगविहबंधगा य छव्विहबंधगा य अवसेसा, नारगादीया जाव वेमाणिता जहिं णाणावरणं बंधंति तहिं भाणितव्वा, एवं मणूसा णं भंते ! वेदणिज्जं कम्मं बंधमाणा कति कम्मपगडीतो बंधंति ?, गो० ! सव्वेवि ताव होज्ज सत्तविहबंधगा य एगवि० १ अहवा सत्तविहबंधगा य एगवि० अट्ठविहबंधगे य २ अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अट्ठवि० ३ अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य छव्विहबंधगे य ४ अहवा सत्तविहबंधगा य एगविह० छव्विह० ५ अहवा सत्तविहबंधगा य एगवि० अट्ठविहबंधते य छव्विहबंधते य ६ अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविहबंधते य छव्विहबंधगा य ७ अहवा सत्तविहबंधगा य एगवि० गा य अट्ठविहबं० छव्विहबंधगे य ८ अहवा सत्तविहबंधगा य एगवि० अट्ठवि० छव्विहबं० ९ एवं एए नव भंगा भाणियव्वा, मोहणिज्जं बंधमाणे जीवे कति० ?, गो० ! जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो, जीवेगिंदिया सत्तविहबंधगावि अट्ठविहबंधगावि, जीवे णं भंते ! आउयं कम्मं बंधमाणे कति कम्म० ?, गो० ! नियमा अट्ठ, एवं नेरइए जाव वेमाणिए एवं पुहुत्तेणवि, णामगोयअंतराइयं बंधमाणे जीवे कति० ?, गो० ! जीवा णाणावरणिज्जं बंधमाणे जाहिं बंधंति ताहिं भाणितव्वो, एवं नेरइएवि, जाव वेमाणिए, एवं पुहुत्तेणवि भाणियव्वं ॥ (सूत्रं २९९) पण्णवणाए भगवईए चउवीसतिमं पयं समत्तं ॥

'कइ णं भंते! कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ' इत्यादि, प्रागुपन्यस्तस्वालापकस्नेहोपन्यासो विशेषाभिधानार्थः, एकमुत्तरे-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२९९]

दीप अनुक्रम [५४६]

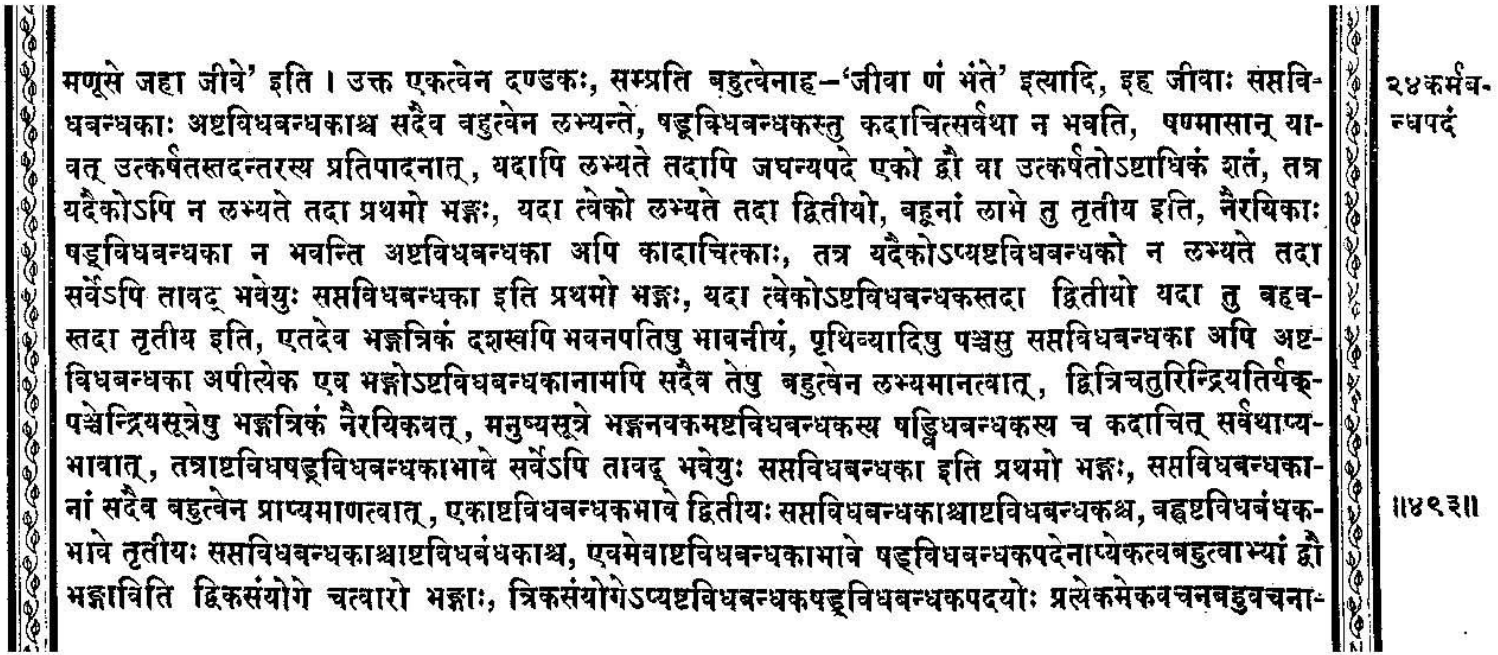


ष्वपि पदेषु भावनीयं, संप्रति किं कर्म बध्नन् कानि कर्माणि वध्नातीति बन्धसम्बन्धं चिचिन्तयिषुः प्रथमतो ज्ञानावरणीयेन सह सम्बन्धं चिन्तयति–'जीवे णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं बंधमाणे कइ कम्मपगडीओ बंधइ' इत्यादि सुगमं, नवरं सप्तविधबन्धक आयुर्बन्धकाभावकाले अष्टविधबन्धक आयुरपि बध्नन् षड्विधबन्धको मोहायुर्बन्धाभावे, स च सूक्ष्मसम्परायः, उक्तं च—"सत्तविहबंधगा होंति पाणिणो आउवज्जगाणं तु । तह सुहुमसंपराया छविहबंधा विणिद्दिट्ठा ॥ १ ॥ मोहाउयवज्जाणं पयडीणं ते उ बंधगा भणिया ॥" [सप्तविधबन्धका भवन्ति प्राणिन आयुर्वर्जानाम् । तथा सूक्ष्मसंपरायाः षड्विधबन्धा विनिर्दिष्टाः ॥ १ ॥ मोहायुर्वर्जानां प्रकृतीनां ते तु बन्धका भणिताः] इति, एकविधबन्धकस्तु न लभ्यते, एकविधबन्धका हि उपशान्तकषायादयः, तथा चोक्तम्—'उवसंतखीणमोहा केवलिणो एगविहबंधा । ते पुणदुसमयट्ठिइयस्स बंधका न उण संपरायस्स ॥" [उपशान्तक्षीणमोहाः केवलिन एकविधबन्धाः । ते पुनर्द्विसमयस्थितिकस्य बन्धका न पुनः संपरायस्य] न चोपशान्तकषायादयो ज्ञानावरणीयं कर्म बध्नन्ति; तद्बन्धस्य सूक्ष्मसम्परायचरमसमय एव व्यवच्छेदात्, किन्तु केवलं सातवेदनीयमिति ॥ एतदेव नैरयिकादिदण्डकक्रमेण चिन्तयति–'नेरइए णं भंते' इत्यादि, इह मनुष्यवर्जेषु शेषेषु पदेषु सर्वेष्वपि द्वावेव भङ्गकौ द्रष्टव्यौ सप्तविधबन्धको वा अष्टविधबन्धको वा इति, न तु तृतीयः षड्विधबन्धक इति, तेषु सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानासम्भवात्, मनुष्यपदेषु त्रयोऽपि वक्तव्याः, तत्र सूक्ष्मसम्परायत्वसम्भवात्, तथा चाह—'एवं जाव वेमाणिए, नवरं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२९९]

दीप अनुक्रम [५४६]



प्रज्ञापना-वाः मल-य० वृत्तौ. ॥४९३॥

मणूसे जहा जीवे' इति । उक्त एकत्वेन दण्डकः, सम्प्रति बहुत्वेनाह–'जीवा णं भंते' इत्यादि, इह जीवाः सप्तविधबन्धकाः अष्टविधबन्धकाश्च सदैव बहुत्वेन लभ्यन्ते, षड्विधबन्धकस्तु कदाचित्सर्वथा न भवति, षण्मासान् यावत् उत्कर्षतस्तदन्तरस्य प्रतिपादनात्, यदापि लभ्यते तदापि जघन्यपदे एको द्वौ वा उत्कर्षतोऽष्टाधिकं शतं, तत्र यदैकोऽपि न लभ्यते तदा प्रथमो भङ्गः, यदा त्वेको लभ्यते तदा द्वितीयो, बहूनां लाभे तु तृतीय इति, नैरयिकाः षड्विधबन्धका न भवन्ति अष्टविधबन्धका अपि कादाचित्काः, तत्र यदैकोऽप्यष्टविधबन्धको न लभ्यते तदा सर्वेऽपि तावद् भवेयुः सप्तविधबन्धका इति प्रथमो भङ्गः, यदा त्वेकोऽष्टविधबन्धकस्तदा द्वितीयो यदा तु बहवस्तदा तृतीय इति, एतदेव भङ्गत्रिकं दशस्वपि भवनपतिषु भावनीयं, पृथिव्यादिषु पञ्चसु सप्तविधबन्धका अपि अष्टविधबन्धका अपीत्येक एव भङ्गोऽष्टविधबन्धकानामपि सदैव तेषु बहुत्वेन लभ्यमानत्वात्, द्वित्रिचतुरिन्द्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियसूत्रेषु भङ्गत्रिकं नैरयिकवत्, मनुष्यसूत्रे भङ्गनवकमष्टविधबन्धकस्य षड्विधबन्धकस्य च कदाचित् सर्वथाप्यभावात्, तत्राष्टविधषड्विधबन्धकाभावे सर्वेऽपि तावद् भवेयुः सप्तविधबन्धका इति प्रथमो भङ्गः, सप्तविधबन्धकानां सदैव बहुत्वेन प्राप्यमाणत्वात्, एकाष्टविधबन्धकभावे द्वितीयः सप्तविधबन्धकाश्चाष्टविधबन्धकश्च, बह्वष्टविधबंधकभावे तृतीयः सप्तविधबन्धकाश्चाष्टविधबंधकाश्च, एवमेवाष्टविधबन्धकाभावे षड्विधबन्धकपदेनाप्येकत्वबहुत्वाभ्यां द्वौ भङ्गाविति द्विकसंयोगे चत्वारो भङ्गाः, त्रिकसंयोगेऽप्यष्टविधबन्धकषड्विधबन्धकपदयोः प्रत्येकमेकवचनबहुवचना-

२४कर्मबन्धपदं

॥४९३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२९९]

दीप अनुक्रम [५४६]

भ्यां चत्वार इति सर्वसङ्ख्यया नव, व्यन्तरज्योतिष्कवैमानिका नैरयिकवत्, यथा ज्ञानावरणीयं चिन्तितं तथा दर्शनावरणीयमपि चिन्तयितव्यं, वेदनीयचिन्तायां एकविधबन्धक एव इति उपशान्तमोहादि, शेषं प्राग्वत्, मनुष्यपदविषयचिन्तायामपि त एव प्रागुक्ता नव भङ्गाः, सप्तविधबन्धकानामेकविधबन्धकानां च सदैव बहुत्वेनावस्थितत्वात् भङ्गान्तरासम्भवात्, मोहचिन्तायां जीवपदे पृथिव्यादिषु पदेषु च प्रत्येकं एक एव भङ्गः–सप्तविधबन्धका अपि अष्टविधबन्धका अपीति, उभयेषामपि सदैव बहुत्वेन लभ्यमानत्वात्, षड्विधबन्धकस्तु मोहनीयबन्धको न भवति, मोहनीयबन्धो ह्यनिवृत्तिबादरसम्परायगुणस्थानकं यावत्, षड्विधबन्धकस्तु सूक्ष्मसंपराय इति, आयुर्बन्धकस्तु नियमादष्टविधबन्धक इति तच्चिन्तायामेकवचने बहुवचने च सर्वत्राभङ्गकं, नामगोत्रान्तरायसूत्राणि ज्ञानावरणीयसूत्रवत् ॥ इति श्रीमलयगिरिविर० कर्मबन्धाख्यं चतुर्विंशतितमं पदं समाप्तम् ॥ २४ ॥

अथ पञ्चविंशतितमं कर्मवेदाख्यं पदं ॥ २५ ॥

सम्प्रति पञ्चविंशतितममारभ्यते, तत्र चेदमादिसूत्रम्—

कति णं भंते ! कम्मपगडीओ पं० ?, गो० ! अट्ठ कम्मपगडीतो पण्णत्ताओ तं०—णाणावरणिज्जं जाव अंतराइयं, एवं नेरइयाणं जाव वेमाणियाणं, जीवे णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं बंधमाणे कति कम्मपगडीतो वेदेति ?, गो० ! निय-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र पद (२४) "कर्मप्रकृतिबन्ध" परिसमाप्तम्

अथ पद (२५) "कर्मवेद" आरब्धम्

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१५],उपांगसूत्र-[४] "प्रज्ञापना" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३००]

दीप अनुक्रम [५४७]

मा अट्ठ कम्मपगडीतो वेदेति, एवं नेरइए जाव वेमाणिए, एवं पुहुत्तेणवि, एवं वेदणिज्जवज्जं जाव अंतराइयं । जीवे णं भंते ! वेदणिज्जं कम्मं बंधमाणे कति कम्मपगडीतो वेदेति ?, गो० ! सत्तविहवेदए वा अट्ठविहवेदए वा चउव्विहवेदए वा, एवं मणूसेवि, सेसा नेरइयाति एगत्तेण पुहुत्तेणवि नियमा अट्ठ कम्मपगडीओ वेदंति जाव वेमाणिया, जीवा णं भंते ! वेदणिज्जं कम्मं बंधमाणा कति कम्मपगडीतो वेदेंति ?, गो० ! सव्वेवि ताव होज्जा अट्ठविहवेदगा य चउव्विहवेदगा य ? अहवा अट्ठविहवेदगा य चउव्विह० सत्तविहवेदगे य २ अहवा अट्ठविहवेदगा य चउव्वि० सत्तवि० ३, एवं मणूसावि भाणियव्वा ॥ (सूत्रं ३००) पण्णवणाए भगवईए कम्मवेदणामं पणवीसतिमं पयं समत्तं ॥ २५ ॥

'कइ णं भंते कम्मपगडीओ' इत्यादि गतार्थं, सम्प्रति किं कर्म बध्नन् कति कर्मप्रकृतीर्वेदयते इति चिन्तयति-'जीवे णं भंते !' इत्यादि सुगमं, वेदनीयसूत्रे 'सत्तविहवेयए वा अट्ठविहवेयए(या) वा चउव्विहवेयए(या) वा' इति, सप्तविधवेदक उपशान्तमोहः क्षीणमोहो वा, तयोर्मोहनीयोदयाभावात्, अष्टविधवेदका मिथ्यादृष्ट्यादयः सूक्ष्मसम्परायान्ताः, तेषामवश्यमष्टानामपि कर्मणामुदयभावात्, चतुर्विधवेदकः सयोगिकेवली, तस्य घातिकर्मचतुष्टयोदयाभावात्, बहुवचने सप्तविधवेदकाः कादाचित्का इति भङ्गत्रयम् ॥ इति श्रीमलयगिरिविरचितायां० पञ्चविंशतितमं कर्मवेदाख्यं पदं समाप्तम् ॥ २५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र पद (२५) "कर्मवेद" परिसमाप्तम्

प्रत सूत्रांक [३०१]

दीप अनुक्रम [५४८]

अथ षड्विंशतितमं कर्मवेदबन्धाख्यं पदं ॥ २६ ॥

अधुना षड्विंशतितममारभ्ये, तत्र चेदमादिसूत्रम्—

कति णं भंते ! कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ, गो० ! अट्ठ कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ, तं०—णाणा० जाव अंतराइयं, एवं नेरइयाणं जाव वेमाणियाणं, जीवे णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं वेदेमाणे कति कम्मपगडीओ बंधति ?, गो० ! सत्तविहबंधए वा अट्ठविहबंधए वा छव्विहबंधए वा एगविहबंधए वा, नेरइए णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं वेदेमाणे कति कम्म० बंधति ?, गो० ! सत्तविहबंधए वा अट्ठवि०, एवं जाव वेमाणिते, एवं मणूसे जहा जीवे, जीवा णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं वेदेमाणा कति० ! कम्मपगडीतो बंधंति ?, गो० ! सवेवि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा य अट्ठविह० १ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य छव्विहबंधगे य २ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य छव्विहबंधगा य ३ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य एगविहबंधए य ४ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य एगविहबंधगा य ५ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठवि० छव्विहबंधए य एगविहबंधए य ६ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठवि० छव्विहबंधए य एगविहबंधगा य ७ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठवि० छव्विह० एगविहबंधए य ८, अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठ०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ पद (२६) "कर्मवेदबन्ध" आरब्धम्

छविह० एगविह० ९, एवं एते नव भंगा, अवसेसाणं एगिंदियमणूसवज्जाणं तियभंगो जाव वेमाणियाणं, एगिंदियाण सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबं०, मणूसाणं पुच्छा, गो० ! सव्वेवि ताव होज्ज सत्तविहबंधगा १ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगे य २ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य ३ अहवा सत्तविहबंधगा य छविहबंधए य४, एवं छविहबंधएणवि समं दो भंगा, एगविहबंधएणवि समं दो भंगा, अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधए य छविहबंधए य चउभंगो १ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधए य एगविहबंधगे य चउभंगो २, अहवा सत्तविहबंधगा य छविहबंधए य एगविहबंधए य चउभंगो ३ अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधए य छविहबंधए य एगविहबंधए य भंगा अट्ठ, एवं एते सत्तावीसं भंगा, एवं जहा णाणावरणिज्जं तहा दंसणावरणिज्जंपि अंतराइयंपि, जीवे णं भंते ! वेदणिज्जं कम्मं वेदेमाणे कति कम्मपगडीतो बंधति ?, गो० ! सत्तविहबंधते वा अट्ठविहबंधते वा छविहबंधए वा एगविहबंधए वा अबंधए वा, एवं मणूसेवि, अवसेसा णारयादीया सत्तविहबं० अट्ठविहबं० एवं जाव वेमाणिता । जीवा णं भंते ! वेदणिज्जं कम्मं वेदेमाणा कति० बंधंति ?, गो० ! सव्वेवि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य एगविहबंधगा य अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठवि० एगवि० छविहबंधगे य, अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंध० एगविहबंध० छविहबंधगा य, अबंधगेणवि समं दो भंगा भाणितव्वा, अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंध० एगविहबंध० छविहबंधगे य अबंधगे य चउभंगो, एवं एए नव भंगा, एगिंदियाणं अभंगतं, नारगादीणं तियभंगा जाव वेमाणियाणं, नवरं मणूसाणं पुच्छा, सव्वेवि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा एगविहबंधगा य अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य छविहबंधते य अट्ठविहबं-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धते य अबंधते य, एवं एते सत्तावीसं भंगा भाणितव्वा, एवं जहा वेदणिज्जं तहा आउयं नामं गोयं च भाणितव्वं, मोहणिज्जं वेदेमाणे जहा णाणावरणिज्जं तहा भाणियव्वं ॥ (सूत्रं ३०१) पण्ण० छव्वीसतिमं पयं समत्तम् ॥ २६ ॥

'कति णं भंते ! इत्यादि गतार्थं, सम्प्रति किं कर्म वेदयमानः काः कर्मप्रकृतीर्बध्नातीत्युद्देशेन सह बन्धस्य सम्बन्धं चिचिन्तयिषुरिदमाह—'जीवे णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं वेएमाणे कइ कम्मपगडीओ बंधइ' इत्यादि सुगमं, नवरं ज्ञानावरणीयं कर्म वेदयमान एकविधबन्धकः उपशान्तमोहः क्षीणमोहो वा न तु सयोगिकेवली, तस्य ज्ञानावरणीयोदयाभावात्, बहुवचनचिन्तायां षड्विधबन्धकाः सूक्ष्मसम्पराया एकविधबन्धका उपशान्तमोहक्षीणमोहाः कादाचित्का एकत्वादिना च भाज्या इत्युभयेषामप्यभावे सप्तविधबन्धका अपि अष्टविधबन्धका अपीत्येको भङ्गो, द्वयानामपि सदैव बहुत्वेन लभ्यमानत्वात्, ततः षड्विधबन्धकपदप्रक्षेपे एकवचनबहुवचनाभ्यां द्वौ भङ्गौ, एवमेव द्वौ भङ्गावेकविधबन्धकप्रक्षेपेऽपि, उभयोरपि युगपत् प्रक्षेपे पूर्ववच्चत्वार इति सर्वसङ्कलया नव, नैरयिकादिषु तु पदेष्वेकेन्द्रियमनुष्यवर्जेषु बहुवचनचिन्तायां भङ्गत्रिकं, अष्टविधबन्धकानां कादाचित्कतया एकत्वादिना भाज्यतया च लभ्यमानत्वात्, एकेन्द्रियेष्वभङ्गकं, सप्तविधबन्धका अष्टविधबन्धका अपीति, उभयेषामपि सदा बहुत्वेन प्राप्यमाणत्वात्, मनुष्येषु तु सप्तविंशतिर्भङ्गाः, अष्टविधबन्धकषड्विधबन्धकएकविधबंधकानां कादाचित्कतया एकत्वादिना भाज्यमानतया लभ्यमानत्वात्, तत्रामीषामभावे सप्तविधबन्धका इत्येको भङ्गः, ततोऽष्टविधबन्धकपदप्र-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्षेपे एकवचनबहुवचनाभ्यां द्वौ द्वौ, षड्विधबन्धकप्रक्षेपे द्वौ, एकविधबन्धकप्रक्षेपे सति सप्त, ततोऽष्टविधबन्धक-षड्विधबन्धकपदप्रक्षेपे चत्वारः, अष्टविधबन्धकैकविधबन्धकपदप्रक्षेपे चत्वारः, षड्विधबन्धकएकविधबन्धकपदप्रक्षेपेऽपि चत्वारः, एकोनविंशतिः, ततोऽष्टविधबन्धकषड्विधबन्धकैकविधबन्धकपदानां युगपत् प्रक्षेपेऽष्टाविति सप्तविंशतिः, वेदनीयसूत्रे एकविधबन्धकः सयोगिकेवल्यपि, तस्यापि वेदनीयोदयबन्धसम्भवात्, अबन्धकोऽयोगिकेवली, तस्य योगाभावतो वेदनीयं वेदयमानस्यापि तद्बन्धासम्भवाद्, वेदनीयसूत्रे एकवचनबहुवचनचिन्तायां जीवपदे नव भङ्गाः, तत्र सप्तविधबन्धकाष्टविधबन्धकैकविधबन्धकानां सदैव बहुत्वेन लभ्यमानत्वात् बहुवचनात्मके इतरपदद्वयाभावे एकः, ततः षड्विधबन्धकपदप्रक्षेपे एकवचनबहुवचनाभ्यां द्वौ एवमेव द्वावेकविधबन्धकपदप्रक्षेपे चत्वार उभयपदप्रक्षेपे इति । मनुष्यपदे सप्तविंशतिः, तत्र हि सप्तविधबन्धका एकविधबन्धका एकेन बहुत्वेन सदावस्थिता इतरे तु त्रयोऽप्यष्टविधबन्धकाः षड्विधबन्धकाः अबन्धकाश्च कादाचित्का एकत्वादिना च भाज्याः, ततस्तेषामभावे सप्तविधबन्धका अप्येकविधबन्धका अपीत्येको भङ्गः, ततोऽष्टविधबन्धकपदप्रक्षेपे एकवचनबहुवचनाभ्यां द्वौ द्वौ षड्विधबन्धकपदप्रक्षेपे द्वावेकविधबन्धकपदप्रक्षेपे इति षट्, तथा त्रयाणां पदानां त्रयो द्विकसंयोगा एकैकस्मिन् द्विकसंयोगे एकवचनबहुवचनाभ्यां चत्वार इति द्विकसंयोगे द्वादश त्रिकसंयोगेऽष्टाविति सर्वसङ्ख्यया सप्तविंशतिः, एवमायुर्नामगोत्रसूत्राण्यपि भावनीयानि, मोहवेदनीयं कर्म वेदयमानो जीवः सप्तविधबन्धकोऽष्टविधबन्धकः षड्-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३०१]

दीप अनुक्रम [५४८]

विधबन्धको वा, सूक्ष्मसम्परायावस्थायामपि मोहनीयवेदनसम्भवात्, एवं मनुष्यपदेऽपि वक्तव्यं, नरकादिषु तु पदेषु सप्तविधबन्धकोऽष्टविधबन्धको वेत्येवं वक्तव्यं, सूक्ष्मसम्परायत्वाभावतः षड्विधबन्धकत्वासम्भवात्, बहुवचनचिन्तायां जीवपदे भङ्गत्रिकं, तत्र सूक्ष्मसम्परायाः कादाचित्का इतरे च द्वये सदैव बहुत्वेन लभ्यन्ते इति षड्विधबन्धकपदाभावे सप्तविधबन्धका अपि अष्टविधबन्धका अपीत्येको भङ्गः, ततः षड्विधबन्धकपदप्रक्षेपे एकवचनबहुवचनाभ्यां द्वावेतौ भङ्गाविति, नैरयिकादिषु स्तनितकुमारपर्यवसानेषु सप्तविधबन्धकाः सदा बहुत्वेनावस्थिताः, अष्टविधबन्धकास्तु कादाचित्का एकत्वादिना च भाज्या इति, अष्टविधबन्धकपदाभावे सप्तविधबन्धका इत्येको भङ्गः, ततोऽष्टविधबन्धकपदप्रक्षेपे एकवचनबहुवचनाभ्यां द्वाविति, पृथिव्यादिषु तु पञ्चस्वप्यभङ्गकं सप्तविधबन्धका अपि अष्टविधबन्धका अपीति, उभयेषामपि तेषु सदा बहुत्वेन लभ्यमानत्वात्, द्वित्रिचतुरिन्द्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियेषु व्यन्तरज्योतिष्कवैमानिकेषु च नैरयिकवत् भङ्गत्रिकं, मनुष्येषु नव भङ्गाः, तत्र सप्तविधबन्धका इत्येको भङ्गस्ततोऽष्टविधबन्धकपदप्रक्षेपे एकवचनबहुवचनाभ्यां द्वौ द्वौ षड्विधबंधकपदप्रक्षेपे एकवचनबहुवचनाभ्यां चत्वारः उभयपदप्रक्षेपे इति, तथा चाह—"मोहणिज्जं वेएमाणे जहा [बंधे] णाणावरणिज्जं तहा भाणियव्व'मिति ॥ इति श्रीमलयगिरिविरचितायां० षड्विंशतितमं वेदबन्धाख्यं पदं समाप्तम् ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र पद (२६) "कर्मवेदबन्ध" परिसमाप्तम्

अथ सप्तविंशतितमं कर्मप्रकृतिवेदवेदपदं ॥ २७ ॥

संप्रति सप्तविंशतितममारभ्यते, तत्रेदमादिसूत्रम्—

कति णं भंते ! कम्मपगडीओ पं० ?, गो० ! अट्ठ, तं०—णाणा० जाव अंतराइयं, एवं नेरइयाणं जाव वेमाणियाणं, जीवे णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं वेदेमाणे कति कम्मपगडीतो वेदेति ?, गो० ! सत्तविहवेयए वा अट्ठविहवेयए वा, एवं मणूसेवि, अवसेसा एगत्तेणवि पुहुत्तेणवि णियमा अट्ठ कम्मपगडीतो वेदेंति जाव वेमाणिया, जीवा णं भंते ! णाणावरणिज्जं वेदेमाणा कति कम्मपगडीतो वेदेंति ?, गो० ! सव्वेवि ताव होज्जा अट्ठविहवेदगा, अहवा अट्ठविहवेदगा य सत्तविहवेदगे य अहवा अट्ठविहवेदगा य सत्तवि०, एवं मणूसावि, दरिसणावरणिज्जं अंतराइयं च एवं चेव भाणितव्वं, वेदणिज्जं आउयनामगोत्तातिं वेदेमाणे कति कम्मपगडीओ वेएति ?, गो० ! जहा बंधगवेदगस्स वेयणिज्जं तहा भाणितव्वाणि, जीवे णं भंते ! मोहणिज्जं वेदेमाणे कति कम्मपगडीतो वेदेति ?, गो० ! नियमा अट्ठ कम्मपगडीतो वेदेति, एवं नेरतिए जाव वेमाणिते, एवं पुहुत्तेणवि (सूत्रं ३०२) ॥ पण्णवणाए भगवईए सत्तावीसइमं पयं समत्तं ॥ २७ ॥

'कइ णं भंते!' इत्यादि गतार्थं, सम्प्रति किं कर्म वेदयमानः कति कर्मप्रकृतीर्वेदयते इत्युदयस्योदयेन सह सम्बन्धं चिन्तयति—'जीवे णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं वेएमाणे कइ कम्मपगडीओ वेएइ' इत्यादि, तत्र सप्तविधवे-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ पद (२७) "कर्मप्रकृतिवेदवेद" आरब्धम्

दक उपशान्तमोहः क्षीणमोहो वा, तयोर्मोहनीयोदयासम्भवात्, शेषस्तु सूक्ष्मसंपरायादिरष्टविधवेदकः, एवं मनुष्यपदेऽपि वाच्यं, नैरयिकादयस्तु नियमादष्टविधवेदकाः, बहुवचनचिन्तायां जीवपदे मनुष्यपदे च भङ्गत्रिकं, तत्र सर्वेऽपि तावद् भवेयुः अष्टविधवेदका इत्येको भङ्गः, ततः सप्तविधवेदकस्यैकस्य भावे द्वितीयो बहूनां भावे तृतीयः, शेषेषु तु नैरयिकादिषु पदेषु अभङ्गमष्टविधवेदका इति, सप्तविधवेदकत्वस्य तत्रासम्भवात्, एवं दर्शनावरणीयान्तरायसूत्रेऽपि वक्तव्यं, वेदनीयसूत्रे जीवपदे मनुष्यपदे च प्रत्येकमष्टविधवेदको वा सप्तविधवेदको वा चतुर्विधवेदको वेति वक्तव्यं, शेषेषु तु नैरयिकादिषु अष्टविधवेदक इत्येकः, तेषामुपशान्तमोहत्वाद्यवस्थासम्भवात्, तत्रैव वेदनीयसूत्रे बहुवचनचिन्तायां जीवपदे मनुष्यपदे च प्रत्येकं भङ्गत्रिकं, तत्राष्टविधवेदकाश्चेत्येको भङ्गः, एष सर्वथा सप्तविधवेदकानामभावे, ततः सप्तविधवेदकपदप्रक्षेपे एकवचनबहुवचनाभ्यां द्वौ भङ्गाविति, शेषेषु तु नैरयिकादिषु स्थानेष्वभङ्गकं अष्टविधवेदका इति, एवमायुर्नामगोत्रसूत्राण्यपि भावनीयानि, मोहनीयं कर्म वेदयमानो नियमादष्टविधवेदक इति, जीवादिषु पञ्चविंशतौ पदेष्वेकवचनचिन्तायां बहुवचनचिन्तायां च सर्वत्रापि अभङ्गकं–अष्टौ कर्मप्रकृतीर्वेदयते वेदयन्ते वा ॥ इति श्रीमलयगिरिविरचितायां प्र० वेदवेदाख्यं सप्तविंशतितमं पदं समाप्तम् ॥२७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र पद (२७) "कर्मप्रकृतिवेदवेद" परिसमाप्तम्

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१५],उपांगसूत्र-[४] "प्रज्ञापना" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [३०३--३०४] + गाथा: दीप अनुक्रम [५५०--५५३]

अथ अष्टविंशतितमं आहारपदं ॥ २८ ॥

तदेवमुक्तं वेदवेदाख्यं सप्तविंशतितमं पदं, सम्प्रत्यष्टाविंशतितममारभ्यते, तस्य चायमभिसम्बन्धः–इहानन्तरपदे नारकादिगतिसमापन्नानां कर्मवेदनापरिणाम उक्तः, इह त्वाहारपरिणाम इति, तत्र चेमे सङ्ग्रहणिगाथे—

सचित्ता १ हारट्ठी २ केवति ३ किं वावि ४ सव्वतो चेव ५। कतिभागं ६ सव्वे ७ खलु परिणामे ८ चेव बोद्धव्वे ॥ १ ॥ एगिंदियसरीरादी लोमाहारो तहेव मणभक्खी। एतेसिं तु पदाणं विभावणा होंति कातव्वा ॥ २ ॥ नेरइया णं भंते ! किं ! सचित्ताहारा अचित्ताहारा मीसाहारा ?, गो० ! नो सचित्ताहारा अचित्ताहारा नो मीसाहारा, एवं असुरकुमारा जाव वेमाणिया, ओरालियसरीरा जाव मणूसा सचित्ताहारावि अचित्ताहारावि मीसाहारावि। नेरइया णं भंते ! आहारट्ठी ?, हन्ता आहारट्ठी, नेरइयाणं भंते ! केवतिकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जति ?, गो० ! नेरइयाणं दुविधे आहारे पण्णत्ते, तं०–आभोगनिव्वत्तिते य अणाभोगनिव्वत्तिते य, तत्थ णं जे से अणाभोगनिव्वत्तिते से णं अणुसमयमविरहिते आहारट्ठे समुप्पज्जति, तत्थ णं जे से आभोगनिव्वत्तिते से णं असंखिज्जसमतिए अंतोमुहुत्तिते आहारट्ठे समुप्पज्जति, नेरइया णं भंते ! किमाहारमाहारेंति ?, गो० ! दव्वतो अणंतपदेसियातिं खेत्तओ असंखेज्जपदेसोगाढातिं कालतो अण्णयरट्ठितियातिं भावओ वण्णमंतातिं गंधमंताइं रसमंताइं फासमंताइं, जाइं भावतो वण्णमंताइं आहारेंति ताइं किं एगवण्णातिं आहारेंति जाव किं पंचवण्णाइं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ पद (२८) "आहार" आरब्धम्

अथ (२८) आहार-पदे उद्देशक: (१) आरब्ध:

आहारेंति ?, गो० ! ठाणमग्गणं पडुच्च एगवण्णाइंपि आहारेंति जाव पंचवण्णाइंपि आहारेंति, विहाणमग्गणं पडुच्च कालवण्णाइंपि आहारेंति जाव सुक्किल्लाइंपि आहारेंति, जातिं वण्णतो कालवणातिं आहारेंति ताइं किं एगगुणकालाइं आहारेंति जाव दसगुणकालाइं आ० संखिज्ज० असंखिज्जगुणकालाइं आ० जाव अणंतगुणकालाइं आ० ?, गो० ! एगगुणकालाइंपि आ० जाव अणंतगुणकालाइंपि आ० एवं जाव सुक्किल्लाइं, एवं गंधतोवि रसतोवि, जाइं भावओ फासमंताइं ताइं नो एगफासाइं आ० नो दुफासाइं आ० नो तिफासाइं आहारेंति चउफासाइं आहारेंति, जाव अट्ठफासाइंपि आ०, विभागमग्गणं पडुच्च कक्खडाइंपि आ० जाव लुक्खाइं, जातिं फासतो कक्खडातिं आ० ताइं किं एगगुणकक्खडाइं आ० जाव अणंतगुणकक्खडाइं आ० ?, गो० ! एगगुणकक्खडाइंपि आ० जाव अणंतगुणकक्खडाइंपि आ०, एवं अट्ठवि फासा भाणितव्वा, जाव अणंतगुणलुक्खाइंपि आ०, जातिं भंते ! अणंतगुणलुक्खाइं आ० ताइं किं पुट्ठाइं आ० अपुट्ठाइं आ० ?, गो० ! पुट्ठाइं आ० नो अपुट्ठाइं आ०, जहा भासुद्देसए जाव णियमा छद्दिसिं आ०, ओसण्णं कारणं पडुच्च वण्णओ कालनीलातिं गंधओ दुब्भिगंधातिं रसओ तित्तरसकडुयाइं फासओ कक्खडगुरुयसीयलुक्खाइं तेसिं पोराणे वण्णगुणे गंधगुणे रसगुणे फासगुणे विपरिणामइत्ता परिपीलइत्ता परिसाडइत्ता परिविद्धंसइत्ता अण्णे अपुव्वे वण्णगुणे गंधगुणे रसगुणे फासगुणे उप्पाइत्ता आयसरीरखेत्तोगाढे पोग्गले सव्वप्पणयाए आहारं आहारेंति । नेरइया णं भंते ! सव्वओ आहारेंति सव्वओ परिणामंति सव्वओ ऊससंति सव्वओ नीससंति अभिक्खणं आहारेंति अभिक्खणं परिणामंति अभिक्खणं ऊससंति अभिक्खणं नीससंति आहच्च आहारेंति आहच्च परिणामेंति आहच्च ऊससंति आहच्च नीससंति ?, हंता ! गो० ! णेरइया सव-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३०३--३०४] + गाथा: दीप अनुक्रम [५५०--५५३]

तो आहारेंति एवं तं चेव जाव आहच्च नी०। नेरइया णं भंते ! पोग्गले आहारत्ताते गिण्हंति ते णं तेसिं पोग्गलाणं सेयालंसि कतिभागं आहारेंति कतिभागं आसाएंति ?, गो० ! असंखेज्जतिभागं आ० अणंतभागं अस्साएंति, नेरइया णं भंते ! जे पोग्गले आहारत्ताते गिण्हंति ते किं सव्वे आहारेंति नो सव्वे आहारेंति ?, गो० ! ते सव्वे अपरिसेसए आहारेंति। नेरइया णं भंते ! जे पोग्गला आहारत्ताए गिण्हंति ते णं तेसिं पोग्गला कीसत्ताए भुज्जो २ परिणामेंति ?, गो० ! सोतिंदियत्ताते जाव फासिंदियत्ताते अणिट्ठत्ताते अकंतत्ताए अप्पिट्ठत्ताए अमणुण्णत्ताए अमणामत्ताते अणिच्छियत्ताते अभिज्झित्ताए अहत्ताते नो उड्ढत्ताए दुक्खत्ताते नो सुहत्ताते एतेसिं भुज्जो २ परिणमंति (सूत्रं ३०३) असुरकुमारा णं भंते! आहारट्ठी !, हंता ! आहारट्ठी, एवं जहा नेरइयाणं तहा असुरकुमाराणवि भाणितव्वं, जाव तेसिं भुज्जो २ परिणमंति, तत्थ णं जे से आभोगनिव्वत्तिते से णं जहण्णेणं चउत्थभत्तस्स उक्कोसेणं सातिरेगवाससहस्सस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ, ओसण्णं कारणं पडुच्च वण्णतो हालिद्दसुक्किल्लातिं गंधतो सुब्भिगंधातिं रसतो अंबिलमहुरातिं फासओ मउयलहुयनिद्धुण्हातिं, तेसिं पोराणे वण्णगुणे जाव फासिंदियत्ताते जाव मणामत्ताते इच्छियत्ताते भिज्झियत्ताते उड्ढत्ताते नो अहत्ताए सुहत्ताए नो दुहत्ताए एतेसिं भुज्जो २ परिणमंति, सेसं जहा नेरइयाणं, एवं जाव थणियकुमाराणं, णवरं आभोगनिव्वत्तिते उक्कोसेणं दिवसपुहुत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जति (सूत्रं ३०४)

'सचित्ताहारट्ठी' इत्यादि प्रथमोऽधिकारः सचित्तपदोपलक्षितः, स चैवम्—'नेरइया णं भंते! किं सचित्ताहारा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१५],उपांगसूत्र-[४] "प्रज्ञापना" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [३०३--३०४] + गाथा: दीप अनुक्रम [५५०--५५३]

अचित्ताहारा इत्यादि १, द्वितीय आहारार्थिन इति २, तृतीयः 'केवइय'त्ति कियता कालेन आहारार्थः समुत्पद्यते इत्यादिरूपः ३, चतुर्थः किमाहारमाहारयन्तीतिपदोपलक्षितः ४ पञ्चमः सर्वत इतिपदोपलक्षितः, स चैवम्—'नेरइया णं सव्वतो परिणामंती'त्यादि ५ चेवशब्दः समुच्चये, 'कइभागं'ति गृहीतानां पुद्गलानां कतिभागमाहारयन्तीत्येवमादिः षष्ठोऽधिकारः६, 'तथा सव्वे' इति यान् पुद्गलान् आहारतया गृह्णन्ति तान् किं सर्वान्–अपरिशेषान् आहारयन्ति उतासर्वान् इत्येवमुपलक्षितः सप्तमोऽधिकारः ७, तथाऽष्टमोऽधिकारः परिणामः–परिणामरूपो बोद्धव्यः, स चैवम्—'नेरइया णं भंते ! जे पोग्गले आहारत्ताए गेण्हंति ते णं तेसिं पुग्गला कीसत्ताए भुज्जो २ परिणामंती'त्यादिरूपः ८, नवमोऽर्थाधिकारः एकेन्द्रियादीनि शरीराणि, स चैवम्—'नेरइया णं भंते ! किं एगिंदियसरीराइं आहारेंति जाव पंचिंदियसरीराइं आहारेंति ?' ९, दशमोऽधिकारो लोमाहारो–लोमाहारवक्तव्यतारूपः १०, एकादशो मनोभक्षितवक्तव्यतारूपः ११, 'एएसिं तु' इत्यादि, एतेषां–सामान्यतोऽनन्तरमुद्दिष्टानां पदानां–अर्थाधिकाराणां विभावना–विस्तरतः प्रकाशना नाम भवति कर्त्तव्यता, सूत्रकारवचनमेतत् । प्रतिज्ञातमेव निर्वाहयितुकामो 'यथोद्देशं निर्देश' इति न्यायात् प्रथमाधिकारं विभावयति—'नेरइया णं भंते !' इत्यादि, नैरयिका भदन्त ! किं सचित्ताहाराः—सचित्तमाहारयन्तीति सचित्ताहाराः, एवमचित्ताहारा मिश्राहारा इत्यपि भावनीयं, भगवानाह—'गोतमे'त्यादि, इह वैक्रियशरीरिणो वैक्रियशरीरपरिपोषयोग्यान् पुद्गलानाहारयन्ति, ते चाचित्ता एव सम्भवन्ति न

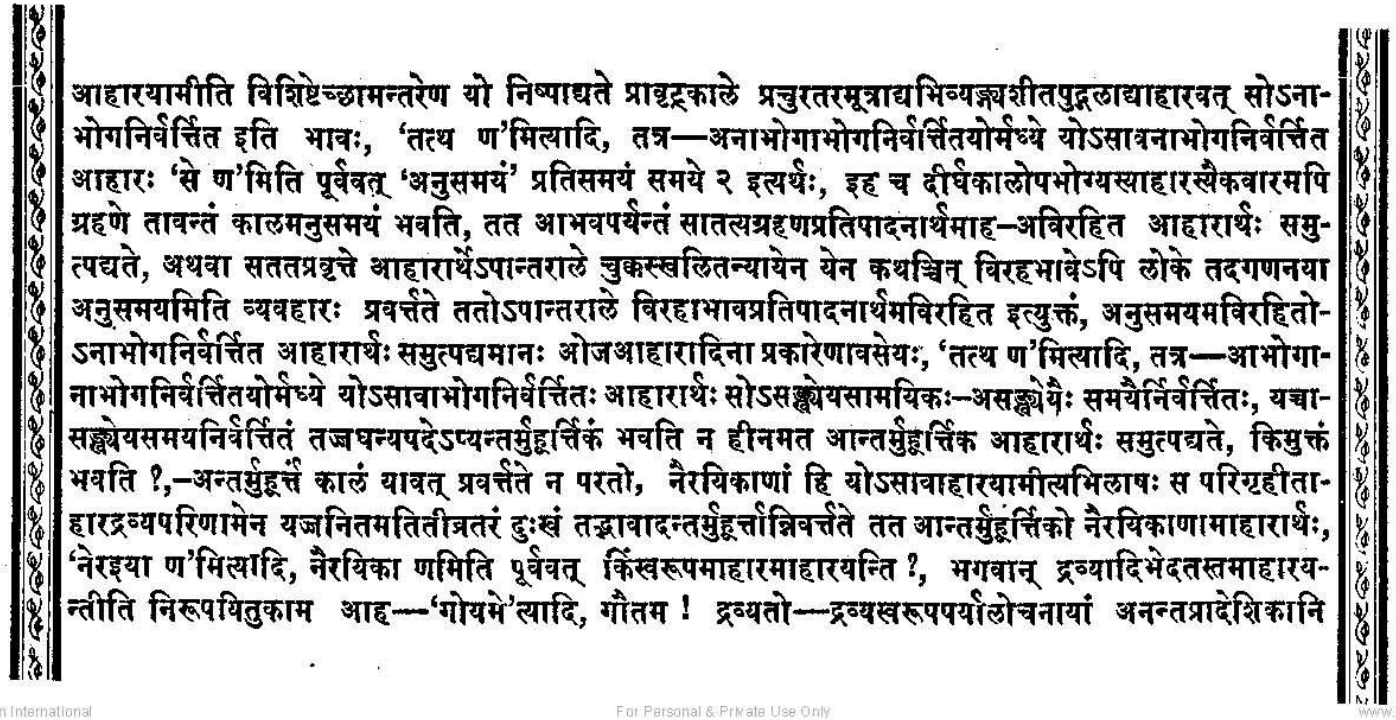
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१५],उपांगसूत्र-[४] "प्रज्ञापना" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [३०३--३०४] + गाथा: दीप अनुक्रम [५५०--५५३]

जीवपरिगृहीता इत्यचित्ताहारा न सचित्ताहारा नापि मिश्राहाराः, एवमसुरकुमारादयः स्तनितकुमारपर्यवसाना भवनपतयो व्यन्तरा ज्योतिष्का वैमानिकाश्च वेदितव्याः, औदारिकशरीरिणः पुनरौदारिकशरीरपरिपोषयोग्यान् पुद्गलानाहारयन्ति, ते च पृथिवीकायिकादिपरिणामपरिणता इति सचित्ताहारा अचित्ताहारा मिश्राहाराश्च घटन्ते, तथा चाह—'ओरालियसरीरा जाव मणूसा' इत्यादि, औदारिकशरीरिणः पृथिवीकायिकेभ्य आरभ्य यावन्मनुष्याः, किमुक्तं भवति ?—पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिरूपा एकेन्द्रिया द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रिया मनुष्याश्च एते प्रत्येकं सचित्ताहारा अप्यचित्ताहारा अपि मिश्राहारा अपि वक्तव्याः । उक्तः प्रथमाधिकारः, सम्प्रति द्वितीयादीनष्टमपर्यन्तान् सप्ताधिकारान् चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण युगपदभिधित्सुः प्रथमतो नैरयिकाणामभिदधाति—'नेरइया ण'मित्यादि, नैरयिका णमिति वाक्यालङ्कारे, भदन्त ! आहारार्थिनः, काकाऽभिधानतः प्रश्नार्थत्वावगतिः, भगवानाह—'हंते'त्यादि, हन्तेत्यनुमतौ अनुमतमेतत्, गौतम ! आहारार्थिनो नैरयिका इति, यदि आहारार्थिनस्ततो भदन्त ! नैरयिका णमिति पूर्ववत् 'केवइकालस्स'त्ति प्राकृतत्वात् तृतीयार्थे षष्ठी, कियता कालेन आहारार्थः—आहारलक्षणं प्रयोजनं आहाराभिलाष इतियावत् समुत्पद्यते ?, भगवानाह—'गौतम !' इत्यादि, नैरयिकाणां द्विविधो—द्विप्रकारः आहारः, तद्यथा—आभोगनिर्वर्त्तितोऽनाभोगनिर्वर्त्तितश्च, तत्र आभोगनमाभोगः—आलोचनमभिसन्धिरित्यर्थः आभोगेन निर्वर्त्तितः—उत्पादित आभोगनिर्वर्त्तित आहारयामीतीच्छापूर्वं निर्मापित इतियावत्, तद्विपरीतोऽनाभोगनिर्वर्त्तितः,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



आहारयामीति विशिष्टेच्छामन्तरेण यो निष्पाद्यते प्रावृट्काले प्रचुरतरमूत्राद्यभिव्यङ्ग्यशीतपुद्गलाद्याहारवत् सोऽनाभोगनिर्वर्त्तित इति भावः, 'तत्थ ण'मित्यादि, तत्र—अनाभोगाभोगनिर्वर्त्तितयोर्मध्ये योऽसावनाभोगनिर्वर्त्तित आहारः 'से ण'मिति पूर्ववत् 'अनुसमयं' प्रतिसमयं समये २ इत्यर्थः, इह च दीर्घकालोपभोग्यस्याहारस्यैकवारमपि ग्रहणे तावन्तं कालमनुसमयं भवति, तत आभवपर्यन्तं सातत्यग्रहणप्रतिपादनार्थमाह–अविरहित आहारार्थः समुत्पद्यते, अथवा सततप्रवृत्ते आहारार्थेऽपान्तराले चुकस्खलितन्यायेन येन कथञ्चिन् विरहभावेऽपि लोके तदगणनया अनुसमयमिति व्यवहारः प्रवर्त्तते ततोऽपान्तराले विरहाभावप्रतिपादनार्थमविरहित इत्युक्तं, अनुसमयमविरहितोऽनाभोगनिर्वर्त्तित आहारार्थः समुत्पद्यमानः ओजआहारादिना प्रकारेणावसेयः, 'तत्थ ण'मित्यादि, तत्र—आभोगानाभोगनिर्वर्त्तितयोर्मध्ये योऽसावाभोगनिर्वर्त्तितः आहारार्थः सोऽसङ्ख्येयसामयिकः–असङ्ख्येयैः समयैर्निर्वर्त्तितः, यचासङ्ख्येयसमयनिर्वर्त्तितं तज्जघन्यपदेऽप्यन्तर्मुहूर्त्तिकं भवति न हीनमत आन्तर्मुहूर्त्तिक आहारार्थः समुत्पद्यते, किमुक्तं भवति ?,–अन्तर्मुहूर्त्तं कालं यावत् प्रवर्त्तते न परतो, नैरयिकाणां हि योऽसावाहारयामीत्यभिलाषः स परिगृहीताहारद्रव्यपरिणामेन यज्जनितमतितीव्रतरं दुःखं तद्भावादन्तर्मुहूर्त्तान्निवर्त्तते तत आन्तर्मुहूर्त्तिको नैरयिकाणामाहारार्थः, 'नेरइया ण'मित्यादि, नैरयिका णमिति पूर्ववत् किंस्वरूपमाहारमाहारयन्ति ?, भगवान् द्रव्यादिभेदतस्तमाहारयन्तीति निरूपयितुकाम आह—'गोयमे'त्यादि, गौतम ! द्रव्यतो—द्रव्यस्वरूपपर्यालोचनायां अनन्तप्रादेशिकानि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्याणि, अन्यथा ग्रहणासम्भवात्, न हि सङ्ख्यातप्रदेशात्मका असङ्ख्यातप्रदेशात्मका वा स्कन्धा जीवस्य ग्रहणयोग्या भवन्ति, क्षेत्रतोऽसङ्ख्येयप्रदेशावगाढानि कालतोऽन्यतरस्थितिकानि, जघन्यस्थितिकानि मध्यमस्थितिकानि उत्कृष्टस्थितिकानि चेति भावार्थः, स्थितिरिति चाहारयोग्यस्कन्धपरिणामत्वेनावस्थानमवसेयं, भावतो वर्णवन्ति गंधवन्ति रसवन्ति स्पर्शवन्ति च, प्रतिपरमाण्वेकैकवर्णगन्धरसस्पर्शभावात्, 'जाइं भावतो वण्णमंताइं' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—'गो० ! ठाणमग्गणं पडुच्चे'त्यादि, तिष्ठन्ति विशेषा अस्मिन्निति स्थानं—सामान्यमेकवर्णं द्विवर्णं त्रिवर्णमित्यादिरूपं तस्य मार्गणं—अन्वेषणं तत्प्रतीत्य सामान्यचिन्तामाश्रित्येति भावार्थः, एकवर्णान्यपि द्विवर्णादीन्यपि इत्यादि सुगमं, नवरं तेषामनन्तप्रादेशिकानां स्कन्धानामेकवर्णत्वं द्विवर्णत्वमित्यादि व्यवहारनयमतापेक्षया, निश्चयनयमतापेक्षया त्वनन्तप्रादेशिकस्कन्धोऽणीयानपि पञ्चवर्ण एव प्रतिपत्तव्यः, 'विहाणमग्गणं पडुच्चे'त्यादि, विविक्तम्—इतरव्यवच्छिन्नं धानं—पोषणं स्वरूपस्य यत् तद्विधानं—विशेषः कृष्णो नील इत्यादिप्रतिनियतो वर्णादिविशेष इतियावत् तस्य मार्गणं प्रतीत्य तानि कालवर्णान्यपि आहारयन्तीत्यादि सुगमं, नवरमेतदपि व्यवहारतः प्रतिपत्तव्यं, निश्चयतः पुनरवश्यं तानि पञ्चवर्णान्येव, 'जाइं वण्णओ कालवण्णाइंपी'त्यादि सुगमं, यावद् 'अनन्तगुणसुकिल्लाइंपि आहारेंति' एवं गंधरसस्पर्शविषयाण्यपि सूत्राणि भावनीयानि, 'जाइं भंते ! अणंतगुणलुक्खाइं' इत्यादि, यानि भदन्त ! अनन्तगुणरूक्षाणि, उपलक्षणमेतत् एकगुणकालादीन्यपि आहारयन्तीति, तानि च भदन्त !

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३०३--३०४] + गाथा: दीप अनुक्रम [५५०--५५३]

किं स्पृष्टानि–आत्मप्रदेशविषयाण्याहारयन्ति उतास्पृष्टानि ?, भगवानाह—स्पृष्टानि नो अस्पृष्टानि 'जहा भासुद्देसए वा जाव नियमा छद्दिसिं'ति अत ऊर्ध्वं यथा भाषोद्देशके प्राक् सूत्रमभिहितं तथात्रापि द्रष्टव्यं, तत्र तावत् यावत् 'नियमा छद्दिसिं'ति पदं, तच्चैवम् 'जाइं पुट्ठाइं' आहा० 'ताइं भंते! किं ओगाढाइं आहा० अणोगाढाइं आहारेंति ?, गो० ! ओगाढाइं आहारेंति णो अणोगाढाइं आहारेंति, जाइं भंते ! ओगाढाइं आहारेंति ताइं किं अणंतरोगाढाइं आ० परंपरोगाढाइं आहारेंति ?, गो० ! अणंतरोगाढाइं आ० नो परंपरोगाढाइं आ०, जाइं भंते! अणंतरोगाढाइं आ० ताइं भंते! किं अणूइं आहारेंति बादराइं आ० ?, गो० ! अणूइंपि आ० बादराइंपि आहा०, जाइं भंते! अणूइंपि आहारेंति बादराइंपि आ० ताइं किं उड्ढं आ० अहे आहा० तिरियं आहारेंति ?, गो०! उड्ढंपि आ० अहेवि आ० तिरियंपि आहारेंति, जाइं भंते! उड्ढंपि आ० अहेवि आहा० तिरियंपि आहारेंति ताइं किं आदिं आ० मज्झे आ० पज्जवसाणे आ० ?, गो० ! आदिंपि आहारेंति मज्झेवि आ० पज्जवसाणेवि आहारेंति जाइं भंते! आइंपि आहारेंति मज्झेवि आहारेंति पज्जवसाणेवि आहारेंति ताइं भंते ! किं सविसए आहारेंति अविसए आ० ?, गो० सविसए आ० नो अविसए आ० जाइं भंते! सविसए आ० ताइं किं आणुपुवीए आहारेन्ति अणाणुपुवीए आ० ?, गो० ! आणुपुवीए आ० नो अणाणुपुवीए आ० जाइं भंते ! आणुपुविं आ० ताइं किं तिदिसिं आहारेंति चउदिसिं आहा० पंचदिसिं आहारेंति छद्दिसिं आहारेंति ?, गो० ! नियमा छद्दिसिं आ०,' अस्य व्याख्या–इहात्मप्रदेशैः संस्पर्शनमात्मप्रदेशावगाढक्षेत्राद्बहिरपि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३०३--३०४] + गाथा: दीप अनुक्रम [५५०--५५३]

सम्भवति ततः प्रश्नयति—'जाइं भंते' इत्यादि, यानि भदन्त ! स्पृष्टान्याहारयन्ति तानि किं अवगाढानि–आत्मप्रदेशैः सह एकक्षेत्रावस्थायीनि उत अनवगाढानि—आत्मप्रदेशावगाहक्षेत्राद्बहिरवस्थितानि ?, भगवानाह—गौतम ! अवगाढान्याहारयन्ति नानवगाढानि, यानि भदन्तावगाढान्याहारयन्ति तानि भदन्त ! किमनन्तरावगाढानि, किमुक्तं भवति ?—येष्वात्मप्रदेशेषु यान्यव्यवधानेनावगाढानि तैरात्मप्रदेशैस्तान्येवाहारयन्ति उत परम्परावगाढानि—एकद्वित्रयाद्यात्मप्रदेशव्यवहितानि ?, भगवानाह–गौतम ! अनन्तरावगाढानि आहारयन्ति नो परम्परावगाढानि, यानि भदन्तानन्तरावगाढान्याहारयन्ति तानि किमणूनि–स्तोकान्याहारयन्ति उत बादराणि—प्रभूतप्रदेशोपचितानि ?, भगवानाह–गौतम ! अणून्यप्याहारयन्ति बादराण्यप्याहारयन्ति, इहाणुत्वबादरत्वे तेषामेवाहारयोग्यानां स्कन्धानां प्रदेशस्तोकत्वबाहुल्यापेक्षया वेदितव्ये इति, यानि भदन्त ! अणून्यप्याहारयन्ति तानि भदन्त ! किमूर्ध्वं—ऊर्ध्वप्रदेशस्थितान्याहारयन्ति अधस्तिर्यग्वा, इह ऊर्ध्वाधस्तिर्यक्त्वं यावति क्षेत्रे नैरयिकोऽवगाढः तावत्येव क्षेत्रे तदपेक्षया परिभावनीयं, भगवानाह—गौतम ! ऊर्ध्वमप्याहारयन्ति—ऊर्ध्वप्रदेशावगाढान्यप्याहारयन्ति एवमधोऽपि तिर्यगपि, यानि भदन्त ! ऊर्ध्वमप्याहारयन्ति अधोऽप्याहारयन्ति तिर्यगप्याहारयन्ति तानि किमादावाहारयन्ति मध्ये आहारयन्ति पर्यवसाने आहारयन्ति, अयमत्राभिप्रायः–नैरयिका हि अनन्तप्रदेशिकानि द्रव्याण्यन्तर्मुहूर्त्ते कालं यावत् उपभोगोचितानि गृह्णन्ति, ततः संशयः किमुपभोगोचितस्य कालस्यान्तर्मुहूर्त्तप्रमाणस्यादौ–प्रथमसमये

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३०३--३०४] + गाथा: दीप अनुक्रम [५५०--५५३]

आहारयन्ति उत मध्ये—मध्येषु समयेषु आहोश्चित्पर्यवसाने—पर्यवसानसमये?, भगवानाह—गौतम ! आदावपि मध्येऽपि पर्यवसानेऽप्याहारयन्ति, किमुक्तं भवति?—उपभोगोचितस्य कालस्यान्तर्मुहूर्त्तप्रमाणस्यादिमध्यावसानेषु समयेष्वाहारयन्तीति, यानि भदन्त! आदावपि मध्येऽपि पर्यवसानेऽप्याहारयन्ति तानि भदन्त! किं स्वविषयाणि—स्वोचिताहारयोग्यानि आहारयन्ति उत अविषयाणि—स्वोचिताहारायोग्यान्याहारयन्ति?, भगवानाह—गौतम ! स्वविषयाण्याहारयन्ति नो अविषयाण्याहारयन्ति, यानि भदन्त! स्वविषयाण्याहारयन्ति तानि भदन्त! किमानुपूर्व्या आहारयन्ति अनानुपूर्व्या?, आनुपूर्वीनाम यथासन्नं तद्विपरीता अनानुपूर्वी, भगवानाह—गौतम ! आनुपूर्व्या, सूत्रे द्वितीया तृतीयार्थे वेदितव्या प्राकृतत्वात्, यथा आचाराङ्गे 'अगणिं च पुट्ठा' इत्यत्र, आहारयन्ति नो अनानुपूर्व्या, ऊर्ध्वमधस्तिर्यग्वा यथासन्नं नातिक्रम्याहारयन्तीति भावः, यानि भदन्त! आनुपूर्व्या आहारयन्ति तानि किं 'तिदिसिं'ति तिस्रो दिशः समाहतास्त्रिदिक् तस्मिन् व्यवस्थितान्याहारयन्ति चतुर्दिशि पञ्चदिशि षड्दिशि वा, इह लोकनिष्कुटपर्यन्ते जघन्यपदे त्रिदिग्व्यवस्थितमेव प्राप्यते न द्विदिग्व्यवस्थितमेकदिग्व्यवस्थितं वा अतस्त्रिदिश आरभ्य प्रश्नः कृतः, भगवानाह—गौतम ! नियमात् षड्दिशि व्यवस्थितान्याहारयन्ति, नैरयिका हि त्रसनाड्या मध्ये व्यवस्थिताः, तत्र चावश्यं षड्दिक्संभव इति, 'ओसण्णकारणं पडुचे'त्यादि, ओसन्नशब्दो बाहुल्यवाची, यथा 'ओसन्नं देवा सायावेयणं वेदयन्ती'त्यत्र, ओसन्नकारणं—बाहुल्यकारणं प्रतीत्य, किं तद्बाहुल्यकारणमिति चेत्,

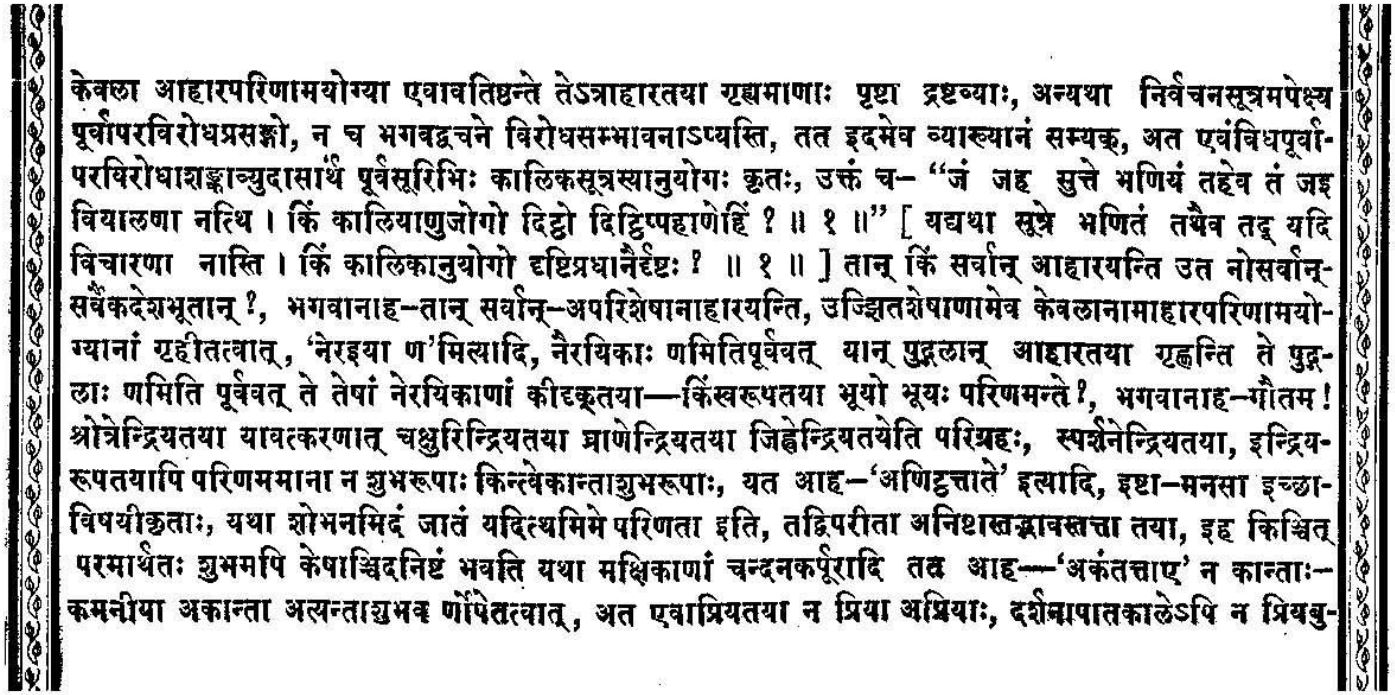
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१५],उपांगसूत्र-[४] "प्रज्ञापना" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३०३--३०४] + गाथा: दीप अनुक्रम [५५०--५५३]

उच्यते, अशुभानुभाव एव, तथापि प्रायो मिथ्यादृष्टयः कृष्णादीन्याहारयन्ति न तु भविष्यत्तीर्थकरादयः तत ओसन्नेत्युक्तं, वर्णतः कालनीलानि गन्धतो दुरभिगन्धानि, रसतस्तिक्तकटुकानि स्पर्शतः कर्कशगुरुशीतरूक्षाणि इत्यादि, तेषामाहार्यमाणानां पुद्गलानां 'पुराणान्' अग्रेतनान् वर्णगुणान् गन्धगुणान् रसगुणान् स्पर्शगुणान् 'विपरिणामइत्ता परिवीलइत्ता परिसाडइत्ता परिविद्धंसइत्ता' एतानि चत्वार्यपि पदानि एकार्थिकानि विनाशार्थप्रतिपादकानि नानादेशजविनेयानुग्रहार्थमुपात्तानि, विनाश्य किमित्याह—अन्यान् अपूर्वान् वर्णगुणान् गन्धगुणान् रसगुणान् स्पर्शगुणान् उत्पाद्य आत्मशरीरक्षेत्रावगाढान् पुद्गलान् 'सव्वप्पणया' सर्वात्मना सर्वैरेवात्मप्रदेशैराहारमाहाररूपान् आहारयन्ति, 'नेरइया णं भंते !' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, 'नेरइया णं भंते ! जे पोग्गला' इत्यादि, नैरयिका णमितिपूर्ववत्, भदन्त ! यान् पुद्गलान् आहारतया गृह्णन्ति नैरयिकाः तेषां गृहीतानां पुद्गलानां 'सेकालंसि' एष्यत्काले ग्रहणकालोत्तरकालमित्यर्थः 'कइभागं'ति कतिथं भागमाहारयन्ति—आहारतयोपभुञ्जते ?, तथा 'कतिभागं' कतिथं भागमाहार्यमाणपुद्गलानामास्वादं गृह्णन्ति, नहि सर्वे पुद्गला आहार्यमाणा आस्वादमायान्तीति पृथक् प्रश्नः, भगवानाह—गौतम ! असङ्ख्येयं भागमाहारयन्ति, अन्ये तु गवादिप्रथमबृहद्ग्रासग्रहण इव परिशटन्ति, आहार्यमाणानां पुद्गलानामनन्तभागमास्वादयन्ति, शेषास्त्वनास्वादिता एव शरीरपरिणाममापद्यन्ते इति, 'नेरइया णं भंते !' इत्यादि, नैरयिकाः णमिति पूर्ववत् यान् पुद्गलान् आहारतया गृह्णन्ति, इह ग्रहणं विशिष्टमवसेयं, ततो ये उज्झितशेषाः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



केवला आहारपरिणामयोग्या एवावतिष्ठन्ते तेऽत्राहारतया गृह्यमाणाः पृष्टा द्रष्टव्याः, अन्यथा निर्वचनसूत्रमपेक्ष्य पूर्वापरविरोधप्रसङ्गो, न च भगवद्वचने विरोधसम्भावनाऽप्यस्ति, तत इदमेव व्याख्यानं सम्यक्, अत एवंविधपूर्वापरविरोधाशङ्काव्युदासार्थं पूर्वसूरिभिः कालिकसूत्रस्यानुयोगः कृतः, उक्तं च– "जं जह सुत्ते भणियं तहेव तं जइ वियालणा नत्थि । किं कालियाणुजोगो दिट्ठो दिट्ठिप्पहाणेहिं ? ॥ १ ॥" [यद्यथा सूत्रे भणितं तथैव तद् यदि विचारणा नास्ति । किं कालिकानुयोगो दृष्टिप्रधानैर्दृष्टः ? ॥ १ ॥] तान् किं सर्वान् आहारयन्ति उत नोसर्वान्-सर्वैकदेशभूतान् ?, भगवानाह–तान् सर्वान्–अपरिशेषानाहारयन्ति, उज्झितशेषाणामेव केवलानामाहारपरिणामयोग्यानां गृहीतत्वात्, 'नेरइया ण'मित्यादि, नैरयिकाः णमितिपूर्ववत् यान् पुद्गलान् आहारतया गृह्णन्ति ते पुद्गलाः णमिति पूर्ववत् ते तेषां नेरयिकाणां कीदृक्तया—किंस्वरूपतया भूयो भूयः परिणमन्ते ?, भगवानाह–गौतम ! श्रोत्रेन्द्रियतया यावत्करणात् चक्षुरिन्द्रियतया घ्राणेन्द्रियतया जिह्वेन्द्रियतयेति परिग्रहः, स्पर्शनेन्द्रियतया, इन्द्रियरूपतयापि परिणममाना न शुभरूपाः किन्त्वेकान्ताशुभरूपाः, यत आह–'अणिट्ठत्ताते' इत्यादि, इष्टा–मनसा इच्छाविषयीकृताः, यथा शोभनमिदं जातं यदित्थमिमे परिणता इति, तद्विपरीता अनिष्टास्तद्भावस्तत्ता तया, इह किञ्चित् परमार्थतः शुभमपि केषाञ्चिदनिष्टं भवति यथा मक्षिकाणां चन्दनकर्पूरादि तदत आह—'अकंतत्ताए' न कान्ताः–कमनीया अकान्ता अत्यन्ताशुभवर्णोपेतत्वात्, अत एवाप्रियतया न प्रिया अप्रियाः, दर्शनापातकालेऽपि न प्रियबु-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१५],उपांगसूत्र-[४] "प्रज्ञापना" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३०३--३०४] + गाथा: दीप अनुक्रम [५५०--५५३]

द्धिमात्मन्युत्पादयन्तीति भावः, तद्भावोऽप्रियता तया, 'असुभत्ताए' इति न शुभा अशुभा अशुभवर्णगन्धरसस्पर्शात्मकत्वात् तद्भावस्तत्ता तया, 'अमणुन्नत्ताए' इति न मनोज्ञा अमनोज्ञाः, विपाककाले दुःखजनकतया न मनःप्रल्हादहेतव इति भावः, तद्भावस्तत्ता तया, 'अमणामत्ताए' भोज्यतया मनः आमुवन्तीति मनआपाः, प्राकृतत्वाच्च पकारस्य मकारत्वे मणाम इति सूत्रे निर्देशः, न मनआपा अमनआपा, न जातुचिदपि भोज्यतया जन्तूनां मनआपीभवन्तीति भावस्तद्भावस्तत्ता तया, अत एव 'अणिच्छियत्ताए' इति अनीप्सिततया भोज्यतया स्वादितुमीष्टा ईप्सिता न ईप्सिता अनीप्सितास्तद्भावस्तत्ता तया, 'अभिज्झियत्ताए' अभिध्यानमभिध्या, अभिलाष इत्यर्थः, अभिध्या सञ्जाता एषामिति अभिध्यितास्तारकादिदर्शनादितप्रत्ययः तद्भावस्तत्ता तया, किमुक्तं भवति?–ये गृहीता आहारतया पुद्गला न ते तृप्तिहेतवोऽभूवन्निति न पुनरभिलषणीयत्वेन परिणमन्ते, तथा 'अहत्ताए' इति अधस्तया, गुरुपरिणामतयेति भावः, नो ऊर्ध्वतया–लघुपरिणामतया, अत एव दुःखतया गुरुपरिणामपरिणतत्वात्, न सुखतया लघुपरिणामपरिणतत्वाभावात्, ते पुद्गलास्तेषां नैरयिकाणां भूयो भूयः परिणमन्ते। एतान्येव आहारार्थिन इत्यादीनि सप्त द्वाराणि असुरकुमारादिषु भवनपतिषु चिचिन्तयिषुरिदमाह–'जहा नेरइयाण'मित्यादि, यथा नैरयिकाणां तथा असुरकुमाराणामपि भाणितव्यं, यावत् 'तेसिं भुज्जो २ परिणमन्ती'ति पर्यन्तपदं, तत्र नैरयिकसूत्रादस्य सूत्रस्य विशेषमुपदर्शयति–'तत्थ णं जे से' इत्यादि, एवं चोपदर्शितं सूत्रं न मन्दमतीनां यथास्थितं प्रतीतिमागच्छति ततस्तदनुग्रहाय सूत्रमुपदर्श्यते–

॥५०४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१५],उपांगसूत्र-[४] "प्रज्ञापना" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [३०३--३०४] + गाथा: दीप अनुक्रम [५५०--५५३]

'असुरकुमारा णं भंते ! आहारट्ठी ?, हंता आहारट्ठी, असुरकुमारा णं भंते! केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ', अत्र सप्तम्यर्थे षष्ठी, कियति काले अतिक्रान्ते सति भूय आहारार्थः समुत्पद्यते इत्यर्थः, ? 'असुरकुमारा णं दुविहे आहारे पं० तंजहा–आभोगनिवत्तिए अणाभोगनिवत्तिए य, तत्थ णं जे से अणाभोगनिवत्तिए से णं अणुसमयमविरहिए आहारट्ठे समुप्पज्जइ, तत्थ णं जे से आभोगनिवत्तिए से णं जहण्णेणं चउत्थभत्तस्स उक्कोसेणं साइरेगस्स वाससहस्सस्स आहारट्ठे समुपज्जइ' तत्र 'चउत्थभत्तस्सेति' सप्तम्यर्थे षष्ठी, चतुर्थभक्ते आगमिकीयं संज्ञा, एकस्मिन् दिवसेऽतिक्रान्ते इत्यर्थः, भूयो जघन्येनाहारार्थः समुत्पद्यते, एतच्च दशवर्षसहस्रायुषां प्रतिपत्तव्यमुत्कर्षतः सातिरेके–अभ्यधिके वर्षसहस्रेऽतिक्रान्ते, एतच्च सागरोपमायुषामवसेयं, 'असुरकुमाराणं भंते ! किमाहारमाहारयन्ति ?, गो० ! दव्वतोऽणंतप्पएसियाइं खेत्तओ असंखेज्जपएसोगाढाइं कालओ अन्नयरट्ठिइयाइं भावओ वण्णमंताइं गंधमंताइं रसमंताइं फासमंताइं जाव नियमा छद्दिसिं आहारेंति, ओसन्नं कारणं पडुच्च वण्णओ हालिद्दसुक्किलाइं, गंधओ सुरभिगंधाइं, रसओ अंबिलमहुराइं फासओ मउयलहुनिद्धुण्हाइं, तेसिं पोराणे वण्णगुणे गंधगुणे रसगुणे फासगुणे जाव इच्छियत्ताए अभिज्झियत्ताए उद्धत्ताए नो अहत्ताए सुखत्ताए नो दुहत्ताए य तेसिं भुज्जो २ परिणमंति', यथा चासुरकुमाराणां सूत्रमुक्तं तथा नागकुमारादीनामपि स्तनितकुमारपर्यवसानानां वक्तव्यं, नवरमाभोगनिर्वर्त्तिताहारार्थचिन्तायामुत्कर्षाभिधानावसरे 'उक्कोसेणं दिवसपुहुत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ' इति वक्तव्यं, एतच्च पल्योपमासङ्ख्येयभागायुषां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

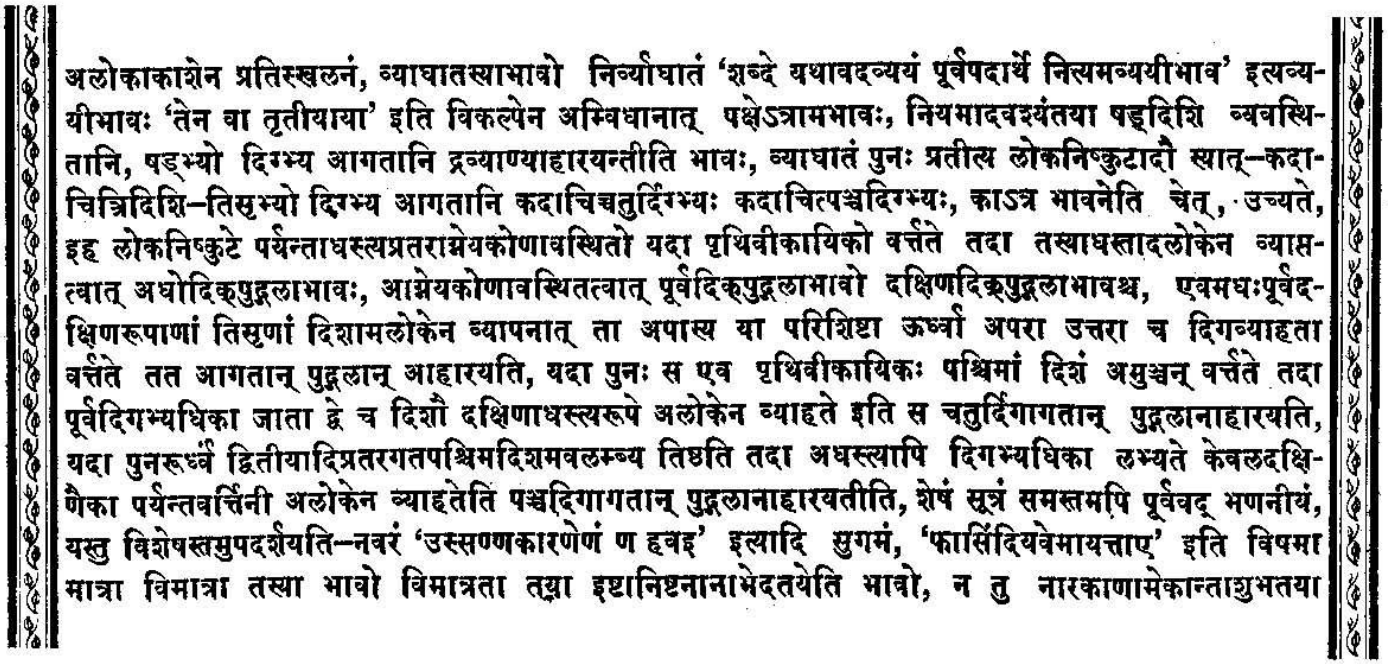
पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१५],उपांगसूत्र-[४] "प्रज्ञापना" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

तदधिकायुषां चावसेयं, शेषं तथैव, तथा चाह,—'एवं जाव थणियकुमाराण'मित्यादि । सम्प्रति पृथिवीकायिकानामेतान् सप्ताधिकारान् चिन्तयितुकाम आह—

पुढविकाइया णं भंते ! आहारट्ठी ?, हंता ! आहारट्ठी, पुढविकाइयाणं भंते ! केवतिकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जति ?, गो० ! अणुसमयमविरहिते आहारट्ठे समुप्पज्जइ, पुढविकाइया णं भंते ! किमाहारमाहारेंति, एवं जहा नेरइयाणं जाव ताइं कतिदिसिं आहारेंति ?, गो० ! निव्वाघातेणं छद्दिसिं वाघायं पडुच्च सिय तिदिसिं सिय चउदिसिं सिय पंचदिसिं, नवरं ओसन्नकारणं न भण्णति, वण्णओ कालनीललोहितहालिद्दसुक्किलातिं गंधतो सुब्भिगंधदुब्भिगंधातिं रसतो तित्तरसकडुयरसकसायरसअंबिलमहुराइं फासतो कक्खडफासमउयगुरुयलहुयसीतउण्हणिद्धलुक्खातिं तेसिं पोराणे वण्णगुणे सेसं जहा नेरइयाणं जाव आहच्च नीससंति, पुढविकाइया णं भंते ! जे पोग्गले आहारत्ताते गिण्हंति तेसिं भंते ! पोग्गलाणं सेयालंसि कतिभागं आहारेंति कतिभागं आसाएंति ? गो० ! असंखेज्जतिभागं आहारेंति अणंतभागं आसाएंति, पुढविकाइया णं भंते ! जे पोग्गले आहारत्ताते गिण्हंति ते किं सव्वे आहारेंति नोसव्वे आहारेंति जहेव नेरइया तहेव, पुढविकाइया णं भंते ! जे पोग्गले आहारत्ताते गिण्हंति ते णं तेसिं पुग्गला कीसत्ताए भुज्जो २ परिणमंति ?, गो० ! फासिंदियवेमायत्ताते भुज्जो २ परिणमंति, एवं जाव वणप्फइकाइया । (सूत्रम् ३०५)

'पुढविकाइया णं भंते !' इत्यादि सर्वं पूर्ववद् भावनीयं, नवरं 'निव्वाघाएणं छद्दिसि'मित्यादि, व्याघातो नाम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



अलोकाकाशेन प्रतिस्खलनं, व्याघातस्याभावो निर्व्याघातं 'शब्दे यथावदव्ययं पूर्वपदार्थे नित्यमव्ययीभाव' इत्यव्ययीभावः 'तेन वा तृतीयाया' इति विकल्पेन अम्विधानात् पक्षेऽत्रामभावः, नियमादवश्यंतया षड्दिशि व्यवस्थितानि, षड्भ्यो दिग्भ्य आगतानि द्रव्याण्याहारयन्तीति भावः, व्याघातं पुनः प्रतीत्य लोकनिष्कुटादौ स्यात्–कदाचित्त्रिदिशि–तिसृभ्यो दिग्भ्य आगतानि कदाचिच्चतुर्दिग्भ्यः कदाचित्पञ्चदिग्भ्यः, काऽत्र भावनेति चेत्, उच्यते, इह लोकनिष्कुटे पर्यन्ताधस्त्यप्रतराग्नेयकोणावस्थितो यदा पृथिवीकायिको वर्त्तते तदा तस्याधस्तादलोकेन व्याप्तत्वात् अधोदिक्पुद्गलाभावः, आग्नेयकोणावस्थितत्वात् पूर्वदिक्पुद्गलाभावो दक्षिणदिक्पुद्गलाभावश्च, एवमधःपूर्वदक्षिणरूपाणां तिसृणां दिशामलोकेन व्यापनात् ता अपास्य या परिशिष्टा ऊर्ध्वा अपरा उत्तरा च दिगव्याहता वर्त्तते तत आगतान् पुद्गलान् आहारयति, यदा पुनः स एव पृथिवीकायिकः पश्चिमां दिशं अमुञ्चन् वर्त्तते तदा पूर्वदिगभ्यधिका जाता द्वे च दिशौ दक्षिणाधस्त्यरूपे अलोकेन व्याहते इति स चतुर्दिगागतान् पुद्गलानाहारयति, यदा पुनरूर्ध्वं द्वितीयादिप्रतरगतपश्चिमदिशमवलम्ब्य तिष्ठति तदा अधस्त्यापि दिगभ्यधिका लभ्यते केवलदक्षिणैका पर्यन्तवर्त्तिनी अलोकेन व्याहतेति पञ्चदिगागतान् पुद्गलानाहारयतीति, शेषं सूत्रं समस्तमपि पूर्ववद् भणनीयं, यस्तु विशेषस्तमुपदर्शयति–नवरं 'उस्सण्णकारणेणं ण हवइ' इत्यादि सुगमं, 'फासिंदियवेमायत्ताए' इति विषमा मात्रा विमात्रा तस्या भावो विमात्रता तया इष्टानिष्टनानाभेदतयेति भावो, न तु नारकाणामेकान्ताशुभतया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुराणां च शुभतयेवेति, एवं 'जाव वणस्सइकाइयाणं'ति यथा पृथिवीकायिकाना सूत्रमुक्तमेवमसेजोवायुवनस्पतीनामपि भणनीयं, सर्वेषामपि सकललोकव्यापितया विशेषाभावात् ।

बेइंदिया णं भंते ! आहारट्ठी ?, हंता ! आहारट्ठी, बेइंदियाणं भंते ! केवतिकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जति ?, जहा नेरइयाणं, नवरं तत्थ णं जे से आभोगनिवत्तिते से णं असंखिज्जसमइए अंतोमुहुत्तिए वेमायाए आहारट्ठे समुप्पज्जति, सेसं जहा पुढविकाइयाणं, जाव आहच्च नीससंति, नवरं नियमा छद्दिसिं, बेइंदियाणं भंते ! ० पुच्छा, गो० ! जे पोग्गले आहारत्ताते गिण्हंति ते णं तेसिं पुग्गलाणं सियालंसि कतिभागं आहारेंति कतिभागं आसाएंति, एवं जहा नेरइयाणं, बेइंदियाणं भंते ! जे पोग्गला आहारत्ताए गिण्हंति ते किं सव्वे आहारेंति णो सव्वे आहारेंति ?, गो० ! बेइंदियाणं दुविधे आहारे पं०, तं०—लोमाहारे य पक्खेवाहारे य, जे पोग्गले लोमाहारत्ताए गिण्हंति ते सव्वे अपरिसेसे आहारेंति, जे पोग्गले पक्खेवाहारत्ताए गेण्हंति तेसिमसंखेज्जतिभागमाहारेंति अणेगाइं च णं भागसहस्साइं अफासाइज्जमाणाणं अणासाइज्जमाणाणं विद्धंसमागच्छंति, एतेसि णं भंते ! पोग्गलाणं अणासाइज्जमाणाणं अफासाइज्जमाणाण य कयरे २ हिंतो अप्पा वा ४, गो० ! सव्वत्थोवा पोग्गला अणासाइज्जमाणा अफासाइज्जमाणा अणंतगुणा, बेइंदियाणं भंते ! जे पोग्गला आहारत्ताते पुच्छा, गो० ! जिब्भिंदिय० फासिंदियवेमायत्ताए तेसिं भुज्जो २ परिणमंति, एवं जाव चउरिंदिया, णवरं णेगाइं च णं भागसहस्साइं अणाघाइज्जमाणाइं अणासाइज्जमाणाइं अफासाइज्जमाणाइं विद्धंसमागच्छंति, एतेसि णं भंते ! पोग्गलाणं अणाघाइज्जमाणा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णं अणासाइज्जमाणाणं अफासाइज्जमाणाण य कयरे२हिंतो अप्पा वा ४ ?, गो० ! सव्वत्थोवा पोग्गला अणाघाइज्जमाणा अणासाइज्जमाणा अणंतगुणा अफासाइज्जमाणा अणंतगुणा, तेइंदियाणं भंते ! जे पोग्गला पुच्छा, गो० ! ते णं पोग्गला घाणिंदिय० जिब्भिंदिय० फासिंदियवेमायत्ताए तेसिं भुज्जो २ परिणमंति, चउरिंदियाणं चक्खिंदिय० घाणिंदिय० जिब्भिंदिय० फासिंदियवेमायत्ताए तेसिं भुज्जो २ परिणमंति, सेसं जहा तेइंदियाणं, पंचिंदियतिरिक्खजोणिया जहा तेइंदियाणं, णवरं तत्थ णं जे से आभोगनिवत्तिते से जहण्णेणं अंतोमुहुत्तस्स उक्को० छट्ठभत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जति, पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते ! जे पोग्गला आहा० पुच्छा, गो० ! सोतिंदिय० चक्खिंदिय० घाणिंदिय० जिब्भिंदिय० फासिंदियवेमायत्ताए भुज्जो २ परिणमंति, मणूसा एवं चेव, नवरं आभोगनिवत्तिते जह० अंतोमुहुत्तस्स उक्को० अट्ठमभत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जति, वाणमंतरा जहा नागकुमारा, एवं जोतिसियावि, णवरं आभोगनिवत्तिते जह० दिवसपुहुत्तस्स उ० दिवसपुहुत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ, एवं वेमाणियावि, नवरं आभोगनिवत्तिए ज० दिवसपुहुत्तस्स उ० तेत्तीसाए वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जति, सेसं जहा असुरकुमाराणं जाव एतेसिं भुज्जो २ परिणमंति, सोहम्मे आभोगनिवत्तिते ज० दिवसपुहुत्तस्स उक्को० दोण्हं वाससहस्साणं आहारट्ठे स०, ईसाणेणं पुच्छा, गो० ! ज० दिवसपुहुत्तस्स सातिरेगस्स उ० सातिरेगं दोण्हं वाससहस्साणं, सणंकुमाराणं पुच्छा, गो० ! ज० दोण्हं वाससहस्साणं उ० सत्तण्हं वाससहस्साणं, माहिंदे पुच्छा, गो० ! जहन्नेणं दोण्हं वाससहस्साणं सातिरेगाणं उक्को० सत्तण्हं वाससहस्साणं सातिरेगाणं, बंभलोए पुच्छा, गो० ! ज० सत्तण्हं वाससहस्साणं उ० दसण्हं वाससह०, लंतए णं पुच्छा, गो० ! ज० दसण्हं वाससह० उ० चउद्दसण्हं वाससह०, महासु-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

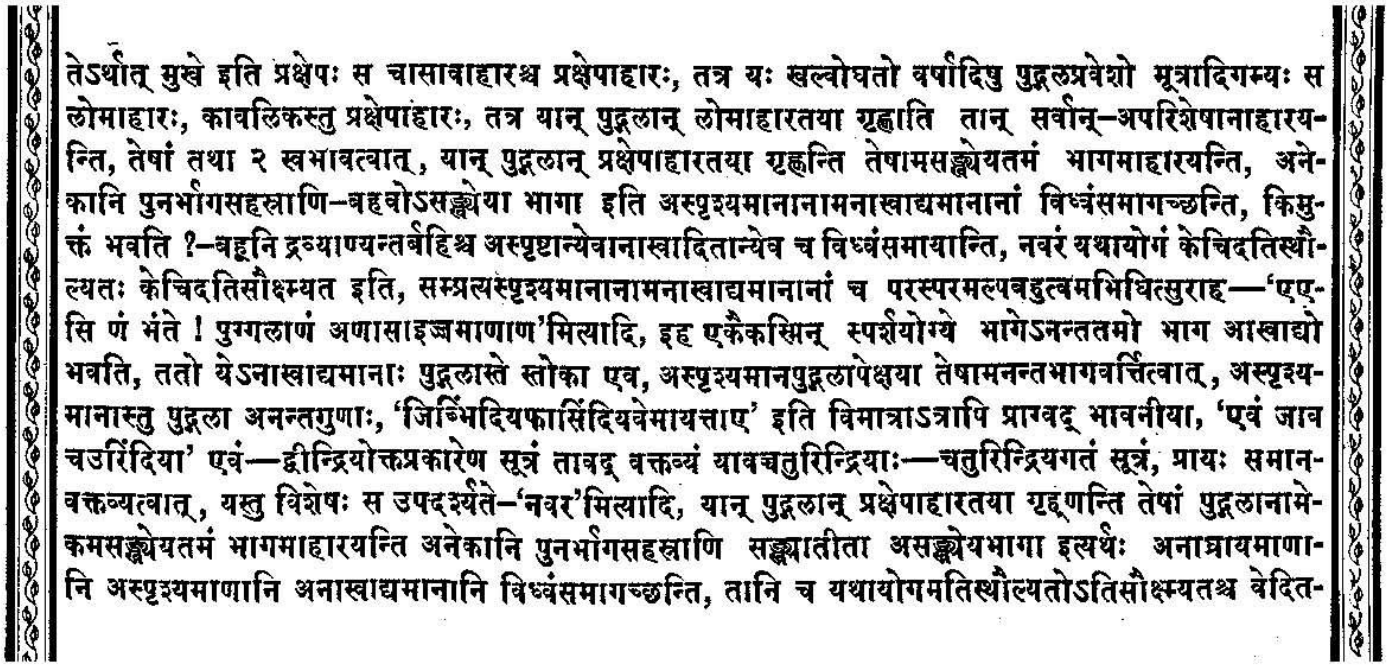
प्रत सूत्रांक [३०६]

दीप अनुक्रम [५५५]

के णं पुच्छा गो० ! ज० चउदसण्हं वासस० उक्को० सत्तरसण्हं वाससह०, सहस्सारे पुच्छा, गो० ! जह० सत्तरसण्हं वासस० उ० अट्ठारसण्हं वाससह०, आणए णं पुच्छा, गो० ! ज० अट्ठारसण्हं वाससह० उ० एगूणवीसाए वाससहस्साणं, पाणए णं पुच्छा, गो० ! ज० एगूणवीसाए वास० उ० वीसाए वाससहस्साणं, आरणे णं पुच्छा, गो० ! ज० वीसाए वाससह० उक्को० एक्कवीसाए वाससह०, अच्चुए णं पुच्छा गो० ! ज० एक्कवीसाए वाससह० उक्को० बावीसाए वा०, हिट्ठिमहिट्ठिमगेविज्जगाणं पुच्छा, गो० ! ज० बावीसाए वा० उक्को० तेवीसाए वा०, एवं सव्वत्थ सहस्साणि भाणियव्वाणि, जाव सव्वट्ठे, हिट्ठिममज्झिमगाणं पुच्छा, गो० ! ज० तेवीसाए उ० चउवीसाए, हेट्ठिमउवरिमाणं पुच्छा, गो० ! ज० चउवीसाए उ० पणवीसाए, मज्झिमहेट्ठिमाणं पुच्छा, गो० ! ज० पण्णवीसाए उक्को० छव्वीसाए, मज्झिममज्झिमाणं पुच्छा, गो० ! ज० छव्वीसाए उ० सत्तावीसाए, मज्झिमउवरिमाणं पुच्छा, गो० ! ज० सत्तावीसाए उ० अट्ठावीसाए, उवरिमहेट्ठिमाणं पुच्छा, गो० ! ज० अट्ठावीसाए उ० एगूणतीसाए, उवरिममज्झिमाणं पुच्छा, गो० ! ज० एगूणतीसाए उ० तीसाए, उवरिमउवरिमाणं पुच्छा, गो० ! ज० तीसाए उ० एगतीसाए, विजयवेजयंतजयंतअपराजियाणं पुच्छा, गो० ! ज० एगतीसाए उक्को० तेत्तीसाए, सव्वट्ठगसिद्धदेवाणं पुच्छा, गो० ! अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसाए वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जति (सूत्रं ३०६)

'बेइंदिया णं भंते !' इत्यादि सुगमं, नवरं 'लोमाहारे पक्खेवाहारे' इति लोमभिराहारो लोमाहारः प्रक्षिप्य-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



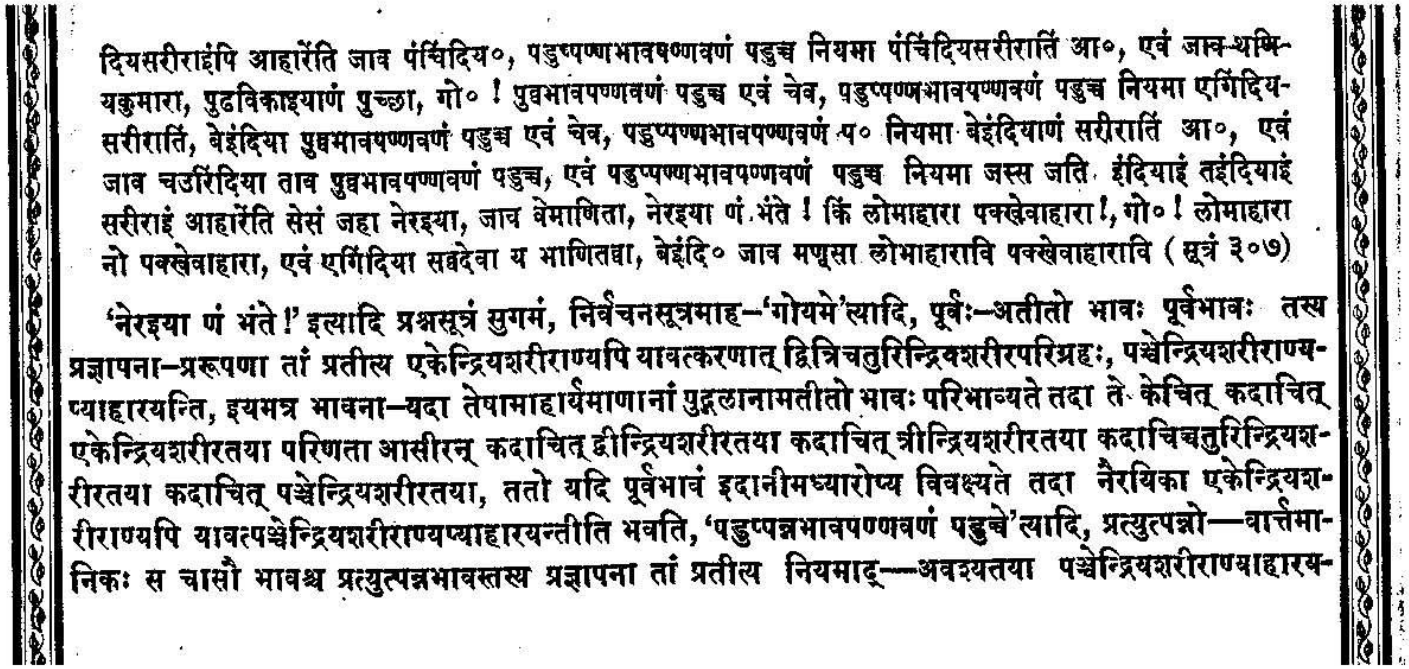
तेऽर्थात् मुखे इति प्रक्षेपः स चासावाहारश्च प्रक्षेपाहारः, तत्र यः खल्वोघतो वर्षादिषु पुद्गलप्रवेशो मूत्रादिगम्यः स लोमाहारः, कावलिकस्तु प्रक्षेपाहारः, तत्र यान् पुद्गलान् लोमाहारतया गृह्णाति तान् सर्वान्–अपरिशेषानाहारयन्ति, तेषां तथा २ स्वभावत्वात्, यान् पुद्गलान् प्रक्षेपाहारतया गृह्णन्ति तेषामसङ्ख्येयतमं भागमाहारयन्ति, अनेकानि पुनर्भागसहस्राणि–बहवोऽसङ्ख्येया भागा इति अस्पृश्यमानानामनास्वाद्यमानानां विध्वंसमागच्छन्ति, किमुक्तं भवति ?–बहूनि द्रव्याण्यन्तर्बहिश्च अस्पृष्टान्येवानास्वादितान्येव च विध्वंसमायान्ति, नवरं यथायोगं केचिदतिस्थौल्यतः केचिदतिसौक्ष्म्यत इति, सम्प्रत्यस्पृश्यमानानामनास्वाद्यमानानां च परस्परमल्पबहुत्वमभिधित्सुराह—'एएसि णं भंते ! पुग्गलाणं अणासाइज्जमाणाण'मित्यादि, इह एकैकस्मिन् स्पर्शयोग्ये भागेऽनन्ततमो भाग आस्वाद्यो भवति, ततो येऽनास्वाद्यमानाः पुद्गलास्ते स्तोका एव, अस्पृश्यमानपुद्गलापेक्षया तेषामनन्तभागवर्त्तित्वात्, अस्पृश्यमानास्तु पुद्गला अनन्तगुणाः, 'जिब्भिंदियफासिंदियवेमायत्ताए' इति विमात्राऽत्रापि प्राग्वद् भावनीया, 'एवं जाव चउरिंदिया' एवं—द्वीन्द्रियोक्तप्रकारेण सूत्रं तावद् वक्तव्यं यावच्चतुरिन्द्रियाः—चतुरिन्द्रियगतं सूत्रं, प्रायः समानवक्तव्यत्वात्, यस्तु विशेषः स उपदर्श्यते–'नवर'मित्यादि, यान् पुद्गलान् प्रक्षेपाहारतया गृह्णन्ति तेषां पुद्गलानामेकमसङ्ख्येयतमं भागमाहारयन्ति अनेकानि पुनर्भागसहस्राणि सङ्ख्यातीता असङ्ख्येयभागा इत्यर्थः अनाघ्रायमाणानि अस्पृश्यमाणानि अनास्वाद्यमानानि विध्वंसमागच्छन्ति, तानि च यथायोगमतिस्थौल्यतोऽतिसौक्ष्म्यतश्च वेदित-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्यानि, अत्रैवाल्पबहुत्वमाह—'एएसि णं भंते !' इत्यादि, इह एकैकस्मिन् भागे स्पर्शयोग्येऽनन्तमो भागः आस्वादयोग्यो भवति, तस्याप्यनन्तमो भाग आघ्राणयोग्यः, ततो यथोक्तमल्पबहुत्वं भवति, शेषं सर्वं सुगमं, पञ्चेन्द्रियसूत्रे—'जहण्णेणं अंतोमुहुत्तस्से'ति षष्ठ्याः सप्तम्यर्थत्वादन्तर्मुहूर्ते गते सति भूय आहारार्थः समुत्पद्यते, उत्कर्षतः षष्ठभक्तेऽतिक्रान्ते, एतच्च देवकुरूत्तरकुरुतिर्यक्पञ्चेन्द्रियापेक्षया द्रष्टव्यं, मनुष्यसूत्रे 'उक्कोसेणं अट्ठमभत्तस्से'ति उत्कर्षतोऽष्टमभक्तेऽतिक्रान्ते, एतच्च तास्वेव देवकुरूत्तरकुरुषु द्रष्टव्यं, व्यन्तरसूत्रे नागकुमारसूत्रवत्, ज्योतिष्कसूत्रमपि तथैव, यस्तु विशेषस्तमुपदर्शयति'—नवरं जहण्णेणवि दिवसपुहुत्तस्स उक्कोसेणवि दिवसपुहुत्तस्स'त्ति, ज्योतिष्का हि जघन्यतोऽपि पल्योपमाष्टभागप्रमाणायुषस्ततस्तेषां जघन्यपदेऽप्युत्कृष्टपदेऽपि दिवसपृथक्त्वेऽतिक्रान्ते भूय आहारार्थः समुत्पद्यते, पल्योपमाष्टभागायुषां च स्वरूपत एव दिवसपृथक्त्वातिक्रमे भूय आहारार्थः समुत्पद्यते, वैमानिकसूत्रे 'नवरमाभोगनिवत्तिए जहण्णेणं दिवसपुहुत्तस्स' इति, एतत्पल्योपमाद्यायुषामवसेयं, 'उक्कोसेणं तेत्तीसाए वाससहस्साणं'ति एतदनुत्तरसुराणामवसेयं, इह यस्य यावन्ति सागरोपमाणि स्थितिस्तस्य तावत्सु वर्षसहस्रेष्वतिक्रान्तेषु भूय आहारार्थः समुत्पद्यते, ततोऽयं न्यायमाश्रित्य सौधर्मेशानादिदेवलोकेषु जघन्यत उत्कर्षतश्च स्थितिपरिमाणं परिभाव्य वैमानिकसूत्रं सकलमपि स्वयं विज्ञेयमिति । सम्प्रत्येकेन्द्रियशरीरादीनामधिकारमभिधित्सुराह—

नेरइयाणं भंते ! किं एगिंदियसरीराइं आहारेंति जाव पंचिंदियसरीराइं आहारेंति ?, गो० ! पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च एगिं-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



दियसरीराइंपि आहारेंति जाव पंचिंदिय०, पडुप्पण्णभावपण्णवणं पडुच्च नियमा पंचिंदियसरीरातिं आ०, एवं जाव थणियकुमारा, पुढविकाइयाणं पुच्छा, गो० ! पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च एवं चेव, पडुप्पण्णभावपण्णवणं पडुच्च नियमा एगिंदियसरीरातिं, बेइंदिया पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च एवं चेव, पडुप्पण्णभावपण्णवणं प० नियमा बेइंदियाणं सरीरातिं आ०, एवं जाव चउरिंदिया ताव पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च, एवं पडुप्पण्णभावपण्णवणं पडुच्च नियमा जस्स जति इंदियाइं तइंदियाइं सरीराइं आहारेंति सेसं जहा नेरइया, जाव वेमाणिता, नेरइया णं भंते ! किं लोमाहारा पक्खेवाहारा !, गो० ! लोमाहारा नो पक्खेवाहारा, एवं एगिंदिया सव्वदेवा य भाणितव्वा, बेइंदि० जाव मणूसा लोमाहारावि पक्खेवाहारावि (सूत्रं ३०७)

'नेरइया णं भंते !' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, निर्वचनसूत्रमाह–'गोयमे'त्यादि, पूर्वः–अतीतो भावः पूर्वभावः तस्य प्रज्ञापना–प्ररूपणा तां प्रतीत्य एकेन्द्रियशरीराण्यपि यावत्करणात् द्वित्रिचतुरिन्द्रियशरीरपरिग्रहः, पञ्चेन्द्रियशरीराण्यप्याहारयन्ति, इयमत्र भावना–यदा तेषामाहार्यमाणानां पुद्गलानामतीतो भावः परिभाव्यते तदा ते केचित् कदाचित् एकेन्द्रियशरीरतया परिणता आसीरन् कदाचित् द्वीन्द्रियशरीरतया कदाचित् त्रीन्द्रियशरीरतया कदाचिच्चतुरिन्द्रियशरीरतया कदाचित् पञ्चेन्द्रियशरीरतया, ततो यदि पूर्वभावं इदानीमध्यारोप्य विवक्ष्यते तदा नैरयिका एकेन्द्रियशरीराण्यपि यावत्पञ्चेन्द्रियशरीराण्यप्याहारयन्तीति भवति, 'पडुप्पन्नभावपण्णवणं पडुच्चे'त्यादि, प्रत्युत्पन्नो—वार्त्तमानिकः स चासौ भावश्च प्रत्युत्पन्नभावस्तस्य प्रज्ञापना तां प्रतीत्य नियमाद्—अवश्यतया पञ्चेन्द्रियशरीराण्याहारय-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

न्ति, कथमिति चेत्, उच्यते, इह प्रत्युत्पन्नभावप्रज्ञापनां करोति नयः ऋजुसूत्रो न शेषा नैगमादयः, ऋजुसूत्रश्च क्रियमाणं कृतं अभ्यवहियमाणमभ्यवहृतं परिणम्यमाणं परिणतमभ्युपगच्छति, अभ्यवहियमाणाश्च पुद्गलास्ते उच्यन्ते ये स्वशरीरतया परिणम्यमाना वर्त्तन्ते, अभ्यवहियमाणं चाभ्यवहृतं परिणम्यमानं च परिणतमिति तन्मतेन स्वशरीरमेवाभ्यवहियते स्वशरीरं च तेषां पञ्चेन्द्रियशरीरं पञ्चेन्द्रियशरीरत्वात् तेषामत उक्तं नियमात् पञ्चेन्द्रियशरीराण्याहारयन्तीति, एवमसुरकुमारादयः स्तनितकुमारपर्यवसाना भवनपतयो वक्तव्याः, पृथिवीकायिकसूत्रे प्रत्युत्पन्नभावप्ररूपणाचिन्तायां नियमादेकेन्द्रियशरीराण्याहारयन्तीति वक्तव्यं, तेषामेकेन्द्रियतया तत्शरीराणामेकेन्द्रियशरीरत्वात्, एवं द्वीन्द्रियसूत्रे नियमात् द्वीन्द्रियशरीराण्याहारयन्तीति वक्तव्यं, त्रीन्द्रियसूत्रे नियमात् त्रीन्द्रियशरीराणि, चतुरिन्द्रियसूत्रे नियमात् चतुरिन्द्रियशरीराणि, तिर्यक्पञ्चेन्द्रिया मनुष्या व्यन्तरज्योतिष्कवैमानिकाश्च नैरयिकवद् वक्तव्या, तथा चाह–'पुढविकाइयाणं पुच्छा' इत्यादि। अधुना लोमाहाराधिकारं विभावयिषुरिदमाह—'नेरइया ण'मित्यादि सुगमं, नवरं नैरयिकाणां प्रक्षेपाहारो न भवति, वैक्रियशरीराणां तथा स्वभावत्वात्, लोमाहारोऽपि पर्याप्तानामवसेयो नापर्याप्तानामिति, 'एवं एगिंदिया' इत्यादि, एवं—नैरयिकोक्तप्रकारेण एकेन्द्रियाः—पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः सर्वे देवाश्च—असुरकुमारादयो यावद्वैमानिका भणितव्याः, तत्रैकेन्द्रियाणां प्रक्षेपाहाराभावो मुखाभावात्, असुरकुमारादीनां वैक्रियशरीरतया तथा स्वभावात्, द्वित्रिचतुरिन्द्रियास्तिर्यक्पञ्चेन्द्रिया

२८आहारपदे उद्देशः १ सू. ३०७

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३०७]

दीप अनुक्रम [५५६]

मनुष्याश्च लोमाहारा अपि वक्तव्याः प्रक्षेपाहारा अपि, उभयरूपस्याप्याहारस्य तेषां सम्भवात्, चरममर्थाधिकारमभिधित्सुराह—

नेरइया णं भंते ! किं ओयाहारा मणभक्खी ?, गो० ! ओयाहारा णो मणभक्खी, एवं सव्वे ओरालियसरीरावि, देवा सव्वेवि जाव वेमाणिया ओयाहारावि मणभक्खीवि, तत्थ णं जे ते मणभक्खी देवा तेसि णं इच्छामणे समुप्पज्जति इच्छामो णं मणभक्खणं करित्तते, तते णं तेहिं देवेहिं एवं मणसीकते समाणे खिप्पामेव जे पोग्गला इट्ठा कंता जाव मणामा ते तेसिं मणभक्खत्ताए परिणमंति, से जहा नामए सीया पोग्गला सीयं पप्प सीयं चेव अतिवतित्ताणं चिट्ठंति, उसिणा वा पोग्गला उसिणं पप्प उसिणं चेव अइवइत्ताणं चिट्ठंति, एवामेव तेहिं देवेहिं मणभक्खीकए समाणे से इच्छामणे खिप्पामेव अवेति (सूत्रं ३०८) आहारपयस्स पढमो उद्देसो समत्तो २३–१ ॥

'नेरइया णं भंते !' इत्यादि, ओज—उत्पत्तिदेशे आहारयोग्यपुद्गलसमूहः, ओज आहारो येषां ते ओजआहाराः, मनसा भक्षयन्तीत्येवंशीला मनोभक्षिणः, तत्र नैरयिका ओजआहारा भवन्ति, अपर्याप्तावस्थायामोजस एवाहारस्य सम्भवात्, मनोभक्षिणस्त्वेते न भवन्ति, मनोभक्षणलक्षणो ह्याहारः स उच्यते ये तथाविधशक्तिवशात् मनसा स्वशरीरपुष्टिजनकाः पुद्गला अभ्यवहियन्ते, यदभ्यवहरणानन्तरं तृप्तिपूर्वः परमसन्तोष उपजायते, न चैतन्नैरयिकाणामस्ति, प्रतिकूलकर्मोदयवशतः तथारूपशक्त्यभावात्, 'एवं सव्वे ओरालियसरीरावि' इति, एवं—नैरयि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३०८]

दीप अनुक्रम [५५७]

कोक्तेन प्रकारेण औदारिकशरीरिणोऽपि सर्वे पृथिवीकायिकादयो मनुष्यपर्यवसाना वक्तव्याः, तद्यथा—'पुढविकाइया णं भंते ! किं ओयाहारा मनभक्खी ?, गोयमा ! ओयाहारा नो मणभक्खी'त्यादि, 'देवा' इत्यादि देवाः यावद्वैमानिका ओजआहारा अपि मनोभक्षिणोऽपि वक्तव्याः, तद्यथा—असुरकुमारा णं भंते ! किं ओयाहारा मनोभक्खी ?, गो० ! ओयाहारावि मणभक्खीवि, जाव वेमाणियाणं पुच्छा, गो० ! ओयाहारावि मणभक्खीवि' ॥ सम्प्रति मनोभक्षित्वं देवानां यथा भवति तथोपदर्शयति—'तत्थ ण'मित्यादि, तत्र—तेषु संसारिषु जीवेषु मध्ये, णमिति वाक्यालङ्कारे ये मनोभक्षिणो देवास्तेषां णमिति वाक्यालङ्कारे मनः प्रस्तावादाहारविषयं समुत्पद्यते, केनोल्लेखेन इत्यत आह—इच्छामः—अभिलषामो णमिति वाक्यालङ्कारे, मनोभक्षणमिति—मनसा भक्षणं मनोभक्षणं कर्तुमिति, तत एवं तैर्मनसि कृते—व्यवस्थापिते मनोभक्षणे सति तथाविधशुभकर्मोदयवशात् क्षिप्रमेव तत्कालमेवेति भावः, ये इष्टाः कान्ताः प्रिया मनोज्ञा मनआपा पुद्गलाः एतेषां व्याख्यानं प्राग्वत् तेषां देवानां मनोभक्षतया परिणमन्ते, कथमित्यत्रैव दृष्टान्तमाह—'से जहानामए' सेशब्दोऽथशब्दार्थः, स चात्र वाक्योपन्यासे, यथा नामेति विवक्षिताः शीताः पुद्गलाः शीतं—शीतयोनिकं प्राणिनं प्राप्य शीतत्वमेवातिव्रज्य—अतिशयेन गत्वा तिष्ठन्ति, किमुक्तं भवति ?—विशेषतः शीतीभूय शीतयोनिकस्य प्राणिनः सुखित्वायोपकल्पन्त इति, उष्णा वा पुद्गला उष्णं—उष्णयोनिकं प्राप्य उष्णमेव—उष्णत्वमेवातिव्रज्य—अतिशयेन गत्वा तिष्ठन्ति, विशेषतः स्वरूपलाभसम्पत्त्या तस्य सुखित्वायोप-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तिष्ठन्त इति भावः, 'एवमेव' अनेनैव प्रकारेण तैर्देवैः प्रागुक्तरीत्या मनोभक्षणे कृते सति स तेषां देवानामिच्छामनः—आहारविषयेच्छाप्रधानं मनः क्षिप्रमेवापैति–तृप्तिभावान्निवर्त्तते इति भावः, इयमत्र भावना–यथा शीतपुद्गलाः शीतयोनिकस्य प्राणिनः सुखित्वायोपकल्प्यन्ते उष्णपुद्गला वा उष्णयोनिकस्य तथा देवैरपि मनसाऽभ्यवह्रियमाणाः पुद्गलास्तेषां तृप्तये परमसन्तोषाय चोपकल्पन्ते, तत आहारविषयाभिलाषनिवृत्तिर्भवतीति, अत्र च ओजआहारादिविभागप्रतिपादिका इमाः सूत्रकृताङ्गनिर्युक्तिगाथाः–"सरीरेणोयाहारो तयाय फासेण लोमआहारो। पक्खेवाहारो पुण कावलिओ होइ नायव्वो ॥ १ ॥ ओयाहारा जीवा सव्वे अपज्जत्तया मुणेयव्वा। पज्जत्तगा य लोमे पक्खेवे होंति भइयव्वा ॥ १ ॥ एगिंदियदेवाणं नेरइयाणं च नत्थि पक्खेवो। सेसाणं जीवाणं संसारत्थाण पक्खेवो ॥ २ ॥ लोमाहारा एगिंदिया उ नेरइयसुरगणा चेव। सेसाणं आहारो लोमे पक्खेवओ चेव ॥ ३ ॥ ओयाहारा मणभक्खिणो य सव्वेवि सुरगणा होंति। सेसा हवंति जीवा लोमे पक्खेवओ चेव ॥ ४ ॥" [शरीरेणौजआहारः त्वचा स्पर्शेन रोमाहारः। प्रक्षेपाहारः पुनः कावलिको भवति ज्ञातव्यः ॥ १ ॥ ओजआहारा जीवाः सर्वेऽपर्याप्तका ज्ञातव्याः। पर्याप्ताश्च रोमाहारे प्रक्षेपे भवन्ति भक्तव्याः ॥ २ ॥ एकेन्द्रियदेवानां नैरयिकाणां च नास्ति प्रक्षेपाहारः। शेषाणां जीवानां संसारस्थानां प्रक्षेपः ॥ ३ ॥ रोमाहारा एकेन्द्रियास्तु नैरयिकसुरगणाश्चैव। शेषाणामाहारो रोमभिः प्रक्षेपेणैव ॥ ४ ॥ (सू० १७१–१७२–१७३) ओजआहारा मनोभक्षिणश्च सर्वेऽपि सुरगणा भवन्ति। शेषा भवन्ति जीवा रोमभिः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३०८]

दीप अनुक्रम [५५७]

प्रक्षेपतश्चैव ॥ ५ ॥] अथ क आहार आभोगनिर्वर्त्तितः को वाऽनाभोगनिर्वर्त्तित इति चेत्, उच्यते, देवानामाभोगनिर्वर्त्तितः ओजआहारः स चापर्याप्तावस्थायां, लोमाहारोऽप्यनाभोगनिर्वर्त्तितः, स च पर्याप्तावस्थायां आभोगनिर्वर्त्तितो मनोभक्षणलक्षणः, स चपर्याप्तावस्थायां देवानामेव नशेषाणां, सर्वेषामप्यनाभोगनिर्वर्त्तित आहारोऽपर्याप्तावस्थायां लोमाहारः पर्याप्तावस्थायां, नैरयिकवर्जानां लोमाहारो, नैरयिकाणां तु लोमाहार आभोगनिर्वर्त्तितोऽपि, द्वीन्द्रियादीनां मनुष्यपर्यवसानानां यः प्रक्षेपाहारः स आभोगनिर्वर्त्तित एवेति ॥ श्रीमलयगिरिविर० प्रज्ञापनाटीकायां आहारपदस्य प्रथमोद्देशकः परिसमाप्तः ॥

व्याख्यात आहारपदस्य प्रथमोद्देशकः, सम्प्रति द्वितीयो व्याख्येयः, तत्र चादावियमधिकारसङ्ग्रहगाथा—

आहार १ भविय २ सण्णी ३ लेसा ४ दिट्ठी ५ य संजत ६ कसाए ७ । णाणे ८ जोगु ९ वओगे १० वेदे ११ य सरीर १२ पज्जत्ती १३ ॥ १ ॥

'आहारे'त्यादि, प्रथमं सामान्यत आहाराधिकारः, द्वितीयो भव्याधिकारो—भव्यविशेषिताहाराधिकारः, एवं तृतीयः संज्ञ्यधिकारः, चतुर्थो लेश्याधिकारः पञ्चमो दृष्ट्यधिकारः षष्ठः संयताधिकारः सप्तमः कषायाधिकारः अष्टमो ज्ञानाधिकारः नवमो योगाधिकारः दशम उपयोगाधिकारः एकादशो वेदाधिकारः द्वादशः शरीराधिकारः त्रयोदशः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र (२८) आहार-पदे उद्देशक (२) आरब्धः,

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१५],उपांगसूत्र-[४] "प्रज्ञापना" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [३०९] + गाथा

दीप अनुक्रम [५५८--]

पर्याप्त्यधिकारः, इह भव्यादिग्रहणेन तत्प्रतिपक्षभूता अभव्यादयोऽपि सूचिता द्रष्टव्याः, तथैवाग्रे वक्ष्यमाणत्वाद्, तत्र प्रथमं सामान्यत आहाराधिकारं विभावयिषुरिदमाह—

जीवे णं भंते ! किं आहारए अणाहारए ?, गो० ! सिय आहारए सिय अणाहारए, एवं नेरइए जाव असुरकुमारे जाव वेमाणिए, सिद्धे णं भंते ! किं आहारए अणाहारए ?, गो० ! नो आहारए अणाहारए, जीवा णं भंते ! किं आहारया अणाहारया ?, गो० ! आहारयावि अणाहारयावि, नेरइयाणं ! पुच्छा, गो० ! सव्वेवि ताव होज्जा आहारया १ अहवा आहारगा य अणाहारए य २ अहवा आहारगा य अणाहारगा य ३, एवं जाव वेमाणिया, णवरं एगिंदिया जहा जीवा, सिद्धाणं पुच्छा, गो० ! नो आहारगा अणाहारगा। दारं १ ॥ भवसिद्धिए णं भंते! जीवे किं आहारते अणाहारते ?, गो० ! सिय आहारते सिय अणाहारए, एवं जाव वेमाणिए, भवसिद्धिया णं भंते ! जीवा किं आहारगा अणा० ?, गो० ! जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो, अभवसिद्धिएवि एवं चेव, नोभवसिद्धिएनोअभवसिद्धिए णं भंते ! जीवे किं आहारए अणाहारए ?, गो० ! णो आहारए अणाहारए, एवं सिद्धेवि, नोभवसिद्धियनोअभवसिद्धिया णं भंते ! जीवा किं आहारगा अणाहारगा ?, गो० ! नो आहारगा अणाहारगा, एवं सिद्धावि, दारं २। सण्णी णं भंते! जीवे किं आहारए अणाहारए ?, गो० ! सिय आ० सिय अणा०, एवं जाव वेमाणिए, णवरं एगिंदियविगलिंदिया नो पुच्छिज्जंति, सण्णी णं भंते ! जीवा किं आहारगा अणाहारगा ?, गो० ! जीवाइओ तियभंगो जाव वेमाणिया, असण्णी णं भंते ! जीवे किं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र (२८) आहार-पदे प्रथमे उद्देशके द्वारम् (१, २, ३) 'आहारकत्वं', 'भवसिद्धिकं', संज्ञी आरब्धम्

आहारए अणाहारए ?, गो० ! सिय आ० सिय अणा० एवं णेरइए जाव वाणमंतरे, जोइसियवेमाणिया ण पुच्छिज्जंति, असण्णी णं भंते ! जीवा किं आ० अणा० ?, गो० ! आहारगावि अणाहारगावि एगो भंगो, असण्णी णं भंते ! णेरइया किं आहारया अणा० ?, गो० ! आहारगा वा १ अणाहारगा वा २ अहवा आहारए य अणाहारए य ३ आहारए य अणाहारया य ४ अहवा आहारगा य अणाहारए य ५ अहवा आहारगा य अणाहारगा य ६ एवं एते छब्भंगा, एवं जाव थणियकुमारा, एगिंदिएसु अभंगतं, बेइंदिय जाव पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु तियभंगो, मणूसवाणमंतरेसु छब्भंगा, नोसण्णीनोअसण्णी णं भंते ! जीवे किं आ० अणा० ?, गो० ! सिय आहारए सिय अणाहारए य, एवं मणूसेवि, सिद्धे अणाहारते, पुहुत्तेणं नोसण्णीनोअसण्णी जीवा आहारगावि अणाहारगावि, मणूसेसु तियभंगो, सिद्धा अणाहारगा। दारं ३ (सूत्रं ३०९)

'जीवे णं भंते !' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—'गौतमे'त्यादि, गौतम! स्यात्—कदाचिदाहारकः कदाचिदनाहारकः, कथमिति चेत् ?, उच्यते, विग्रहगतौ केवलिसमुद्घाते शैलेश्यवस्थायां सिद्धत्वे चानाहारकः, शेषास्ववस्थास्वाहारकः, उक्तं च–"विग्गहगइमावन्ना केवलिणो समोहया अजोगी य। सिद्धा य अणाहारा सेसा आहारगा जीवा ॥१॥" [विग्रहगत्यापन्नाः समवहताः केवलिनोऽयोगिनश्च। सिद्धाश्चानाहारकाः शेषा आहारका जीवाः॥१॥] तदेवं सामान्यतो जीवचिन्तां कृत्वेदानीं नैरयिकादिचतुर्विंशतिदण्डकक्रमेणाहारकानाहारकचिन्तां करोति–'नेर-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इए णं भंते! किं आहारए' इत्यादि सुगमं, तदेवं सामान्यतो जीवपदे नैरयिकादिषु चैकवचनेन आहारकानाहारकत्वचिन्ता कृता, सम्प्रति बहुवचनेन तां चिकीर्षुराह—'जीवा णं भंते!' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! आहारका अपि अनाहारका अपि, सदैव बहुवचनविशिष्टा उभयेऽपि लभ्यन्ते इति भावः, तथाहि—विग्रहगतिव्यतिरेकेण शेषकालं सर्वेऽपि संसारिणो जीवा आहारकाः, विग्रहगतिस्तु क्वचित् कदाचित् कस्यचित्तु भवतीति सर्वकालमपि लभ्यमाना सा प्रतिनियतानामेव लभ्यते तत आहारकेषु बहुवचनं, अनाहारका अपि सिद्धाः सदैव लभ्यन्ते, ते चाभव्येभ्योऽनन्तगुणाः, अन्यच्च—सर्वकालमेकैकस्य निगोदस्य प्रतिसमयमसङ्ख्येयभागो विग्रहगत्यापन्नो लभ्यते, ततोऽनाहारकेष्वपि बहुवचनं, नैरयिकसूत्रे सर्वेऽपि तावद्भवेयुराहारकाः१, किमुक्तं भवति?—कदाचिन्नैरयिकाः सर्वेऽप्याहारका एव भवन्ति, न त्वेकोऽप्यनाहारकः, कथमिति चेत्, उच्यते, उपपातविरहात्, तथाहि—नैरयिकाणामुपपातविरहो द्वादश मुहूर्त्ताः, एतावति चान्तरे पूर्वोत्पन्नविग्रहगत्यापन्ना अपि आहारका जाताः, अन्यस्त्वनुत्पद्यमानत्वात् अनाहारको न सम्भवतीति, अथवा आहारका अनाहारकाश्च २ आहारकपदे बहुवचनं अनाहारकपदे एकवचनमिति भावः, कथमेष भङ्गो घटामियर्त्तीति चेत्, उच्यते, इह नरकेषु जन्तुः कदाचिदेक उत्पद्यते कदाचिद्द्वौ कदाचित् त्रयश्चत्वारो यावत्सङ्ख्याता असङ्ख्याता वा, तत्र यदा एक उत्पद्यते सोऽपि च विग्रहगत्यापन्नोऽपि भवति अन्ये च पूर्वोत्पन्नतया आहारका अभवन् तदा एष भङ्गो लभ्यते, तृतीयभङ्गमाह—अहवा आहारगा य अणाहारगा य ३,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३०९] + गाथा

दीप अनुक्रम [५५८--५६१]

अत्रोभयत्रापि बहुवचनं, एष च भङ्गो यदा बहवो विग्रहगत्योत्पद्यन्ते तदा द्रष्टव्यः, शेषभङ्गकास्तु न सम्भवन्ति, आहारकपदस्य नैरयिकाणां सर्वदैव बहुवचनविषयतया लभ्यमानत्वात्, एवमसुरकुमारादिषु स्तनितकुमारपर्यवसानेषु द्वीन्द्रियादिषु च वैमानिकपर्यन्तेषु प्रत्येकं भङ्गत्रिकं भावनीयं, उपपातविरहभावतः प्रथमभङ्गस्य एकादिसङ्ख्यतयोत्पत्तेः शेषस्य च भङ्गद्वयस्य सर्वत्रापि लभ्यमानत्वात्, एकेन्द्रियेषु पुनः पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिरूपेषु प्रत्येकमेष एवैको भङ्गः आहारकाः अनाहारका अपि, पृथिव्यप्तेजोवायुषु प्रत्येकं प्रतिसमयमसङ्ख्यातानां वनस्पतिषु प्रतिसमयमनन्तानां विग्रहगत्योत्पद्यमानानां लभ्यमानतया अनाहारकपदेऽपि सदैव तेषु बहुवचनसम्भवात्, तथा चाह—'एवं जाव वेमाणिया नवरं एगिंदिया जहा जीवा' इति, एवं–नैरयिकोक्तभङ्गप्रकारेण शेषा अप्यसुरकुमारादयस्तावद्वक्तव्या यावद्वैमानिकाः, नवरमेकेन्द्रियाः पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिरूपाः प्रत्येकं यथा उभयत्रापि बहुवचने जीवा उक्तास्तथा वक्तव्याः, सिद्धेष्वेक एव भङ्गोऽनाहारक इति, सकलशरीरप्रहाणतस्तेषामाहारासम्भवात् बहूनां च सदा भावात् इति, गतं प्रथमं द्वारं ॥ द्वितीयं भव्यद्वारमभिधित्सुराह—'भवसिद्धिए णं भंते !' इत्यादि, भवैः सङ्ख्यातैरसङ्ख्यातैरनन्तैर्वा सिद्धिर्यस्यासौ भवसिद्धिको भव्यः, स कदाचिदाहारकः कदाचिदनाहारकः, विग्रहगत्याद्यवस्थायां अनाहारकः शेषकालं त्वाहारकः, एवं चतुर्विंशतिदण्डकेऽपि प्रत्येकं वाच्यं, तथा चाह–'एवं जाव वेमाणिए' अत्र च सिद्धविषयं सूत्रं न वक्तव्यं, मोक्षपदप्राप्ततया तस्य भवसिद्धिकत्वायोगात्, अत्रैव बहुवचनेनाहारकानाहारकत्वचिन्तां चिकीर्षुराह—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'भवसिद्धिया णं भंते !' इत्यादि, अत्राप्याहारकद्वार इव जीवपदे एकेन्द्रियेषु च प्रत्येकमुभयत्र बहुवचनेनैक एव भङ्गो, यथा आहारका अपि अनाहारका अपि, शेषेषु नैरयिकादिषु स्थानेषु भङ्गत्रिकं, कदाचित्केवला आहारका एव न त्वेकोऽप्यनाहारकः, अथवा कदाचिदाहारका एकोऽनाहारकः, अथवा आहारका अपि अनाहारका अपि उभयत्रापि बहुवचनं, तथा चाह–'जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो' इति, यथा च भवसिद्धिके एकस्मिन् बहुषु चाहारकानाहारकत्वचिन्ता कृता तथा अभवसिद्धिकेऽपि कर्त्तव्या, उभयत्राप्येकवचने बहुवचने च भङ्गसङ्ख्यायाः सर्वत्रापि समानत्वात्, तथा चाह—'अभवसिद्धिए एवं चेव' अभवसिद्धिकेऽपि भवसिद्धिक इव एकवचने बहुवचने च वक्तव्यमिति, यस्तु न भवसिद्धिको नाप्यभवसिद्धिकः स सिद्धः, स हि भवसिद्धिको न भवति, भवातीतत्वात्, अभवसिद्धिकस्तु रूढ्या यः सिद्धिगमनयोग्यो न भवति स उच्यते, ततोऽभवसिद्धिकोऽपि न भवति, सिद्धिप्राप्तत्वात्, तथा च सति नोभवसिद्धिकनोअभवसिद्धिकत्वचिन्तायां द्वे एव पदे, तद्यथा–जीवपदं सिद्धिपदं च, उभयत्राप्येकवचने एक एव भङ्गोऽनाहारक इति, बहुवचनेऽप्येक एवानाहारका इति । संज्ञिद्वारे—'सन्नी णं भंते !' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, निर्वचनसूत्रमाह–'गोयमे'त्यादि, विग्रहगतावनाहारकः शेषकालमाहारकः, ननु संज्ञी समनस्क उच्यते, विग्रहगतौ च मनो नास्ति ततः कथं संज्ञी सन्ननाहारको लभ्यते ?, उच्यते, इह विग्रहगत्यापन्नोऽपि संज्ञायुष्कवेदनात् संज्ञी व्यवह्रियते, यथा नारकायुष्कवेदनान्नारकस्ततो न कश्चिद्दोषः, 'एव'मित्यादि, एवमुपदर्शितेन प्रकारेण तावद् वक्तव्यं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३०९] + गाथा

दीप अनुक्रम [५५८-५६१]

यावद्वैमानिको—वैमानिकसूत्रं, नवरमेकेन्द्रिया विकलेन्द्रिया न प्रष्टव्याः, किमुक्तं भवति ?—तद्विषयं सूत्रं सर्वथा न वक्तव्यं, तेषाममनस्कतया संज्ञित्वायोगात्, बहुवचनचिन्तायां जीवपदे नैरयिकादिपदेषु च प्रत्येकं सर्वत्र भङ्गत्रयं, तद्यथा—सर्वेऽपि तावद् भवेयुराहारकाः १ अथवा आहारकाश्च अनाहारकश्च २ अथवा आहारकाश्च अनाहारकाश्च ३, तथा चाह—'जीवातीतो तियभंगो जाव वेमाणिया' इति, तत्र सामान्यतो जीवपदे प्रथमभङ्गः सकललोकापेक्षया संज्ञित्वेनोत्पातविरहाभावात् द्वितीयभङ्ग एकस्मिन् संज्ञिनि विग्रहगत्यापन्ने तृतीयभङ्गो बहुषु संज्ञिषु विग्रहगत्यापन्नेषु, एवं नैरयिकादिपदेष्वपि भङ्गभावना कार्या, 'असण्णी णं भंते !' इत्यादि, अत्रापि विग्रहगतावनाहारकः शेषकालमाहारकः, 'एवं जाव वाणमंतरे' इति एवं—सामान्यतो जीवपद इव चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण तावत् वक्तव्यं यावद्वानमन्तरो—वानमंतरविषयं सूत्रं, अथ नैरयिका भवनपतयो वानमन्तराश्च कथमसंज्ञिनो येनासंज्ञिसूत्रे तेऽपि पठ्यन्ते इति ?; उच्यते, इह नैरयिका भवनपतयो व्यन्तराश्चासंज्ञिभ्योऽपि उत्पद्यन्ते संज्ञिभ्योऽपि, असंज्ञिभ्यश्च उत्पद्यमाना असंज्ञिन इति व्यवहियन्ते संज्ञिभ्य उत्पद्यमानाः संज्ञिनः, ततोऽसंज्ञिसूत्रेऽपि ते उक्तप्रकारेण पठ्यन्ते, ज्योतिष्कवैमानिकास्तु संज्ञिभ्य एवोत्पद्यन्ते नासंज्ञिभ्य इति असंज्ञित्वव्यवहाराभावादिह ते न पठ्यन्ते, तथा चाह—'जोइसियवेमाणिया न पुच्छिज्जंति' किमुक्तं भवति ?—तद्विषयं सूत्रं न वक्तव्यं, तेषामसंज्ञित्वाभावादिति, बहुवचनचिन्तायां सामान्यतो जीवपदे एक एव भङ्गः, तद्यथा—आहारका अपि अनाहारका अपि, प्रतिसमयमेके-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

न्द्रियाणामनन्तानां विग्रहगत्यापन्नानामत एवानाहारकाणां सदैव लभ्यमानतया अनाहारकपदेऽपि सर्वदा बहुवचनभावात्, नैरयिकपदे षट् भङ्गाः, तत्र प्रथमो भङ्ग आहारका इति, अयं च भङ्गो यदाऽन्योऽसंज्ञिनारकः उत्पद्यमानो विग्रहगत्यापन्नो न लभ्यते पूर्वोत्पन्नास्त्वसंज्ञिनः सर्वेऽप्याहारका जातास्तदा लभ्यते, द्वितीयोऽनाहारका इति, एष यदा पूर्वोत्पन्नोऽसंज्ञी नारक एकोऽपि न विद्यते उत्पद्यमानास्तु विग्रहगत्यापन्ना बहवो लभ्यन्ते तदा विज्ञेयः, तृतीय आहारकश्च अनाहारकश्च, द्वित्वेऽपि प्राकृते बहुवचनमिति बहुवचनचिन्तायामेषोऽपि भङ्गः समीचीन इत्युपन्यस्तः, तत्र यदा चिरकालोत्पन्न एकोऽसंज्ञी नारको विद्यते अधुनोत्पद्यमानोऽपि विग्रहगत्यापन्न एकस्तदाऽयं भङ्गः, चतुर्थः आहारकश्च अनाहारकाश्च एष चिरकालोत्पन्ने एकस्मिन्नसंज्ञिनि नारके विद्यमाने अधुनोत्पद्यमानेषु असंज्ञिषु विग्रहगत्यापन्नेषु द्रष्टव्यः, पञ्चमः—आहारकाश्च अनाहारकश्च, अयं चिरकालोत्पन्नेषु बहुषु असंज्ञिषु नारकेषु सत्सु अधुनोत्पद्यमाने विग्रहगत्यापन्ने एकस्मिन्नसंज्ञिनि विज्ञेयः, षष्ठ आहारकाश्च अनाहारकाश्च, एष बहुषु चिरकालोत्पन्नेषूत्पद्यमानेषु चासंज्ञिषु वेदितव्यः, 'एवमेते छब्भंगा' एवमुपदर्शितप्रकारेण एते षट् भंगाः, तद्यथा–आहारकपदस्य केवलस्य बहुवचनेनैकः १, अनाहारकपदस्य केवलस्य बहुवचनेन द्वितीयः २, आहारकपदस्यानाहारकपदस्य च युगपत् प्रत्येकमेकवचनेन तृतीयः ३, आहारकपदस्यैकवचनेन अनाहारकपदस्य बहुवचनेन चतुर्थः ४, आहारकपदस्य बहुवचनेन अनाहारकपदस्यैकवचनेन पञ्चमः ५, उभयत्रापि बहुवचनेन षष्ठः ६, शेषास्तु भङ्गा न

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३०९] + गाथा

दीप अनुक्रम [५५८--५६१]

सम्भवन्ति, बहुवचनचिन्तायाः प्रक्रान्तत्वात्, एते च षट् भङ्गा असुरकुमारादिष्वपि स्तनितकुमारपर्यवसानेषु वेदितव्याः, तथा चाह—'एवं जाव थणियकुमारा' 'एगिंदिएसु अभंगय'मिति एकेन्द्रियेषु पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिरूपेष्वभङ्गकं—भङ्गकाभाव एक एव भङ्ग इत्यर्थः, स चायं—आहारका अपि अनाहारका अपि, तत्राहारका बहवः सुप्रसिद्धाः, अनाहारका अपि प्रतिसमयं पृथिव्यप्तेजोवायवः प्रत्येकमसङ्ख्येयाः प्रतिसमयं वनस्पतयोऽनन्ताः सर्वकालं लभ्यन्ते इति तेऽपि बहवः सिद्धाः, द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियेषु प्रत्येकं भङ्गत्रिकं, तद्यथा—आहारका अथवा आहारकाश्च अनाहारकश्च अथवा आहारकाश्च अनाहारकाश्च, तत्र द्वीन्द्रियान् प्रति भावना—यदा द्वीन्द्रियं एकोऽपि विग्रहगत्यापन्नो न लभ्यते तदा पूर्वोत्पन्नाः सर्वेऽप्याहारका इति प्रथमो भङ्गः, यदा पुनरेको विग्रहगत्यापन्नस्तदा पूर्वे सर्वेऽप्याहारका उत्पद्यमानस्त्वेकोऽनाहारक इति, यदा तूत्पद्यमाना अपि बहवो लभ्यन्ते तदा तृतीयः, एवं त्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियेष्वपि भावना कर्त्तव्या, मनुष्यव्यन्तरेषु षट् भङ्गाः, ते च नैरयिकेष्विव भावनीयाः, तथा चाह—'बेइंदिय जाव पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु तियभंगो, मणूसवाणमंतरेसु छब्भंगा' इति, नोसंज्ञीनोअसंज्ञी च केवली सिद्धश्च ततो नोसंज्ञिनोअसंज्ञित्वचिन्तायां त्रीणि पदानि, तद्यथा—जीवपदं मनुष्यपदं सिद्धपदं च, तत्र जीवपदे सूत्रमाह—'नोसण्णीनोअसण्णी णं भंते ! जीवे' इत्यादि, स्यात्—कदाचिदाहारकः केवलिनः समुद्घाताद्यवस्थाविरहे आहारकः (कत्वात्), स्यात्—कदाचिदनाहारकः, समुद्घातावस्थायां अयो-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गित्वावस्थायां सिद्धावस्थायां वा भावनीयं, 'सिद्धे अणाहारए' इति सिद्धे—सिद्धविषये सूत्रे 'अणाहारए' इति वक्तव्यं, 'पुहुत्तेणं'ति पृथक्त्वेन बहुत्वेन चिन्तायामिति प्रक्रमः, 'आहारगावि अणाहारगावि' तत्राहारका अपि बहूनां केवलिनां समुद्घाताद्यवस्थारहितानां सदैव लभ्यमानत्वात्, अनाहारका अपि सिद्धानां सदैव भावात्तेषां चानाहारकत्वादिति, 'मणुस्सेसु तियभंगो' इति मनुष्यविषयं भङ्गत्रिकं, तद्यथा—आहारका एष भङ्गो यदा न कोऽपि केवली समुद्घाताद्यवस्थागतो भवति, अथवा आहारकाश्च अनाहारकश्च एष भङ्ग एकस्मिन् केवलिनि समुद्घाताद्यवस्थागते सति लभ्यते, अथवा आहारकाश्च अनाहारकाश्च एष बहुषु केवलिसमुद्घाताद्यवस्थागतेषु सत्सु वेदितव्यः । लेश्याद्वारे सामान्यतः सलेश्यसूत्रमाह—

सलेसे णं भंते ! जीवे किं आहारए अणाहारए ?, गो० ! सिय आहारए सिय अणाहारए, एवं जाव वेमाणिते, सलेसा णं भंते ! जीवा किं आहारगा अणाहारगा ?, गो० ! जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो, एवं कण्हलेसावि नीललेसावि काउलेसावि जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो, तेउलेसाए पुढविआउवणस्सइकाइयाणं छब्भंगा, सेसाणं जीवादिओ तियभंगो जेसिं अत्थि तेउलेसा, पम्हलेसाए सुक्कलेसाए य जीवादिओ तिभंगो, अलेसा जीवा मणुस्सा सिद्धा य एगत्तेणवि पुहुत्तेणवि नो आहारगा अणाहारगा, दारं ४ । सम्मद्दिट्ठी णं भंते ! जीवा किं आहा० अणा०?, गो० ! सिय आहा० सिय अणा०, बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया छब्भंगा, सिद्धा अणाहारगा, अवसेसाणं तियभंगो, मिच्छादिट्ठीसु जीवेगिंदियवज्जो तिय-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	अत्र (२८) आहार-पदे प्रथमे उद्देशके द्वाराणि (४, ५, ६, ७) 'लेश्या', 'दृष्टि:', 'संयत', 'कषाय' आरब्धानि

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१५],उपांगसूत्र-[४] "प्रज्ञापना" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [३१०]

दीप अनुक्रम [५६२--५६५]

भंगो, सम्मामिच्छादिट्ठी णं भंते ! किं आहा० अणा० ?, गो० ! आहारते नो अणा०, एवं एगिंदियविगलिंदियवज्जं जाव वेमाणिते, एवं पुहुत्तेणवि । दारं ५ । संजए णं भंते ! जीवे किं आहा० अणा० ?, गो० ! सिय आहारए सिय अणाहारए, एवं मणूसेवि, पुहुत्तेणं तियभंगो । असंजते पुच्छा, सिय आहारए सिय अणाहारए, पुहुत्तेणं जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो । संजतासंजते णं जीवे० पंचिंदियतिरिक्खजोणिते मणूसे य ३ एते एगत्तेणवि पुहुत्तेणवि आहारगा नो अणा०, नोसंजतेनोअसंजतेनोसंजतासंजते जीवे सिद्धे य एते एगत्तेण पोहत्तेणवि नो आहा० अणा०, दारं ६ । सकसाई णं भंते ! जीवे किं आहारए अणा० ?, गो० ! सिय आ० सिय अणाहारते, एवं जाव वेमाणिता, पुहुत्तेणं जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो, कोहकसाईसु जीवादीसु एवं चेव, नवरं देवेसु छब्भंगा, माणकसाईसु मायाकसाईसु य देवनेरइएसु छब्भंगा, अवसेसाणं जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो, लोहकसाईसु नेरइएसु छब्भंगा, अवसेसेसु जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो, अकसाई जहा णोसण्णीणोअसण्णी, दारं ७ ॥ (सूत्रं ३१०)

'सलेसे णं भंते ! जीवे' इत्यादि, इदं सामान्यतो जीवसूत्रमिव भावनीयं, अत्रापि सिद्धसूत्रं न वक्तव्यं, सिद्धानामलेश्यत्वात्, बहुवचनचिन्तायां जीवपदे एकेन्द्रियेषु च पृथिव्यादिषु प्रत्येकमेक एव भङ्गस्तद्यथा—आहारका अपि अनाहारका अपि, उभयेषामपि सदा बहुत्वेन लभ्यमानत्वात्, शेषेषु तु नैरयिकादिषु पदेषु तु प्रत्येकं भङ्गत्रिकं, तद्यथा—सर्वेऽपि तावद्भवेयुराहारकाः १, अथवा आहारकाश्च अनाहारकश्च २, अथवा आहारकाश्च अनाहारकाश्च

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३१०]

दीप अनुक्रम [५६२--५६५]

३, अमीषां च भावना प्राग्वत्, तथा चाह—'जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो' इति, 'एव'मित्यादि, एवं यथा सामान्यतः सलेश्यसूत्रमुक्तं तथा कृष्णलेश्याविषयमपि नीललेश्याविषयमपि कापोतलेश्याविषयमपि सूत्रं वक्तव्यं, सर्वत्र सामान्यतो जीवपदे एकेन्द्रियेषु च प्रत्येकमभङ्गकं, शेषपक्षे भङ्गत्रिकं, तेजोलेश्याविषयमपि सूत्रमेकत्वे प्राग्वत्, बहुत्वे पृथिव्यब्वनस्पतिषु षट् भङ्गाः, तेषु कथं तेजोलेश्यासम्भव इति चेत् ?, उच्यते, भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्क-सौधर्मेशानदेवानां तेजोलेश्यावतां तत्रोत्पादभावात्, उक्तं चास्या एव भगवत्याः प्रज्ञापनायाश्चूर्णौ—'जेणेतेसु भवण-वइवाणमंतरजोइसियसोहम्मीसाणया देवा उववज्जंति तेणं तेउलेस्सा लब्भइ" इति, ते षट् भङ्गा इमे—सर्वे आ-हारकाः १ अथवा सर्वे अनाहारकाः २ अथवा आहारकश्चानाहारकश्च ३ अथवा आहारकश्च अनाहारकाश्च ४ अथ-वा आहारकाश्च अनाहारकश्च ५ अथवा आहारकाश्चानाहारकाश्च ६, शेषाणां जीवपदादारभ्य सर्वत्रापि भङ्गत्रिकं, तथा चाह—'तेउलेस्साए पुढविआउवणस्सइकाइयाणं छब्भंगा, सेसाणं जीवाईओ तियभंगो' इति, आह—किं सर्वेषामविशेषेण जीवपदादारभ्य भङ्गत्रिकमुत केषांचिदत आह—'जेसिं अत्थि तेउलेसा' इति, येषामस्ति तेजोले-श्या तेषामेव भङ्गत्रिकं वक्तव्यं, न शेषाणां, एतेन किमावेदितं भवति ?,—नैरयिकविषयं तेजोवायुविषयं द्वित्रिचतुरि-

१ श्रीहरिभद्रसूरिवरविहिता प्रज्ञापनाप्रदेशव्याख्यारूपैवेयं नत्वन्या काचिच्चूर्णिः, अस्ति च तत्रायं पाठः समग्रः, स्पष्टं च श्रावकधर्मप-ञ्चाशकवृत्तौ औपपातिकाद्यानामुपाङ्गानां चूर्ण्यभाव इति प्रतिपादनम् ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

न्द्रियविषयं च तेजोलेश्यासूत्रं न वक्तव्यमिति, तथा पद्मलेश्या शुक्ललेश्या च येषां सम्भवति तद्विषयं तयोः सूत्रं वक्तव्यं, तत्र पद्मलेश्या शुक्ललेश्या च तिर्यक्पञ्चेन्द्रियेषु मनुष्येषु वैमानिकेषु च लभ्यते न शेषेष्विति तयोः प्रत्येकं चत्वारि पदानि, तद्यथा—सामान्यतो जीवपदं तिर्यक्पञ्चेन्द्रियपदं मनुष्यपदं वैमानिकपदं च, सर्वत्राप्येकवचनचिन्तायां स्यादाहारकः स्यादनाहारक इति भङ्गः, बहुवचनचिन्तायां भङ्गत्रिकं, तद्यथा–सर्वेऽपि तावद् भवेयुराहारकाः १ अथवा आहारकाश्च अनाहारकश्च २ अथवा आहारकाश्चानाहारकाश्च ३, तथा चाह–'पम्हलेसाए सुक्कलेसाए जीवाइओ तियभंगो'त्ति, अलेश्या–लेश्यातीतास्ते चायोगिकेवलिनः सिद्धाश्च, ततोऽत्र त्रीणि पदानि, तद्यथा–सामान्यतो जीवपदं मनुष्याः सिद्धाश्च, सर्वत्राप्येकवचनेन बहुवचनेन चानाहारका एव वक्तव्याः, एतदेवाह—'अलेस्सा जीवा मणुस्सा सिद्धा य एगत्तेणवि पुहुत्तेणवि नो आहारगा अणाहारगा' इति, गतं लेश्याद्वारम् । सम्प्रति सम्यग्दृष्टिद्वारम्—सम्यग्दृष्टिश्चेहौपशमिकसम्यक्त्वेन सास्वादनसम्यक्त्वेन क्षायोपशमिकसम्यक्त्वेन वेदकसम्यक्त्वेन क्षायिकसम्यक्त्वेन वा प्रतिपत्तव्यः, सामान्यत उपादानात्, तथैवाग्रे भङ्गचिन्ताया अपि करिष्यमाणत्वात्, तत्रौपशमिकसम्यग्दृष्ट्यादयः सुप्रतीताः, वेदकसम्यग्दृष्टिः पुनः क्षायिकसम्यक्त्वमुत्पादयन् चरमग्रासमनुभवन्नवसेयः, एकत्वे सर्वेष्वपि जीवादिपदेषु प्रत्येकमेष भङ्गः स्यादाहारकः स्यादनाहारक इति, नवरमत्र पृथिव्यादिविषयं सूत्रं न वक्तव्यं, तेषां सम्यग्दृष्टित्वायोगात्, 'उभयाभावो पुढवाइएसु' [उभयाभावः पृथ्व्यादिषु] इति वचनाद्, बहुवचन-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३१०]

दीप अनुक्रम [५६२--५६५]

विषयं सूत्रं, सामान्यतो जीवपदे आहारका अपि अनाहारका अपि इत्येष एव भङ्गः, उभयेषामपि सदा सम्यग्दृष्टीनां बहुत्वेन लभ्यमानत्वात्, नैरयिकभवनपतितिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्यव्यन्तरज्योतिष्कवैमानिकेषु प्रत्येकं भङ्गत्रिकं, तद्यथा–कदाचित्सर्वेऽप्याहारका एव १ कदाचिदाहारका एकश्चानाहारकः २, कदाचिदाहारकाश्च अनाहारकाश्च ३, द्वित्रिचतुरिन्द्रियेषु पुनः षड् भङ्गाः, ते च प्राग्वद् भावनीयाः, द्वीन्द्रियादीनां च सम्यग्दृष्टित्वमपर्याप्तावस्थासम्भवि-सास्वादनसम्यक्त्वापेक्षया द्रष्टव्यं, सिद्धास्त्वनाहारकाः, एतेषां क्षायिकसम्यक्त्वयुक्तत्वात्, तथा चाह—'बेइंदियतेइंदियचउरिंदिएसु छब्भंगा, सिद्धा अणाहारगा, अवसेसाणं तियभंगो' मिथ्यादृष्टिष्वपि एकवचने सर्वत्र स्यादाहारकः स्यादनाहारक इति वक्तव्यं, बहुवचने जीवपदे पृथिव्यादिपदेषु च प्रत्येकमाहारका अपि अनाहारका अपीति, उभयेषामपि सर्वदैव तेषु बहुत्वेन लभ्यमानत्वेन, शेषेषु तु सर्वेषु स्थानेषु भङ्गत्रिकं, सिद्धसूत्रं चात्र न वक्तव्यं, सिद्धानां मिथ्यात्वापगमात्, एतदेवाह–'मिच्छादिट्ठीसु जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो, सम्मामिच्छदिट्ठी णं भंते! जीवे' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! आहारको नो अनाहारकः, कस्मादिति चेत्, उच्यते, इह संसारिणामनाहारकत्वं विग्रहगतौ, न च सम्यग्मिथ्यादृष्टित्वं विग्रहगतावुपपद्यते, कालकरणायोगात्, 'सम्मामिच्छो न कुणइ कालं' [सम्यग्मिथ्यादृक् न करोति कालं] इति वचनात्, ततः सम्यग्मिथ्यादृष्टेर्विग्रहगत्यभावतोऽनाहारकत्वाभावः, एवं चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण सर्वत्रापि वक्तव्यं, नवरमेकेन्द्रियविकलेन्द्रिया न वक्तव्याः, तेषां सम्यग्मिथ्यादृष्टित्वा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१५],उपांगसूत्र-[४] "प्रज्ञापना" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३१०]

दीप अनुक्रम [५६२--५६५]

सम्भवात्, एवं बहुवचनेऽपि वक्तव्यं, तद्यथा—'सम्मामिच्छद्दिट्ठी णं भंते ! जीवा किं आहारगा अणाहारगा ?, गो० ! आहारगा नो अणाहारगा, सम्मामिच्छद्दिट्ठी णं भंते ! नेरइया किं आ० अणा० ?, गो० ! आहारगा नो अणाहारगा, एवमेगिंदियविगलिंदियवज्जा जाव वेमाणिया' इति । गतं दृष्टिद्वारं, सम्प्रति संयतद्वारं—संयतत्वं च मनुष्याणामेव, तत्र द्वे पदे, तद्यथा—जीवपदं मनुष्यपदं च, तत्र जीवपदे सूत्रमाह—'संजए णं भंते ! जीवे' इत्यादि सुगमं, नवरमनाहारकत्वं केवलिसमुद्घातावस्थायामयोगित्वावस्थायां च वेदितव्यं, शेषकालमाहारकत्वं, 'एवं मणूसेवि'त्ति एवं मनुष्यविषये सूत्रं वक्तव्यं, तद्यथा—'संजए णं भंते ! मणूसे किं आहारए अणाहारए ?, गो० ! सिय आहारए सिय अणाहारए' भावनाऽनन्तरमेवोक्ता, 'पुहुत्तेणं तियभंगो'त्ति पृथक्त्वेन—बहुवचनेन जीवपदे मनुष्यपदे च प्रत्येकं भङ्गत्रिकं, तच्चैवं—सर्वेऽपि तावद्भवेयुराहारकाः, एष भङ्गो यदा न कोऽपि केवली समुद्घातमयोगित्वं वा प्रतिपन्नो भवति तदा वेदितव्यः, अथवा आहारकाश्चानाहारकश्च, एष एकस्मिन् केवलिनि समवहते शैलेशीं वा गते प्राप्यते, अथवा आहारकाश्चानाहारकाश्च, एष बहुषु केवलिषु समवहतेषु शैलेशीगतेषु वा लभ्यते । असंयतसूत्रे एकवचने सर्वत्र स्यादाहारकः स्यादनाहारक इति वक्तव्यं, बहुवचने जीवपदे पृथिव्यादिषु च पदेषु प्रत्येकमाहारका अपि अनाहारका अपि इत्येष भङ्गः, शेषेषु तु नैरयिकादिषु स्थानेषु प्रत्येकं भङ्गत्रिकं, संयतासंयता—देशविरताः, ते च तिर्यक्पञ्चेन्द्रिया मनुष्या वा न शेषाः, शेषाणां स्वभावत एव देशविरतिपरिणामाभावाद्, एवं चैतेषां त्रीणि पदा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नि, तद्यथा—सामान्यतो जीवपदं तिर्यक्पञ्चेन्द्रियपदं मनुष्यपदं च, एतेषु त्रिष्वपि स्थानेषु एकवचने बहुवचने च आहारका भवन्ति, भवान्तरगतौ केवलिसमुद्घाताद्यवस्थासु च देशविरतिपरिणामाभावात्, नोसंयतोनोअसंयतो-नोसंयतासंयतः, तच्चिन्तायां द्वे पदे, तद्यथा–जीवपदं सिद्धपदं च, उभयत्राप्येकवचने बहुवचने चानाहारकत्वमेव वक्तव्यं, न त्वाहारकत्वं, सिद्धानामनाहारकत्वात्। गतं संयतद्वारं, कषायद्वारं–'सकसाई णं भंते! जीवे' इत्यादि, एकवचनविषयं सूत्रं सुगमं, बहुवचने 'जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो'त्ति जीवपदे पृथिव्यादिषु च पञ्चसु पदेषु प्रत्येकं आहारका अपि अनाहारका अपि वक्तव्यं, उभयेषामपि सकषायाणां सदैव तेषु स्थानेषु बहुत्वेन लभ्यमानत्वात्, शेषेषु तु स्थानेषु भङ्गत्रिकं, 'कोहकसाई एवं चेव'त्ति क्रोधकषाय्यपि एवमेव—सामान्यतः सकषायवदवसेयः, तत्रापि जीवपदे पृथिव्यादिपदेषु चाभङ्गकं, शेषेषु तु स्थानेषु भङ्गत्रिकमिति भावः, किं सर्वेष्वपि शेषेषु स्थानेषु भङ्गत्रिकं?, नेत्याह–'नवरं 'देवेसु छब्भंगा' देवा हि स्वभावत एव लोभबहुला भवन्ति न क्रोधादिबहुलाः, ततः क्रोधकषायिण एकादयोऽपि लभ्यन्ते इति षड् भङ्गाः, तद्यथा–कदाचित् सर्वेऽप्याहारका एव क्रोधकषायिणः, एकस्यापि विग्रहगत्यापन्नस्यालभ्यमानत्वात् १, कदाचित्–सर्वेऽप्यनाहारकाः २, एकस्यापि क्रोधकषायिणः सत आहारकस्याप्राप्यमानत्वात्, क्रोधोदयो हि मानाद्युदयविविक्त एवेह विवक्ष्यते न मानाद्युदयसहितोऽपि, तेन क्रोधकषायिणः सतः कदाचिदाहारकस्य सर्वथाऽप्यभावः, तथा कदाचिदेक आहारक एकोऽनाहारकः ३ कदाचिदेक आहारको बहवोऽनाहा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

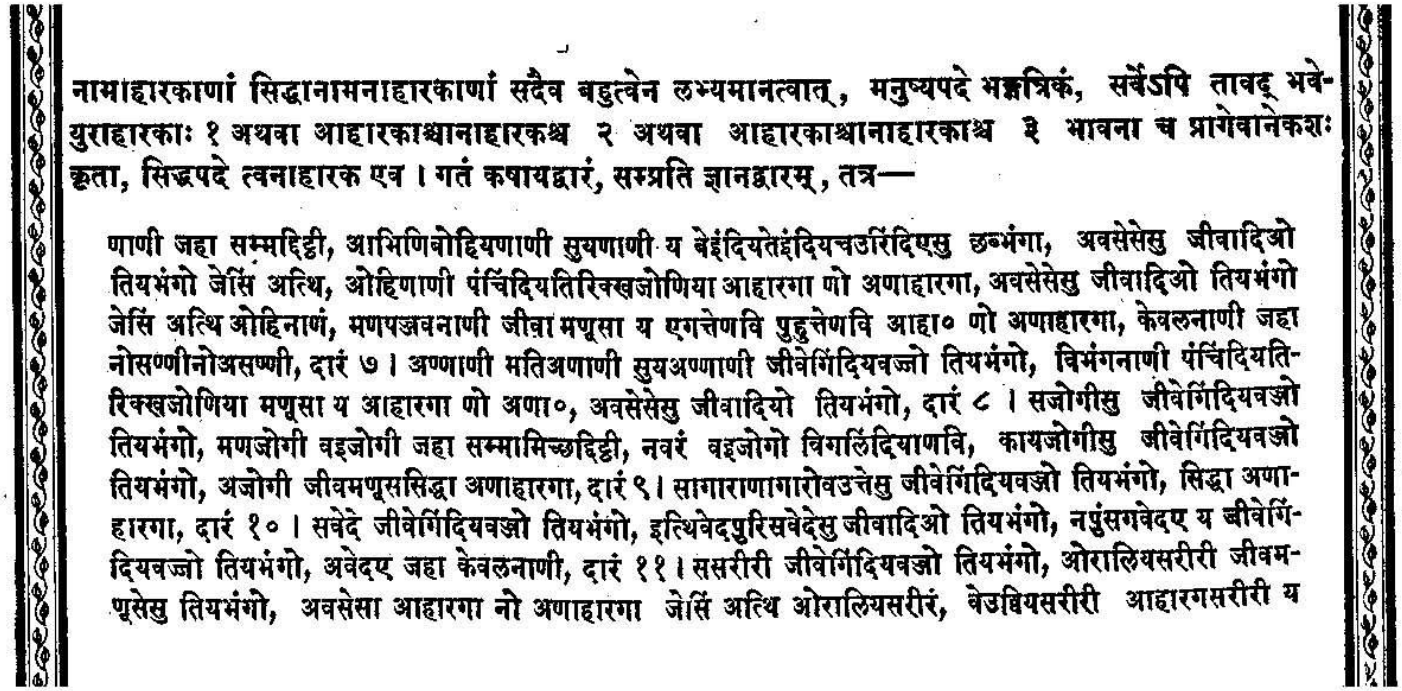
रकाः ४, कदाचिद्बहव आहारका एकोऽनाहारकः ५, कदाचिद्बहव आहारकाः बहवश्चानाहारका इति ६, मानकषायसूत्रं मायाकषायसूत्रं चैकवचने प्राग्वत्, बहुवचने विशेषमाह—'माणकसाईसु' इत्यादि, मानकषायिषु मायाकषायिषु बहुवचनेन चिन्त्यमानेषु देवेषु नैरयिकेषु च प्रत्येकं षड् भङ्गाः, नैरयिका हि भवस्वभावतः क्रोधबहुलाः देवास्तु लोभबहुलास्ततो देवानां नैरयिकाणां च मानकषायो मायाकषायश्च प्रविरल इति प्रागुक्तप्रकारेण षट् भङ्गाः, जीवपदे पृथिव्यादिपदेषु च प्रत्येकमभङ्गकमाहारकाणामनाहारकाणां च मानकषायिणां मायाकषायिणां च प्रत्येकं सदैव तेषु २ स्थानेषु बहुत्वेन लभ्यमानत्वात्, शेषेषु तु स्थानेषु भङ्गत्रिकं, लोभकषायसूत्रमप्येकवचने तथैव, बहुवचने विशेषमाह—'लोभकसाईसु' इत्यादि, लोभकषायिषु नैरयिकेषु षट् भङ्गास्तेषां लोभकषायस्याल्पत्वात्, शेषेषु तु जीवैकेन्द्रियवर्जेषु स्थानेष्वपि भङ्गत्रिकं, देवेष्वपि भङ्गत्रिकमिति भावः, तेषां लोभबहुलतया षड्भङ्गासम्भवात्, जीवैकेन्द्रियेषु च प्राग्वदेष एव भङ्गः, आहारका अप्यनाहारका अपि इति, 'अकसाई जहा नोसण्णीणोअसण्णी'ति अकषायिणो यथा नोसंज्ञिनोऽसंज्ञिन उक्तास्तथा वक्तव्याः, किमुक्तं भवति ?—अकषायिणोऽपि मनुष्याः सिद्धाश्च, मनुष्या उपशान्तकषायादयो वेदितव्याः, अन्येषां सकषायित्वात्, तत एतेषामपि त्रीणि पदानि, तद्यथा—सामान्यतो जीवपदं मनुष्यपदं सिद्धपदं च, तत्र सामान्यतो जीवपदे मनुष्यपदे च प्रत्येकमेकवचने स्यादाहारकः स्यादनाहारक इति वक्तव्यं, सिद्धपदे त्वनाहारक एवेति, बहुवचने जीवपदे आहारका अपि अनाहारका अपीति, केवलि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१५],उपांगसूत्र-[४] “प्रज्ञापना” मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [३१०]

दीप अनुक्रम [५६२--५६५]



नामाहारकाणां सिद्धानामनाहारकाणां सदैव बहुत्वेन लभ्यमानत्वात्, मनुष्यपदे भङ्गत्रिकं, सर्वेऽपि तावद् भवेयुराहारकाः १ अथवा आहारकाश्चानाहारकश्च २ अथवा आहारकाश्चानाहारकाश्च ३ भावना च प्रागेवानेकशः कृता, सिद्धपदे त्वनाहारक एव । गतं कषायद्वारं, सम्प्रति ज्ञानद्वारम्, तत्र—

णाणी जहा सम्मद्दिट्ठी, आभिणिबोहियणाणी सुयणाणी य बेइंदियतेइंदियचउरिंदिएसु छब्भंगा, अवसेसेसु जीवादिओ तियभंगो जेसिं अत्थि, ओहिणाणी पंचिंदियतिरिक्खजोणिया आहारगा णो अणाहारगा, अवसेसेसु जीवादिओ तियभंगो जेसिं अत्थि ओहिनाणं, मणपज्जवनाणी जीवा मणूसा य एगत्तेणवि पुहुत्तेणवि आहा० णो अणाहारगा, केवलनाणी जहा नोसण्णीनोअसण्णी, दारं ७ । अण्णाणी मतिअणाणी सुयअण्णाणी जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो, विभंगनाणी पंचिंदियतिरिक्खजोणिया मणूसा य आहारगा णो अणा०, अवसेसेसु जीवादियो तियभंगो, दारं ८ । सजोगीसु जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो, मणजोगी वइजोगी जहा सम्मामिच्छद्दिट्ठी, नवरं वइजोगो विगलिंदियाणवि, कायजोगीसु जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो, अजोगी जीवमणूससिद्धा अणाहारगा, दारं ९। सागाराणागारोवउत्तेसु जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो, सिद्धा अणाहारगा, दारं १० । सवेदे जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो, इत्थिवेदपुरिसवेदेसु जीवादिओ तियभंगो, नपुंसगवेदए य जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो, अवेदए जहा केवलनाणी, दारं ११ । ससरीरी जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो, ओरालियसरीरी जीवमणूसेसु तियभंगो, अवसेसा आहारगा नो अणाहारगा जेसिं अत्थि ओरालियसरीरं, वेउव्वियसरीरी आहारगसरीरी य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र (२८) आहार-पदे प्रथमे उद्देशके द्वाराणि (८, ९, १०, ११, १२, १३) ‘ज्ञानं’, ‘योग:’, ‘उपयोग, ‘वेद’, शरीरं,’ पर्याप्ति:’ आरब्धानि

आहारगा नो अणा० जेसिं अत्थि, तेयकम्मसरीरी जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो, असरीरी जीवा सिद्धा य नो आहारगा अणा० दारं १२, आहारपज्जत्तीए पज्जत्ते सरीरपज्जत्तीए पज्जत्ते इंदियपज्जत्तीए पज्जत्ते आणापाणपज्जत्तीए पज्जत्ए भासामणपज्जत्तीए पज्जत्ते एतासु पंचसुवि पज्जत्तीसु जीवेसु मणूसेसु य तियभंगो, अवसेसा आहारगा नो अणाहारगा, भासामणपज्जत्ती पंचिंदियाणं अवसेसाणं नत्थि, आहारपज्जत्तीअपज्जत्तए णो आहारए अणा०, एगत्तेणवि पुहुत्तेणवि, सरीरपज्जत्तीअपज्जत्तए सिय आहारए सिय अणाहारए, उवरिल्लियासु चउसु अपज्जत्तीसु नेरइयदेवमणूसेसु छब्भंगा, अवसेसाणं जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो, भासामणपज्जत्तएसु जीवेसु पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु य तियभंगो, नेरइयदेवमणुएसु छब्भंगा, सव्वपदेसु एगत्तपोहत्तेणं जीवादिया दंडगा पुच्छाए भाणितव्वा जस्स जं अत्थि तस्स तं पुच्छिज्जति जस्स जं णत्थि तस्स तं न पुच्छिज्जति जाव भासामणपज्जत्तीअपज्जत्तएसु नेरइयदेवमणुएसु छब्भंगा, सेसेसु तियभंगो (सूत्रं ३११) आहारपयस्स बितिओ उद्देसो समत्तो ॥ अट्ठावीसइमं पयं समत्तं ॥ २८ ॥

'नाणी जहा सम्मद्दिट्ठि'त्ति ज्ञानी यथा प्राक् सम्यग्दृष्टिरुक्तस्तथा वक्तव्यः, तद्यथा—नाणी णं भंते ! जीवे किं आहारए अणाहारए ?, गो० ! सिय आहारए सिय अणाहारए, नाणी णं भंते ! नेरइए किं आहारए अणाहारए ?, गो० ! सिय आ० सिय अणाहारए, एवं एगिंदियवज्जं जाव वेमाणिए, नाणी णं भंते ! जीवा किं आहारगा अणाहारगा ?, गो० ! आहारगावि अणाहारगावि, नाणी णं भंते ! नेरइया किं आहारगा अणाहारगा ?, गो० ! सव्वेवि ताव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३११]

दीप अनुक्रम [५६६--५७१]

होज्ज आहारगा १, अहवा आहारगा य अणाहारगे य २ अहवा आहारगा य अणाहारगा य ३, एवं जाव थणियकुमारा, बेइंदियाणं पुच्छा, गो० ! सव्वेवि ताव होज्ज आहारगा य १ अहवा अणाहारगा य २ अहवा आहारए य अणाहारए य ३, अहवा आहारगे य अणाहारगा य ४, अहवा आहारगा य अणाहारगे य ५, अहवा आहारगा य अणाहारगा य ६, एवं तेइंदियचउरिंदियावि भाणितव्वा, अवसेसा जाव वेमाणिया जहा नेरइया, सिद्धाणं पुच्छा, गो० ! अणाहारगा य' इति, आभिनिबोधिकज्ञानिसूत्रे श्रुतज्ञानिसूत्रे चैकवचने प्राग्वदवसेयं, बहुवचने द्वित्रिचतुरिन्द्रियेषु षड् भङ्गाः, अवशेषेषु तु जीवादिषु स्थानेषु एकेन्द्रियवर्जेषु भङ्गत्रिकं, तच्चैवम्—'आभिनिबोहियनाणी णं भंते ! जीवा किं आहारगा अणाहारगा ?, गो० ! सव्वेवि ताव होज्ज आहारगा १ अहवा आहारगा य अणाहारगे य २ अहवा आहारगा य अणाहारगा य ३ इत्यादि, तथा चाह—'आभिणिबोहियनाणी सुयनाणी य बेइंदियतेइंदियचउरिंदिएसु छब्भंगा, अवसेसेसु जीवाइओ तियभंगो, जेसिं अत्थि' इति सुगमं, नवरं 'जेसिं अत्थि' येषां जीवानामाभिनिबोधिकज्ञानश्रुतज्ञाने स्तस्तेषु भङ्गत्रिकं वक्तव्यं, न शेषेषु पृथिव्यादिष्विति, अवधिज्ञानसूत्रमेकवचने तथैव, बहुवचनचिन्तायां पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिका आहारका एव न त्वनाहारकाः, कस्मादिति चेत्, उच्यते, इह पञ्चेन्द्रियतिरश्चामनाहारकत्वं विग्रहगतौ, न च तदानीं तेषां गुणप्रत्ययतोऽवधिसम्भवो, गुणानामेवासम्भवात्, नाप्यप्रतिपतितावधिर्देवो मनुष्यो वा तिर्यक्षूत्पद्यते, ततोऽवधिज्ञानिनः सतः पञ्चेन्द्रियतिरश्चोऽनाहारकत्वायोगः, शेषेषु तु स्थानेष्वेकेन्द्रिय-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विकलेन्द्रियवर्जेषु प्रत्येकं भङ्गत्रिकं, तदेवाह–'ओहिनाणी णं पंचिंदियतिरिक्खजोणिया आहारगा अवसेसेसु जीवाइओ तियभंगो जेसिं अत्थि ओहिणाण'मिति, मनःपर्यायज्ञानं मनुष्याणामेव, ततो द्वे पदे, तद्यथा—जीवपदं मनुष्यपदं च, उभयत्रापि चैकवचने बहुवचने च मनःपर्यायज्ञानिन आहारका एव वक्तव्याः, न त्वनाहारकाः, विग्रहगत्याद्यवस्थायां मनःपर्यायज्ञानासम्भवात्, केवलज्ञानी यथा प्राग् नोसंज्ञीनोअसंज्ञी उक्तस्तथा वक्तव्यः, किमुक्तं भवति ?—केवलज्ञान-चिन्तायामपि त्रीणि पदानि, तद्यथा—सामान्यतो जीवपदं मनुष्यपदं सिद्धपदं च, तत्र सामान्यतो जीवपदे मनुष्य-पदे चैकवचने स्यादाहारकः स्यादनाहारक इति वक्तव्यं, सिद्धपदे त्वनाहारक इति, बहुवचने सामान्यतो जीवपदे आहारका अपि अनाहारका अपि, मनुष्यपदे भङ्गत्रिकं, तच्च प्रागेवोपदर्शितं, सिद्धपदे त्वनाहारका अपि। अज्ञानिसूत्रं मत्यज्ञानिसूत्रं श्रुताज्ञानिसूत्रं एकवचने प्रागिव, बहुवचनचिन्तायां जीवपदे एकेन्द्रियेषु च पृथिव्यादिषु प्रत्येकमाहा-रका अनाहारका अपि इति वक्तव्यं, शेषेषु तु भङ्गत्रिकं, विभङ्गज्ञानिसूत्रमप्येकवचने तथैव, बहुवचनचिन्तायां पञ्चे-न्द्रियतिर्यग्योनिका मनुष्याश्चाहारका एव वक्तव्याः, न त्वनाहारकाः, विभङ्गज्ञानसहितस्य विग्रहगत्या तिर्यक्पञ्चेन्द्रि-येषु मनुष्येषु चोत्पत्त्यसम्भवात्, अवशेषेषु स्थानेषु एकेन्द्रियविकलेन्द्रियवर्जेषु प्रत्येकं भङ्गत्रिकं। गतं ज्ञानद्वारं, सम्प्रति योगद्वारं—तत्र सामान्यतः सयोगिसूत्रमेकवचने तथैव, बहुवचने जीवएकेन्द्रियपदानि वर्जयित्वा शेषेषु स्थानेषु भङ्गत्रिकं, जीवपदे पृथिव्यादिपदेषु च पुनः प्रत्येकमाहारका अपि अनाहारका अपीति भङ्गः, उभयेषामपि सदैव तेषु

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३११]

दीप अनुक्रम [५६६--५७१]

स्थानेषु बहुत्वेन लभ्यमानत्वात् 'मणजोगी वइजोगी जहा सम्मामिच्छद्दिट्ठी य'त्ति मनोयोगिनो वाग्योगिनश्च यथा प्राक् सम्यग्मिथ्यादृष्टय उक्तास्तथा वक्तव्याः, एकवचने बहुवचने चाहारका एव वक्तव्या न त्वनाहारका इति भावः, नवरं 'वइजोगो विगलिंदियाणवि'त्ति नवरमिति—सम्यग्मिथ्यादृष्टिसूत्रादत्रायं विशेषः, सम्यग्मिथ्यादृष्टित्वं विकलेन्द्रियाणां नास्तीति तत्सूत्रं तत्र नोक्तं, वाग्योगः पुनर्विकलेन्द्रियाणामप्यस्तीति तत्सूत्रमपि वाग्योगे वक्तव्यं, तच्चैवम्—'मणजोगी णं भंते ! जीवे किं आहारए अणाहारए ?, गो० ! आहारए नो अणाहारए, एवं एगिंदियविगलिंदियवज्जं जाव वेमाणिए, एवं पुहुत्तेणवि, वइजोगी णं भंते ! किं आहा० अणा० ?, गो० ! आहारए नो अणाहारए, एवं एगिंदियवज्जं जाव वेमाणिए, एवं पुहत्तेणवि'त्ति, काययोगिसूत्रमप्येकवचने बहुवचने च सामान्यतः सयोगिसूत्रमिव, अयोगिनो मनुष्याः सिद्धाश्च, तेनात्र त्रीणि पदानि, तद्यथा—जीवपदं मनुष्यपदं सिद्धपदं च, त्रिष्वपि स्थानेष्वेकवचने बहुवचने चानाहारकत्वमेव । गतं योगद्वारं, अधुनोपयोगद्वारमाह—तत्र साकारोपयोगसूत्रे अनाकारोपयोगसूत्रे च प्रत्येकमेकवचने सर्वत्र स्यादाहारकः स्यादनाहारक इति वक्तव्यं, सिद्धपदे त्वनाहारक इति, बहुवचने जीवपदे पृथिव्यादिपदेषु चाहारका अपि अनाहारका अपि इति भङ्गः, शेषेषु भङ्गत्रिकं, सिद्धास्त्वनाहारका इति, सूत्रोल्लेखस्त्वयम्—'सागारोवउत्ते णं भंते ! जीवे किं आहारए अणाहारए ?, गो० ! सिय आहारए सिय अणाहारए' इत्यादि । गतं उपयोगद्वारं, वेदद्वारे सामान्यतः सवेदसूत्रमेकवचने स्यादाहारकः स्यादनाहारक इति, बहुवचने जीव-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३११]

दीप अनुक्रम [५६६--५७१]

पदमेकेन्द्रियांश्च वर्जयित्वा शेषेषु स्थानेषु भङ्गत्रिकं, जीवपदे एकेन्द्रियेषु च पुनः प्रत्येकमभङ्गकं, आहारका अनाहारका अपीति, स्त्रीवेदसूत्रं पुरुषवेदसूत्रं च एकवचने तथैव, नवरमत्र नैरयिकैकेन्द्रियविकलेन्द्रिया न वक्तव्याः, तेषां नपुंसकत्वात्, बहुवचने जीवादिषु पदेषु प्रत्येकं भङ्गत्रिकं, नपुंसकवेदेऽपि सूत्रमेकवचने तथैव, नवरमत्र भवनपति-व्यन्तरज्योतिष्कवैमानिका न वक्तव्यास्तेषामनपुंसकत्वाद्, बहुवचने जीवैकेन्द्रियवर्जेषु भङ्गत्रिकं, जीवपदे एकेन्द्रिय-पदेषु च पृथिव्यादिषु पुनरभङ्गकं प्रागुक्तस्वरूपमिति, अवेदो यथा केवली तथा एकवचने बहुवचने च वक्तव्यः, जीवपदे मनुष्यपदे च एकवचने स्यादाहारकः स्यादनाहारक इति, बहुवचने जीवपदे आहारका अपि अनाहारका अपि, मनुष्येषु भङ्गत्रिकं, सिद्धत्वेऽनाहारका इति वक्तव्यमिति भावः। गतं वेदद्वारं, शरीरद्वारे सामान्यतः शरीरसूत्रे सर्वत्रैकवचने स्यादाहारकः स्यादनाहारक इति, बहुवचने जीवएकेन्द्रियवर्जेषु शेषेषु स्थानेषु प्रत्येकं भङ्गत्रिकं, जीव-पदे पृथिव्यादिपदेषु च प्रत्येकमभङ्गकं प्रागुक्तमिति, औदारिकशरीरसूत्रमेकवचने तथैव, नवरमत्र नैरयिकभवनपति-व्यन्तरज्योतिष्कवैमानिका न वक्तव्यास्तेषामौदारिकशरीराभावात्, बहुवचने जीवपदे मनुष्यपदेषु च प्रत्येकं भङ्ग-त्रिकं, तद्यथा–सर्वेऽपि तावद्भवेयुराहारकाः, एष भङ्गो यदा न कोऽपि केवली समुद्घातगतोऽयोगी वा, अथवा आ-हारकाश्चानाहारकश्च, एष एकस्मिन् केवलिनि समुद्घातगते अयोगिनि वा सति प्राप्यते, अथवा आहारकाश्चाना-हारकाश्च, एष भङ्गो बहुषु केवलिसमुद्घातगतेषु अयोगिषु वा सत्सु वेदयितव्यः, शेषास्त्वेकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रिय-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३११]

दीप अनुक्रम [५६६--५७१]

चतुरिन्द्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रिया आहारका एव वक्तव्याः, न त्वनाहारकाः, विग्रहगत्युत्तीर्णानामेवौदारिकशरीरसम्भवात्, वैक्रियआहारकशरीरिणश्च सर्वेऽप्येकवचने बहुवचने चाहारका एव न त्वनाहारकाः, नवरं येषां वैक्रियमाहारकं वा सम्भवति त एव वक्तव्या नान्ये, तत्र वैक्रियं नैरयिकभवनपतिवायुकायिकतिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्यव्यन्तरज्योतिष्कवैमानिकेषु आहारकं मनुष्यष्वेव, सूत्रोल्लेखश्चायं—'वेउव्वियसरीरी णं भंते ! जीवे किं आहारए अणाहारए ?, गोयमा ! आ० णो अणा०, वेउव्वियसरीरे णं भंते ! णेरइए किं आहारए अणाहारए ?, गो० ! आ० नो अणा०' इत्यादि, तैजसकार्मणशरीरिसूत्रे चैकवचने सर्वत्र स्यादाहारकः स्यादनाहारक इति, बहुवचने जीवैकेन्द्रियवर्जेषु शेषेषु स्थानेषु भङ्गत्रिकं, जीवपदे एकेन्द्रियेषु च पुनरभङ्गकं, अशरीरिणः—सिद्धास्तेन तत्र द्वे एव पदे, तद्यथा—जीवाः सिद्धाश्च, तत्र एकवचने बहुवचने चोभयत्राप्यनाहारका एव । गतं शरीरद्वारं, सम्प्रति पर्याप्तिद्वारम्—तत्रागमे पर्याप्तयः पञ्च, भाषामनःपर्याप्त्योरेकत्वेन विवक्षणात्, तथा चाहारकपर्याप्त्या पर्याप्ते शरीरपर्याप्त्या पर्याप्ते इन्द्रियपर्याप्त्या पर्याप्ते प्राणापानपर्याप्त्या पर्याप्ते भाषामनःपर्याप्त्या पर्याप्ते चिन्त्यमाने, अत्रैव सर्वसङ्कलनामाह—एतासु पञ्चस्वपि पर्याप्तिषु समर्थितासु चिन्त्यमानास्विति शेषः प्रत्येकमेकवचने जीवपदे मनुष्यपदे च स्यादाहारकः स्यादनाहारक इति, शेषेषु तु स्थानेषु आहारक इति, बहुवचने 'जीवेसु मणुस्सेसु य तियभंगो'त्ति जीवपदे मनुष्यपदे च भङ्गत्रिकं वक्तव्यं, तच्चौदारिकशरीरिसूत्रमिव भावनीयं, अवशेषाः सर्वेऽप्याहारका वक्तव्याः, नवरं भाषामनःपर्याप्तिः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चेन्द्रियाणामेवेति तत्सूत्रे एकेन्द्रियविकलेन्द्रिया न वक्तव्याः, किन्तु शेषाः, एतदेवाह—'भासामणपज्जत्ती पंचिंदियाणं अवसेसाणं नत्थि' इति, आहारपर्याप्त्यपर्याप्तकसूत्रे एकवचने सर्वत्राप्यनाहारको वक्तव्यो, नो आहारकः, आहारपर्याप्त्याऽपर्याप्तो विग्रहगतावेव लभ्यते, उपपातक्षेत्रं प्राप्तस्य प्रथमसमय एवाहारपर्याप्त्या पर्याप्तत्वभावाद् अन्यथा तस्मिन् समये आहारकत्वानुपपत्तेः, बहुवचने त्वनाहारका इति, शरीरपर्याप्त्यपर्याप्तसूत्रे एकवचने सर्वत्र स्यादाहारकः स्यादनाहारक इति, तत्र विग्रहगतावनाहारक उपपातक्षेत्रप्राप्तस्तु शरीरपर्याप्तिपरिसमाप्तिं यावदाहारक इति, एवमिन्द्रियपर्याप्त्यपर्याप्तसूत्रे प्राणापानपर्याप्त्यपर्याप्तसूत्रे भाषामनःपर्याप्त्यपर्याप्तसूत्रे च प्रत्येकं एकवचने स्यादाहारकः स्यादनाहारक इति वक्तव्यं, बहुवचने 'उवरिल्लियासु' इत्यादि, उपरितनीषु शरीरापर्याप्तिप्रभृतिषु चतसृषु अपर्याप्तिषु चिन्त्यमानासु प्रत्येकं नैरयिकदेवमनुष्येषु षड् भङ्गा वक्तव्याः, तद्यथा—कदाचित्सर्वेऽप्यनाहारका एव १ कदाचित्सर्वेऽप्याहारका एव २ कदाचिदेक आहारक एकोऽनाहारकः ३ कदाचिदेक आहारको बहवोऽनाहारकाः ४ कदाचिद्बहव आहारकाः एकश्चानाहारकः ५ कदाचिद्बहव आहारका बहवश्चानाहारकाः ६, अवशेषाणां नैरयिकदेवमनुष्यव्यतिरिक्तानां जीवैकेन्द्रियवर्जानां भङ्गत्रिकं वक्तव्यं, तद्यथा—सर्वेऽपि तावद्भवेयुः आहारकाः १ अथवा आहारकाश्च अनाहारकश्च २ अथवा आहारकाश्चानाहारकाश्च ३, जीवपदे एकेन्द्रियपदेषु च पुनः शरीरपर्याप्त्यपर्याप्तसूत्रे इन्द्रियपर्याप्त्यपर्याप्तसूत्रे प्राणापानपर्याप्त्यपर्याप्तसूत्रे च प्रत्येकमभङ्गकं आहारका अपि अनाहारका अपि, उभयेषामपि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

च सदा बहुत्वेन लभ्यमानत्वात्, भाषामनःपर्याप्त्यपर्याप्तकास्त्वेकेन्द्रियविकलेन्द्रिया न भवन्ति, किन्तु पञ्चेन्द्रिया एव, येषां हि भाषामनःपर्याप्तिसम्भवोऽस्ति त एव तत्पर्याप्त्यपर्याप्तकाः प्रोच्यन्ते, न शेषा इति, ततस्तत्सूत्रे बहुवचने जीवपदे पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकपदे च भङ्गत्रिकं, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चो हि सम्मूर्च्छिमाः सदैव बहवो लभ्यन्ते, ततो यावदद्याप्यन्यो विग्रहगत्यापन्नः पञ्चेन्द्रियतिर्यग् न लभ्यते तावदेष भङ्गः—सर्वेऽपि तावद् भवेयुराहारका इति १, एकस्मिन् तस्मिन् विग्रहगत्यापन्ने लभ्यमाने द्वितीयो भङ्गः—आहारकाश्चानाहारकश्चेति २, यदा तु विग्रहगत्यापन्ना अपि बहवो लभ्यन्ते तदा तृतीयो भङ्गः—आहारकाश्चानाहारकाश्चेति ३, जीवपदेऽपि भङ्गत्रिकं एतदपेक्षया प्रत्येयं, नैरयिकदेवमनुष्येषु प्रत्येकं षड् भङ्गाः, ते च प्रागेवोक्ताः, इह भव्यपदादारभ्य प्राय एकत्वेन बहुत्वेन च वैचित्र्येण सूत्राणि जीवादिदण्डकक्रमेण नोक्तानि ततो मा भून्मन्दमतीनां सम्मोह इति तद्विषयमतिदेशमाह—'सवपएसु एगत्ते'त्यादि, एते जीवादयो दण्डकाः सर्वपदेषु—सर्वेष्वपि पदेषु एकत्वेन बहुत्वेन च पृच्छया उपलक्षणमेतन्निर्वचनेन भणितव्याः, किं सर्वत्राप्यविशेषेण कर्त्तव्याः ?, नेत्याह—'जस्से'त्यादि, यस्य यदस्ति तस्य तत्पृच्छ्यते—तद्विषयं सूत्रं भण्यते, यस्य पुनः यन्नास्ति न तस्य तत्प्रष्टव्यं—न तद्विषयं तस्य सूत्रं वक्तव्यमिति भावः, कियदूरं यावदेवं कर्त्तव्यमिति शङ्कायां चरमदण्डकवक्तव्यतामुपदिशति—'जाव भासामणपज्जत्तीए अपज्जत्तएसु' इत्यादि, भावितार्थं, इहाधिकृतार्थभावनार्थमिमाः पूर्वाचार्यप्रतिपादिता गाथाः—"सिद्धेगिंदियसहिया जहिं तु जीवा अभंगयं तत्थ । सिद्धे-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गिंदियवज्जेहिं होइ जीवेहिं तियभंगो ॥१॥ असण्णीसु य नेरइय देवमणुएसु होंति छब्भंगा । पुढविदगतरुगणेसु य छब्भंगा तेउलेसाए ॥ २ ॥ कोहे माणे माया छब्भंगा सुरगणेसु सवेसुं । माणे माया लोभे णेरइएहिंपि छब्भंगा ॥ ॥ ३ ॥ आभिणिबोहियनाणे सुयनाणे खलु तहेव सम्मत्ते । छब्भंगा खलु नियमा वियतियचउरिंदिएसु भवे ॥ ४ ॥ उवरिल्लापज्जत्तीसु चउसु णेरइयदेवमणुएसुं । छब्भंगा खलु नियमा वज्जे पढमा उ अपजत्ती ॥ ५ ॥ सण्णी विसुद्धलेसा संजय हिट्ठिल्ल तिसु य नाणेसु । थीपुरिसाण य वेदेवि छब्भंग अवेय तियभंगो ॥ ६ ॥ सम्मामिच्छामणवइमणनाणे बालपंडियविउवी । आहारसरीरंमि य नियमा आहारया होंति ॥ ७ ॥ ओहिंमि विभंगंमि य नियमा आहारया उ नायवा । पंचिंदिया तिरिच्छा मणुया पुण होंति विब्भंगे ॥ ८ ॥ ओरालसरीरंमि य पज्जत्तीणं च पंचसु तहेव । तियभंगो जियमणुएसु होंति आहारगा सेसा ॥ ९ ॥ णोभवअभविय लेसा अजोगिणो तहय होंति असरीरी । पढमाए अपजत्तीए ते उ नियमा अणाहारा ॥ १० ॥ सन्नासन्नविउत्ता अवेय अकसाइणो य केवलिणो । तियभंग एक्कवयणे सिद्धाऽणाहारया होंति ॥ ११ ॥" एताश्च सर्वा अपि गाथा उक्तार्थप्रतिपादकत्वाद् भावितार्था इति न भूयो भाव्यन्ते ग्रन्थगौरवभयात्, नवरं, 'एकवयणे सिद्धाणाहारया होंति' इति 'एकवयणे' इत्यत्र तृतीयार्थे सप्तमी एकवचनेन एकार्थेनेति भावः, सर्वत्र सिद्धा अनाहारका भवन्तीति विज्ञेयम् ॥ इति श्रीमलयगिरिविरचितायां प्रज्ञापनाटीकायां आहारपदस्य द्वितीय उद्देशकः परिसमाप्तः॥२॥ समाप्तमष्टाविंशतितममाहाराख्यं पदम् ॥२८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र पद (२८) "आहार" परिसमाप्तम्

प्रत सूत्रांक [३१२]

दीप अनुक्रम [५७२]

अथ एकोनत्रिंशत्तमं उपयोगाख्यं पदं ॥ २९ ॥

तदेवमुक्तमष्टाविंशतितममाहाराख्यं पदं, साम्प्रतमेकोनत्रिंशत्तममारभ्यते–अस्य चायमभिसम्बन्धः–इहानन्तरपदे गतिपरिणामविशेष आहारपरिणाम उक्तः, इह तु ज्ञानपरिणामविशेषः उपयोगः प्रतिपाद्यते, तत्र चेदमादिसूत्रम्–

कइविहे णं भंते ! उवओगे पं०?, गो० ! दुविहे उवओगे पं०, तं०–सागारोवओगे य अणागारोवओगे य, सागारोवओगे णं भंते ! कतिविधे पं० ?, गो० ! अट्ठविहे पं०, तं०–आभिणिबोहियनाणसागारोवओगे सुयणाणसागारोवओगे ओहिणाणसा० मणपज्जवनाणसा० केवलनाणसा० मतिअण्णाणसा० सुयअण्णाणसा० विभंगणाणसा०। अणागारोवओगे णं भंते! कतिविहे पं० ?, गो० ! चउव्विहे पं०, तं०—चक्खुदंसणअणागारोवओगे अचक्खुदंसणअणा० ओहिदंसणअणागा० केवलदंसणअणागारोवओगे य। एवं जीवाणं, नेरइयाणं भंते! कतिविधे उवओगे पं०?, गो०! दुविधे उवओगे पं०,तं०—सागारोवओगे य अणागारोवओगे य, नेरइयाणं भंते ! सागारोवओगे कइविहे पं०?, गो० ! छव्विहे पं०, तं०—मतिणाणसागारोवओगे सुयणाणसा० ओहिणाणसा० मतिअण्णाणसा० सुयअण्णाण० विभंगणाणसा०, नेरइया णं भंते! अणागारोवओगे कइविहे पं० तं०?, गो०! तिविहे पं०—चक्खुदंसण० अचक्खुदंसण० ओहिदंसणअणा०, एवं जाव थणियकुमाराणं। पुढविकाइयाणं पुच्छा, गो०! दु० उवओगे पं०, तं०—सागारो० अणागारोव०, पुढवि० सागारोवओगे कतिविधे पं०?, गो०!

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ पद (२९) "उपयोग" आरब्धम्

दु० पं०, तं०—मतिअण्णाण० सुयअ०, पुढविका० अणागारोवओगे कतिविधे पं० ?, गो० ! एगे अचक्खुदंसणअणागारोवओगे पं०, एवं जाव वणप्फइकाइयाणं । बेइंदियाणं पुच्छा, गो० ! दुविधे उवओगे पं०, तं०—सागारोवओगे अणागारोवओगे य, बेइंदियाणं भंते ! सागारोवओगे कतिविधे पं० ?, गो० ! चउव्विहे पं०, तं०—आभिणि० सुय० मतिअण्णाण० सुतअण्णाणसा०, बेइंदियाणं अणा० कइ० पं० ?, गो० ! एगे अचक्खुदंसण० अणागारोवओगे, एवं तेइंदियाणवि, चउरिंदियाणवि एवं चेव, नवरं अणागारोवओगे दुविधे पं० तं०—चक्खुदंसणअणा० अचक्खुदंसणअणा० । पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं जहा नेरइयाणं । मणुस्साणं जहा ओहिए उवओगे भणितं तहेव भाणितव्वं । वाणमंतरजोतिसियवेमाणियाणं भंते !० जहा णेरइयाणं । जीवा णं भंते ! किं सागारोवउत्ता अणागारोवउत्ता ?, गो० ! सागारोवउत्तावि अणा०, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जीवा सागारोवउत्तावि अणा०?, गो०! जे णं जीवा आभिणिबोहियणाण० सुय० ओहि०मण०केवल०मइअण्णाणसुयअण्णाणविभंगणाणोवउत्ता ते णं जीवा सागारोवउत्ता, जे णं जीवा चक्खुदंसणअचक्खुदंसणओहिदंसणकेवलदंसणोवउत्ता ते णं जीवा अणागारोवउत्ता, से तेणट्ठेणं गो० ! एवं वुच्चइ—जीवा सागारोवउत्तावि अणागारो०, नेरइया णं भंते ! किं सागारोवउत्ता अणा० ?, गो० ! नेरइया सागारोवउत्तावि अणागा०, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?, गो०! जे णं नेरइया आभिणिबोहियणाण सुय०ओहि०मतिअण्णाणसुय० विभंगनाणोवउत्ता ते णं नेरइया सागा०, जे णं नेरइया चक्खुदंसणअचक्खुदंसणओहि० ते णं नेरइया अणागारोवउत्ता, से तेणट्ठेणं गो० ! एवं वु० जाव सागारोवउत्तावि अणागारोवउत्तावि, एवं जाव थणियकुमारा । पुढविकाइयाणं पुच्छा, गो० ! तहेव जाव जे णं पुढवि० मतिअण्णाणसुयअ-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ण्णाणोवउत्ता ते णं पुढवि० सागारोव०, जे णं पुढवि० अचक्खुदंसणोवउत्ता ते णं पुढ० अणागारोवउत्ता, से तेणट्ठेणं गो० ! एवं बु० जाव वणप्फइकाइया । बेइंदियाणं भंते ! अट्ठसहिया तहेव पुच्छा, गो० ! जाव जे णं बेइंदिया आभिणिबोहिय०सुयणाणमतिअण्णाणसुयअण्णाणोवउत्ता ते णं बेइंदिया सागारोवउत्ता, जे णं बेइंदिया अचक्खुदंसणोवउत्ता ते णं अणागा०, से तेणट्ठेणं, गो० ! एवं बु० एवं जाव चउरिंदिया, णवरं चक्खुदंसणं अब्भहियं चउरिंदियाणंति, पंचिंदियतिरिक्खजोणिया जहा नेरइया, मणूसा जहा जीवा, वाणमंतरजोतिसियवेमाणिया जहा नेरइया (सूत्रं ३१२) पण्णवणाए भगवईए एगोणतीसइमं उवओगपयं समत्तं ॥ २९ ॥

'कइविहे णं भंते ! उवओगे पं०' कतिविधः—कतिप्रकारः, सूत्रे एकारो मागधभाषालक्षणवशात्, णमिति वाक्यालङ्कृतौ, भदन्त !—परमकल्याणयोगिन् ! 'उपयोगः' उपयोजनमुपयोगः भावे घञ्, यद्वा उपयुज्यते—वस्तुपरिच्छेदं प्रति व्यापार्यते जीवोऽनेनेत्युपयोगः—'पुंनाम्नि घ' इति करणे घप्रत्ययो बोधरूपो जीवस्य तत्त्वभूतो व्यापारः प्रज्ञप्तः—प्रतिपादितः ?, भगवानाह—'गोयमे'त्यादि, आकारः—प्रतिनियतोऽर्थग्रहणपरिणामः, 'आगारो अविसेसो' इति वचनात्, सह आकारेण वर्त्तत इति साकारः स चासावुपयोगश्च साकारोपयोगः, किमुक्तं भवति ?—सचेतने अचेतने वा वस्तुनि उपयुञ्जान आत्मा यदा सपर्यायमेव वस्तु परिच्छिनत्ति तदा स उपयोगः साकार उच्यते इति, स च कालतः छद्मस्थानामन्तर्मुहूर्त्तं कालं केवलिनामेकसामयिकः, तथा न विद्यते यथोक्तरूप आकारो

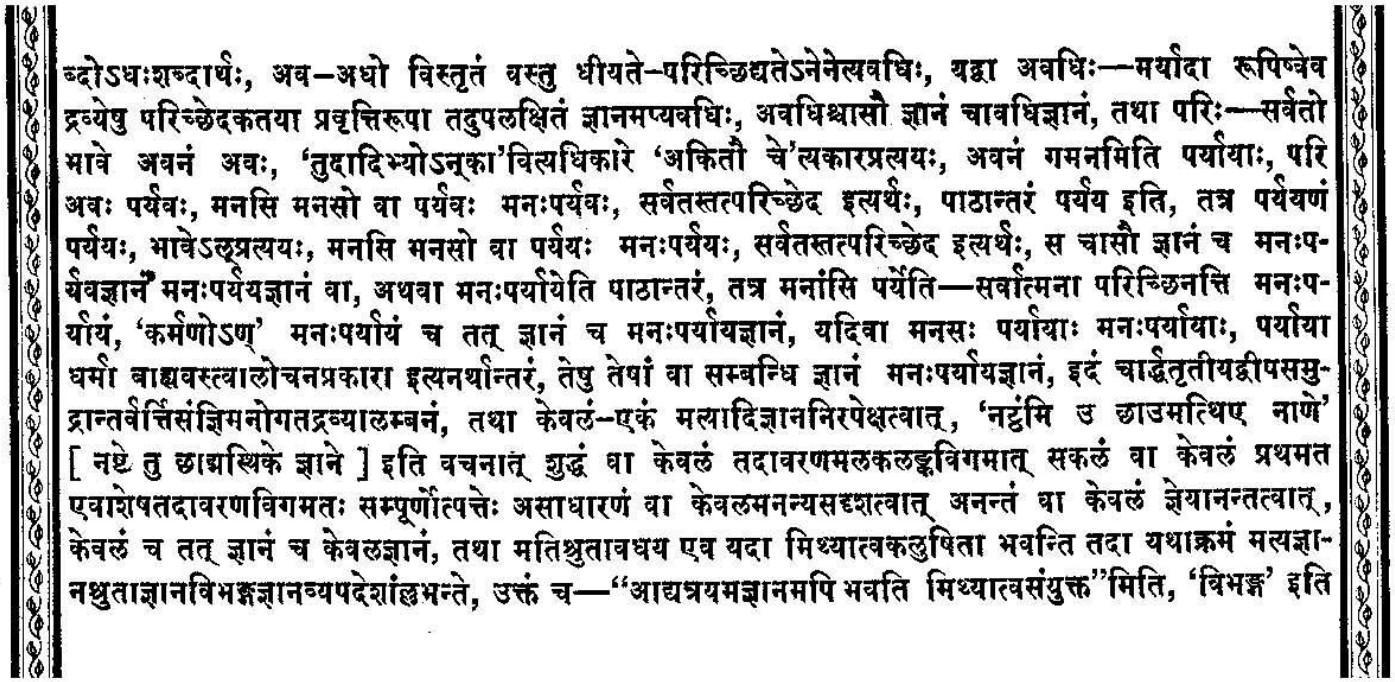
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३१२]

दीप अनुक्रम [५७२]

यत्र सोऽनाकारः स चासावुपयोगश्च अनाकारोपयोगः, यस्तु वस्तुनः सामान्यरूपतया परिच्छेदः सोऽनाकारोपयोगः स्कन्धावारोपयोगवदित्यर्थः, असावपि छद्मस्थानामान्तर्मुहूर्त्तिकः परमनाकारोपयोगकालात् साकारोपयोगकालः सङ्ख्येयगुणः प्रतिपत्तव्यः, पर्यायपरिच्छेदकतया चिरकाललगनात्, छद्मस्थानां तथास्वाभाव्यात्, केवलिनां त्वनाकारोऽप्युपयोग एकसामयिकः, चशब्दौ स्वगतानेकभेदसूचकौ, तत्र साकारोपयोगभेदानभिधित्सुरिदमाह– 'सागारोवओगे णं भंते !' इति, अर्थाभिमुखो नियतः—प्रतिनियतस्वरूपो बोधो—बोधविशेषो अभिनिबोधः अभिनिबोध एव आभिनिबोधिकं, अभिनिबोधशब्दस्य विनयादिपाठाभ्युपगमात् 'विनयादिभ्य' इत्यनेन स्वार्थे इकण् प्रत्ययः, 'अतिवर्त्तन्ते स्वार्थे प्रत्ययकाः प्रकृतिलिङ्गवचनानी'तिवचनादत्र नपुंसकता, यथा विनय एव वैनयिकमित्यत्र, अथवा अभिनिबुध्यतेऽस्मादस्मिन्वेति अभिनिबोधः–तदावरणकर्मक्षयोपशमस्तेन निर्वृत्तमाभिनिबोधिकं तच्च तज्ज्ञानं च आभिनिबोधिकज्ञानं, स च इन्द्रियमनोनिमित्तो योग्यदेशावस्थितवस्तुविषयः स्फुटप्रतिभासो बोधविशेष इत्यर्थः, स चासौ साकारोपयोगश्च आभिनिबोधिकज्ञानसाकारोपयोगः, एवं सर्वत्रापि समासः कर्त्तव्यः, तथा श्रवणं श्रुतं–वाच्यवाचकभावपुरस्सरीकारेण शब्दसंस्पृष्टार्थग्रहणहेतुरुपलब्धिविशेषः, एवमाकारं वस्तु घटशब्दवाच्यं जलधारणाद्यर्थक्रियासमर्थमित्यादिरूपतया प्रधानीकृतः समानपरिणामः शब्दार्थपर्यालोचनानुसारी इन्द्रियमनोनिमित्तोऽवगमविशेष इत्यर्थः, श्रुतं च तत् ज्ञानं च श्रुतज्ञानं, ततो भूयः साकारोपयोगशब्देन विशेषणसमासः, तथाऽवश-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



ब्दोऽधःशब्दार्थः, अव–अधो विस्तृतं वस्तु धीयते–परिच्छिद्यतेऽनेनेत्यवधिः, यद्वा अवधिः—मर्यादा रूपिष्वेव द्रव्येषु परिच्छेदकतया प्रवृत्तिरूपा तदुपलक्षितं ज्ञानमप्यवधिः, अवधिश्चासौ ज्ञानं चावधिज्ञानं, तथा परिः—सर्वतो भावे अवनं अवः, 'तुदादिभ्योऽन्का'वित्यधिकारे 'अकितौ चे'त्यकारप्रत्ययः, अवनं गमनमिति पर्यायाः, परि अवः पर्यवः, मनसि मनसो वा पर्यवः मनःपर्यवः, सर्वतस्तत्परिच्छेद इत्यर्थः, पाठान्तरं पर्यय इति, तत्र पर्ययणं पर्ययः, भावेऽल्प्रत्ययः, मनसि मनसो वा पर्ययः मनःपर्ययः, सर्वतस्तत्परिच्छेद इत्यर्थः, स चासौ ज्ञानं च मनःपर्यवज्ञानं मनःपर्ययज्ञानं वा, अथवा मनःपर्याय इति पाठान्तरं, तत्र मनांसि पर्येति—सर्वात्मना परिच्छिनत्ति मनःपर्यायं, 'कर्मणोऽण्' मनःपर्यायं च तत् ज्ञानं च मनःपर्यायज्ञानं, यदिवा मनसः पर्यायाः मनःपर्यायाः, पर्याया धर्मा बाह्यवस्त्वालोचनप्रकारा इत्यनर्थान्तरं, तेषु तेषां वा सम्बन्धि ज्ञानं मनःपर्यायज्ञानं, इदं चार्द्धतृतीयद्वीपसमुद्रान्तर्वर्त्तिसंज्ञिमनोगतद्रव्यालम्बनं, तथा केवलं–एकं मत्यादिज्ञाननिरपेक्षत्वात्, 'नट्ठंमि उ छाउमत्थिए नाणे' [नष्टे तु छाद्मस्थिके ज्ञाने] इति वचनात् शुद्धं वा केवलं तदावरणमलकलङ्कविगमात् सकलं वा केवलं प्रथमत एवाशेषतदावरणविगमतः सम्पूर्णोत्पत्तेः असाधारणं वा केवलमनन्यसदृशत्वात् अनन्तं वा केवलं ज्ञेयानन्तत्वात्, केवलं च तत् ज्ञानं च केवलज्ञानं, तथा मतिश्रुतावधय एव यदा मिथ्यात्वकलुषिता भवन्ति तदा यथाक्रमं मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानव्यपदेशांल्लभन्ते, उक्तं च—"आद्यत्रयमज्ञानमपि भवति मिथ्यात्वसंयुक्त"मिति, 'विभङ्ग' इति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विपरीतो भङ्गः–परिच्छित्तिप्रकारो यस्य तत् विभङ्गं, तच्च तत् ज्ञानं च विभङ्गज्ञानं, सर्वत्रापि च साकारोपयोगशब्देन विशेषणसमासः । अनाकारोपयोगभेदानभिधित्सुराह–'अणागारोवओगे णं भंते !' इत्यादि, तत्र चक्षुषा–चक्षुरिन्द्रियेण दर्शनं—रूपसामान्यग्रहणलक्षणं चक्षुर्दर्शनं तच्च तत् अनाकारोपयोगः चक्षुर्दर्शनानाकारोपयोगः, अचक्षुषा–चक्षुर्वर्जशेषेन्द्रियमनोभिर्दर्शनं–स्वस्वविषये सामान्यग्रहणमचक्षुर्दर्शनं, ततोऽनाकारोपयोगशब्देन विशेषणसमासः, एवमुत्तरत्रापि, अवधिरेव दर्शनं—सामान्यग्रहणमवधिदर्शनं, केवलमेव सकलजगद्भाविसमस्तवस्तुसामान्यपरिच्छेदरूपं दर्शनं केवलदर्शनं, अथ मनःपर्यायदर्शनमपि कस्मान्न भवति येन पञ्चमोऽनाकारोपयोगो न भवतीति चेत्?, उच्यते, मनःपर्यायविषयं हि ज्ञानं मनसः पर्यायानेव विविक्तान् गृह्णदुपजायते, पर्यायाश्च विशेषाः, विशेषालम्बनं च ज्ञानं ज्ञानमेव न दर्शनमिति मनःपर्यायदर्शनाभावस्तदभावाच्च पञ्चमानाकारोपयोगासम्भव इति । 'एवं जीवाण'मित्यादि, एवं निर्विशेषणोपयोगवत् जीवानामप्युपयोगो द्विविधः प्रज्ञप्तो भणितव्यः, तत्रापि साकारोपयोगोऽष्टविधोऽनाकारोपयोगश्चतुर्विधः, एतदुक्तं भवति–यथा प्राक् जीवपदरहितमुपयोगसूत्रं सामान्यत उक्तं तथा जीवपदसहितमपि भणितव्यं, तद्यथा–'जीवाणं भंते ! कतिविधे उवओगे पं० ?, गो० ! दुविधे उवओगे पं०, तं०—सागारोवओगे य अणागारोवओगे य, जीवाणं भंते ! सागारोवओगे कतिविधे पं० ?, गो० ! अट्ठविधे पं० तं०' इत्यादि, तदेवं सामान्यतो जीवानामुपयोगश्चिन्तितः, सम्प्रति चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण नैरयिकादीनां चिन्तयन्नाह—'नेरइयाणं

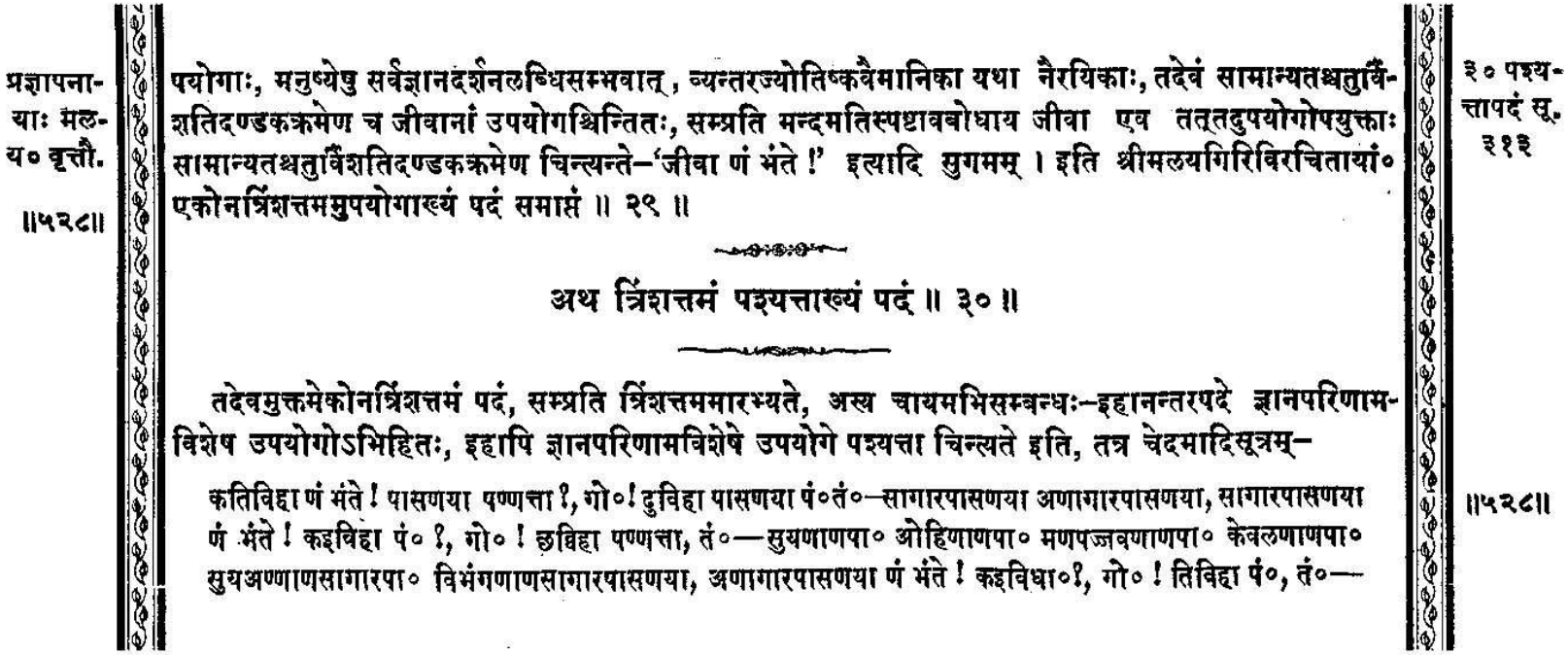
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भंते !' इत्यादि, नैरयिका हि द्विविधा भवन्ति–सम्यग्दृष्टयो मिथ्यादृष्टयश्च, अवधिरपि तेषां भवप्रत्ययोऽवश्यमुपजायते, 'भवप्रत्ययो नारकदेवाना' (तत्त्वा० अ० १ सू० २२) मिति वचनात्, तत्र सम्यग्दृष्टीनां मतिज्ञानश्रुतज्ञानावधिज्ञानानि मिथ्यादृष्टीनां मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानानीति सामान्यतो नैरयिकाणां षड्विधः साकारोपयोगः, अनाकारोपयोगस्त्रिविधस्तद्यथा—चक्षुर्दर्शनं अचक्षुर्दर्शनमवधिदर्शनं च, एष च त्रिविधोऽप्यनाकारोपयोगः सम्यग्दृशां मिथ्यादृशां चाविशेषेण प्रतिपत्तव्यः, उभयेषामप्यवधिदर्शनस्य सूत्रे प्रतिपादितत्वात्, एवमसुरकुमारादीनां स्तनितकुमारपर्यवसानानां भवनपतीनामप्यवसेयं, पृथिवीकायिकानां साकारोपयोगो द्विविधस्तद्यथा–मत्यज्ञानं श्रुताज्ञानं च, अनाकारोपयोग एकोऽचक्षुर्दर्शनरूपः, शेषोपयोगानां तेषामसम्भवात्, सम्यग्दर्शनादिलब्धिविकलत्वात्, एवमप्तेजोवायुवनस्पतीनामपि वेदितव्यं, द्वीन्द्रियाणां साकारोपयोगश्चतुर्विधः, तद्यथा–मतिज्ञानं श्रुतज्ञानं मत्यज्ञानं श्रुताज्ञानं, तत्रापर्याप्तावस्थायां केषांचित् सासादनभावमासादयतां मतिज्ञानश्रुतज्ञाने शेषाणां तु मत्यज्ञानश्रुताज्ञाने, अनाकारोपयोगस्त्वेकोऽचक्षुर्दर्शनरूपः, शेषोपयोगाणां तेषामसम्भवात्, एवं त्रीन्द्रियाणामपि, चतुरिन्द्रियाणामप्येवं, नवरमनाकारोपयोगो द्विविधः चक्षुर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनं च, पञ्चेन्द्रियतिरश्चां साकारोपयोगः षड्विधस्तद्यथा—मतिज्ञानं श्रुतज्ञानमवधिज्ञानं मत्यज्ञानं श्रुताज्ञानं विभङ्गज्ञानं, अनाकारोपयोगस्त्रिविधस्तद्यथा–चक्षुर्दर्शनं अचक्षुर्दर्शनं अवधिदर्शनं च, अवधिद्विकस्यापि केषुचित्तेषु सम्भवात्, मनुष्याणां यथासम्भवमष्टावपि साकारोपयोगाश्चत्वारोऽप्यनाकारो-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३१२]

दीप अनुक्रम [५७२]



प्रज्ञापनायाः मलय० वृत्तौ. ॥५२८॥

पयोगाः, मनुष्येषु सर्वज्ञानदर्शनलब्धिसम्भवात्, व्यन्तरज्योतिष्कवैमानिका यथा नैरयिकाः, तदेवं सामान्यतश्चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण च जीवानां उपयोगश्चिन्तितः, सम्प्रति मन्दमतिस्पष्टावबोधाय जीवा एव तत्तदुपयोगोपयुक्ताः सामान्यतश्चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण चिन्त्यन्ते–'जीवा णं भंते !' इत्यादि सुगमम् । इति श्रीमलयगिरिविरचितायां० एकोनत्रिंशत्तममुपयोगाख्यं पदं समाप्तं ॥ २९ ॥

अथ त्रिंशत्तमं पश्यत्ताख्यं पदं ॥ ३० ॥

तदेवमुक्तमेकोनत्रिंशत्तमं पदं, सम्प्रति त्रिंशत्तममारभ्यते, अस्य चायमभिसम्बन्धः–इहानन्तरपदे ज्ञानपरिणामविशेष उपयोगोऽभिहितः, इहापि ज्ञानपरिणामविशेषे उपयोगे पश्यत्ता चिन्त्यते इति, तत्र चेदमादिसूत्रम्–

कतिविहा णं भंते ! पासणया पण्णत्ता ?, गो० ! दुविहा पासणया पं० तं०–सागारपासणया अणागारपासणया, सागारपासणया णं भंते ! कइविहा पं० ?, गो० ! छव्विहा पण्णत्ता, तं०—सुयणाणपा० ओहिणाणपा० मणपज्जवणाणपा० केवलणाणपा० सुयअण्णाणसागारपा० विभंगणाणसागारपासणया, अणागारपासणया णं भंते ! कइविधा०?, गो० ! तिविहा पं०, तं०—

३० पश्यत्तापदं सू. ३१३

॥५२८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र पद (२९) "उपयोग" परिसमाप्तम्

अथ पद (३०) "पश्यता" आरब्धम्

चक्खुदंसणअणागारपा० ओहिदंसणअणा० केवलदंसणअणा०, एवं जीवाणंपि, नेरइयाणं भंते! कतिविधा पासणया पण्णत्ता?, गो०! दुविहा पं०, तं०–सागारपासणया० अणागा०, नेरइयाणं भंते! सागारपा० कइविहा पं०?, गो०! चउविहा पं०,तं०—सुयणाणपा०ओहिणाणपा० सुअअण्णाणपा०विभंगणाण०, नेरइयाणं भंते! अणागारपा० कतिविहा पं०?, गो०! दुविहा, तं०—चक्खुदंसण० ओहिदं०, एवं जाव थणियकुमारा। पुढविकाइयाणं भंते! कतिविहा पासणया पं०?, गो०! एगा सागारपा०, पुढविकाइयाणं भंते! सागारपासणया कतिविहा पं०?, गो०! एगा सुयअन्नाणसागारपा० पं०, एवं जाव वणप्फइकाइयाणं। बेइंदियाणं भंते! कतिविहा पासणया पं०?, गो०! एगा सागारपासणया पं०, बेइंदियाणं भंते! सागारपा० कइविहा पं०?, गो०! दु० पं० तं०—सुयणाणसागारपा० सुयअण्णाणसागारपा०, एवं तेइंदियाणवि, चउरिंदियाणं पुच्छा, गो०! दु० पं०, तं०—सागारपा० अणागारपा०, सागारपासणया जहा बेइंदियाणं, चउरिंदियाणं भंते! अणागारपा० कइविहा पं०?, गो०! एगा चक्खुदंसण० अणागारपा० पं०, मणूसाणं जहा जीवाणं, सेसा जहा नेरइया जाव वेमाणियाणं। जीवा णं भंते! किं सागारपस्सी अणागारपस्सी?, गो०! जीवा सागारपस्सीवि अणागारपस्सीवि, से केणट्ठेणं भंते! एवं वु० जीवा सागार० अणागार०?, गो०! जे णं जीवा सुतणाणी ओहिणाणी मणपज्जव० केवल० सुअअण्णाणी विभंगनाणी ते णं जीवा सागारपस्सी, जे णं जीवा चक्खुदंसणी ओहिदंसणी केवलदंसणी ते णं जीवा अणागारपस्सी, से एतेणट्ठेणं गोयमा! एवं वु०—जीवा सागारपस्सीवि अणागा०, नेरइयाणं भंते! किं सागारपस्सी अणागा०, गो०! एवं चेव, नवरं सागारपासणयाए मणपज्जवनाणी केवलनाणी न वुच्चति,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अणागारपासणयाए केवलदंसणं नत्थि, एवं जाव थणियकुमारा। पुढविकाइयाणं पुच्छा, गो० ! पुढविकाइया सागारपस्सी णो अणागारपस्सी, से केणट्ठेणं भंते! एवं वु०—गो०! पुढविकाइयाणं एगा सुयअण्णाणसागारपासणया पं०, से ते० गो० !, एवं जाव वणस्सतिकाइयाणं, बेइंदियाणं पुच्छा, गो०! सागारपस्सी णो अणा०, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?, गो० ! बेइंदियाणं दुविहा सागारपासणया पं०, तं०—सुयणाणसागारपा० सुअअण्णाणसागारपा०, से एएणट्ठेणं गो० ! एवं वु०, एवं तेइंदियाणवि, चउरिंदियाणं पुच्छा, गो० ! चउरिंदिया सागारपस्सीवि अणागारपस्सीवि, से केणट्ठेणं० ?, गो० ! जे णं चउरिंदिया सुयणाणी सुयअन्नाणी ते णं चउरिंदिया सागारपस्सी, जे णं चउरिंदिया चक्खुदंसणी ते णं चउरिंदिया अणागारपस्सी, से एएणट्ठेणं गो० ! एवं वु०, मणूसा जहा जीवा, अवसेसा जहा नेरइया जाव वेमाणिया (सूत्रं ३१३)

'कतिविधा णं भंते' इत्यादि, कतिविधा—कतिप्रकारा, णमिति वाक्यालङ्कारे, भदन्त ! 'पासणय'त्ति 'दृशिर् प्रेक्षणे' पश्यतीति 'सति वानिता'विति अतृड्प्रत्ययः कर्त्तर्यनदादेशः, 'पाघ्राध्मास्थाम्नादाणदृश्यर्त्तिश्रौतिक्रुधिवुशदसदः पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीद'मिति दृशेः पश्यादेशः, पश्यतो भावः पश्यत्ता, 'भावे तत्वला'विति तल्प्रत्ययः, 'आदापू' सैव पासणयेत्युच्यते, एष च पासणयाशब्दो रूढिवशात् साकारानाकारबोधप्रतिपादकः उपयोगशब्दवत्, तथा चोपयोगविषये प्रश्नोत्तरसूत्रे इमे–'कइविहे णं भंते ! उवओगे पण्णत्ते ?, गोयमा !

३० पश्यत्तापदं सू. ३१३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दुविहे पण्णत्ते, तं०—'सागारोवओगे य अणागारोवओगे य' पश्यत्तायामपि प्रश्नोत्तरसूत्रे इमे—'कइविहा णं भंते! पासणया पण्णत्ता?, गो०! दुविहा पं०, तं०—सागारपासणया अणागारपासणया' इति, ननु तुल्ये साकारानाकारभेदत्वे कोऽनयोः प्रतिविशेषो येन पृथगुच्यते?, उच्यते, साकारानाकारभेदगतावान्तरभेदसङ्ख्यारूपः, तथाहि—पञ्च ज्ञानानि त्रीण्यज्ञानानीत्यष्टविधः साकार उपयोगः, साकारपश्यत्ता तु षड्विधा, मतिज्ञानमत्यज्ञानयोः पश्यत्तयोः अनभ्युपगमात्, कस्मादिति चेत्, उच्यते, इह पश्यत्ता नाम पश्यतो भाव उच्यते, पश्यतो भावश्च 'दृशिर् प्रेक्षणे' इति वचनात्, प्रेक्षणमिह रूढिवशात् साकारपश्यत्तायां चिन्त्यमानायां प्रदीर्घकालं अनाकारपश्यत्तायां चिन्त्यमानायां प्रकृष्टं परिस्फुटरूपमीक्षणमवसेयं, तथा च सति येन ज्ञानेन त्रैकालिकः परिच्छेदो भवति तदेव ज्ञानं प्रदीर्घकालविषयत्वात् साकारपश्यत्ताशब्दवाच्यं न शेषं, मतिज्ञानमत्यज्ञाने तु उत्पन्नाविनष्टार्थग्राहके साम्प्रतकालविषये, तथा च मतिज्ञानमधिकृत्यान्यत्रोक्तम्—"जमवग्गहादिरूवंपच्चुप्पन्नवत्थुगाहगं लोए। इंदियमणोनिमित्तं च तमाभिनिबोधिगं बेंति ॥१॥" [यदवग्रहादिरूपं प्रत्युत्पन्नवस्तुग्राहकं लोके। इन्द्रियमनोनिमित्तं च तदाभिनिबोधिकं ब्रुवते ॥ १ ॥] तत् द्वे अपि साकारपश्यत्ता शब्दवाच्ये न भवतः, श्रुतज्ञानादीनि तु त्रिकालविषयाणि, तथाहि—श्रुतज्ञानेन अतीता अपि भावा ज्ञायन्ते अनागता अपि, उक्तं च—"जं पुण तिकालविसयं आगमगंथाणुसारि विन्नाणं। इंदियमणोनिमित्तं सुयनाणं तं जिणा बेंति ॥ १ ॥" [यत् पुनस्त्रिकालविषयं आगमग्रन्थानुसारि विज्ञानम्। इन्द्रि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यमनोनिमित्तं श्रुतज्ञानं तत् जिना ब्रुवते ॥१॥] अवधिज्ञानमपि सङ्ख्यातीता उत्सर्पिण्यवसर्पिणीः अतीताः परिच्छिनत्ति भाविनीश्च, मनःपर्यायज्ञानमपि पल्योपमासङ्ख्येयभागमतीतं जानाति भाविनं च, केवलं सकलकालविषयं सुप्रतीतं, श्रुताज्ञानविभङ्गज्ञाने अपि त्रिकालविषये, ताभ्यामपि यथायोगमतीतानागतभावपरिच्छेदात्, ततः ज्ञानानि साकारपश्यत्ताशब्दवाच्यानि, उपयोगस्तु यत्राकारो यथोदितस्वरूपः परिस्फुरति स बोधो वर्त्तमानकालविषयो वा यदि भवति त्रिकालिको वा तत्र सर्वत्रापि प्रवर्त्तत इति साकारोपयोगोऽष्टविधः। तथा चक्षुर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनमवधिदर्शनं केवलदर्शनमिति चतुर्विधोऽनाकारोपयोगः, अनाकारपश्यत्ता तु त्रिविधा, अचक्षुर्दर्शनस्यानाकारपश्यत्ताशब्दवाच्यत्वाभावात्, कस्मादिति चेत्, उच्यते, उक्तमिह पूर्वमनाकारपश्यत्तायां चिन्त्यमानायां प्रकृष्टं परिस्फुटरूपमीक्षणमवसेयमिति, तत्राचक्षुर्दर्शने परिस्फुटरूपमीक्षणं न विद्यते, न हि चक्षुषेव शेषेन्द्रियमनोभिः परिस्फुटमीक्षते प्रमाता, ततोऽचक्षुर्दर्शनस्यानाकारपश्यत्ताशब्दवाच्यत्वाभावात् त्रिविधाऽनाकारपश्यत्ता, तदेवं साकारभेदेऽनाकारभेदे च प्रत्येकमवान्तरभेदे वैचित्र्यभावान्महानुपयोगपश्यत्तयोः प्रतिविशेषः, एनमेव प्रतिविशेषं प्रतिपिपादयिषुः प्रथमतः साकारानाकारभेदौ ततस्तद्गतावान्तरभेदान् प्रतिपादयति–'गो० ! दुविहा पं० तंजहा–सागारपासणया अणागारपासणया य, सागारपासणया णं भंते ! कतिविहा पं०' इत्यादि भावितार्थम्। तदेवं सामान्यतो जीवपदविशेषणरहिता पश्यत्तोक्ता, साम्प्रतं तामेव जीवपदविशेषितामभिधित्सुराह–'एवं जीवाणंपि' एवं–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३१३]

दीप अनुक्रम [५७३]

पूर्वोक्तेन प्रकारेण जीवानामपि–जीवपदविशेषणसहितापि पश्यत्ता वक्तव्या, सा चैवम्–'जीवाणं भंते! कतिविधा पासणया पं०?, गो० ! दुविहा पं०, तंजहा–सागारपासणया अणागारपासणया य, जीवाणं भंते! सागारपासणया कतिविहा पं०' इत्यादि, तदेवं जीवानामपि सामान्यत उक्ता, सम्प्रति चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण वदति–'नेरइयाणं भंते!' इत्यादि, सुगमत्वात् उपयोगपदे प्रायो भावितत्वात् अनन्तरोक्तभावनानुसारेण स्वयं परिभावनीयं, तदेवं सामान्यतो विशेषतश्च जीवानां पश्यत्तोक्ता, सम्प्रति जीवानेव पश्यत्ताविशिष्टान् चिचिन्तयिषुराह–'जीवा णं भंते! किं सागारपस्सी' इत्यादि, जीवाः–जीवनयुक्ताः प्राणधारिण इत्यर्थः, णमिति वाक्यालङ्कारे किमिति प्रश्ने साकारपश्यत्ता विद्यते येषां ते साकारपश्यत्तिनः, प्राकृतत्वात् साकारपस्सी इत्युक्तं, 'मणपज्जवनाणी केवलनाणी न वुच्चइ' इत्यादि, नैरयिकाणां चारित्रप्रतिपत्तेरभावतो मनःपर्यवज्ञानकेवलज्ञानकेवलदर्शनानामभावात् ॥ इह किल छद्मस्थानां साकारोऽनाकारश्चोपयोगः क्रमेणोपजायमानो घटते, सकर्मकत्वात्, सकर्मकाणां ह्यन्यतरस्योपयोगस्य वेलायामन्यतरस्य कर्मणाऽऽवृतत्वान्न घटते एवोपयोग इति, केवली तु घातिचतुष्टयक्षयाद् भवति, ततः संशयः–किं क्षीणज्ञानावरणदर्शनावरणत्वात् यस्मिन्नेव समये रत्नप्रभादिकं जानाति तस्मिन्नेव समये पश्यति उत जीवस्वाभाव्यात् क्रमेणेति ?, ततः पृच्छति–

केवली णं भंते! इमं रयणप्पभं पुढविं आगारेहिं हेतूहिं उवमाहिं दिट्ठंतेहिं वण्णेहिं संठाणेहिं पमाणेहिं पडोयारेहिं जं समयं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाणति तं समयं पासइ जं समयं पासइ तं समयं जाणइ?, गो० ! नो तिणट्ठे समट्ठे, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति केवली णं इमं रयणप्पभं पुढविं आगारेहिं० जं समयं जाणति नो तं समयं पासति जं समयं पा० नो तं समयं जा०?, गो० ! सागारे से णाणे भवति अणागारे से दंसणे भवति, से तेणट्ठेणं जाव णो तं समयं जाणाति एवं जाव अहे सत्तमं । एवं सोहम्मकप्पं जाव अच्चुयं, गेविज्जगविमाणा अणुत्तरविमाणा, ईसीपब्भारं पुढवीं, परमाणुं पोग्गलं दुपदेसियं खंधं जाव अणंतपदेसियं खंधं, केवली णं भंते ! इमं रयणप्पभं पुढविं अणागारेहिं अहेतूहिं अणुवमाहिं अदिट्ठंतेहिं अवण्णेहिं असंठाणेहिं अपमाणेहिं अपडोयारेहिं पासति न जाणति ?, हंता ! गो० ! केवली णं इमं रयणप्पभं पुढविं अणागारेहिं जाव पासति न जाणति, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वु० केवली इमं रयणप्पभं पुढविं अणागारेहिं जाव पासति ण जाणति, गो० ! अणागारे से दंसणे भवति सागारे से नाणे भवति, से ते० गो० ! एवं वुच्चइ–केवली णं इमं रयणप्पभं पुढविं अणागारेहिं जाव पासति ण जाणति, एवं जाव ईसिप्पभारं पुढविं परमाणुं पोग्गलं अणंतपदेसियं खंधं पासति न जाणति ॥ (सूत्रं ३१४) पासणयापयं समत्तं ॥ ३० ॥

'केवली णं भंते !' इत्यादि, केवलं ज्ञानं दर्शनं चास्यास्तीति केवली णमिति वाक्यालङ्कृतौ भदन्त !—परमकल्याणयोगिन् ! 'इमां' प्रत्यक्षत उपलभ्यमानां रत्नप्रभाभिधां पृथिवीं 'आगारेहिं'ति आकारभेदा यथा इयं रत्नप्रभापृथिवी त्रिकाण्डा खरकाण्डपङ्ककाण्डअप्काण्डभेदात्, खरकाण्डमपि षोडशभेदं, तद्यथा–प्रथमं योजनसहस्रमानं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रत्नकाण्डं तदनन्तरं योजनसहस्रप्रमाणमेव वज्रकाण्डं तस्याप्यधो योजनसहस्रमानं वैडूर्यकाण्डमित्यादि, 'हेऊहिं'ति हेतवः—उपपत्तयः, ताश्चेमाः—केन कारणेन रत्नप्रभेत्यभिधीयते ?, उच्यते, यस्मादस्याः रत्नमयं काण्डं तस्मात् रत्नप्रभा, रत्नानि प्रभा—स्वरूपं यस्याः सा रत्नप्रभेति व्युत्पत्तेरिति, 'उवमाहिं' इति उपमाभिः, 'माङ् माने' अस्मादुपपूर्वात् उपमितं उपमा 'उपसर्गादात' इत्यङ्प्रत्ययः, ताश्चैवं—रत्नप्रभायां रत्नप्रभादीनि काण्डानि वर्णविभागेन कीदृशानि ?, पद्मरागेन्दुसदृशानि इत्यादि, 'दिट्ठंतेहिं'ति दृष्टः अन्तः—परिच्छेदो विवक्षितसाध्यसाधनयोः सम्बन्धस्याविनाभावरूपस्य प्रमाणेन यत्र ते दृष्टान्तास्तैर्यथा घटः स्वगतैर्धर्म्मैः पृथुबुध्नोदराद्याकारादिरूपैरनुगतः परधर्मेभ्यश्च पटादिगतेभ्यो व्यतिरिक्त उपलभ्यते इति पटादिभ्यः पृथक् वस्त्वन्तरं तथैवैषाऽपि रत्नप्रभा स्वगतभेदैरनुषक्ता शर्कराप्रभादिभेदेभ्यश्च व्यतिरिक्तेति ताभ्यः पृथक् वस्त्वन्तरमित्यादि, 'वण्णेहिं'ति शुक्लादिवर्णविभागेन तेषामेव उत्कर्षापकर्षसङ्ख्येयासंख्येयानन्तगुणविभागेन च, वर्णग्रहणमुपलक्षणं तेन गन्धरसस्पर्शविभागेन चेति द्रष्टव्यं, 'संठाणेहिं'ति यानि तस्यां रत्नप्रभायां भवननारकादीनां संस्थानानि, तद्यथा–'ते णं भवणा बाहिं वट्टा अंतो चउरंसा अहे पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिया' तथा 'ते णं नरया अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा अहे खुरप्पसंठाणसंठिया' इत्यादि, तथा 'पमाणेहिं'ति प्रमाणानि, 'अहे'त्यादि परिमाणानि, यथा 'असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्ला रज्जुप्पमाणमेत्ता आयामविक्खंभेण'मित्यादि, 'पडोयारेहिं'ति प्रति–सर्वतः सामस्त्येन अवतीर्यते–व्याप्यते यैस्ते प्रत्यवताराः, ते चात्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१५],उपांगसूत्र-[४] "प्रज्ञापना" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३१४]

दीप अनुक्रम [५७४]

प्रज्ञापनायाः मलय० वृत्तौ. ॥५३२॥

घनोदध्यादिवलया वेदितव्याः, ते हि सर्वासु दिक्षु विदिक्षु चेमां रत्नप्रभां परिक्षिप्य व्यवस्थितास्तैः, 'जं समय'मिति 'कालाध्वनोर्व्यासा'वित्यधिकरणभावेऽपि द्वितीया, ततोऽयमर्थः–यस्मिन् समये जानाति—आकारादिविशिष्टं परिच्छिनत्ति 'तं समयं'ति तस्मिन् समये पश्यति–केवलदर्शनविषयीकरोति?, भगवानाह—गौतम! नायमर्थः समर्थो, नायमर्थो युक्त्युपपन्न इति भावः, तत्त्वमजानानः पृच्छति–'से केणट्ठेणं भंते!' इत्यादि, 'से' इति अथशब्दार्थे अथ केनार्थेन–कारणेन भदन्त! एवं–पूर्वोक्तेन प्रकारेणोच्यते, तमेव प्रकारं दर्शयति–'केवली ण'मित्यादि, भगवानाह–'गौतमे'त्यादि, अस्यायं भावार्थः–इह ज्ञानेन परिच्छिन्दन् जानातीत्युच्यते, दर्शनेन परिच्छिन्दन् पश्यतीति, ज्ञानं च 'से' तस्य भगवतः साकारमन्यथा ज्ञानत्वायोगात्, विशेषानभिगृण्हानो हि बोधो ज्ञानं, 'सविशेषं पुनर्ज्ञान'मिति वचनात्, दर्शनमनाकारं 'निर्विशेषं विशेषाणां, ग्रहो दर्शनमुच्यते' इति वचनात्, तत्र ज्ञानं च दर्शनं च जीवस्य खण्डशो नोपजायते, यथा कतिपयेषु प्रदेशेषु ज्ञानं कतिपयेषु प्रदेशेषु दर्शनं, तथास्वाभाव्यात्, किन्तु यदा ज्ञानं तदा सामस्त्येन ज्ञानमेव यदा दर्शनं तदा सामस्त्येन दर्शनमेव, ज्ञानदर्शने च साकारानाकारतया परस्परं विरुद्धे, छायातपयोरिवेतरेतराभावनान्तरीयकत्वात्, ततो यस्मिन् समये जानाति तस्मिन् समये न पश्यति, यस्मिन् समये पश्यति तस्मिन् समये न जानाति, एतदेवाह—'से एएणट्ठेणं' इत्यादि, एतेन यदवादीद् वादी सिद्धसेनदिवाकरो यथा–'केवली भगवान् युगपत् जानाति पश्यति चे'ति, तदप्यपास्तमवगन्तव्यं, अनेन सूत्रेण साक्षात् युक्तिपूर्वं

३०पश्यत्तापदं आकारादिज्ञानदर्शनपृथक्त्वं सू. ३१४

॥५३२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३१४]

दीप अनुक्रम [५७४]

ज्ञानदर्शनोपयोगस्य क्रमशो व्यवस्थापितत्वात्, एवं शर्कराप्रभावालुकाप्रभापङ्कप्रभाधूमप्रभातमःप्रभातमस्तमःप्रभासौधर्मेशानसनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलोकलान्तकशुक्रसहस्रारानतप्राणतारणाच्युतकल्पग्रैवेयकविमानानुत्तरविमानेषत्प्राग्भाराभिधपृथिवीपरमाणुपुद्गलद्विप्रदेशिकस्कन्धयावदनन्तप्रदेशिकस्कन्धविषयाण्यपि सूत्राणि भावनीयानि, ननु यदि ज्ञानदर्शने साकारानाकारतया पृथगेवं व्यवस्थापितविषये तत इदमायातं–यदा भगवान् केवली रत्नप्रभादिकमाकाराद्यभावेन परिच्छिनत्ति तदा स पश्यतीत्येवं वक्तव्यो न जानातीति, सत्यमेतत् तथा चाह–'केवली णं भंते ! इमं रयणप्पभं पुढविं अणागारेहिं अहेऊहिं' इत्यादि, प्रायो भावितत्वात् सुगमं ॥ इति श्रीमलयगिरिविरचितायां० त्रिंशत्तमं पदं समाप्तं ॥ ३० ॥

अथ एकत्रिंशत्तमं संज्ञापरिणामपदं ॥ ३१ ॥

तदेवमुक्तं पश्यत्ताऽऽख्यं त्रिंशत्तमं पदं, साम्प्रतमेकत्रिंशत्तममारभ्यते, अस्य चायमभिसम्बन्धः–इहानन्तरपदे ज्ञानपरिणामविशेषः प्रतिपादितः, इह तु परिणामसाम्याद् गतिपरिणामविशेष एव संज्ञापरिणामः प्रतिपाद्यते, तत्र चेदमादिसूत्रम्–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र पद (३०) "पश्यता" परिसमाप्तम्

अथ पद (३१) "संज्ञी/संज्ञापरिणाम" आरब्धम्

***अस्य अध्ययनस्य आगम-गाथा (मूल-८) दर्शित-नाम "संज्ञी" अस्ति, किंतु अत्र वृत्तिगत नाम "संज्ञापरिणाम" इति दृश्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१५],उपांगसूत्र-[४] "प्रज्ञापना" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३१५] + गाथा

दीप अनुक्रम [७७५--७७६]

प्रज्ञापनायाः मलय० वृत्तौ. ॥५३३॥

जीवा णं भंते ! किं सण्णी असण्णी नोसण्णीनोअसण्णी ?, गो० ! जीवा सण्णीवि असण्णीवि नोसण्णीनोअसण्णीवि । नेरइयाणं पुच्छा, गो० ! नेरइया सण्णीवि असण्णीवि नो नोसण्णीनोअसण्णी, एवं असुरकुमारा जाव थणियकुमारा, पुढविकाइयाणं पुच्छा, गो० ! नो सण्णी असण्णी, नो नोसण्णीनोअसण्णी, एवं बेइंदियतेइंदियचउरिंदियावि, मणूसा जहा जीवा, पंचिंदियतिरिक्खजोणिया वाणमंतरा य जहा नेरइया, जोतिसियवेमाणिया सण्णी नो असण्णी नो नोसण्णी-नोअसण्णी, सिद्धाणं पुच्छा, गो० ! नो सण्णी नो असण्णी नोसण्णिनोअसण्णी,–नेरइयतिरियमणुया य वणयरगसुरा इ सण्णीऽसण्णी य । विगलिंदिया असण्णी जोतिसवेमाणिया सण्णी ॥१॥ (सूत्रं३१५) पण्णवणाए सण्णीपयं समत्तं ॥३१॥

'जीवा णं भंते ! किं सण्णी' इत्यादि, संज्ञानं संज्ञा–'उपसर्गादात' इत्यङ्प्रत्ययः भूतभवद्भाविभावस्वभावपर्यालोचनं सा विद्यते येषां ते संज्ञिनः, विशिष्टस्मरणादिरूपमनोविज्ञानभाज इत्यर्थः, यथोक्तमनोविज्ञानविकला असंज्ञिनः, ते च एकेन्द्रियविकलेन्द्रियसम्मूर्च्छिमपञ्चेन्द्रिया वेदितव्याः, अथवा संज्ञायते–सम्यक् परिच्छिद्यते पूर्वोपलब्धो वर्त्तमानो भावी च पदार्थो यया सा संज्ञा, भिदादिपाठाभ्युपगमात् करणे अञ्, विशिष्टा मनोवृत्तिरित्यर्थः, सा विद्यते येषां ते संज्ञिनः समनस्का इत्यर्थः, तद्विपरीता असंज्ञिनोऽमनस्का इत्यर्थः, ते चैकेन्द्रियादय एवानन्तरोदिताः प्रतिपत्तव्याः, एकेन्द्रियाणां प्रायः सर्वथा मनोवृत्तेरभावात्, द्वीन्द्रियादीनां तु विशिष्टमनोवृत्तेरभावः, ते हि द्वीन्द्रियादयो वार्त्तमानिकमेवार्थं शब्दादिकं शब्दादिरूपतया संविदन्ति, न भूतं भाविनं चेति, केवली सिद्धश्चोभयप्रतिषेधवि-

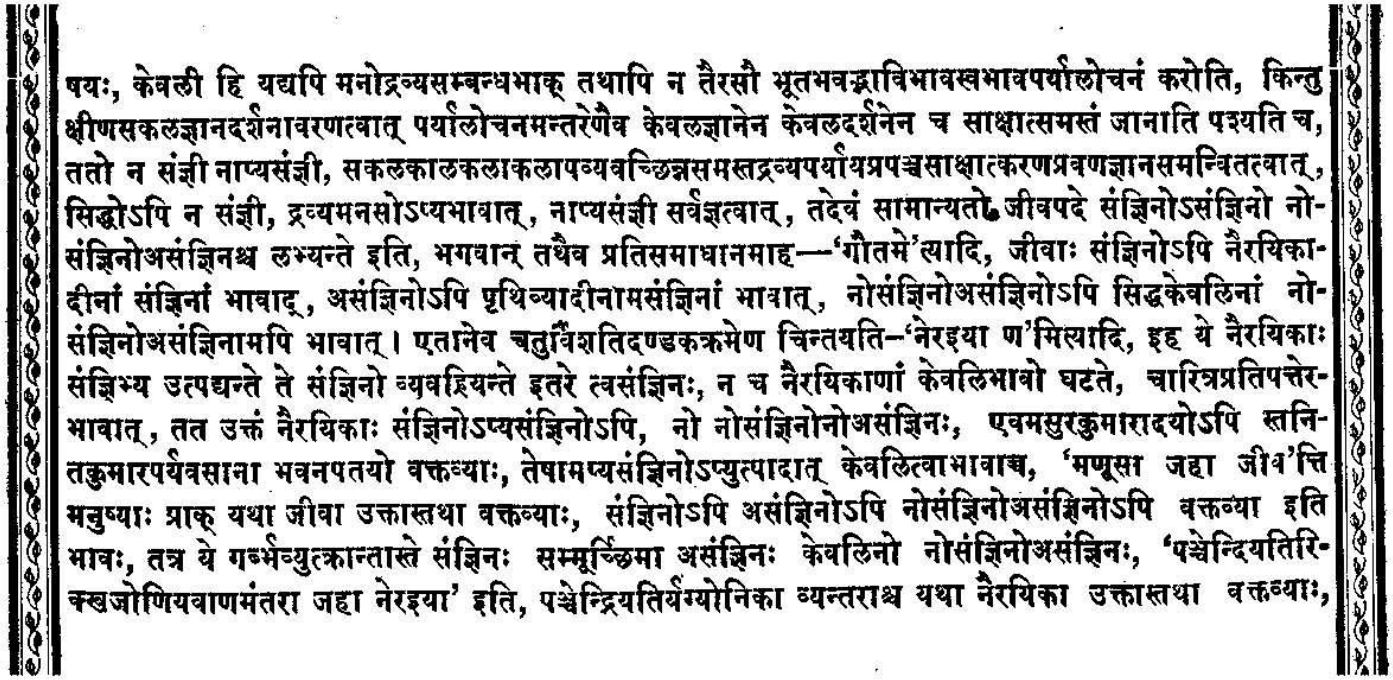
३१संज्ञापदं सू. ३१५

॥५३३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३१५] + गाथा

दीप अनुक्रम [५७५--५७६]



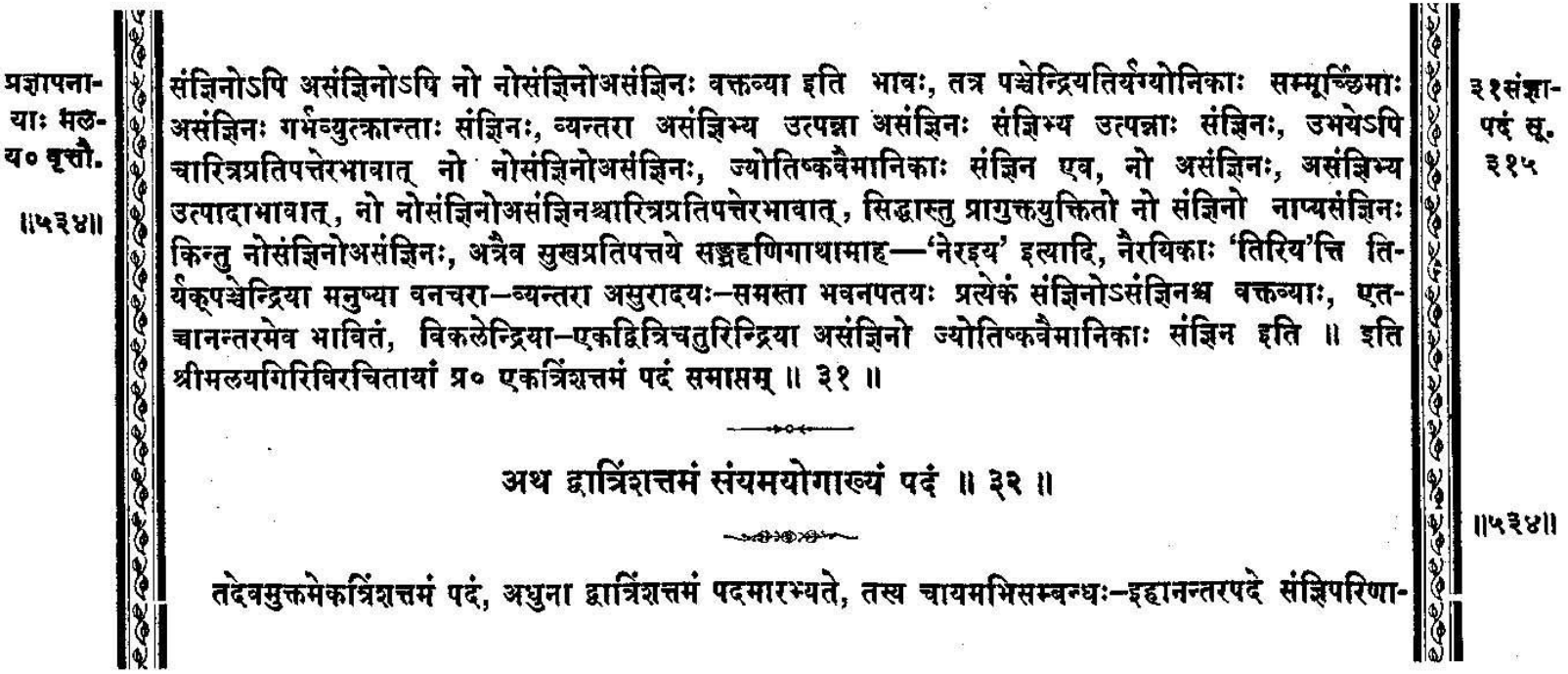
षयः, केवली हि यद्यपि मनोद्रव्यसम्बन्धभाक् तथापि न तैरसौ भूतभवद्भाविभावस्वभावपर्यालोचनं करोति, किन्तु क्षीणसकलज्ञानदर्शनावरणत्वात् पर्यालोचनमन्तरेणैव केवलज्ञानेन केवलदर्शनेन च साक्षात्समस्तं जानाति पश्यति च, ततो न संज्ञी नाप्यसंज्ञी, सकलकालकलाकलापव्यवच्छिन्नसमस्तद्रव्यपर्यायप्रपञ्चसाक्षात्करणप्रवणज्ञानसमन्वितत्वात्, सिद्धोऽपि न संज्ञी, द्रव्यमनसोऽप्यभावात्, नाप्यसंज्ञी सर्वज्ञत्वात्, तदेवं सामान्यतो जीवपदे संज्ञिनोऽसंज्ञिनो नोसंज्ञिनोअसंज्ञिनश्च लभ्यन्ते इति, भगवान् तथैव प्रतिसमाधानमाह—'गौतमे'त्यादि, जीवाः संज्ञिनोऽपि नैरयिकादीनां संज्ञिनां भावाद्, असंज्ञिनोऽपि पृथिव्यादीनामसंज्ञिनां भावात्, नोसंज्ञिनोअसंज्ञिनोऽपि सिद्धकेवलिनां नोसंज्ञिनोअसंज्ञिनामपि भावात्। एतानेव चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण चिन्तयति–'नेरइया ण'मित्यादि, इह ये नैरयिकाः संज्ञिभ्य उत्पद्यन्ते ते संज्ञिनो व्यवह्रियन्ते इतरे त्वसंज्ञिनः, न च नैरयिकाणां केवलिभावो घटते, चारित्रप्रतिपत्तेरभावात्, तत उक्तं नैरयिकाः संज्ञिनोऽप्यसंज्ञिनोऽपि, नो नोसंज्ञिनोनोअसंज्ञिनः, एवमसुरकुमारादयोऽपि स्तनितकुमारपर्यवसाना भवनपतयो वक्तव्याः, तेषामप्यसंज्ञिनोऽप्युत्पादात् केवलित्वाभावाच्च, 'मणूसा जहा जीव'त्ति मनुष्याः प्राक् यथा जीवा उक्तास्तथा वक्तव्याः, संज्ञिनोऽपि असंज्ञिनोऽपि नोसंज्ञिनोअसंज्ञिनोऽपि वक्तव्या इति भावः, तत्र ये गर्भव्युत्क्रान्तास्ते संज्ञिनः सम्मूर्च्छिमा असंज्ञिनः केवलिनो नोसंज्ञिनोअसंज्ञिनः, 'पञ्चेन्द्रियतिरिक्खजोणियवाणमंतरा जहा नेरइया' इति, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिका व्यन्तराश्च यथा नैरयिका उक्तास्तथा वक्तव्याः,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१५],उपांगसूत्र-[४] "प्रज्ञापना" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३१५] + गाथा

दीप अनुक्रम [५७५--५७६]



प्रज्ञापनायाः मलय० वृत्तौ. ॥५३४॥

संज्ञिनोऽपि असंज्ञिनोऽपि नो नोसंज्ञिनोअसंज्ञिनः वक्तव्या इति भावः, तत्र पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः सम्मूर्च्छिमाः असंज्ञिनः गर्भव्युत्क्रान्ताः संज्ञिनः, व्यन्तरा असंज्ञिभ्य उत्पन्ना असंज्ञिनः संज्ञिभ्य उत्पन्नाः संज्ञिनः, उभयेऽपि चारित्रप्रतिपत्तेरभावात् नो नोसंज्ञिनोअसंज्ञिनः, ज्योतिष्कवैमानिकाः संज्ञिन एव, नो असंज्ञिनः, असंज्ञिभ्य उत्पादाभावात्, नो नोसंज्ञिनोअसंज्ञिनश्चारित्रप्रतिपत्तेरभावात्, सिद्धास्तु प्रागुक्तयुक्तितो नो संज्ञिनो नाप्यसंज्ञिनः किन्तु नोसंज्ञिनोअसंज्ञिनः, अत्रैव सुखप्रतिपत्तये सङ्ग्रहणिगाथामाह—'नेरइय' इत्यादि, नैरयिकाः 'तिरिय'त्ति तिर्यक्पञ्चेन्द्रिया मनुष्या वनचरा—व्यन्तरा असुरादयः—समस्ता भवनपतयः प्रत्येकं संज्ञिनोऽसंज्ञिनश्च वक्तव्याः, एतच्चानन्तरमेव भावितं, विकलेन्द्रिया—एकद्वित्रिचतुरिन्द्रिया असंज्ञिनो ज्योतिष्कवैमानिकाः संज्ञिन इति ॥ इति श्रीमलयगिरिविरचितायां प्र० एकत्रिंशत्तमं पदं समाप्तम् ॥ ३१ ॥

अथ द्वात्रिंशत्तमं संयमयोगाख्यं पदं ॥ ३२ ॥

तदेवमुक्तमेकत्रिंशत्तमं पदं, अधुना द्वात्रिंशत्तमं पदमारभ्यते, तस्य चायमभिसम्बन्धः—इहानन्तरपदे संज्ञिपरिणा-

३१संज्ञापदं सू. ३१५

॥५३४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र पद (३१) "संज्ञी" परिसमाप्तम्

अथ पद (३२) "संयत" आरब्धम्

म उक्तः, इह तु चारित्रपरिणामविशेषः संयमः प्रतिपाद्यते, संयमो नाम निरवद्येतरयोगप्रवृत्तिनिवृत्तिरूपः, तत्र चेदमादिसूत्रम्–

जीवा णं भंते! किं संजया असंजया संजया २ नोसंजयानोअसंजयानोसंजयासंजया १, गो० ! जीवा संजयावि १ असंजयावि २ संजयासंजयावि ३ नोसंजयानोअसंजयानोसंजयासंजयावि ४, नेरइया णं भंते! पुच्छा, गो०! नेरइया नो संजया असंजया नोसंजयासंजया नो नोसंजयनोअसंजयनोसंजयासंजया, एवं जाव चउरिंदि, पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा, गो० ! पंचिंदियतिरिक्खजोणिता नो संजता असंजतावि संजतासंजतावि नो नोसंजतनोअसंजतनोसंजतासंजतावि, मणुस्साणं पुच्छा, गो० ! मणूसा संजतावि असंजतावि संजतासंजतावि नो नोसंजतनोअसंजतनोसंजतासंजता, वाणमंतरजोतिसियवेमाणिया जहा नेरइया, सिद्धा णं पुच्छा, गो० ! सिद्धा नो संजता १ नो असंजता २ नो संजतासंजता ३ नोसंजतनोअसंजतनोसंजतासंजता ४ ॥ गाहा "संजयअसंजय मीसगा य जीवा तहेव मणुया य । संजतरहिया तिरिया सेसा अस्संजता होंति ॥ १ ॥" (सूत्रं ३१६) ॥ संजयपयं समत्तं ॥ ३२ ॥

'जीवा णं भंते !' इत्यादि, संयच्छन्ति स्म–सर्वसावद्ययोगेभ्यः सम्यगुपरमन्ति स्म अर्थात् निरवद्ययोगेषु चारित्रपरिणामस्फातिहेतुषु वर्त्तन्ते स्म इति संयताः 'गत्यर्थनित्याकर्मका'दिति कर्त्तरि क्तप्रत्ययः, हिंसादिपापस्थाननिवृत्ता इत्यर्थः, तद्विपरीता असंयताः, हिंसादीनां देशतो निवृत्ताः संयतासंयताः, त्रितयप्रतिषेधविषयाः सिद्धाः, कथमिति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३१६] + गाथा

दीप अनुक्रम [५७७--५७८]

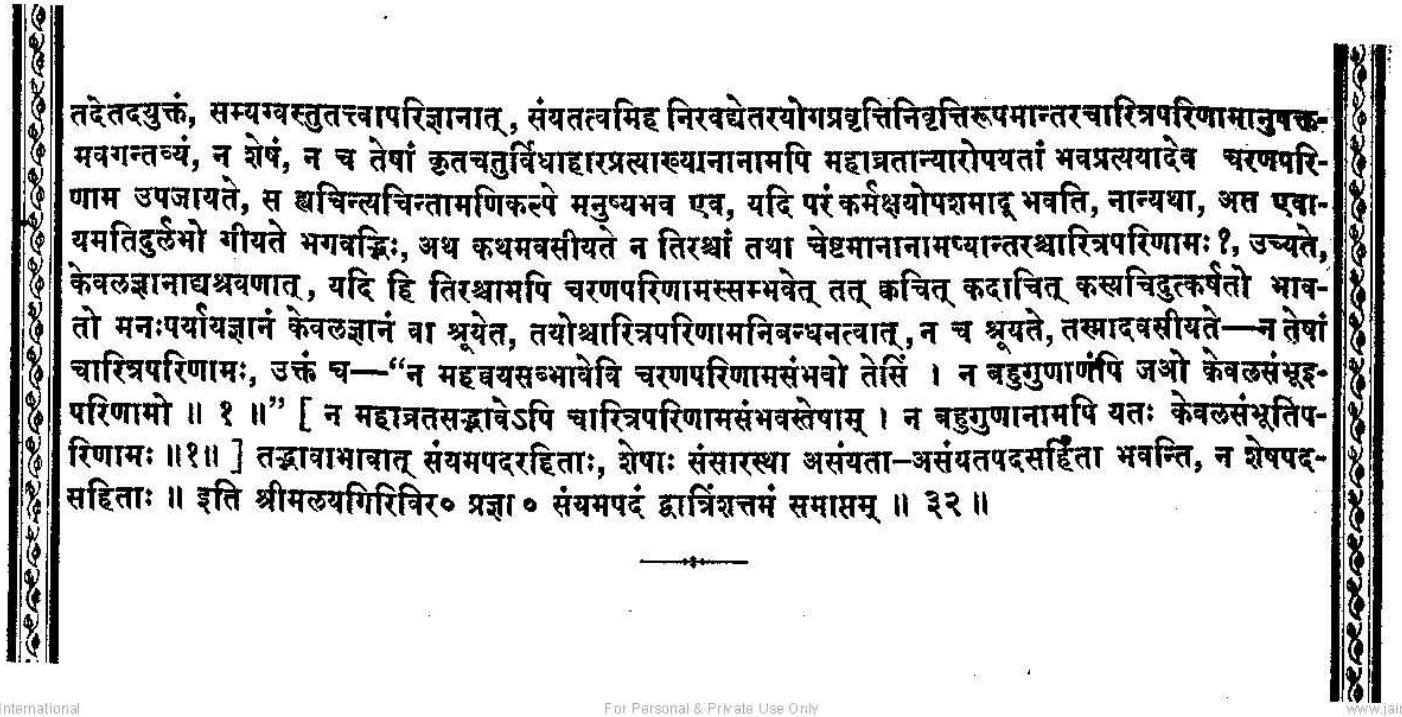
चेत्, उच्यते, उक्तमिह संयमो नाम निरवद्येतरयोगप्रवृत्तिनिवृत्तिरूपः, ततः संयतादिपर्यायो योगाश्रयः, सिद्धाश्च भगवन्तो योगातीताः शरीरमनसोऽभावादतस्त्रितयप्रतिषेधविषयाः, एवं च सामान्यतो जीवपदे चतुष्टयमपि घटते, तथा चाह–'गोयमे'त्यादि, गौतम ! जीवाः संयता अपि साधूनां संयतत्वात्, असंयता अपि नैरयिकादीनामसंयतत्वात्, संयतासंयता अपि पञ्चेन्द्रियतिरश्चां मनुष्याणां च देशतः संयमस्य भावात्, नोसंयतनोअसंयतनोसंयतासंयता अपि सिद्धानां त्रयस्यापि प्रतिषेधात्, चतुर्विंशतिदण्डकसूत्राणि सुगमानि, अत्रैवं सङ्ग्रहणिगाथामाह–'संयते'त्यादि, संयता असंयता मिश्रकाश्च–संयतासंयता जीवास्तथैव मनुष्याश्च, किमुक्तं भवति ?–जीवपदे मनुष्यपदे च एतानि त्रीण्यपि पदानि घटन्ते, नतु न घटन्ते इत्येवंपरमेतत् सूत्रं, अन्यथा जीवपदे त्रितयप्रतिषेधरूपं चतुर्थमपि पदं घटत एव, यथोक्तं प्राक्, तथा संयतरहिता उपलक्षणमेतत् त्रितयप्रतिषेधरहिताश्च तिर्यञ्चः–तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाः, आह–कथं संयतपदरहितास्तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाः ?, यावता तेषामपि संयतत्वमुपपद्यते एव, तथाहि–संयतत्वं नाम निरवद्येतरयोगप्रवृत्तिनिवृत्त्यात्मकं, ते च निरवद्येतरयोगेषु प्रवृत्तिनिवृत्ती तिरश्चामपि सम्भवतः, यतश्चरमकालेऽपि चतुर्विधस्याप्याहारस्य प्रत्याख्यानं कृत्वा शुभेषु योगेषु वर्त्तमाना दृश्यन्ते, अन्यच्च सिद्धान्ते तत्र तत्र प्रदेशे महाव्रतान्यप्यात्मन्यारोपयन्तः श्रूयन्ते, उक्तं च–"तिरियाणं चारित्तं निवारितं तह य अह पुणो तेसिं । सुबइ बहुयाणं चिय महव्वयारोवणं समए ॥१॥" [तिरश्चां चारित्रं निवारितं तथा च पुनस्तेषां श्रूयतेऽथ महाव्रतारोपणं बहूनां समये॥१॥]

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१५],उपांगसूत्र-[४] “प्रज्ञापना” मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३१६] + गाथा

दीप अनुक्रम [५७७--५७८]



तदेतदयुक्तं, सम्यग्वस्तुतत्त्वापरिज्ञानात्, संयतत्वमिह निरवद्येतरयोगप्रवृत्तिनिवृत्तिरूपमान्तरचारित्रपरिणामानुषक्त-मवगन्तव्यं, न शेषं, न च तेषां कृतचतुर्विधाहारप्रत्याख्यानानामपि महाव्रतान्यारोपयतां भवप्रत्ययादेव चरणपरि-णाम उपजायते, स ह्यचिन्त्यचिन्तामणिकल्पे मनुष्यभव एव, यदि परं कर्मक्षयोपशमाद् भवति, नान्यथा, अत एवा-यमतिदुर्लभो गीयते भगवद्भिः, अथ कथमवसीयते न तिरश्चां तथा चेष्टमानानामप्यान्तरश्चारित्रपरिणामः ?, उच्यते, केवलज्ञानाद्यश्रवणात्, यदि हि तिरश्चामपि चरणपरिणामस्सम्भवेत् तत् क्वचित् कदाचित् कस्यचिदुत्कर्षतो भाव-तो मनःपर्यायज्ञानं केवलज्ञानं वा श्रूयेत, तयोश्चारित्रपरिणामनिबन्धनत्वात्, न च श्रूयते, तस्मादवसीयते—न तेषां चारित्रपरिणामः, उक्तं च—“न महव्वयसब्भावेवि चरणपरिणामसंभवो तेसिं । न बहुगुणाणंपि जओ केवलसंभूइ-परिणामो ॥ १ ॥” [न महाव्रतसद्भावेऽपि चारित्रपरिणामसंभवस्तेषाम् । न बहुगुणानामपि यतः केवलसंभूतिप-रिणामः ॥१॥] तद्भावाभावात् संयमपदरहिताः, शेषाः संसारस्था असंयता—असंयतपदसहिता भवन्ति, न शेषपद-सहिताः ॥ इति श्रीमलयगिरिविर० प्रज्ञा० संयमपदं द्वात्रिंशत्तमं समाप्तम् ॥ ३२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र पद (३२) “संयत” परिसमाप्तम्

प्रत सूत्रांक [३१७] + गाथा

दीप अनुक्रम [७७९--७८०]

अथ त्रयस्त्रिंशत्तमं ज्ञानपरिणामाख्यं पदं ॥ ३३ ॥

तदेवमुक्तं द्वात्रिंशत्तमं पदं, सम्प्रति त्रयस्त्रिंशत्तममारभ्यते, अस्य चायमभिसम्बन्धः—इहानन्तरपदे चारित्रपरिणामविशेषः संयमः प्रतिपादितः, इह तु ज्ञानपरिणामविशेषः खल्ववधिः प्रतिपाद्यते, इत्यनेन सम्बन्धेनायातस्यास्यावधिविषयमधिकारद्वारमाह—

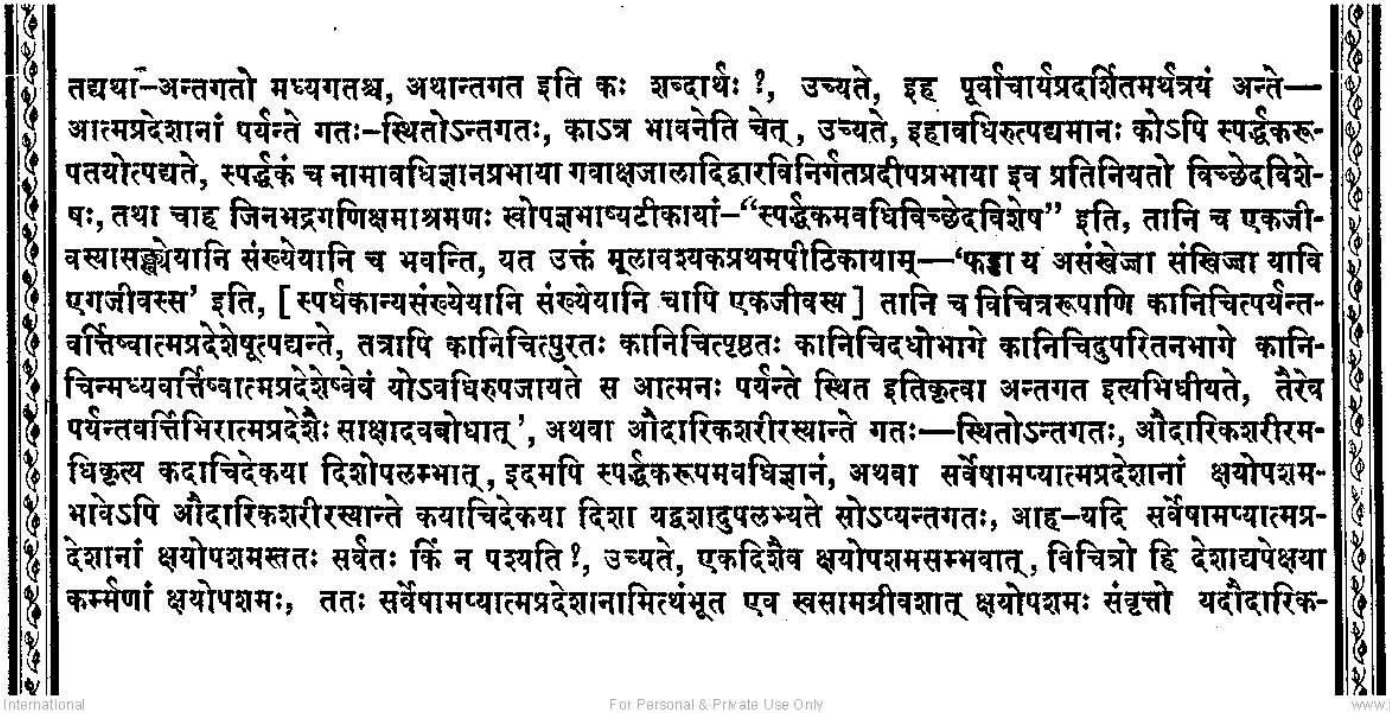
भेदविसयसंठाणे अब्भिंतरबाहिरे य देसोही । ओहिस्स य खयवुड्ढी पडिवाई चेव अपडिवाई ॥ १ ॥ कइविहा णं भंते ! ओही पण्णत्ता ?, गो० ! दुविहा ओही पन्नत्ता, तं०—भवपच्चइया य खओवसमिया य, दोण्हं भवपच्चइया, तं०—देवाण य नेरइयाण य, दोण्हं खओवसमिया, तं०—मणूसाणं पंचिंदियतिरिक्खजोणियाण य (सूत्रं ३१७)

'भेयविसये'त्यादि, अवधेः—अवधिज्ञानस्य प्राग्निरूपितशब्दार्थस्य प्रथमं भेदो वक्तव्यः, ततो विषयस्तदनन्तरं संस्थानं—अवधिना द्योतितस्य क्षेत्रस्य यस्तप्रादिरूप आकारविशेषः सोऽवधिनिबन्धन इत्यवधेः संस्थानत्वेन व्यपदिश्यते, तथा द्विविधोऽवधिर्वक्तव्यः, तद्यथा—अभ्यन्तरो बाह्यश्च, तत्र योऽवधिः सर्वासु दिक्षु स्वद्योत्यं क्षेत्रं प्रकाशयति अवधिमता च सह सातत्येन ततः स्वद्योत्यं क्षेत्रं सम्बद्धं सोऽभ्यन्तरावधिः, एतद्विपरीतो बाह्यावधिः, स च द्विधा,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ पद (३३) "अवधिः" आरब्धम्

***अत्र मूल-संपादने अध्ययनस्य (पदस्य) नामकरणे किञ्चित् स्खलना संभाव्यते— "अवधि" स्थाने "ज्ञानपरिणाम" इति मुद्रितं



तद्यथा–अन्तगतो मध्यगतश्च, अथान्तगत इति कः शब्दार्थः ?, उच्यते, इह पूर्वाचार्यप्रदर्शितमर्थत्रयं अन्ते—आत्मप्रदेशानां पर्यन्ते गतः–स्थितोऽन्तगतः, काऽत्र भावनेति चेत्, उच्यते, इहावधिरुत्पद्यमानः कोऽपि स्पर्द्धकरूपतयोत्पद्यते, स्पर्द्धकं च नामावधिज्ञानप्रभाया गवाक्षजालादिद्वारविनिर्गतप्रदीपप्रभाया इव प्रतिनियतो विच्छेदविशेषः, तथा चाह जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणः स्वोपज्ञभाष्यटीकायां–"स्पर्द्धकमवधिविच्छेदविशेष" इति, तानि च एकजीवस्यासङ्ख्येयानि संख्येयानि च भवन्ति, यत उक्तं मूलावश्यकप्रथमपीठिकायाम्—'फड्डा य असंखेज्जा संखिज्जा यावि एगजीवस्स' इति, [स्पर्धकान्यसंख्येयानि संख्येयानि चापि एकजीवस्य] तानि च विचित्ररूपाणि कानिचित्पर्यन्तवर्त्तिष्वात्मप्रदेशेषूत्पद्यन्ते, तत्रापि कानिचित्पुरतः कानिचित्पृष्ठतः कानिचिदधोभागे कानिचिदुपरितनभागे कानिचिन्मध्यवर्त्तिष्वात्मप्रदेशेष्वेवं योऽवधिरुपजायते स आत्मनः पर्यन्ते स्थित इतिकृत्वा अन्तगत इत्यभिधीयते, तैरेव पर्यन्तवर्त्तिभिरात्मप्रदेशैः साक्षादवबोधात्', अथवा औदारिकशरीरस्यान्ते गतः—स्थितोऽन्तगतः, औदारिकशरीरमधिकृत्य कदाचिदेकया दिशोपलम्भात्, इदमपि स्पर्द्धकरूपमवधिज्ञानं, अथवा सर्वेषामप्यात्मप्रदेशानां क्षयोपशमभावेऽपि औदारिकशरीरस्यान्ते कयाचिदेकया दिशा यद्वशादुपलभ्यते सोऽप्यन्तगतः, आह–यदि सर्वेषामप्यात्मप्रदेशानां क्षयोपशमस्ततः सर्वतः किं न पश्यति ?, उच्यते, एकदिशैव क्षयोपशमसम्भवात्, विचित्रो हि देशाद्यपेक्षया कर्म्मणां क्षयोपशमः, ततः सर्वेषामप्यात्मप्रदेशानामित्थंभूत एव स्वसामग्रीवशात् क्षयोपशमः संवृत्तो यदौदारिक-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३१७] + गाथा

दीप अनुक्रम [७७९--७८०]

शरीरमपेक्ष्य कयाचिद्विवक्षितया एकया दिशा पश्यतीति, तथा चोक्तं नन्द्यध्ययनचूर्णौ–'ओरालियसरीरंते ठियं–गयंति एगट्ठं, तं वा अप्पप्पएसफड्डगावहि एगदिसोवलंभाओ अंतगयमोहिनाणं भन्नइ, अहवा सव्वप्पएसेसु विसुद्धेसुवि ओरालियसरीरगंतेण एगदिसि पासणा गयंति अंतगयंति भण्णइ' इति, एष द्वितीयः, तृतीयः पुनरयं—एगदिग्भाविना तेनावधिना यदुद्योतितं क्षेत्रं तस्यान्ते वर्त्तते अवधिरवधिज्ञानवतस्तदन्ते वर्त्तमानत्वात्, ततोऽन्ते एकदिग्गतस्यावधिविषयस्य पर्यन्ते गतः—स्थितोऽन्तगत इति, अन्तगतश्चावधिः त्रिधा, तद्यथा–पुरतोऽन्तगतः पृष्ठतोऽन्तगतः पार्श्वतोऽन्तगतः, तत्र यथा कश्चित्पुरुषो हस्तगृहीतया दीपिकया पुरतः प्रेर्यमाणया पुरत एव पश्यति, नान्यत्र, एवं येनावधिना तथाविधक्षयोपशमभावतः पुरत एव सङ्ख्येयान्यसङ्ख्येयानि वा योजनानि पश्यति नान्यत्र सोऽवधिः पुरतोऽन्तगत इत्यभिधीयते, तथा स एव पुरुषो यथा पृष्ठतो हस्तेन ध्रियमाणया दीपिकया पृष्ठत एव पश्यत्येवं येनावधिना पृष्ठत एव सङ्ख्येयान्यसङ्ख्येयानि वा योजनानि पश्यति स पृष्ठतोऽन्तगतो, येन तु पार्श्वत एकतो द्वाभ्यां वा सङ्ख्येयान्यसङ्ख्येयानि वा योजनानि पश्यति स पार्श्वतोऽन्तगत इति, उक्तं च नन्द्यध्ययनचूर्णौ—"पुरतोऽंतगएणं पुरतो चेव संखेज्जाणि वा असंखेज्जाणि वा जोयणाइं जाणइ पासइ, मग्गतोऽंतगएणं ओहिनाणेणं मग्गतो चेव' इत्यादि, मध्यगत इत्यत्रापि त्रिधा व्याख्यानं, इह मध्यं प्रसिद्धं दण्डादिमध्यवत्, तत्रात्मप्रदेशानां मध्ये–मध्यवर्त्तिष्वात्मप्रदेशेषु गतः—स्थितो मध्यगतः, अयं च स्पर्द्धकरूपः सर्वदिगुपलम्भकारणं, मध्यवर्त्तिनामात्मप्रदे-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शानामवधिरवसेयः, अथवा सर्वेषामप्यात्मप्रदेशानां क्षयोपशमभावेऽपि औदारिकशरीरमध्यभागेनोपलब्धिः स मध्ये गतो मध्यगतः, उक्तं च नन्द्यध्ययनचूर्णौ–"ओरालियसरीरमज्झे फड्डगविसुद्धीओ सव्वायप्पएसविसुद्धीओ वा सव्वदिसोवलंभत्तणओ मज्झगतोत्ति भण्णइ' इति, अथवा तेनावधिना यदुद्योतितं क्षेत्रं सर्वासु दिक्षु तस्य मध्ये–मध्यभागे स्थितो मध्यगतः, अवधिज्ञानिनस्तदुद्योतितक्षेत्रमध्यवर्त्तित्वात्, आह च नंदिचूर्णिकृदेव–"अहवा उवलद्धिखेत्तस्स अवहिपुरिसो मज्झगतोत्ति अतो वा मज्झगतो ओही भण्णइ' इति, इह व्याख्यानत्रयेऽपि यदाऽवधिना द्योतितं क्षेत्रमवधिमता सम्बद्धं भवति तदा सोऽभ्यन्तरावधिर्मतः, सर्वदिगुपलब्धिक्षेत्रमध्यवर्त्तित्वात्, एष चेह न ग्राह्योऽभ्यन्तरावधावस्यान्तर्भावात्, यदा तु तदुद्योतितं क्षेत्रमपान्तराले व्यवच्छिन्नत्वादवधिमता सम्बद्धं न भवति तदा बाह्योऽवधिः एष चेह ग्राह्यः, प्रस्तुतत्वात्, तथा 'देसोही' इति देशावधिर्वक्तव्यः, उपलक्षणमेतत्, प्रतिपक्षभूतः सर्वावधिश्च, अथ किंस्वरूपो देशावधिः किंस्वरूपो वा सर्वावधिरिति चेत्, उच्यते, इहावधिस्त्रिविधो भवति, तद्यथा–सर्वजघन्यो मध्यमः सर्वोत्कृष्टश्च, तत्र यः सर्वजघन्यः स द्रव्यतोऽनन्तानि तैजसभाषापान्तरालवर्त्तीनि द्रव्याणि क्षेत्रतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागं क्षेत्रं कालतोऽतीतमनागतं चावलिकाया असङ्ख्येयभागं, इहावधिः क्षेत्रं कालं च स्वरूपतः साक्षान्न जानाति, तयोरमूर्त्तत्वात्, अवधेश्च रूपिविषयत्वात् 'रूपिष्ववधे' (तत्त्वा–अ० १ सू० २८) रिति वचनात्, इह क्षेत्रकालदर्शनमुपचारतो वेदितव्यं, किमुक्तं भवति?–एतावति क्षेत्रे काले च यानि द्रव्याणि तानि जानातीति,

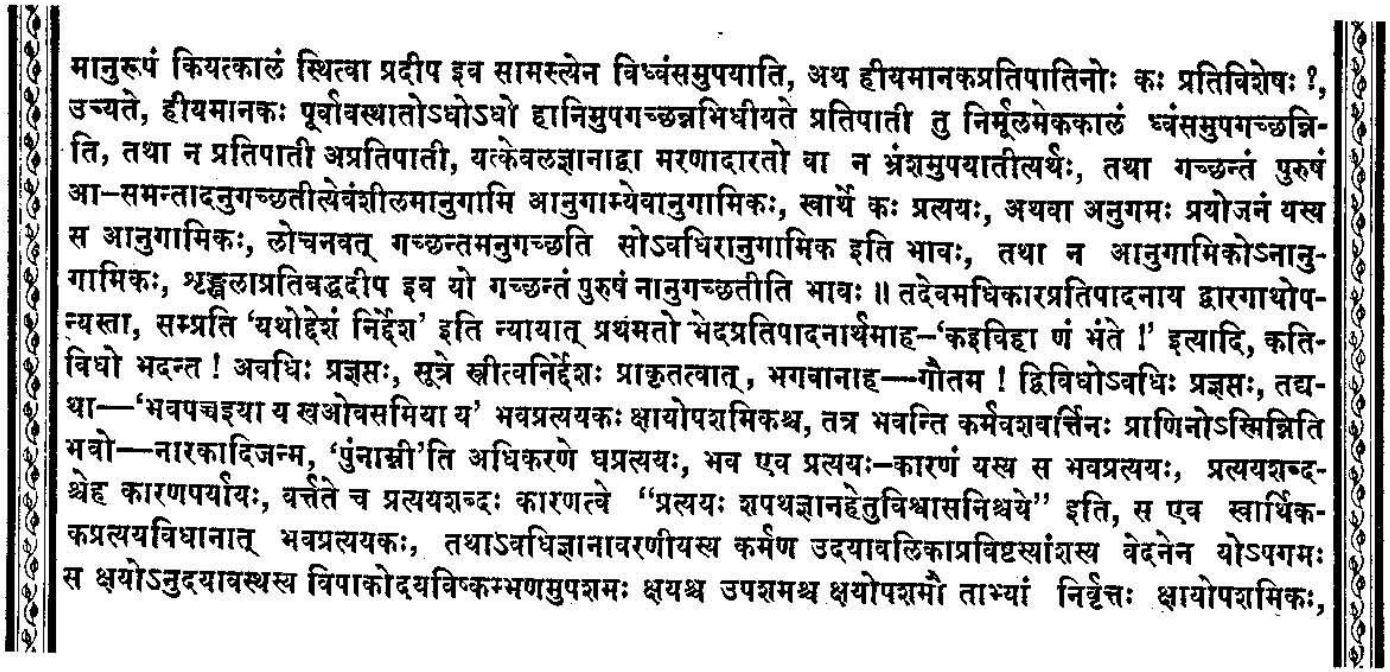
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३१७] + गाथा

दीप अनुक्रम [७७९--७८०]

भावतोऽनन्तान् पर्यायान् जानाति, प्रतिद्रव्यं जघन्यपदेऽपि चतुर्णां रूपरसगन्धस्पर्शरूपाणां पर्यायाणामवगमात्, 'दो पज्जवे दुगुणिए सव्वजहण्णे उ पिच्छए (ओही)। 'ते उ वन्नाईया चउरो' [द्वौ पर्यवौ द्विगुणितौ सर्वजघन्यौ तु प्रेक्षतेऽवधिः। ते तु वर्णादिकाश्चत्वारः] इति वचनात्, द्रव्याणां चानन्तत्वात्, अत ऊर्ध्वं तु प्रदेशवृद्ध्या समयवृद्ध्या पर्यायवृद्ध्या च प्रवर्द्धमानोऽवधिर्मध्यमो वेदितव्यः, स च तावत् यावत्सर्वोत्कृष्टः परमावधिर्न भवति, सर्वोत्कृष्टः परमावधिर्द्रव्यतः सर्वाणि रूपिद्रव्याणि जानाति, क्षेत्रतोऽलोके लोकमात्राणि खण्डानि, कालतोऽतीतानागताश्चासङ्ख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिणीर्भावतोऽनन्तान् पर्यायान्, प्रतिद्रव्यं सङ्ख्येयानामसङ्ख्येयानां च पर्यायाणामवगमात्, 'एगं दव्वं पेच्छं खंधमणुं वा स पज्जवे तस्स। उक्कोसमसंखिज्जे संखेज्जे पेच्छए कोई ॥ १ ॥" [एकं द्रव्यं प्रेक्षमाणः स्कन्धमणुं वा स तस्य पर्यवान्। उत्कृष्टतः संख्येयान् असंख्येयान् प्रेक्षते कश्चित् ॥१॥] इति वचनात्, तत्र सर्वजघन्यो मध्यमश्च देशावधिः, सर्वोत्कृष्टस्तु परमावधिः सर्वावधिः। तथाऽवधेः क्षयवृद्धी वक्तव्ये, किमुक्तं भवति ?—हीयमानकः प्रवर्द्धमानकश्चावधिर्वक्तव्य इति, तत्र तथाविधसामग्र्यभावतः पूर्वावस्थातो हानिमुपगच्छन् हीयमानकः, उक्तं च—"हीयमाणयं पुवावत्थातो अहोऽहो हस्समाणं'ति, वर्द्धमानको बहुबहुतरेन्धनप्रक्षेपादिभिर्वर्द्धमानज्वालाकलाप इव पूर्वावस्थातो यथायोगं प्रशस्तप्रशस्ततराध्यवसायभावतोऽभिवर्द्धमानः, तथा प्रतिपाती अप्रतिपाती चशब्दस्यानुक्तार्थसमुच्चायकत्वादानुगामिकोऽनानुगामिकश्च वक्तव्यः, तत्र प्रतिपतनशीलः प्रतिपाती—य उत्पन्नः सन् क्षयोपश-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



मानुरूपं कियत्कालं स्थित्वा प्रदीप इव सामस्त्येन विध्वंसमुपयाति, अथ हीयमानकप्रतिपातिनोः कः प्रतिविशेषः ?, उच्यते, हीयमानकः पूर्वावस्थातोऽधोऽधो हानिमुपगच्छन्नभिधीयते प्रतिपाती तु निर्मूलमेककालं ध्वंसमुपगच्छन्नि-ति, तथा न प्रतिपाती अप्रतिपाती, यत्केवलज्ञानाद्वा मरणादारतो वा न भ्रंशमुपयातीत्यर्थः, तथा गच्छन्तं पुरुषं आ–समन्तादनुगच्छतीत्येवंशीलमानुगामि आनुगाम्येवानुगामिकः, स्वार्थे कः प्रत्ययः, अथवा अनुगमः प्रयोजनं यस्य स आनुगामिकः, लोचनवत् गच्छन्तमनुगच्छति सोऽवधिरानुगामिक इति भावः, तथा न आनुगामिकोऽनानु-गामिकः, शृङ्खलाप्रतिबद्धदीप इव यो गच्छन्तं पुरुषं नानुगच्छतीति भावः ॥ तदेवमधिकारप्रतिपादनाय द्वारगाथोप-न्यस्ता, सम्प्रति 'यथोद्देशं निर्देश' इति न्यायात् प्रथमतो भेदप्रतिपादनार्थमाह–'कइविहा णं भंते !' इत्यादि, कति-विधो भदन्त ! अवधिः प्रज्ञप्तः, सूत्रे स्त्रीत्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, भगवानाह—गौतम ! द्विविधोऽवधिः प्रज्ञप्तः, तद्य-था—'भवपच्चइया य खओवसमिया य' भवप्रत्ययकः क्षायोपशमिकश्च, तत्र भवन्ति कर्मवशवर्त्तिनः प्राणिनोऽस्मिन्निति भवो—नारकादिजन्म, 'पुंनाम्नी'ति अधिकरणे घप्रत्ययः, भव एव प्रत्ययः–कारणं यस्य स भवप्रत्ययः, प्रत्ययशब्द-श्चेह कारणपर्यायः, वर्त्तते च प्रत्ययशब्दः कारणत्वे "प्रत्ययः शपथज्ञानहेतुविश्वासनिश्चये" इति, स एव स्वार्थिक-कप्रत्ययविधानात् भवप्रत्ययकः, तथाऽवधिज्ञानावरणीयस्य कर्मण उदयावलिकाप्रविष्टस्यांशस्य वेदनेन योऽपगमः स क्षयोऽनुदयावस्थस्य विपाकोदयविष्कम्भणमुपशमः क्षयश्च उपशमश्च क्षयोपशमौ ताभ्यां निर्वृत्तः क्षायोपशमिकः,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३१७] + गाथा

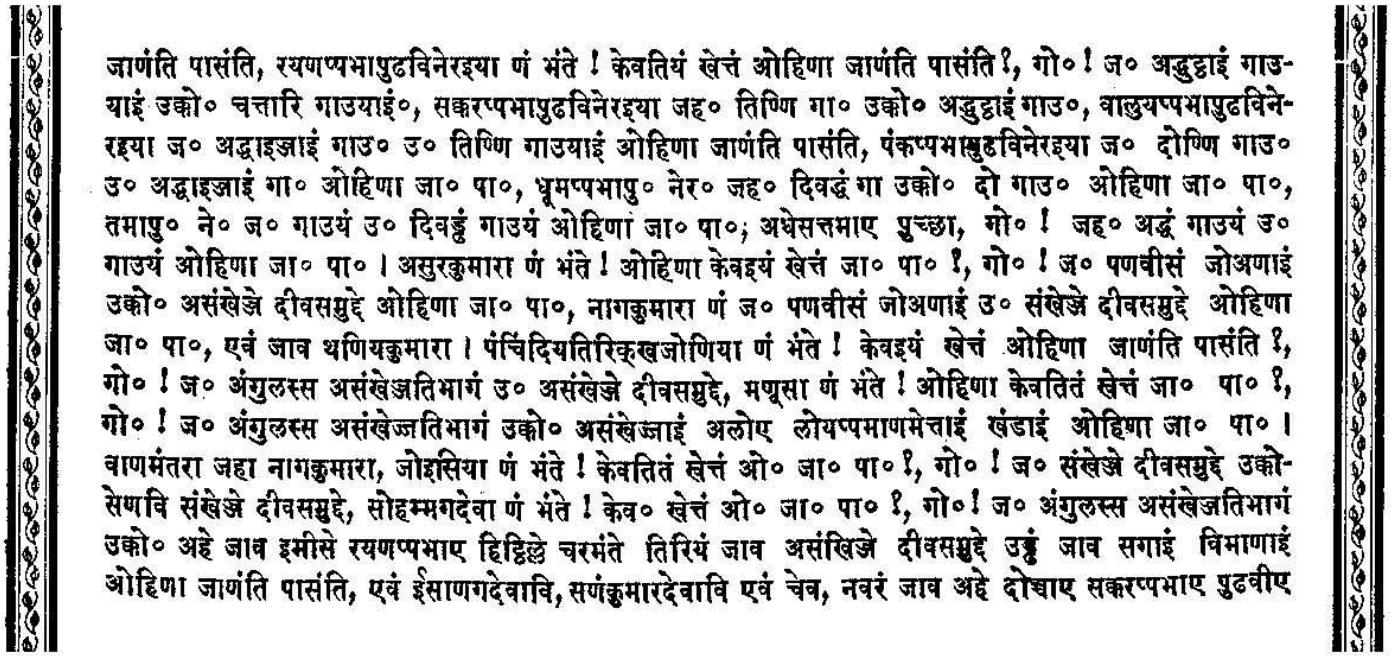
दीप अनुक्रम [७७९--७८०]

चशब्दौ स्वगतानेकभेदसूचकौ, तत्र तु यो येषां भवति तं तेषामुपदर्शयति—'दोण्ह'मित्यादि, द्वयोर्जीवसमूहयोर्भवप्रत्ययकः, तद्यथा—देवानां च नारकाणां च, देवा भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कवैमानिकभेदाच्चतुर्विधाः, नारका रत्नप्रभादिपृथिवीभेदात् सप्तविधाः, चशब्दौ प्रत्येकं स्वगतानेकभेदसूचकौ, ते चानेकभेदा विषयसंस्थानचिन्तायामग्रे स्वयमेव सूत्रकृतैवोपदर्शयिष्यन्ते, आह—नन्ववधिज्ञानं क्षायोपशमिके भावे वर्त्तते नारकादिभवस्त्वौदयिके तत्कथं देवादीनामवधिज्ञानं भवप्रत्ययमिति व्यपदिश्यते ?, नैष दोषो, यतस्तदपि परमार्थतः क्षायोपशमिकमेव, केवलं स क्षयोपशमो देवनारकभवेष्ववश्यंभावी पक्षिणां गगनगमनलब्धिरिव ततो भवप्रत्ययमिति व्यपदिश्यते, आह च नन्द्यध्ययनचूर्णिकृत्—"नणु ओही खओवसमिओ चेव नारगादिभवो से उदइए भावे तओ कहं भवपच्चइओ भण्णइ ?, उच्यते, सोऽवि खओवसमिओ चेव, किंतु सो खओवसमो देवनारगभवेसु अवस्सं भवइ, को दिट्ठंतो ?—पक्खीणं आगासगमणं व, तओ भवपच्चइओ भण्णइ'त्ति, तथा द्वयोः क्षायोपशमिकस्तद्यथा—मनुष्याणां च पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिजातानां च, अत्रापि चशब्दौ प्रत्येकं स्वगतानेकभेदसूचकौ, मनुष्याणां तिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिरश्चां चावधिज्ञानं नावश्यंभावि ततः सामान्येऽपि क्षायोपशमिकत्वे भवप्रत्ययादिदं भिद्यते, परमार्थतः पुनः सकलमप्यवधिज्ञानं क्षायोपशमिकमेवेति । तदेवमुक्तो भेदः, सम्प्रति विषयप्रतिपादनार्थमाह—

नेरइया णं भंते ! केवइयं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति ?, गो० ! जह० अद्धगाउयं उक्को० चत्तारि गाउयाइं ओहिणा

॥५३९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



जाणंति पासंति, रयणप्पभापुढविनेरइया णं भंते ! केवतियं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति ?, गो० ! ज० अद्धुट्ठाइं गाउयाइं उक्को० चत्तारि गाउयाइं०, सक्करप्पभापुढविनेरइया जह० तिण्णि गा० उक्को० अद्धुट्ठाइं गाउ०, वालुयप्पभापुढविनेरइया ज० अद्धाइज्जाइं गाउ० उ० तिण्णि गाउयाइं ओहिणा जाणंति पासंति, पंकप्पभापुढविनेरइया ज० दोण्णि गाउ० उ० अद्धाइज्जाइं गा० ओहिणा जा० पा०, धूमप्पभापु० नेर० जह० दिवड्ढं गा उक्को० दो गाउ० ओहिणा जा० पा०, तमापु० ने० ज० गाउयं उ० दिवड्ढं गाउयं ओहिणा जा० पा०; अधेसत्तमाए पुच्छा, गो० ! जह० अद्धं गाउयं उ० गाउयं ओहिणा जा० पा० । असुरकुमारा णं भंते ! ओहिणा केवइयं खेत्तं जा० पा० ?, गो० ! ज० पणवीसं जोअणाइं उक्को० असंखेज्जे दीवसमुद्दे ओहिणा जा० पा०, नागकुमारा णं ज० पणवीसं जोअणाइं उ० संखेज्जे दीवसमुद्दे ओहिणा जा० पा०, एवं जाव थणियकुमारा । पंचिंदियतिरिक्खजोणिया णं भंते ! केवइयं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति ?, गो० ! ज० अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं उ० असंखेज्जे दीवसमुद्दे, मणूसा णं भंते ! ओहिणा केवतितं खेत्तं जा० पा० ?, गो० ! ज० अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं उक्को० असंखेज्जाइं अलोए लोयप्पमाणमेत्ताइं खंडाइं ओहिणा जा० पा० । वाणमंतरा जहा नागकुमारा, जोइसिया णं भंते ! केवतितं खेत्तं ओ० जा० पा० ?, गो० ! ज० संखेज्जे दीवसमुद्दे उक्कोसेणवि संखेज्जे दीवसमुद्दे, सोहम्मगदेवा णं भंते ! केव० खेत्तं ओ० जा० पा० ?, गो० ! ज० अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं उक्को० अहे जाव इमीसे रयणप्पभाए हिट्ठिल्ले चरमंते तिरियं जाव असंखिज्जे दीवसमुद्दे उड्ढं जाव सगाइं विमाणाइं ओहिणा जाणंति पासंति, एवं ईसाणगदेवावि, सणंकुमारदेवावि एवं चेव, नवरं जाव अहे दोच्चाए सक्करप्पभाए पुढवीए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हिट्ठिल्ले चरमंते, एवं माहिंददेवावि, बंभलोयलंतगदेवा तच्चाए पुढवीए हिट्ठिल्ले चरमंते, महासुक्कसहस्सारगदेवा चउत्थीए पंकप्पभाए पुढवीए हेट्ठिल्ले चरमंते, आणयपाणयआरणच्चुयदेवा अहे जाव पंचमाए धूमप्पभाए हेट्ठिल्ले चरमंते, हेट्ठिममज्झिमगेवेज्जगदेवा अधे जाव छट्ठाए तमाए पुढवीए हेट्ठिल्ले जाव चरमंते, उवरिमगेवेज्जगदेवा णं भंते ! केवतियं खेत्तं ओहिणा जा० पा० ?, गो० ! ज० अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं उ० अधे सत्तमाए हे० च० तिरियं जाव असंखेज्जे दीवसमुद्दे उड्ढं जाव सयाइं विमाणाइं ओ० जा० पा०, अणुत्तरोववाइयदेवा णं भंते ! के० खेत्तं ओ० जा० पा० ?, गो० ! संभिन्नं लोगनालिं ओ० जा० पा० (सूत्रं ३१८)

'नेरइया ण'मित्यादि सुगमं, नवरं जघन्येनार्द्धगव्यूतमिति समपृथिव्यां जघन्यपदमपेक्ष्य, उत्कर्षतश्चत्वारि गव्यूतानि रत्नप्रभायामुत्कृष्टपदमाश्रित्य, अधुना प्रतिपृथिवीविषयं चिन्तयन्नाह—'रयणप्पभे'त्यादि, सुगमं, जघन्यपदोत्कृष्टपदविषयसङ्ग्राहिके इमे गाथे—"अद्धट्ठ १–३॥ तिन्नि २–३ अद्धाइयाइं ३–२॥ दोण्णि ४–२ य दिवड्ढ–५–१॥ मेगं च ६–१। अद्धं च गाउ ७–०॥ कमसो जहन्नतो रयणमाईसुं ॥ १ ॥ चत्तारि गाउयाइं १–४ अद्धट्ठाइं २–३॥ तिगाउयं ३–३ चेव । अद्धाइज्जा ४–२॥ दोण्णि ५–२ य दिवड्ढ ६–१॥ मेगं ७–१ च नरएसुं ॥ ॥ २ ॥" भवनपतिव्यन्तराणां जघन्यपदे यानि पञ्चविंशतियोजनानि तानि येषां सर्वजघन्यं दशवर्षसहस्रप्रमाणमायुस्तेषां द्रष्टव्यानि, न शेषाणां, आह च भाष्यकृत्—'पणवीसजोयणाइं दसवाससहस्सिया ठिई जेसि'मिति, मनुष्य-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३१८]

दीप अनुक्रम [५८१]

चिन्तायामुत्कृष्टपदे यान्यलोके लोकप्रमाणमात्राणि खण्डानि असङ्ख्येयानि तानि परमावधिमपेक्ष्य द्रष्टव्यानि, तस्यैवैतावद्विषयसम्भवात्, एतत्सामर्थ्यमात्रमुपवर्ण्यते, यद्येतावति क्षेत्रे द्रष्टव्यं भवति तर्हि पश्यति यावता तन्न विद्यते, अलोके रूपिद्रव्याणामसम्भवात्, रूपिद्रव्यविषयश्चावधिः, केवलमयं विशेषो—यावदद्यापि परिपूर्णं लोकं पश्यति तावदिह स्कन्धानेव पश्यति, यदा पुनरलोकेऽपि प्रसरमवधिरधिरोहति तदा यथा यथाऽभिवृद्धिमासादयति तथा तथा लोके सूक्ष्मान् सूक्ष्मतरान् स्कन्धान् पश्यति यावदन्ते परमाणुमपि, उक्तं च—"सामत्थमेत्तमुत्तं दट्ठव्वं जइ हवेज्ज पेच्छेज्जा । न उ तं तत्थत्थि जओ सो रूविनिबंधणो भणिओ ॥ १ ॥ वड्ढंतो पुण बाहिं लोगत्थं चेव पासई दव्वं । सुहुमयरं सुहुमयरं परमोही जाव परमाणुं ॥ २ ॥" [सामर्थ्यमात्रमुक्तं द्रष्टव्यं यदि भवेत् प्रेक्षेत नतु तत्तत्रास्ति यतः स रूपिनिबन्धनो भणितः ॥ १ ॥ वर्धमानः पुनर्बहिर्लोकस्थमेव पश्यति द्रव्यं । सूक्ष्मतरं सूक्ष्मतरं परमावधिर्यावत् परमाणुं ॥ २ ॥] इत्थंभूतपरमावधिकलितश्च नियमादन्तर्मुहूर्त्तेन केवलालोकलक्ष्मीमालिङ्गति, यत उक्तं—"परमोहीनाणविऊ केवलमंतोमुहुत्तमेत्तेणं" [परमावधिज्ञानविदः केवलमन्तर्मुहूर्त्तमात्रेण] इति, वैमानिकानां यजघन्यपदे अङ्गुलासङ्ख्येयभागप्रमाणं क्षेत्रं उक्तं तत्र पर आह—नन्वङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रक्षेत्रपरिमितोऽवधिः सर्वजघन्यो भवति, सर्वजघन्यश्चावधिस्तिर्यग्मनुष्येष्वेव न शेषेषु, यत आह भाष्यकृत् स्वकृतटीकायाम्—"उत्कृष्टो मनुष्येष्वेव नान्येषु, मनुष्यतिर्यग्योनिष्वेव जघन्यो नान्येषु, शेषाणां मध्यम एवेति" तत्कथमिह सर्वजघन्य उक्तः ?,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३१८]

दीप अनुक्रम [५८१]

उच्यते, सौधर्मादिदेवानां पारभविकोऽप्युपपातकालेऽवधिः सम्भवति, स च कदाचित्सर्वजघन्योऽपि, उपपातानन्तरं तु तद्भवजः, ततो न कश्चिद्दोषः, आह च दुष्षमान्धकारनिमग्नजिनप्रवचनप्रदीपो जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणः— "वेमाणियाणमंगुलभागमसंखं जहण्णओ होइ । उववाए परभविओ तब्भवजो होइ तो पच्छा ॥ १ ॥" उड्ढं जाव सगाइं विमाणाइं'ति ऊर्ध्वं यावत् स्वकीयानि विमानानि, स्वकीयविमानस्तूपध्वजादिकं यावदित्यर्थः, 'संभिन्नं लोगनालिं'ति परिपूर्णं चतुर्दशरज्वात्मिकां लोकनाडीमिति.। संस्थानद्वारमाह—

नेरइयाणं भंते! ओही किंसंठिए पं० ?, गो० ! तप्पागारसंठिए पं०, असुरकुमाराणं पुच्छा, गो० ! पल्लगसंठिते, एवं जाव थणियकुमाराणं, पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा, गो० ! णाणासंठाणसं०, एवं मणूसाणवि, वाणमंतराणं पुच्छा, गो० ! पडहगसं०, जोतिसियाणं पुच्छा ?, गो० ! झल्लरिसंठाणसं० पं०, सोहम्मगदेवाणं पुच्छा, गो० ! उड्डमुयंगागारसंठिए पं०, एवं जाव अच्चुयदेवाणं, गेवेज्जगदेवाणं पुच्छा, गो० ! पुप्फचंगेरिसंठिए पं०, अणुत्तरोववाइयाणं पुच्छा, गो० ! जवनालियासंठिते ओही, पं० । (सूत्रं ३१९) नेरइयाणं भंते ! ओहिस्स किं अंतो० बाहिं०, गो० ! अंतो नो बाहिं, एवं जाव थणियकुमारा, पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा, गो० ! नो अंतो बाहिं, मणूसाणं पुच्छा, गो० ! अंतोवि बाहिंपि, वाणमंतरजोइसियवेमाणियाणं जहा नेरइयाणं । नेरइयाणं भंते ! किं देसोही सव्वोही ?, गो० ! देसोही नो सव्वोही, एवं जाव थणियकुमारा, पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा, गो० ! देसोही नो सव्वोही, मणूसाणं पुच्छा,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३१९-३१९R]

दीप अनुक्रम [५८२--५८३]

गो० ! देसोहीवि सव्वोहीवि, वाणमंतरजोइसियवेमाणियाणं जहा नेरइयाणं । नेरइयाणं भंते ! ओही किं आणुगामिते अणाणुगामिते वड्ढमाणते हीयमाणए पडिवाई अप्पडिवाई अवट्ठिए अणवट्ठिए ?, गो० ! आणुगामिए नो अणाणुगामिए नो वड्ढमाणते नो हीयमाणए नो पडिवाई अप्पडिवाई अवट्ठिए नो अणवट्ठिए, एवं जाव थणियकुमाराणं, पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा, गो० ! आणुगामितेवि जाव अणवट्ठिएवि, एवं मणूसाणवि, वाणमंतरजोतिसियवेमाणियाणं जहा नेरइयाणं (सूत्रं ३१९) ॥ पण्णवणाए ओहिपदं समत्तं ॥ ३३ ॥

'नेरइयाण'मित्यादि, 'तप्पागारसंठिए'त्ति तप्रो नाम काष्ठसमुदायविशेषो यो नदीप्रवाहेण प्लाव्यमानो दूरादानीयते स चायतरुयस्रश्च भवति, तदाकारसंस्थितोऽवधिर्नारकाणां, असुरकुमारादीनां सर्वेषामपि भवनपतीनां पल्लकसंस्थानसंस्थितः, पल्लको नाम लाटदेशे धान्याधारविशेषः, स चोर्ध्वाध आयत उपरि च किञ्चित्सङ्क्षिप्तः, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां मनुष्याणां च नानासंस्थानसंस्थितो, यथा स्वयम्भूरमणोदधौ मत्स्याः, अपि च तत्र मत्स्यानां वलयाकारं संस्थानं निषिद्धं तिर्यग्मनुष्यावधेस्तु तदपि भवति, उक्तं च—"नाणागारो तिरियमणुएसु मच्छा सयंभूरमणेव । तत्थ वलयं निसिद्धं तस्स पुण तयंपि होज्जाहि ॥ १ ॥" व्यन्तराणां पटहसंस्थानसंस्थितः, पटह आतोद्यविशेषः, स च किञ्चिदायत उपर्यधश्च समप्रमाणः, ज्योतिष्कदेवानां झल्लरीसंस्थानसंस्थितः, झल्लरी—चर्मावनद्धविस्तीर्णवलयाकारा आतोद्यविशेषरूपा देशविशेषे प्रसिद्धा, सौधर्मदेवादीनामच्युतदेवपर्यन्तानां मृदङ्गसंस्थानसंस्थितः,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मूल-संपादने अत्र सूत्र-क्रमांकने मुद्रण-दोषात् (सूत्रं ३१९) इति '३१९' क्रम द्विवारान् मुद्रितं

मृदङ्गो वाद्यविशेषः, स चाधस्तात् विस्तीर्णः उपरि च तनुकः सुप्रतीतः, ग्रैवेयकदेवानां ग्रथितपुष्पसशिखाकरूपच-ङ्गेरीसंस्थानसंस्थितः, अनुत्तरोपपातिकदेवानां कन्याचोलकापरपर्यायजवनालकसंस्थानसंस्थितः, तथा च तत्प्राकारा-दीनां व्याख्यानमिदं भाष्यकृदाह—"तप्पेण समागारो तप्पागारो स चाययत्तंसो । उद्धायतो उ पल्लो उवरिं च स किंचि संखित्तो ॥ १ ॥ नचायतो समोविय पडहो हेट्ठोवरि पईतो सो । चम्माणवणद्धविच्छिन्नवलयरूवा उ झल्ल-रिया ॥२॥ उद्धायओ मुइंगो हेट्ठा रुंदो तहोवरिं तणुओ । पुप्फसिहावलिरइया चंगेरी पुप्फचंगेरी ॥ ३ ॥ जवना-लओत्ति भण्णइ उब्भ सिरकंचुओ कुमारीए ॥" इति, अनेन च संस्थानप्रतिपादनेनेदमावेदितं द्रष्टव्यं, भवनपतिव्यन्त-राणामूर्ध्वं प्रभूतोऽवधिर्वैमानिकानामधः ज्योतिष्कनारकाणां तिर्यक् विचित्रो नरतिरश्चां, आह च—"भवणवइवणय-राणं उड्ढं बहुगो अहो य सेसाणं । नारगजोइसियाणं तिरियं ओरालिओ चित्तो ॥ १ ॥" तथा नैरयिकभवनपति-व्यन्तरज्योतिष्कवैमानिकाः तथाभवस्वाभाव्यादवधेर्मध्यवर्त्तिनो न पुनर्बहिः, किमुक्तं भवति ?—सर्वतःप्रकाशिख-सम्बद्धावधयो भवन्ति, न तु स्पर्द्धकावधयो विच्छिन्नावधयो वा, तिर्यक्पश्चेन्द्रियास्त्ववधेरन्तर्न विद्यन्ते, किन्तु बहिः, अत्राप्येष भावार्थः—तिर्यक्पञ्चेन्द्रियास्तथाभवस्वाभाव्यात् स्पर्द्धकावधयो विच्छिन्नापान्तरालसर्वतःप्रकाशवव-धयो वा भवन्ति, स्पर्द्धकाद्यवधयो वेति भावः, देशावधिसर्वावधिचिन्तायां मनुष्यवर्जाः सर्वेऽपि देशावधयः, मनुष्यास्तु देशावधयोऽपि भवन्ति सर्वावधयोऽपि, परमावधेरपि तेषां सम्भवात् । आनुगामिकादिचिन्तायां नैरयिकभवनपति-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३१९-३१९R]

दीप अनुक्रम [५८२--५८३]

व्यन्तरज्योतिष्कवैमानिका आनुगामिकाप्रतिपात्यवस्थितावधयो नत्वनानुगामिकवर्द्धमानहीयमानप्रतिपात्यनवस्थितावधयस्तथाभवस्वाभाव्यात्, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्याणां त्वष्टधाऽवधिरिति ॥ इति श्रीमलयगिरि० प्रज्ञापनाटीकायां त्रयस्त्रिंशत्तममवध्याख्यं पदं समाप्तम् ॥ ३३ ॥

अथ चतुस्त्रिंशत्तमं प्रवीचारपरिणामाख्यं पदं ॥ ३४ ॥

तदेवमुक्तं त्रयस्त्रिंशत्तमं पदं, सम्प्रति चतुस्त्रिंशत्तममारभ्यते, अस्य चायमभिसम्बन्धः–इहानन्तरपदे ज्ञानपरिणामविशेषोऽवधिरुक्तः, अत्र तु परिणामसाम्याद्वेदपरिणामविशेषः प्रवीचारः प्रतिपाद्यते इति, तत्र च सकलवक्तव्यतोपसङ्ग्राहिके इमे द्वे गाथे—

अणंतरगयाहारे १, आहारे भोयणाइय २ । पोग्गला नेव जाणंति ३, अज्झवसाणा ४ य आहिया ॥ १ ॥ सम्मत्तस्साहिगमे ५ तत्तो परियारणा ६ य बोद्धवा । काए फासे रूवे सद्दे य मणे य अप्पबहुं ॥ २ ॥ नेरइया णं भंते ! अणंतराहारा ततो निवत्तणा ततो परियाइणया ततो परिणामया ततो परियारणया तओ पच्छा विउव्वणया १, हंता ! गो० ! नेरइयाणं अणंतराहारा ततो निवत्तणया ततो परियादिणया ततो परिणामया तओ परियारणया तओ पच्छा विउव्वणया, असुरकुमारा णं भंते ! अणंतराहारा ततो निवत्तणया ततो परियाइणया ततो परिणामया ततो विउव्वणया तओ पच्छा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

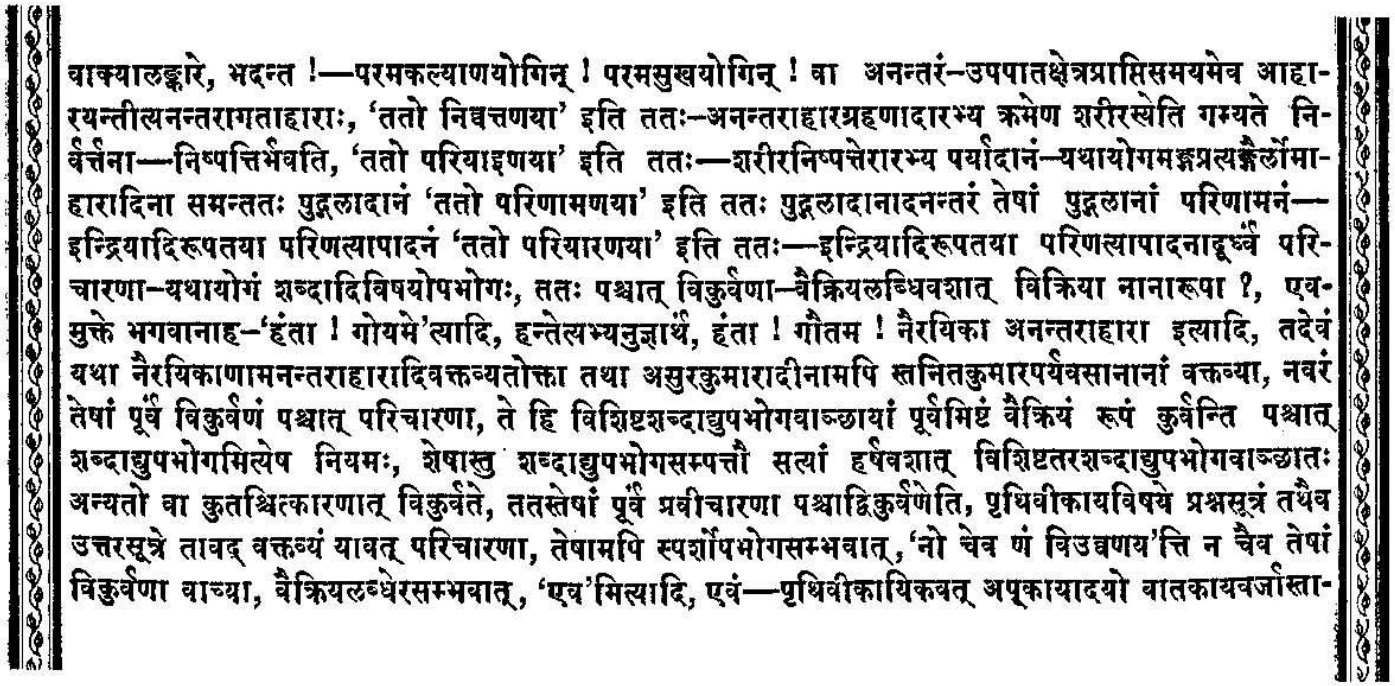
अत्र पद (३३) "अवधिः" परिसमाप्तम्

अथ पद (३४) "प्रविचारणा" आरब्धम्

परियारणया ?, हंता ! गो० ! असुरकुमारा अणंतराहारा ततो निव्वत्तणया जाव ततो पच्छा परिया०, एवं जाव थणियकुमारा, पुढविकाइया णं भंते ! अणंतराहारा ततो निव्वत्तणया ततो परियाइणया ततो परिणामया ततो परिया० ततो विउ० ?, हंता ! गो० ! तं चेव जाव परियारणया नो चेव णं विउव्वणया, एवं जाव चउरिंदिया, नवरं वाउकाइया पंचिंदियतिरिक्खजोणिया मणूसा य जहा नेरइया, वाणमंतरजोइसियवेमाणिया जहा असुरकुमारा (सूत्रं ३२०)

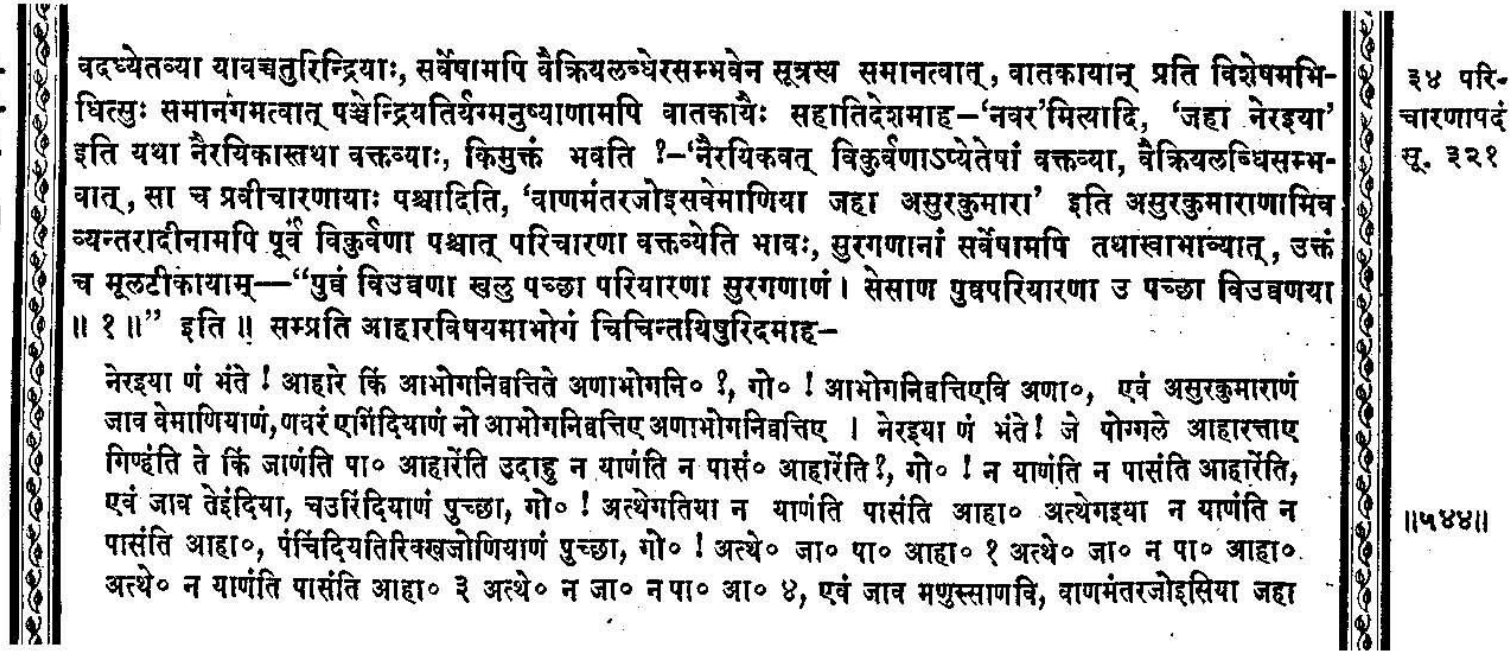
'अणंतरागयाहारे'इत्यादि, प्रथममनन्तरागताहारको नैरयिकादिर्वक्तव्यः, तदनन्तरं 'आहारे भोयणाइय' इति आहाराभोगता आदिशब्दादाहारानाभोगता च वक्तव्या, यथा 'नेरयिकाणं भंते ! आहारे किं आभोगनिवत्तिए अणाभोगनिवत्तिए' इत्यादि, तथा 'पोग्गला नेव जाणंति' इति, नैरयिका आहारतया गृहीतान् पुद्गलान्नैव जानन्तीत्यादि चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण वक्तव्यं, 'अज्झवसाणा य आहिय'त्ति तदनन्तरं नैरयिकादीनां क्रमेणाध्यवसानानि, सूत्रे पुंल्लिङ्गनिर्देशः प्राकृतत्वात्, चः पूर्वापेक्षया समुच्चये, आख्यातानि, तदनन्तरं 'सम्मत्तस्स अहिगमे' इति, सम्यक्त्वस्याधिगमो नैरयिकादिचतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण चिन्तनीयः, 'तत्तो परियारणा य बोद्धव्वा' इति ततः—सम्यक्त्वाधिगमप्रतिपादनादूर्ध्वं परिचारणा वक्तव्यतया बोद्धव्या, कस्मिन् विषये इत्याह—काये स्पर्शे रूपे शब्दे मनसि च, ततः कायप्रवीचारादीनामल्पबहुत्वं, भावप्रधानोऽयं निर्देशः—अल्पबहुत्वं वक्तव्यं। सम्प्रति 'यथोद्देशं निर्देश' इति प्रथमतोऽनन्तरागताहारवक्तव्यतामभिधित्सुरिदमाह—'नेरइया णं भंते !' इत्यादि, नैरयिकाः, णमिति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



वाक्यालङ्कारे, भदन्त !—परमकल्याणयोगिन् ! परमसुखयोगिन् ! वा अनन्तरं–उपपातक्षेत्रप्राप्तिसमयमेव आहारयन्तीत्यनन्तराहाराः, 'ततो निवत्तणया' इति ततः–अनन्तराहारग्रहणादारभ्य क्रमेण शरीरस्येति गम्यते निर्वर्त्तना—निष्पत्तिर्भवति, 'ततो परियाइणया' इति ततः—शरीरनिष्पत्तेरारभ्य पर्यादानं–यथायोगमङ्गप्रत्यङ्गैर्लोमाहारादिना समन्ततः पुद्गलादानं 'ततो परिणामणया' इति ततः पुद्गलादानादनन्तरं तेषां पुद्गलानां परिणामनं—इन्द्रियादिरूपतया परिणत्यापादनं 'ततो परियारणया' इति ततः—इन्द्रियादिरूपतया परिणत्यापादनादूर्ध्वं परिचारणा–यथायोगं शब्दादिविषयोपभोगः, ततः पश्चात् विकुर्वणा–वैक्रियलब्धिवशात् विक्रिया नानारूपा ?, एवमुक्ते भगवानाह–'हंता ! गोयमे'त्यादि, हन्तेत्यभ्यनुज्ञार्थे, हंता ! गौतम ! नैरयिका अनन्तराहारा इत्यादि, तदेवं यथा नैरयिकाणामनन्तराहारादिवक्तव्यतोक्ता तथा असुरकुमारादीनामपि स्तनितकुमारपर्यवसानानां वक्तव्या, नवरं तेषां पूर्वं विकुर्वणं पश्चात् परिचारणा, ते हि विशिष्टशब्दाद्युपभोगवाञ्छायां पूर्वमिष्टं वैक्रियं रूपं कुर्वन्ति पश्चात् शब्दाद्युपभोगमित्येष नियमः, शेषास्तु शब्दाद्युपभोगसम्पत्तौ सत्यां हर्षवशात् विशिष्टतरशब्दाद्युपभोगवाञ्छातः अन्यतो वा कुतश्चित्कारणात् विकुर्वते, ततस्तेषां पूर्वं प्रवीचारणा पश्चाद्विकुर्वणेति, पृथिवीकायविषये प्रश्नसूत्रं तथैव उत्तरसूत्रे तावद् वक्तव्यं यावत् परिचारणा, तेषामपि स्पर्शोपभोगसम्भवात्, 'नो चेव णं विउव्वणय'त्ति न चैव तेषां विकुर्वणा वाच्या, वैक्रियलब्धेरसम्भवात्, 'एव'मित्यादि, एवं—पृथिवीकायिकवत् अप्कायादयो वातकायवर्जास्ता-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



प्रज्ञापनायाः मलय० वृत्तौ. ॥५४४॥

वदध्येतव्या यावच्चतुरिन्द्रियाः, सर्वेषामपि वैक्रियलब्धेरसम्भवेन सूत्रस्य समानत्वात्, वातकायान् प्रति विशेषमभिधित्सुः समानगमत्वात् पञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्याणामपि वातकायैः सहातिदेशमाह–'नवर'मित्यादि, 'जहा नेरइया' इति यथा नैरयिकास्तथा वक्तव्याः, किमुक्तं भवति ?–'नैरयिकवत् विकुर्वणाऽप्येतेषां वक्तव्या, वैक्रियलब्धिसम्भवात्, सा च प्रवीचारणायाः पश्चादिति, 'वाणमंतरजोइसवेमाणिया जहा असुरकुमारा' इति असुरकुमाराणामिव व्यन्तरादीनामपि पूर्वं विकुर्वणा पश्चात् परिचारणा वक्तव्येति भावः, सुरगणानां सर्वेषामपि तथास्वाभाव्यात्, उक्तं च मूलटीकायाम्—"पुव्वं विउव्वणा खलु पच्छा परियारणा सुरगणाणं। सेसाण पुव्वपरियारणा उ पच्छा विउव्वणया ॥ १ ॥" इति ॥ सम्प्रति आहारविषयमाभोगं चिचिन्तयिषुरिदमाह–

नेरइया णं भंते ! आहारे किं आभोगनिवत्तिते अणाभोगनि० ?, गो० ! आभोगनिवत्तिएवि अणा०, एवं असुरकुमाराणं जाव वेमाणियाणं, णवरं एगिंदियाणं नो आभोगनिवत्तिए अणाभोगनिवत्तिए । नेरइया णं भंते! जे पोग्गले आहारत्ताए गिण्हंति ते किं जाणंति पा० आहारेंति उदाहु न याणंति न पासं० आहारेंति?, गो० ! न याणंति न पासंति आहारेंति, एवं जाव तेइंदिया, चउरिंदियाणं पुच्छा, गो० ! अत्थेगतिया न याणंति पासंति आहा० अत्थेगइया न याणंति न पासंति आहा०, पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा, गो० ! अत्थे० जा० पा० आहा० १ अत्थे० जा० न पा० आहा० अत्थे० न याणंति पासंति आहा० ३ अत्थे० न जा० न पा० आ० ४, एवं जाव मणुस्साणवि, वाणमंतरजोइसिया जहा

३४ परिचारणापदं सू. ३२१

॥५४४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३२१]

दीप अनुक्रम [५८७]

नेरइया, वेमाणियाणं पुच्छा, गो० ! अत्थे० जा० पा० आ०, अत्थे० न जा० न पा० आ०, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वु० वेमाणिया अत्थे० जा० पा० आ० अत्थे० न जा० न पा० आ० ?, गो० ! वेमाणिया दुविहा पं०, तं०—मा[ई]मिच्छदिट्ठि-उववन्नगा य अमायिसम्मद्दिट्ठिउव०, एवं जहा इंदियउद्देसए पढमे भणितं तहा भाणितव्वं जाव से एएणट्ठेणं गो० ! एवं वुच्चति, नेरइया णं भंते केवतिया अज्झवसाणा पं० ?, गो० ! असंखेज्जा अज्झवसाणा, ते णं भंते ! किं पसत्था अपसत्था ?, गो० ! पसत्थावि अप० एवं जाव वेमाणियाणं । नेरइया णं भंते ! किं सम्मत्ताभिगमी मिच्छत्ताभिगमी सम्मामिच्छत्ताभिगमी ?, गो० ! सम्मत्ताभिगमीवि मिच्छत्ताभिगमीवि सम्मामिच्छत्ताभिगमीवि, एवं जाव वेमाणियावि, नवरं एगिंदियविगलिंदियाणो सम्मत्ताभिगमी मिच्छत्ताभिगमी नो सम्मामिच्छत्ताभिगमी (सूत्रं ३२१)

'नेरइयाण'मित्यादि, आभोगनिर्वर्त्तितो यदा मनःप्रणिधानपूर्वमाहारं गृह्णन्ति, शेषकालमनाभोगनिर्वर्त्तितः, स च लोमाहारोऽवसातव्यः, एवं शेषाणामपि जीवानामाभोगनिर्वर्त्तितोऽनाभोगनिर्वर्त्तितश्चाहारो भावनीयः, नवर-मेकेन्द्रियाणामतिस्तोकापटुमनोद्रव्यलब्धिसम्पन्नत्वात् पटुतर आभोगो नोपजायते इति तेषां सर्वदाऽनाभोगनिर्व-र्त्तित एवाहारो न पुनः कदाचिदप्याभोगनिर्वर्त्तितः । अधुना आहार्यमाणपुद्गलविषये ज्ञानदर्शने चिन्तयति—'नेरइ-या णं भंते' इत्यादि, नैरयिका णमिति वाक्यालङ्कारे भदन्त ! यान् पुद्गलान् आहारतया गृह्णन्ति तान् किं जान-न्ति पश्यन्ति उत नेति ?, भगवानाह—गौतम ! न जानन्त्यवधिज्ञानेन, लोमाहारतया तेषामतिसूक्ष्मत्वेन नारका-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वधेरविषयत्वात्, न च पश्यन्ति चक्षुरिन्द्रियविषयाभावात्, द्वीन्द्रिया न जानन्ति, मिथ्याज्ञानतया तेषां सम्यक् परिज्ञानाभावात्, द्वीन्द्रियाणां हि मत्यज्ञानं तदपि चास्पष्टमतः प्रक्षेपाहारमपि न ते स्वयं गृह्यमाणमपि सम्यक् जानन्ति चक्षुरिन्द्रियाभावात् न च पश्यन्ति, एवं त्रीन्द्रिया अपि ज्ञानदर्शनविकला भावनीयाः, चतुरिन्द्रियाः 'अत्थेगइय'त्ति सन्त्येकके ये स्वयं गृह्यमाणमप्याहारं प्रक्षेपरूपमपि न जानन्ति, मिथ्याज्ञानित्वात्, तेषामपि हि द्वीन्द्रियाणामिव मत्यज्ञानं तदपि चाविस्पष्टमिति, चक्षुषा पुनः पश्यन्ति चक्षुरिन्द्रियसद्भावात्, तथाहि—पश्यन्ति मक्षिकादयो गुडादिकमिति एवमाहारयन्ति, तथा सन्त्येकके चतुरिन्द्रिया ये न जानन्ति, मिथ्याज्ञानित्वात्, न पश्यन्ति च अन्धकारादिना चक्षुर्दर्शनस्य व्याहतत्वात् अनाभोगसम्भवाद्वा, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिरश्चां चतुर्भङ्गी प्रक्षेपाहारं लोमाहारं चाधिकृत्य भावनीया, तत्र प्रक्षेपाहारमधिकृत्यैवं भावना—सन्त्येकके तिर्यक्पञ्चेन्द्रिया ये प्रक्षेपमाहारं जानन्ति, सम्यग्ज्ञानितया तेषां यथावस्थितपरिज्ञानात्, पश्यन्ति चक्षुरिन्द्रियभावात् एवमाहारयन्ति १, तथा सन्त्येकके ये जानन्ति पूर्ववत् न च पश्यन्ति चक्षुर्दर्शनस्यान्धकारादिना अनाभोगेन च व्याहतत्वात् २, तथा सन्त्येकके ये न जानन्ति मिथ्याज्ञानितया सम्यक्परिज्ञानाभावात् पश्यन्ति पुनश्चक्षुरिन्द्रियोपयोगात् ३ तथा सन्त्येकके ये न जानन्ति मिथ्याज्ञानित्वान्न च पश्यन्ति पूर्ववत् एवमाहारयन्ति ४ लोमाहारापेक्षया त्वेवं भावना—सन्त्येकके तिर्यक्पञ्चेन्द्रिया ये लोमाहारमपि जानन्ति, विशिष्टावधिज्ञानपरिकलितत्वात्, पश्यन्ति तथाविधक्षयोपशमभावत इन्द्रियपा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३२१]

दीप अनुक्रम [५८७]

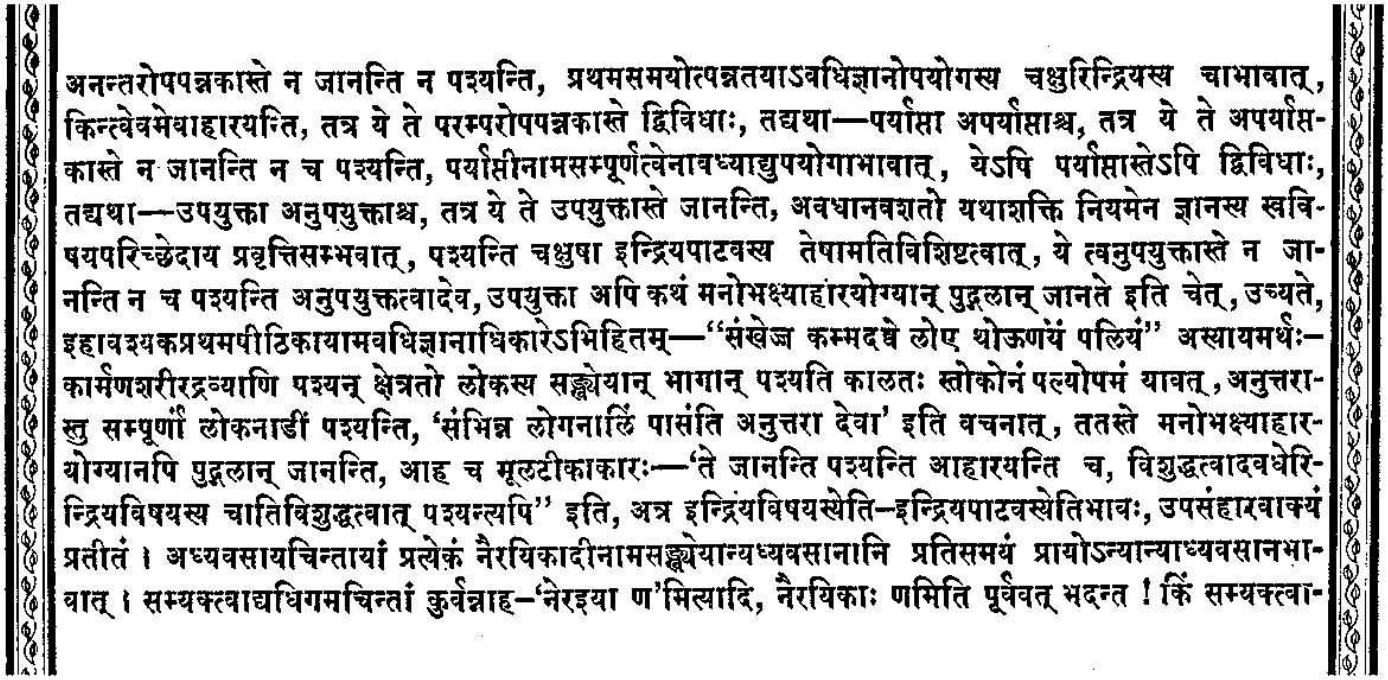
टवस्यातिविशुद्धत्वात् एवमाहारयन्ति १ तथा सन्त्येकके ये न जानन्ति पूर्ववत् न तु पश्यन्ति तथाविधस्येन्द्रियपाटवस्याभावात् २ तथा सन्त्येकके ये न जानन्ति पश्यन्ति पुनस्तद्विषयेन्द्रियपाटवस्य भावात् ३ तथा सन्त्येकके ये न जानन्ति मिथ्याज्ञानित्वात् अवधिविकलत्वात् अवधिविषयातीतत्वाद्वा, न च पश्यन्ति तथारूपपाटवाभावात् ४ इति, एवं मनुष्याणामपि लोमाहारप्रक्षेपाहारौ प्रतीत्य चतुर्भङ्गी भावनीया, 'वाणमंतरजोइसिया जहा नेरइया' इति, नैरयिकावधिरिव व्यन्तरज्योतिष्कावधिरपि मनोभक्षित्वेऽप्याहारपुद्गलानामविषयत्वात्, 'वेमाणियाणं पुच्छ'त्ति, वैमानिकानां पृथक् सूत्रं वक्तव्यं, 'वेमाणिया णं भंते!' जे पोग्गले आहारत्ताए गेण्हंति ते किं जाणंति पासंति आहारेंति उदाहु न जाणंति न पासंति आहारेंति' इति, भगवानाह–'गोयमे'त्यादि, माया पूर्वभवकृता विद्यते येषां ते मायिनो, मायया हि यया तया वा बादररूपकृतया कलुषकर्मप्रादुर्भावः, कलुषे च कर्मण्युदयमागते भवप्रत्ययादप्युपजायमानोऽवधिर्नातिसमीचीनो भवति, एते च सम्यग्दृशो न वेदितव्याः, तथा मिथ्या—विपर्यस्ता दृष्टिः—जिनप्रणीतवस्तुतत्त्वप्रतिपत्तिर्येषां ते मिथ्यादृष्टयः, मायिनश्च मिथ्यादृष्टयश्च मायिमिथ्यादृष्टयस्ते च ते उपपन्नाश्च मायिमिथ्यादृष्ट्युपपन्नास्त एव स्वार्थिककप्रत्ययविधानात् मायिमिथ्यादृष्ट्युपपन्नकास्ते चोपरितनोपरितनग्रैवेयकपर्यवसाना विज्ञेयाः, तेषां यथायोगमवश्यं मिथ्यादृष्टित्वस्य मायित्वस्य च भावात्, तद्विपरीता अमायिसम्यग्दृष्ट्युपपन्नकाः, ते चानुत्तरविमानवासिनः, तेषामवश्यं सम्यग्दृष्टित्वं, पूर्वानन्तरभवे नितरां प्रतनुक्रोधमानमायालोभत्वस्योप-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शान्तकषायत्वस्य च भावात्, आह च मूलटीकाकारः–"वेमाणिया मायिमिच्छद्दिट्ठीउववण्णगा जाव उवरिमगेवेज्जा, अमायिसम्मद्दिट्ठिउववन्नगा अनुत्तरसुरा एव गृह्यन्ते" इति, 'एवं जहे'त्यादि, एवमुक्तेन प्रकारेण प्राक् यथा इन्द्रियसत्के प्रथमोद्देशके भणितं तथा भणितव्यं, तच्च तावत् यावत् सर्वान्तिमं 'से एएणट्ठेण'मित्यादिना निगमनवाक्यं, तच्चैवम्–'तत्थ णं जे ते मायिमिच्छद्दिट्ठिउववन्नगा ते णं न जाणंति न पासंति आहारेंति, तत्थ णं जे ते अमायिसम्मद्दिट्ठिउववण्णगा ते णं दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–अणंतरोववण्णगा य परंपरोववण्णगा य, तत्थ णं जे ते अणंतरोववण्णगा ते णं ण याणंति न पासंति आहारेंति, तत्थ णं जे ते परंपरोववण्णगा ते णं दुविहा पं०, तं०–पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य, तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते णं न जाणंति न पासंति आहारेंति, तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा ते दुविहा पं०, तं०—उवउत्ता य अणुवउत्ता य, तत्थ णं जे ते अणुवउत्ता ते णं ण याणंति न पासंति आहारेंति, तत्थ णं जे ते उवउत्ता ते णं जाणंति पासंति आहारेंति, से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चति–अत्थेगइया न जाणंति न पासंति आहारेंति अत्थेगइया जाणंति पासंति आहारेंति ?" इति, अस्यायमर्थः–तत्र ये ते मायिमिथ्यादृष्ट्युपपन्नका उपरितनोपरितनग्रैवेयकपर्यवसाना इत्यर्थः ते मनोभक्ष्याहारयोग्यान् पुद्गलान् न जानन्ति अवधिज्ञानेन, तदवधेस्तेषामविषयत्वात्, न पश्यन्ति चक्षुषा, तथाविधपाटवाभावात्, येऽप्यमायिसम्यग्दृष्ट्युपपन्नका अनुत्तरविमानवासिन इत्यर्थः, ते द्विधा–अनन्तरोपपन्नका परम्परोपपन्नकाश्च, प्रथमसमयोत्पन्ना अप्रथमसमयोत्पन्नाश्चेत्यर्थः, अत्र ये ते

३४ परिचारणापदं सू. ३२१

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



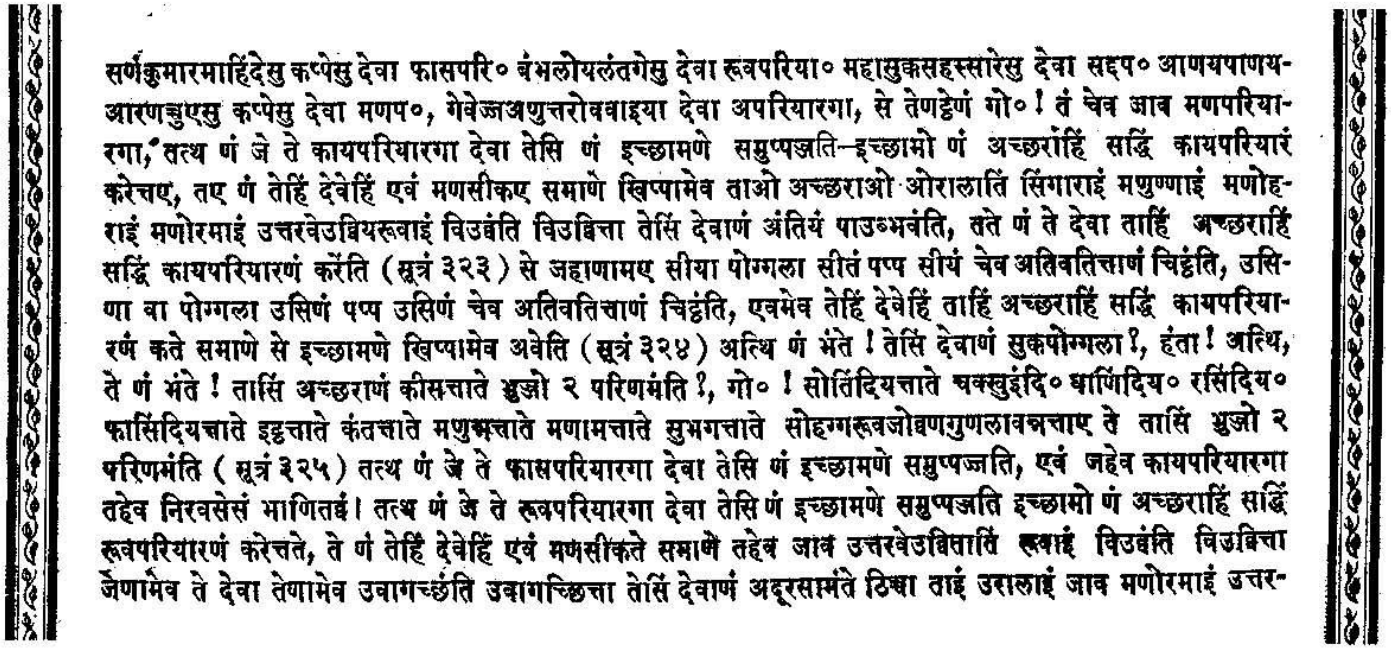
अनन्तरोपपन्नकास्ते न जानन्ति न पश्यन्ति, प्रथमसमयोत्पन्नतयाऽवधिज्ञानोपयोगस्य चक्षुरिन्द्रियस्य चाभावात्, किन्त्वेवमेवाहारयन्ति, तत्र ये ते परम्परोपपन्नकास्ते द्विविधाः, तद्यथा—पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च, तत्र ये ते अपर्याप्तकास्ते न जानन्ति न च पश्यन्ति, पर्याप्तीनामसम्पूर्णत्वेनावध्याद्युपयोगाभावात्, येऽपि पर्याप्तास्तेऽपि द्विविधाः, तद्यथा—उपयुक्ता अनुपयुक्ताश्च, तत्र ये ते उपयुक्तास्ते जानन्ति, अवधानवशतो यथाशक्ति नियमेन ज्ञानस्य स्वविषयपरिच्छेदाय प्रवृत्तिसम्भवात्, पश्यन्ति चक्षुषा इन्द्रियपाटवस्य तेषामतिविशिष्टत्वात्, ये त्वनुपयुक्तास्ते न जानन्ति न च पश्यन्ति अनुपयुक्तत्वादेव, उपयुक्ता अपि कथं मनोभक्ष्याहारयोग्यान् पुद्गलान् जानते इति चेत्, उच्यते, इहावश्यकप्रथमपीठिकायामवधिज्ञानाधिकारेऽभिहितम्—"संखेज्ज कम्मदव्वे लोए थोऊणयं पलियं" अस्यायमर्थः—कार्मणशरीरद्रव्याणि पश्यन् क्षेत्रतो लोकस्य सङ्ख्येयान् भागान् पश्यति कालतः स्तोकोनं पल्योपमं यावत्, अनुत्तरास्तु सम्पूर्णां लोकनाडीं पश्यन्ति, 'संभिन्न लोगनालिं पासंति अनुत्तरा देवा' इति वचनात्, ततस्ते मनोभक्ष्याहारयोग्यानपि पुद्गलान् जानन्ति, आह च मूलटीकाकारः—'ते जानन्ति पश्यन्ति आहारयन्ति च, विशुद्धत्वादवधेरिन्द्रियविषयस्य चातिविशुद्धत्वात् पश्यन्त्यपि" इति, अत्र इन्द्रियविषयस्येति—इन्द्रियपाटवस्येतिभावः, उपसंहारवाक्यं प्रतीतं । अध्यवसायचिन्तायां प्रत्येकं नैरयिकादीनामसङ्ख्येयान्यध्यवसानानि प्रतिसमयं प्रायोऽन्यान्याध्यवसानभावात् । सम्यक्त्वाद्यधिगमचिन्तां कुर्वन्नाह—'नेरइया ण'मित्यादि, नैरयिकाः णमिति पूर्ववत् भदन्त ! किं सम्यक्त्वा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धिगामिनः–सम्यक्त्वप्राप्तिवन्तः, एवं मिथ्यात्वाधिगामिनः सम्यग्मिथ्यात्वाधिगामिनश्च ?, भगवानाह—गौतम ! 'सम्मे'त्यादि सुगमं, त्रिविधाया अपि प्राप्तेर्यथायोगं सम्भवात्, 'एवं जावे'त्यादि, एवं—नैरयिकगतेनाभिलापप्रकारेण निरन्तरं तावद्वक्तव्यं यावद्वैमानिकाः, नवरमेकेन्द्रियाणां विकलेन्द्रियाणां केषांचित् सासादनसम्यक्त्वमपि लभ्यते तथापि ते मिथ्यात्वाभिमुखा इति सदपि तन्न विवक्षितं। सम्प्रति परिचारणां प्रतिपिपादयिषुरिदमाह—

देवा णं भंते ! किं सदेवीया सपरियारा सदेवीया अपरियारा अदेवीया सपरियारा अदेवीया अपरियारा ?, गो० ! अत्थेगतिया देवा सदेवीया सपरियारा अत्थेगतिया देवा अदेवीया सपरियारा अत्थे० देवा अदेविया अपरिचारा नो चेव णं देवा सदेवीया अपरिचारा, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुचति—अत्थे० देवा सदेवीया सपरिचारा तं चेव जाव नो चेव णं देवा सदेवीया अप० ?, गो० ! भवणपतिवाणमंतरजोतिससोहम्मीसाणेसु कप्पेसु देवा सदेवीया सपरियारा, सणंकुमारमाहिंदबंभलोयलंतगमहासुक्कसहस्सारआणयपाणयआरणच्चुएसु कप्पेसु देवा अदेवीया सपरिचारा गेवेज्जअणुत्तरोववाइया देवा अदेवीया अपरियारगा, नो चेव णं देवा सदेवीया अपरिचारा, से तेणट्ठेणं गो० ! एवं वु० अत्थे० देवा सदेवीया सपरिचारा तं चेव नो चेव णं देवा सदेवीया अपरियारा (सूत्रं ३२२) कतिविहा णं भंते ! परियारणा पं० ?, गो० ! पंचविहा परियारणा पं०, तं०–कायपरियारणा फासपरियारणा रूवप० सद्दपरि० मणप०, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वु० पंचविहा परि० पं०, तं०–कायप० जाव मणप० ?, गो० ! भवणवइवाणमंतरजोइससोहम्मीसाणेसु कप्पेसु देवा कायपरि०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



सणंकुमारमाहिंदेसु कप्पेसु देवा फासपरि० बंभलोयलंतगेसु देवा रूवपरिया० महासुक्कसहस्सारेसु देवा सद्दप० आणयपाणय-आरणच्चुएसु कप्पेसु देवा मणप०, गेवेज्जअणुत्तरोववाइया देवा अपरियारगा, से तेणट्ठेणं गो० ! तं चेव जाव मणपरियारगा, तत्थ णं जे ते कायपरियारगा देवा तेसि णं इच्छामणे समुप्पज्जति–इच्छामो णं अच्छरांहिं सद्धिं कायपरियारं करेत्तए, तए णं तेहिं देवेहिं एवं मणसीकए समाणे खिप्पामेव ताओ अच्छराओ ओरालाति सिंगाराइं मणुण्णाइं मणोहराइं मणोरमाइं उत्तरवेउव्वियरूवाइं विउव्वंति विउव्वित्ता तेसिं देवाणं अंतियं पाउब्भवंति, तते णं ते देवा ताहिं अच्छराहिं सद्धिं कायपरियारणं करेंति (सूत्रं ३२३) से जहाणामए सीया पोग्गला सीतं पप्प सीयं चेव अतिवतित्ताणं चिट्ठंति, उसिणा वा पोग्गला उसिणं पप्प उसिणं चेव अतिवतित्ताणं चिट्ठंति, एवमेव तेहिं देवेहिं ताहिं अच्छराहिं सद्धिं कायपरियारणं कते समाणे से इच्छामणे खिप्पामेव अवेति (सूत्रं ३२४) अत्थि णं भंते ! तेसिं देवाणं सुक्कपोग्गला ?, हंता ! अत्थि, ते णं भंते ! तासिं अच्छराणं कीसत्ताते भुज्जो २ परिणमंति ?, गो० ! सोतिंदियत्ताते चक्खुइंदि० घाणिंदिय० रसिंदिय० फासिंदियत्ताते इट्ठत्ताते कंतत्ताते मणुन्नत्ताते मणामत्ताते सुभगत्ताते सोहग्गरूवजोव्वणगुणलावन्नत्ताए ते तासिं भुज्जो २ परिणमंति (सूत्रं ३२५) तत्थ णं जे ते फासपरियारगा देवा तेसि णं इच्छामणे समुप्पज्जति, एवं जहेव कायपरियारगा तहेव निरवसेसं भाणितव्वं। तत्थ णं जे ते रूवपरियारगा देवा तेसि णं इच्छामणे समुप्पज्जति इच्छामो णं अच्छराहिं सद्धिं रूवपरियारणं करेत्तते, ते णं तेहिं देवेहिं एवं मणसीकते समाणे तहेव जाव उत्तरवेउव्वियाति रूवाइं विउव्वंति विउव्वित्ता जेणामेव ते देवा तेणामेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता तेसिं देवाणं अदूरसामंते ठिच्चा ताइं उरालाइं जाव मणोरमाइं उत्तर-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

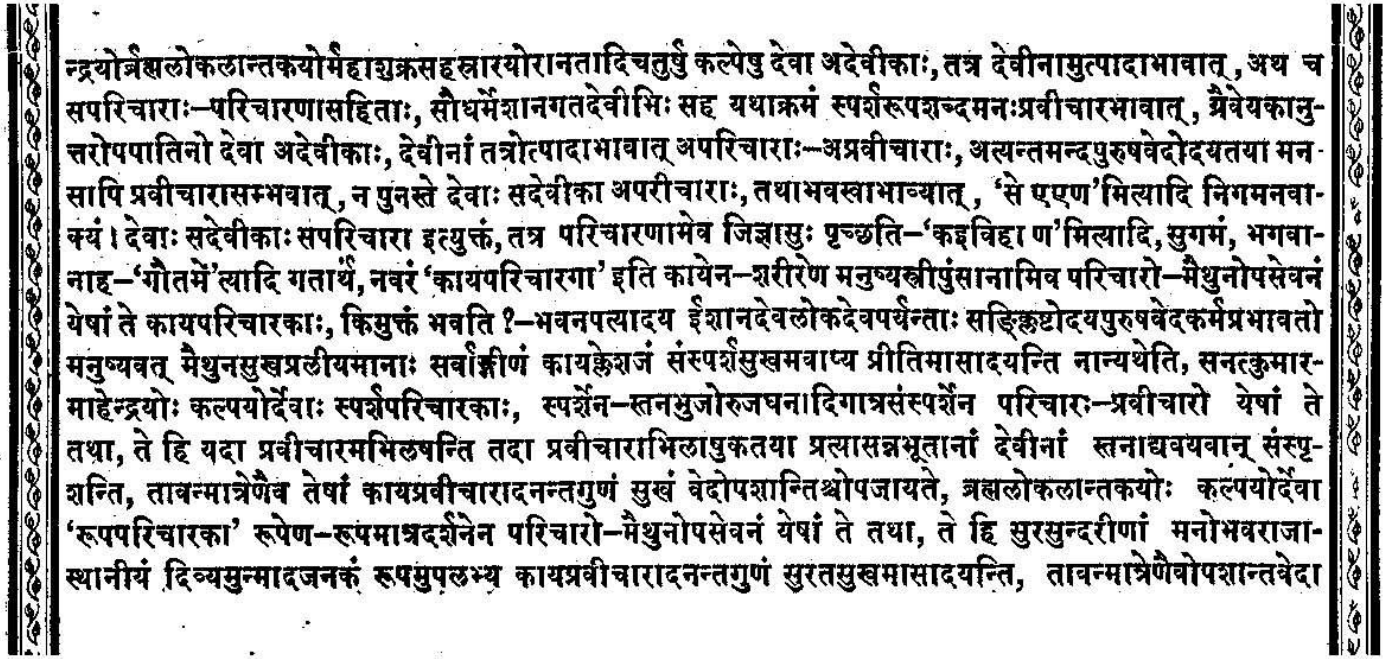
प्रत सूत्रांक [३२१--३२७]

दीप अनुक्रम [५८७--५९३]

वेउव्वियाइं रूवाइं उवदंसेमाणीतो २ चिट्ठंति, तते णं ते देवा ताहिं अच्छराहिं सद्धिं रूवपरियारणं करेंति, सेसं तं चेव जाव भुज्जो २ परिणमन्ति । तत्थ णं जे ते सद्दपरियारगा देवा तेसि णं इच्छामणे समुप्पज्जति–इच्छामो णं अच्छराहिं सद्धिं सद्दपरियारणं करेत्तए, तते णं तेहिं देवेहिं एवं मणसीकए समाणे तहेव जाव उत्तरवेउव्वियातिं रूवातिं विउव्वंति विउव्वित्ता जेणामेव ते देवा तेणामेव उवागच्छंति २ त्ता तेसिं देवाणं अदूरसामंते ठिच्चा अणुत्तराइं उच्चावयाइं सद्दाइं समुदीरेमाणीतो २ चिट्ठंति, तते णं ते देवा ताहिं अच्छराहिं सद्धिं सद्दपरियारणं करेंति सेसं तं चेव जाव भुज्जो २ परिणमंति । तत्थ णं जे ते मणपरियारगा देवा तेसिं इच्छामणे समुप्पज्जति, इच्छामो णं अच्छराहिं सद्धिं मणपरियारणं करेत्तते, तते णं तेहिं देवेहिं एवं मणसीकए समाणे खिप्पामेव ताओ अच्छराओ तत्थ गयाओ चेव समाणीओ अणुत्तरातिं उच्चावयातिं मणाइं संपहारेमाणीतो २ चिट्ठंति, तते णं ते देवा ताहिं अच्छराहिं सद्धिं मणपरियारणं करेंति, सेसं निरवसेसं तं चेव जाव भुज्जो २ प० (सूत्रं ३२६) एतेसि णं भंते ! देवाणं कायपरियारगाणं जाव मणपरियारगाणं अपरियारगाण य कयरे० अप्पा वा ४ ?, गो० ! सव्वत्थोवा देवा अपरियारगा मणपरियारगा संखे० सद्दपरियारगा असंखे० रूवप० असं० फासप० असं० कायप० असं० ॥ (सूत्रं ३२७) पण्णवणाए परियारणापयं समत्तं ॥ ३४ ॥

'देवा ण'मित्यादि, सुगमं, नवरं भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कसौधर्मेशानकल्पेषु देवा सदेवीकाः, देवीनां तत्रोत्पादात्, अत एव सपरिचाराः–परिचारणासहिताः, देवीनां तत्परिग्रहे यथायोगं भावतः कायप्रवीचारभावात्, सनत्कुमारमाहे-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



न्द्रयोर्ब्रह्मलोकलान्तकयोर्महाशुक्रसहस्रारयोरानतादिचतुर्षु कल्पेषु देवा अदेवीकाः, तत्र देवीनामुत्पादाभावात्, अथ च सपरिचाराः–परिचारणासहिताः, सौधर्मेशानगतदेवीभिः सह यथाक्रमं स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचारभावात्, ग्रैवेयकानुत्तरोपपातिनो देवा अदेवीकाः, देवीनां तत्रोत्पादाभावात् अपरिचाराः–अप्रवीचाराः, अत्यन्तमन्दपुरुषवेदोदयतया मनसापि प्रवीचारासम्भवात्, न पुनस्ते देवाः सदेवीका अपरीचाराः, तथाभवस्वाभाव्यात्, 'से एएण'मित्यादि निगमनवाक्यं। देवाः सदेवीकाः सपरिचारा इत्युक्तं, तत्र परिचारणामेव जिज्ञासुः पृच्छति–'कइविहा ण'मित्यादि, सुगमं, भगवानाह–'गोतमे'त्यादि गतार्थं, नवरं 'कायपरिचारगा' इति कायेन–शरीरेण मनुष्यस्त्रीपुंसानामिव परिचारो–मैथुनोपसेवनं येषां ते कायपरिचारकाः, किमुक्तं भवति ?–भवनपत्यादय ईशानदेवलोकदेवपर्यन्ताः सङ्क्लिष्टोदयपुरुषवेदकर्मप्रभावतो मनुष्यवत् मैथुनसुखप्रतीयमानाः सर्वाङ्गीणं कायक्लेशजं संस्पर्शसुखमवाप्य प्रीतिमासादयन्ति नान्यथेति, सनत्कुमारमाहेन्द्रयोः कल्पयोर्देवाः स्पर्शपरिचारकाः, स्पर्शेन–स्तनभुजोरुजघनादिगात्रसंस्पर्शेन परिचारः–प्रवीचारो येषां ते तथा, ते हि यदा प्रवीचारमभिलषन्ति तदा प्रवीचाराभिलाषुकतया प्रत्यासन्नभूतानां देवीनां स्तनाद्यवयवान् संस्पृशन्ति, तावन्मात्रेणैव तेषां कायप्रवीचारादनन्तगुणं सुखं वेदोपशान्तिश्चोपजायते, ब्रह्मलोकलान्तकयोः कल्पयोर्देवा 'रूपपरिचारका' रूपेण–रूपमात्रदर्शनेन परिचारो–मैथुनोपसेवनं येषां ते तथा, ते हि सुरसुन्दरीणां मनोभवराजास्थानीयं दिव्यमुन्मादजनकं रूपमुपलभ्य कायप्रवीचारादनन्तगुणं सुरतसुखमासादयन्ति, तावन्मात्रेणैवोपशान्तवेदा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१५],उपांगसूत्र-[४] "प्रज्ञापना" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

उपजायन्ते, महाशुक्रसहस्रारेषु कल्पेषु देवाः 'शब्दपरिचारकाः' शब्देन–शब्दमात्रश्रवणेन परिचारो येषां ते तथा, ते हि इच्छाविषयीकृतदेवीसत्कगीतहसितसविकारभाषितनूपुरादिध्वनिश्रवणमात्रत एव कायप्रवीचारादनन्तगुणसुखं उपभुञ्जते तावन्मात्रेणैव तेषां वेद उपशान्तिमेति, आनतप्राणतारणाच्युतेषु कल्पेषु देवा 'मनःपरिचारकाः' मनसा–मनोभवविकारोपबृंहितपरस्परोचावचमनःसङ्कल्पेन परिचारो मैथुनोपसेवनं येषां ते तथा, ते हि परस्परोचावचमनःसङ्कल्पमात्रेणैव कायप्रवीचारादनन्तगुणं सुखमवाप्नुवन्ति, तृप्ताश्च तावन्मात्रेणैवोपजायन्ते, ग्रैवेयकानुत्तरोपपातदेवा 'अपरिचारका' न विद्यते परिचारो—मैथुनोपसेवनं मनसाऽपि येषां ते तथा, तेषां प्रतनुमोहोदयतया प्रशमसुखांतर्लीनत्वात्, यद्येवं कथं न ते ब्रह्मचारिणः ?, उच्यते, चारित्रपरिणामाभावात्, 'से तेणट्ठेण'मित्यादि निगमनवाक्यं, तत्र ये कायपरिचारका देवास्तेषां कायप्रविचारं विभावयिषुरिदमाह—'तत्थ ण'मित्यादि, तत्र–तेषु कायपरिचारकादिषु देवेषु मध्ये ये ते पूर्वमुक्ताः कायपरिचारका भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कसौधर्मेशानदेवास्तेषां णमिति पूर्ववत् इच्छामनः–कायपरिचारेच्छाप्रधानं मनः समुत्पद्यते, केनोल्लेखेन समुत्पद्यते ?—इच्छामः–अभिलषामः णमिति पूर्ववत् अप्सरोभिः सार्द्धं कायपरिचारं कर्तुमिति, 'तए ण'मित्यादि, ततस्तैर्देवैरेवमुक्तेन प्रकारेण कायपरिचारे मनसि कृते सति क्षिप्रमेव–शीघ्रमेव ता अप्सरसः स्वस्वोपभोग्यदेवाभिप्रायमवेत्य परिचाराभिलाषुकतया उत्तरवैक्रियाणि रूपाणि विकुर्वन्तीति सम्बन्धः, कथंभूतानीत्यत आह–उदाराणि—स्फाराणि न तु हीनावयवानि तान्यपि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'शृङ्गाराणि' शृङ्गारो—विभूषणादिभिर्मण्डनं स विद्यते येषां तानि शृङ्गाराणि, 'अभ्रादिभ्य' इत्यादि अत्रत्ययः, विभूषणादिकृतोदारशृङ्गाराणीत्यर्थः, तानि च कदाचित् कस्यचिदमनोज्ञानि भवेयुः अत आह—'मनोज्ञानि' स्वस्योपभोग्यदेवमनोविषयभावपेशलानि, तानि लेशतोऽपि सम्भाव्यन्ते तत आह—'मनोहराणि' स्वस्योपभोग्यस्य देवस्य मनो हरन्ति—आत्मवशं नयन्तीति मनोहराणि, 'लिहादित्वादच्', तच्च मनोहरत्वं प्रथमसमापातमात्रभाव्यपि भवति तत आह—'मनोरमाणि' मनः स्वस्योपभोग्यदेवसम्बन्धि रमयन्ति—क्रीडयन्ति प्रतिक्षणमुत्तरोत्तरानुरागसम्पृक्तं जनयन्तीति मनोरमाणि, तानि इत्थंभूतानि उत्तरवैक्रियाणि रूपाणि विकुर्वित्वा तेषां देवानामन्तिकं—समीपं प्रादुर्भवन्ति, 'तते ण'मित्यादि, ततः णमिति पूर्ववत्, ते देवास्ताभिरप्सरोभिः सार्द्धं कायपरिचारणं—मनुष्य इव मनुष्यस्त्रीभिः सर्वाङ्गीणकायक्लेशपूर्वकं मैथुनोपसेवनं कुर्वन्ति, एवमेव तेषां वेदोपशान्तिभावात्। तथा चामुमेवार्थं दृष्टान्तेन द्रढयति—'से जहाणामए' इत्यादि 'से' इति अथशब्दार्थः, स चात्र वाक्योपन्यासे, यथा नाम 'ते' विवक्षिताः शीताः पुद्गलाः शीतं—शीतयोनिकं प्राणिनं प्राप्य 'शीतमेव' शीतत्वमेवातिव्रज्य—अतिशयेन गत्वा तिष्ठन्ति, किमुक्तं भवति ?—विशेषतः शीतीभूतस्य शीतयोनिकस्य प्राणिनः सुखित्वायोपकल्पन्ते, उष्णा वा पुद्गला उष्णयोनिकं प्राणिनं प्राप्य 'उष्णमेव' उष्णत्वमेवातिव्रज्य—अतिशयेन गत्वा तिष्ठन्ति, विशेषतः स्वरूपलाभसम्पत्त्या तस्य सुखित्वायोपतिष्ठन्ते इति भावः, 'एवमेव' अनेनैव प्रकारेण तैर्देवैस्ताभिरप्सरोभिः सार्द्धं यथोक्तरूपे कायपरिचारणे कृते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१५],उपांगसूत्र-[४] "प्रज्ञापना" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३२१--३२७]

दीप अनुक्रम [५८७--५९३]

सति इच्छामनः—कामविषयेच्छाप्रधानं मनः क्षिप्रमेवातितृप्तिभावात् शीतीभवति, इयमत्र भावना—यथा शीतपुद्गलाः शीतयोनिकस्य प्राणिनः संस्पर्शे शीतत्वं विशेषतः आसादयन्तस्तस्य सुखित्वायोपकल्पन्ते उष्णपुद्गला वा उष्णयोनिकस्य प्राणिनः संस्पर्शे उष्णत्वमतिप्रभूतमासादयन्तः सुखाय घटन्ते तथा देवीशरीरपुद्गला देवशरीरमवाप्य देवशरीरपुद्गला अपि देवीशरीरमवाप्य परस्परं तद्गुणतां भजमानाः परस्परं सुखित्वायोपकल्पन्ते ततस्तृप्तिरुपजायते तृप्तिभावाच्चाभिलाषनिवृत्तिर्भवतीति। इह मनुष्यस्त्रीणां मनुष्यपुरुषोपभोगे शुक्रपुद्गलसङ्क्रमतः सुखमुपजायमानं लब्धं तत्किं देवीनामप्युपभोग्यदेवसत्कशुक्रपुद्गलसङ्क्रमतः सुखमुपजायते आहोश्विदन्यथेति संशयानो देवानां शुक्रपुद्गलास्तित्वं पृच्छति—'अत्थि ण'मित्यादि, अस्तीतिनिपातोऽत्र बहूर्थे, णमिति पूर्ववत्, भदन्त! तेषां देवानां शुक्रपुद्गलाः यत्सम्पर्कतो देवीनां सुखमुपजायते ?, 'हंता! अत्थि' भगवानाह—गौतम! सन्ति, केवलं ते वैक्रियशरीरान्तर्गता इति न गर्भाधानहेतवः, 'ते णं भंते!' इत्यादि, ते शुक्रपुद्गलाः, णमिति पूर्ववत् भदन्त! तासामप्सरसां कीदृक्स्वरूपतया 'भूयो २' यदा २ क्षरन्ति तदा २ इत्यर्थः परिणमन्ति ?, भगवानाह—'गोयमे'त्यादि, श्रोत्रेन्द्रियरूपतया यावत्स्पर्शनेन्द्रियतया, तेऽपि कदाचिदनिष्टतया परिणमन्तः सम्भाव्येरन् तत आह—इष्टतया, इष्टमपि किञ्चित्स्वरूपतोऽकान्तं भवति, यथा शूकरादीनामिष्टमपि विष्ठादि, तत आह—'कान्ततया' कमनीयतया, कान्तमपि किञ्चिन्मनःस्पृहणीयं न भवति तत आह—'मनोज्ञतया' अतिस्पृहणीयतया, तदप्यतिस्पृहणीयत्वं कदाचिदा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३२१--३२७]

दीप अनुक्रम [५८७--५९३]

पातकालमात्रभावि सम्भाव्यते तत आह—'मनआपतया' मन आप्नुवन्ति–मनसि सदा रमन्ते इति मनआपास्तद्भावस्तत्ता तया, मनसा सदा स्पृहणीयतयेति भावः, कस्मादिति चेत्, अत आह–'सुभगतया' 'निमित्तकारणहेतुषु सर्वासां विभक्तीनां प्रायो दर्शन'मिति न्यायात् अत्र हेतौ तृतीया, ततोऽयमर्थः–यतः सुभगतया–सर्वजनप्रियतया परिणमन्ति तत उच्यते इष्टतया कान्ततयेत्यादि, सुभगतया परिणमनमपि कथमिति चेत्, अत आह–'सोहग्गरूवजोव्वणगुणलावन्नत्ताए' इति, अत्र प्राकृततया गुणशब्दस्य लावण्यशब्दात् पूर्वं निपातः परमार्थतस्तु परतो द्रष्टव्यः, ततोऽयमर्थः–सौभाग्याय–सौभाग्यहेतवे रूपयौवनलावण्यरूपा गुणा यस्य तत्सौभाग्यरूपयौवनलावण्यगुणं तद्भावस्तत्ता तया, तत्र रूपं–सौन्दर्यवती आकृतियौवनं–परमस्तरुणिमा लावण्यं–अतिशायी मनोभवविकारहेतुः परिणतिविशेषः, यतः सौभाग्यहेतुरूपादिगुणनिबन्धनतया परिणमन्ति ततः सुभगतया परिणमंतीत्युच्यते, एवं ते शुक्रपुद्गलास्तासामप्सरसां भूयो भूयः परिणमन्ति । तदेवं कायपरिचार उक्तः, सम्प्रति स्पर्शपरिचारं विभावयिषुराह–'तत्थ ण'मित्यादि, तत्र–तेषु परिचारकादिषु मध्ये णमिति पूर्ववत् ये ते स्पर्शपरिचारका देवास्तेषां णमिति पूर्ववत् एवमिच्छामनः–स्पर्शपरिचारविषयेच्छाप्रधानं मनः समुत्पद्यते, 'एवं जहेवे'त्यादि, एवं–उक्तेन प्रकारेण यथैवानन्तरं प्राक् कायपरिचारका उक्ताः तथैव स्पर्शपरिचारकेष्वपि निरवशेषं भणितव्यं, तच्चैवम्–'इच्छामो णं अच्छराहिं सद्धिं फासपरियारं करेत्तए, तए णं तेहिं देवेहिं एवं मणसीकए समाणे खिप्पामेव ताओ अच्छराओ उरालाइं जाव विउव्वित्ता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

v

तेसिं देवाणं अंतियं पाउब्भवंति, तए णं ते देवा अच्छराहिं सद्धिं फासपरियारं करेंति" स्पर्शपरिचारणं वदनचुम्बनस्तनमर्दनबाहुउपगूहनजघनोरुप्रभृतिगात्रसंस्पर्शरूपं, 'से जहानामए सीया पुग्गला सीयं पप्प सीयं चेव अतिवइत्ताणं चिट्ठंति उसिणा वा पोग्गला उसिणं पप्प उसिणं चेव अइवइत्ताणं चिट्ठंति एवमेव तेहिं देवेहिं ताहिं अच्छराहिं सद्धिं फासपरियारणे कए समाणे इच्छामणे खिप्पामेव अवेइ,' अस्य सपातनिका व्याख्या प्राग्वत्, 'अत्थि णं भंते ! तेसिं देवाणं सुक्कपोग्गला ?, हंता ! अत्थि, ते णं भंते ! तासिं अच्छराणं कीसत्ताए भुज्जो २ परिणमंति ?, गोयमा ! सोतिंदियत्ताए जाव फासिंदियत्ताए इट्ठत्ताए कंतत्ताए जाव भुज्जो २ परिणमंति' अस्यापि सपातनिका व्याख्या प्राग्वत्, नवरमस्मिन् स्पर्शप्रवीचारे शुक्रपुद्गलसङ्क्रमो दिव्यप्रभावादवसेयः, एवं रूपपरिचारादावपि भावनीयं, तदेवमुक्ताः स्पर्शपरिचारकाः, सम्प्रति रूपपरिचारणां विभावयिषुराह–'तत्थ ण'मित्यादि, सुगमं तावत् यावत् विकुर्वित्वा 'जेणामेव'त्ति यत्रैव देवलोके विमाने प्रदेशे च ते देवाः सन्ति तत्रैव स्थाने ता अप्सरस उपागच्छन्ति, उपागम्य च तेषां देवानां 'अदूरसामंते' इति अदूरसमीपे स्थित्वा तानि पूर्वं विकुर्वितानि उदाराणि यावदुत्तरवैक्रियाणि रूपाणि उपदर्शयन्त्यस्तिष्ठन्ति, ततस्ते देवास्ताभिरप्सरोभिः सार्द्धं रूपपरिचारणां–परस्परं सविलासदृष्टिविक्षेपाङ्गप्रत्यङ्गनिरीक्षणनिजनिजानुरागप्रदर्शनपटिष्टचेष्टाप्रकटनादिरूपां कुर्वन्ति, 'सेसं तं चेव'त्ति शेषं 'से जहा नामए' इत्यादि तदेव यावत् 'भुज्जो २ परिणमन्ती'ति वाक्यम्, तदेवं भाविता रूपपरिचारणा, सम्प्रति शब्दपरिचारणां भावयितुकाम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३२१--३२७]

दीप अनुक्रम [५८७--५९३]

आह–'तत्थ ण'मित्यादि कण्ठ्यं, नवरमदूरसमीपे स्थित्वा अनुत्तरान्—सर्वमनःप्रल्हादजनकतया अनन्यसदृशान् उच्चावचान्—प्रबल२तरमन्मथोद्दीपकसभ्यासभ्यरूपान् शब्दान्, सूत्रे नपुंसकनिर्देशः प्राकृतत्वात्, समुदीरयन्त्यस्तिष्ठन्ति, शेषं तथैव, 'एवं तत्थ ण'मित्यादि, मनःपरिचारकसूत्रमपि तथैव यावन्मनःपरिचारे मनसि कृते सति क्षिप्रमेव ता अप्सरसस्तत्र गता एव–सौधर्मेशानदेवलोकान्तर्गतस्वस्वविमानस्थिता एव सन्त्योऽनुत्तराणि—परमसन्तोषजनकतया अनन्यसदृशानि उच्चावचानि—कामानुपक्वसभ्यासभ्यरूपाणि मनांसि प्रचारयन्त्यस्तिष्ठन्ति, इह 'तत्थगया चेव समाणीओ' इति वदता देव्यः सहस्रारं यावद् गच्छन्ति न परत इत्यावेदितं द्रष्टव्यं, तथा चाह सङ्ग्रहणिमूलटीकाकारो हरिभद्रसूरिः—"सनत्कुमारादिदेवानां रताभिलाषे सति देव्यः स्वल्वपरिगृहीताः सहस्रारं यावद् गच्छन्ती"ति, तथा स एव प्रदेशान्तरे आह—"इह सोहम्मे कप्पे तासिं देवीणं पलिओवममाउगं ताओ तद्देवाणं चेव हवंति, जासिं पुण पलिओवमाइं समयाहिया ठिई दुसमयतिसमयसंखेज्जासंखेज्जसमयाहिया जाव दसपलिया सोहम्मगदेवीओ ताओ सणंकुमाराणं गच्छंति, एवं दसपलिओवरि जासिं समयाहिया ठिई जाव वीसं पलिया ताओ बंभलोगदेवाणं गच्छंति, एवं वीसपलिओवरि जासिं समयाहिया ठिई जाव तीसं पलिया ताओ महासुक्कदेवाणं गच्छंति, एवं तीसं पलिओवरि जासिं समयाहिया ठिई जाव चत्तालीसं पलिया ताओ आणयदेवाणं तत्थ ठिया चेव झाणावलंबणं होंति, एवं चत्तालीसं पलिओवरि जासिं समयाहिया ठिई जाव पंचास पलिया ताओ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आरणदेवाणं तत्थ ठियाओ चेव झाणावलंबणं होंति" तथा "ईसाणे जासिं देवीणं पलिओवममहियमाउयं ताओ तद्देवाणं चेव होंति, जासिं पुण अहियपलिओवमाइं समयाहिया ठिई दुसमयतिसमयसंखेज्जासंखेज्जसमयाहिया जाव पण्णरसपलिया ताओ माहिंददेवाणं गच्छंति, एवं पन्नरसपलिओवरि समयाहिया ठिई जाव पणवीसं पलिया ताओ लंतगदेवाणं, जासिं पुण पणवीसपलिओवरि समयाहिया ठिई जाव पंचतीसं पलिया ताओ सहस्सारदेवाणं, जासिं पुण पंचत्तीसपलिओवरि समयाहिया ठिई जाव पणयालीसं ताओ पाणयदेवाणं तत्थ ठियाओ चेव झाणावलंबणं होंति, जासिं पुण पणयालीसं पलिओवरि समयाहिया ठिई जाव पणपन्नपलिया ताओ अच्चुयदेवाणं तत्थ ठियाओ चेव झाणावलंबणं हवंति" इति, 'तए ण'मित्यादि, ततो णमिति पूर्ववत्, ते देवाः ताभिरप्सरोभिः सार्द्धं मनः-परिचारणं—सुरतानुबन्धि परस्परं सभ्यासभ्यमनःसङ्कल्पकरणरूपं कुर्वन्ति, 'सेस'मित्यादि, शेषं 'से जहा नामए सीया पोग्गला' इत्यादि निरवशेषं तावद् वक्तव्यं यावत् 'भुज्जो २ परिणमन्ती'ति सर्वान्तिमं वाक्यं, व्याख्या चास्य प्राग्वत्, तत ऊर्ध्वं तु ग्रैवेयकादयो मनसाऽपि योषितो न प्रार्थयन्ति, प्रतनुवेदोदयत्वात्, यथोत्तरं चैतेऽनन्त-गुणसुखभाजः, तथाहि—कायप्रवीचारेभ्योऽनन्तगुणसुखाः स्पर्शपरिचारकास्तेभ्योऽप्यनन्तगुणसुखाः रूपपरिचार-कास्तेभ्योऽपि अनन्तगुणसुखाः शब्दपरिचारकास्तेभ्योऽप्यनन्तगुणसुखा मनःपरिचारकास्तेभ्योऽपि अपरिचारकाः अनन्तगुणसुखाः। साम्प्रतमेतेषामेव परस्परमल्पबहुत्वमभिधित्सुराह–'एएसि ण'मित्यादि, सर्वस्तोका देवा अपरिचा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३२१--३२७]

दीप अनुक्रम [५८७--५९३]

रकाः, ते हि ग्रैवेयकानुत्तरोपपातिनस्ते च सर्वसङ्ख्यया क्षेत्रपल्योपमासङ्ख्येयभागवर्त्तिनभःप्रदेशराशिप्रमाणा इति, तेभ्योऽपि मनःपरिचारका देवाः सङ्ख्येयगुणाः, तेषामानतादिकल्पचतुष्टयवर्त्तित्वात्, तद्वर्त्तिनां च पूर्वदेवापेक्षया सङ्ख्येयगुणक्षेत्रपल्योपमासङ्ख्येयभागगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्यः शब्दपरिचारका असङ्ख्येयगुणाः, ते हि महाशुक्रसहस्रारकल्पवासिनः, ते च घनीकृतलोकस्य एकप्रादेशिक्याः श्रेणेरसङ्ख्येयतमे भागे यावन्त आकाशप्रदेशास्तावत्प्रमाणाः, तेभ्योऽपि रूपपरिचारका देवा असङ्ख्येयगुणाः, ते हि ब्रह्मलोकलान्तककल्पनिवासिनः, ते च पूर्वदेवानधिकृत्यासङ्ख्येयगुणश्रेण्यसङ्ख्येयभागगतनभःप्रदेशराशिप्रमाणाः, तेभ्योऽपि स्पर्शपरिचारका देवा असङ्ख्येयगुणाः, तेषां सनत्कुमारमाहेन्द्रकल्पवर्त्तित्वात् तद्वर्त्तिनां च ब्रह्मलोकलान्तकदेवानपेक्ष्यासङ्ख्येयगुणश्रेण्यसङ्ख्येयभागवर्त्याकाशप्रदेशपरिमाणतयाऽधीतत्वात्, तेभ्यः कायपरिचारका देवा असङ्ख्येयगुणाः, भवनपत्यादीनामीशानान्तानां सर्वेषां कायपरिचारकत्वात्, तेषां सर्वसङ्ख्यया प्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्तिनभःप्रदेशराशिप्रमाणत्वात् इति ॥ इति श्रीमलयगिरिविर० प्रज्ञा० चतुस्त्रिंशत्तमं पदं समाप्तम् ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र पद (३४) "प्रविचारणा" परिसमाप्तम्

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१५],उपांगसूत्र-[४] "प्रज्ञापना" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३२८] + गाथा; दीप अनुक्रम [५९४--५९६]

अथ पञ्चत्रिंशत्तमं वेदनाख्यं पदं ॥ ३५ ॥

तदेवमुक्तं चतुस्त्रिंशत्तमं पदं, सम्प्रति पञ्चत्रिंशत्तममारभ्यते, अस्य चायमभिसम्बन्धः–इहानन्तरपदे वेदपरिणामविशेषः प्रवीचारः प्रतिपादितः, अत्र तु गतिपरिणामविशेषा वेदना प्रतिपाद्यते, तत्र आदौ सकलवक्तव्यतासङ्ग्रहपरे इमे द्वे गाथे—

सीता य दव्वसरीरा साता तह वेदणा भवति दुक्खा । अब्भुवगमोवक्कमिया निदाय अणिदाय नायव्वा ॥ १ ॥ सायमसायं सव्वे सुहं च दुक्खं अदुक्खमसुहं च । माणसरहियं विगलिंदिया उ सेसा दुविहमेव ॥ २ ॥ कइविहा णं भंते ! वेदणा पं० ?, गो० ! तिविहा वेदणा पं०, तं०–सीता उसिणा सीतोसिणा, नेरइया णं भंते ! किं सीतं वेदणं वेदेंति उसिणं वे० वे० सीतोसिणं वे० वेदेंति ?, गो० ! सीतंपि वेदणं वेदेंति उसिणंपि वे० वे० नो सीतोसिणं वे० वे०, केई एक्केकपुढवीए वेदणाओ भणंति, रयणप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! पुच्छा, गो० ! नो सीतं वेदणं वे० उसिणं वे० वे० नो सीतोसिणं वे० वे०, एवं जाव वालुयप्पभापुढविनेरइया, पंकप्पभापुढविनेरयाणं पुच्छा, गो० ! सीतंपि वे० वे० उसिणंपि वे० वे०, नो सीतोसिणं वे० वे०, ते बहुयतरागा जे उसिणं वेदणं वेदंति, ते थोवतरागा जे सीतं वेदणं वे०, धूमप्पभाए एवं चेव दुविहा, नवरं ते बहुतरागा जे सीतं वे० वे० ते थोवतरागा जे उसिणं वे० वेदेंति, तमाए य तमतमाए य सीयं वे० वे० नो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ पद (३५) "वेदना" आरब्धम्

उसिणं वे० वे०, नो सीतोसिणं वे० वेदेंति, असुरकुमाराणं पुच्छा, गो० ! सीतंपि वे० वे० उसिणंपि वे०वे० सीतोसीणंपि वे० वे०, एवं जाव वेमाणिया । कतिविहा णं भंते ! वेदणा पं० ?, गो० ! चउव्विहा वेदणा पं० तं०–दव्वतो खेत्ततो कालतो भावतो, नेरइया णं भंते ! किं दव्वतो वेदणं वे० वे० जाव किं भावतो वे० वे० ?, गो० ! दव्वओवि वे० वे० जाव भावओवि वे० वे०, एवं जाव वेमाणिया। कतिविहा णं भंते ! वेदणा पं० ?, गो० ! तिविहा वेदणा, पं०, तं०–सारीरा माणसा सारीरमाणसा, नेरइया णं भंते ! किं सारीरं वे० वे० माणसं वेयणं वे० सारीरमाणसं वे० वे० ?, गो० ! सारीरंपि वे० वे० माणसंपि वे० वे० सारीरमाणसंपि वे० वे०, एवं जाव वेमाणिया, नवरं एगिंदियविगलिंदिया सारीरं वे० वे० नो माणसं वे० वे० नो सारीरमाणसं वे० वे०। कइविहा णं भंते ! वेयणा पं० ?, गो० ! तिविहा वेयणा पं०, तं०–साता असाता सातासाता, नेरइया णं भंते ! किं सायं वेदणं वेदंति असातं वे० वे० सायासायं वे० वे० ?, गोयमा ! तिविहंपि वे० वे०, एवं सव्वजीवा जाव वेमाणिया। कतिविहा णं भंते ! वेदणा पं० ?, गो० ! तिविहा पं०, तं०–दुक्खा सुहा अदुक्खसुहा, नेरइया णं भंते ! किं दुक्खं वेदणं वे० वे० पुच्छा, गो० ! दुक्खंपि वे० वे० सुहंपि वे० वे० अदुक्खमसुहंपि वे० वे० एवं जाव वेमाणिया । (सूत्रं ३२८)

'सीया य दव्वे'त्यादि, वेदना प्रथमतः शीता चशब्दादुष्णा शीतोष्णा च वक्तव्या, तदनन्तरं द्रव्यक्षेत्रकालभावैर्वेदना वक्तव्या, ततः शारीरी उपलक्षणान्मानसी च वेदना वाच्या, ततः साता तथा दुःखा वेदना सभेदा वक्तव्य-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तया ज्ञातव्या भवति, तदनन्तरमाभ्युपगमिकी औपक्रमिकी च वेदना वक्तव्यतया ज्ञातव्या, ततोऽप्यनन्तरं निदा चानिदा चेति, सातसुखादीनां विशेषमाभ्युपगमिक्यादिशब्दानामर्थं त्वग्रे वक्ष्यामः, सातादिवेदनां अधिकृत्य यो विशेषो वक्ष्यते तत्सङ्ग्राहिका द्वितीया गाथा—'सायमसाय'मित्यादि, सर्वे संसारिणः सातामसातां चशब्दात् सातासातां च वेदनां वेदयन्ते, तथा सुखां दुःखां अदुःखासुखां च, तथा विकलेन्द्रिया—एकद्वित्रिचतुरिन्द्रियाः तुशब्दस्याधिकारार्थसंसूचनार्थत्वादसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाश्च मानसरहितां–मनोविकलां वेदनां वेदयन्ते, शेषास्तु द्विविधामेव शरीरमनोनिबन्धनां, शारीरीं मानसीं तदुभयसमुद्भवां चेति भावः, निदाऽनिदादिगतस्तु विशेषो न सङ्ग्रहीतो, विचित्रत्वात् सूत्रगतेः। तत्र 'यथोद्देशं निर्देश' इति न्यायात् प्रथमतः शीतादिवेदनाः प्रतिपादनार्थमाह—'कइविहा णं भंते !' इत्यादि, शीता—शीतपुद्गलसम्पर्कसमुत्था, एवमुष्णा, या च अवयवभेदेन शीतोष्णपुद्गलसम्पर्कतः शीता उष्णा च सा शीतोष्णा, एनामेव त्रिविधां वेदनां नैरयिकादिचतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण चिन्तयति–'नेरइया ण'मित्यादि, तत्राद्यासु तिसृषु पृथिवीषूष्णां वेदनां वेदयन्ते, ते हि शीताः ये नरकावासाश्च तदाश्रयभूताः, सर्वतो जगत्प्रसिद्धखादिराङ्गारातिरिक्तबहुप्रतापोष्णपुद्गलसम्भूताः, चतुर्थ्यां तु पङ्कप्रभाभिधानायां पृथिव्यां केचिन्नैरयिका उष्णवेदनां केचिच्च शीतवेदनामनुभवन्ति, तत्रत्यनरकावासानां शीतोष्णभेदतो द्विधा भेदात्, केवलं ये उष्णवेदनां वेदयन्ते ते प्रभूततराः, प्रभूतेषु नरकावासेषूष्णवेदनासद्भावात्, इतरे शीतवेदनामनुभवन्तः स्तोकाः, स्तोकतरेषु नर-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कावासेषु शीतवेदनासम्भवात्, धूमप्रभायामपि पृथिव्यां केचित् शीतवेदनाकाः केचिदुष्णवेदनाकाः, नवरं शीतवेदनाकाः प्रभूततराः, प्रभूतेषु नरकावासेषु शीतवेदनासम्भवात्, स्तोका उष्णवेदनाः, कतिपयेष्वेव नरकावासेषूष्णवेदनाभावात्, अधस्तन्योस्तु द्वयोः पृथिव्योः शीतवेदनामेव नैरयिका अनुभवन्ति, तत्रत्यनैरयिकाणां सर्वेषामुष्णयोनिकत्वात्, नरकावासानां त्वनुपमहिमानुषक्तत्वात्, एतावत्सूत्रं चिरन्तनेष्वविप्रतिपत्त्या श्रूयते, केचिदाचार्याः पुनरेतद्विषयमधिकमपि सूत्रं पठन्ति, ततस्तन्मतं आह–'केइ एक्केक्कीए पुढवीए वेयणं भणंति' इति केचिदाचार्या एकैकस्यां पृथिव्यां प्रश्ननिर्वचनरूपतया वेदनां भणंति, यथा भणन्ति तथोपदर्शयन्ति—'रयणप्पभे'त्यादि सुगमं, तदेवं नैरयिकाणां चिन्तिता शीतादिवेदना, सम्प्रत्यसुरकुमाराणां तां चिचिन्तयिषुरिदमाह—'असुरकुमाराणं पुच्छा' असुरकुमाराणां शीतादिवेदनाविषये पृच्छासूत्रं च वक्तव्यं, 'असुरकुमारा णं भंते ! किं सीयं वेदणं वेयंति उसिणं वेयणं वेयंति सीओसिणं वेयणं वेयंति ?, इति भगवानाह–'गोयमे'त्यादि, शीतामपि वेदनां वेदयन्ते, यदा शीतलजलसम्पूर्णह्रदादिषु निमज्जनादिकं विदधति, उष्णामपि वेदनां वेदयंते यदा कोऽपि महर्द्धिकस्तज्जातीयोऽन्यजातीयो वा कोपवशात् विरूपतया दृष्ट्वाऽवलोकमानः शरीरे सन्तापमुत्पादयति, यथा प्रथमोत्पन्नः ईशानेन्द्रो बलिचञ्चाराजधानीवास्तव्यानामसुरकुमाराणामुत्पादितवान्, अन्यथा वा तथाविधोष्णपुद्गलसम्पृक्ताद्युष्णवेदनामनुभवन्तो वेदितव्याः, यदा त्ववयवभेदेन शीतपुद्गलसम्पर्क उष्णपुद्गलसम्पर्कश्चोपजायते तदा शीतोष्णां वेदनां वेदयन्ते,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३२८] + गाथा: दीप अनुक्रम [५९४--५९६]

ननु उपयोगः क्रमेण जीवानां भवति, तथास्वाभाव्यात्, कथमत्र शीतोष्णवेदनानुभवो युगपत् प्रख्याप्यते इति?, उच्यते, इहापि वेदनानुभवः क्रमेणैव, तथाजीवस्वाभाव्यात्, केवलं शीतोष्णवेदनाहेतुपुद्गलसम्पर्को युगपदुपजायत इति सूक्ष्ममाशुसञ्चारिणमुपयोगक्रममनपेक्ष्य यथैव ते वेदयमाना युगपदभिमन्यन्ते तथैव प्रतिपादितमिति न कश्चिद्दोषः, सामान्यतः सूत्रस्य प्रवृत्तत्वात्, 'एवं जाव वेमाणिय'त्ति एवं—असुरोक्तेन प्रकारेण यावद् वैमानिकास्तावत् सूत्रं वक्तव्यं, तच्चैवम्—'पुढविकाइया णं भंते ! किं सीयं वेयणं वेयंति उसिणं वे० वे० सीओसिणं वेयणं वेयंति ?, गो० ! सीयंपि वे० वे० उसिणंपि वे० वे० सीतोसिणंपि वे० वेयंति' इत्यादि, तत्र पृथिवीकायिकादयो मनुष्यपर्यवसानाः शीतवेदनां हिमादिप्रपातेऽभिवेदयमाना वेदितव्याः उष्णवेदनामग्न्यादिसम्पर्के शीतोष्णवेदनामवयवशः शीतोष्णपुद्गलसम्बन्धे इति, व्यन्तरज्योतिष्कवैमानिकास्त्वसुरकुमारवत् भावनीयाः। उक्ता शीतादिभेदात् त्रिविधा वेदना, सम्प्रति तामेव वेदनां प्रकारान्तरेणाभिधित्सुः प्रश्ननिर्वचनसूत्रे आह—'कइविहा णं भंते' इत्यादि, इह वेदना द्रव्यक्षेत्रकालभावसामग्रीवशादुत्पद्यते, सर्वस्यापि वस्तुनो द्रव्यादिसामग्रीवशादुत्पद्यमानत्वात्, तत्र यदाऽस्यैव वेदना पुद्गलद्रव्यसम्बन्धमधिकृत्य चिन्त्यते तदा द्रव्यवेदना, द्रव्यतो वेदना द्रव्यवेदना, नारकाद्युपपातक्षेत्रमधिकृत्य चिन्त्यमाना क्षेत्रवेदना, नारकादिभवकालसम्बन्धेन विवक्ष्यमाणा कालवेदना, वेदनीयकर्मोदयादुपजायमानत्वेन परिभाव्यमाना भाववेदना, एतामेव चतुर्विधां वेदनां चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण चिन्तयति—'नेरइया णं भंते !

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किं दवतो वेयणं वेदंति' इत्यादि, सकलमपि सुगमं। प्रकारान्तरेण वेदनांपि प्रतिपिपादयिषुः प्रश्ननिर्वचनसूत्रे आह—'कइविहा णं भंते !' इत्यादि, शरीरे भवा शारीरी मनसि भवा मानसी तदुभयभवा शारीरमानसी, शारीरी च मानसी च शारीरमानसी, 'पुंवत्कर्मधारय' इति पुंवद्भावः, एतामेव चतुर्विंशतिदण्डककमेण चिन्तयति—'नेरइया णं भंते ! किं सारीरं वेयणं वेदेंति' इत्यादि, तत्र यदा परस्परोदीरणतः परमाधार्मिकोदीरणतो वा क्षेत्रानुभावतो वा शरीरे पीडामनुभवन्ति तदा शारीरीं वेदनां वेदयन्ते, यदा तु केवलं मनसि दुःखं परिभावयन्ति पाश्चात्यं वा भवमात्मीयं दुष्कर्मकारिणमनुसृत्य पश्चात्तापमतीव कुर्वते तदा मानसीं वेदनां वेदयन्ते, यदा तु शरीरे मनसि चोक्तप्रकारेण युगपत् पीडां अनुभवन्ति तदा शारीरमानसी, इहापि वेदनानुभावः क्रमेणैव केवलं विवक्षितावत्कालमध्ये शरीरे च पीडामनुभवन्ति मनसि च एतावन्तं कालं एकं विवक्षित्वा युगपच्छरीरमनःपीडानुभवः प्रतिपादित इत्यदोषः, 'एवं जाव वेमाणिया' इत्यादि, एवं—नैरयिकोक्तेन प्रकारेण सूत्रं तावद् वक्तव्यं यावद्वैमानिकाः, नवरमेकेन्द्रियविकलेन्द्रियाः शारीरीं वेदनां वेदयन्ते न मानसीं, तेषां मनसोऽभावात्, ततस्तदनुसारेण तद्विषयं सूत्रं वक्तव्यं। प्रकारान्तरेण वेदनामभिधित्सुः प्रश्ननिर्वचनसूत्रे आह—'कइविहा णं भंते !' इत्यादि, तत्र साता–सुखरूपा असाता—दुःखरूपा सातासाता–सुखदुःखात्मिका, एतामेव नैरयिकादिचतुर्विंशतिदण्डककमेण चिन्तयति—'नेरइया ण'मित्यादि, तत्र तीर्थङ्करजन्मादिकाले सातवेदनां वेदयन्ते, शेषकालमसातवेदनां वेदयन्ते, यदा तु पूर्वस-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१५],उपांगसूत्र-[४] "प्रज्ञापना" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [३२८] + गाथा: दीप अनुक्रम [५९४--५९६]

ऋतिको देवो दानवो वा वचनामृतैः सिञ्चति तदा मनसि सातं शरीरे तु क्षेत्रानुभावतोऽसातं यदिवा मनस्येव तद्-र्शनतः तद्वचनश्रवणतश्च सातं पश्चात्तापानुभवनतस्त्वसातमिति तदा सातासातवेदनामनुभवन्ति, अत्रापि तावन्तं विवक्षितकालमेकं विवक्षित्वा सातासातानुभवो युगपत् प्रतिपादितः, परमार्थतस्तु क्रमेणैव च वेदितव्य इति, 'एव'-मित्यादि, एवं–नैरयिकोक्तप्रकारेण सर्वे जीवास्तावद्वक्तव्या यावद्वैमानिकाः, तत्र पृथिव्यादयो यावन्नाद्याप्युपद्रवः सन्निपतति तावत् सातवेदनां वेदयन्ते उपद्रवसम्पाते त्वसातवेदनामवयवभेदेनोपद्रवसम्पातभावे सातासातवेदनां, व्यन्तरज्योतिष्कवैमानिका देवाः सुखमनुभवन्तः सातवेदनां च्यवनादिकाले त्वसातवेदनां परविभूतिदर्शनतो मात्स-र्याद्यनुभवे स्ववल्लभदेवीपरिष्वङ्गाद्यनुभवे च युगपज्जायमाने सातासातवेदनां वेदयन्ते इति । भूयः प्रकारान्तरेण एतामेव प्रतिपादयन् प्रश्ननिर्वचनसूत्रे आह—'कइविहा णं भंते !' इत्यादि, या वेदना नैकान्तेन दुःखा भणितुं शक्यते सुखस्यापि भावात् नापि सुखा दुःखस्यापि भावात् सा अदुःखसुखा सुखदुःखात्मिका इत्यर्थः, अथ साता-सातयोः सुखदुःखयोश्च परस्परं कः प्रतिविशेषः ?, उच्यते, ये क्रमेणोदयप्राप्तवेदनीयकर्मपुद्गलानुभवतः सातासाते ते सातासाते उच्यते, ये पुनः परोदीर्यमाणवेदनारूपे सातासाते ते सुखदुःखे इति, एतामेव चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण चिन्तयति–'नेरइया ण'मित्यादि ॥ वेदनामेव प्रकारान्तरेण चिन्तयन्नाह—

कतिविहा णं भंते ! वेदणा पं० ?, गो० ! दुविहा वेयणा पं०, तं०–अब्भोवगमिया य उवक्कमिया य, नेरइया णं भंते !

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३२९]

दीप अनुक्रम [५९७]

अब्भोवगमियं वेदणं वे० वे० उवक्कमियं वेदणं वे० वे०?, गो० ! नो अब्भोवगमियं वे० वे० उवक्कमियं वे० वे०, एवं जाव चउरिंदिया, पंचिंदियतिरिक्खजोणिया मणूसा य दुविहंपि वे० वे०, वाणमंतरजोतिसियवेमाणिया जहा नेरइया (सूत्रं ३२९)

'कतिविहा णं भंते !' इत्यादि, तत्राभ्युपगमिकी नाम या स्वयमभ्युपगम्यते, यथा साधुभिः केशोल्लुञ्चनातापनादिभिः शरीरपीडा, अभ्युपगमेन–स्वयमङ्गीकारेण निर्वृत्ता आभ्युपगमिकीति व्युत्पत्तेः, उपक्रमणमुपक्रमः—स्वयमेव समीपे भवनमुदीरणाकरणेन वा समीपानयनं तेन निर्वृत्ता औपक्रमिकी, स्वयमुदीर्णस्य उदीरणाकरणेन वा उदयमुपनीतस्य वेदनीयकर्मणो विपाकानुभवनेन निर्वृत्ता इत्यर्थः, तत्र पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चो मनुष्याश्च द्विविधामपि वेदनां वेदयन्ते, सम्यग्दृशां पञ्चेन्द्रियतिरश्चां मनुष्याणां च कर्मक्षपणार्थमाभ्युपगमिक्या अपि वेदनायाः सम्भवात्, शेषास्त्वौपक्रमिकीमेव वेदनां वेदयन्ते नाभ्युपगमिकीं, पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिद्वित्रिचतुरिन्द्रियाणां मनोविकलतया विवेकाभावतस्तथाप्रतिपत्तेरभावात्, नारकभवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कवैमानिकानां च तथाभवस्वाभाव्यादिति, एतदेव सूत्रकृत् प्रतिपादयति–'नेरइया णं भंते !' इत्यादि सुगमं । पुनः प्रकारान्तरेण वेदनामेवाभिधित्सुराह—

कतिविहा णं भंते ! वेदणा पं० ?, गो० ! दुविहा वेदना पं०, तं०–निदाय अणिदाय, नेरइया णं भंते ! किं निदायं वेयणं वेदयंते अणिदायं वे० वे०?, गो० ! निदायंपि वे० वे० अणिदायंपि वेदणं वे०, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वु०–नेरइया निदायंपि अनिदायंपि वे० वे०?, गो० ! नेरइया दुविहा पं०, तं०–सण्णीभूया य असण्णीभूया य, तत्थ णं जे ते सण्णिभूया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१५],उपांगसूत्र-[४] "प्रज्ञापना" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३३०]

दीप अनुक्रम [५९८]

ते णं निदायंपि वे० वे०, तत्थ णं जे ते असण्णीभूता ते णं अणिदायं वेदणं वे०, से तेणट्ठेणं० ?, गो० ! एवं नेरइया निदायंपि वेयणं वे० अणिदायंपि वे० वे०, एवं जाव थणियकुमारा, पुढविकाइयाणं पुच्छा, गो० ! नो निदायं वे० वे० अणिदायं वे० वे०, से केणट्ठेणं भंते ! एवं० पुढवीकाइया नो निदायं वे० वे० अनिदायं वे० वे० ?, गो० ! पुढविकाइया सव्वे असण्णी असण्णिभूयं अणिदायं वे० वे०, से तेणट्ठेणं गो० ! एवं० पुढविकाइया नो निदायं वे० वे०, अणिदायं वे० वे०, एवं जाव चउरिंदिया, पंचिंदियतिरिक्खजोणिया मणूसा वाणमंतरा जहा नेरइया, जोइसियाणं पुच्छा, गो० ! निदायंपि वेयणं वे० वे० अणिदायंपि वेयणं वेद०, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वु०–जोइसिया निदायंपि० अणिदायंपि वेयणं वेदेंति ?, गो० ! जोइसिया दुविहा पं०, तं०–माइमिच्छद्दिट्ठिउववण्णगा य अमाइसम्मद्दिट्ठीउववण्णगा य, तत्थ णं जे ते माइमिच्छद्दिट्ठिउववण्णगा ते णं अणिदायं वेयणं वेयंति, तत्थ णं जे ते अमाईसम्मद्दिट्ठीउ० ते णं निदायं वे० वे०, से एतेणट्ठेणं गो० ! एवं० जोइसिया दुविहंपि वेदणं वे०, एवं वेमाणियावि ॥ (सूत्रं ३३०) ॥ पण्णवणाए वेयणापयं समत्तं ॥३५॥

'कतिविहा णं भंते !' इत्यादि, निदा च अनिदा च, तत्र नितरां निश्चितं वा सम्यक् दीयते चित्तमस्यामिति निदा, बहुलाधिकाराद् 'उपसर्गादात' इत्यधिकरणे घञ्, सामान्येन चित्तवती सम्यग्विवेकवती वा इत्यर्थः, इतरा त्वनिदा–चित्तविकला सम्यग्विवेकविकला वा, एतामेव चतुर्विंशतिदण्डककमेण प्रतिपादयति–'नेरइया ण'मित्यादि, द्विविधा हि नैरयिकाः—संज्ञिभूता असंज्ञिभूताश्च, तत्र ये ते संज्ञिभ्य उत्पन्नास्ते संज्ञिभूताः, ये त्वसंज्ञिभ्यस्तेऽसं-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३३०]

दीप अनुक्रम [५९८]

ज्ञिभूताः, असंज्ञिनश्च पाश्चात्यं न किमपि जन्मान्तरकृतं शुभमशुभं वैरादिकं वा स्मरन्ति, स्मरणं हि तत्र प्रवर्त्तते यत्तीव्रेणाभिसन्धिना कृतं भवति, न चासंज्ञिभवे पाश्चात्ये तेषां तीव्राभिसन्धिरासीत्, मनोविकलत्वात्, ततो यामपि काञ्चिद्वेदनां नैरयिका वेदयन्ते तामनिदां, पाश्चात्यभवानुभूतिविषयस्मरणपटुचित्तासम्भवात्, संज्ञिभूतास्तु सर्वं पाश्चात्यमनुस्मरन्तीति ते निदां वेदनां वेदयन्ते इति, एवमसुरकुमारादयः स्तनितकुमारपर्यवसाना भवनपतयो वक्तव्याः, तेषामपि संज्ञिभ्योऽसंज्ञिभ्यश्चोत्पादसम्भवात्, पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिद्वित्रिचतुरिन्द्रियाः सम्मूर्च्छिमा इति मनोविकलत्वात् अनिदामेव वेदनां वेदयन्ते, 'पंचिंदियतिरिक्खजोणिया मणूसा वाणमंतरा जहा नेरइया' इति, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिका मनुष्या व्यन्तराश्च यथा नैरयिकास्तथा वक्तव्या इति शेषः, निदामपि वेदनां वेदयन्ते अनिदामपि वेदनां वेदयन्ते इति वक्तव्या इत्यर्थः, कस्मादिति चेत्, उच्यते, इह पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिका मनुष्याश्च द्विधा भवन्ति, तद्यथा—सम्मूर्च्छिमा गर्भव्युत्क्रान्तिकाश्च, तत्र ये ते सम्मूर्च्छिमास्ते मनोविकलत्वादनिदां वेदनां वेदयन्ते, ये तु गर्भव्युत्क्रान्तास्ते समनस्का इति निदां वेदनामनुभवन्ति, व्यन्तरास्तु संज्ञिभ्योऽपि उत्पद्यन्ते असंज्ञिभ्योऽपि ततस्तेऽपि नैरयिकवत् निदां चानिदां च वेदनां वेदयमाना भावनीयाः, 'जोइसिया ण'मित्यादि, ज्योतिष्कास्तु संज्ञिभ्य एवोत्पद्यन्ते, ततस्तेषु न नैरयिकोक्तेन प्रकारेण निदानिदे वेदने सम्भावनीये, किन्तु प्रकारान्तरेण, ततस्तमेव प्रकारं बुभुत्सुः प्रश्नसूत्रमाह–'से केणट्ठेणं भंते !' इत्यादि सुगमं, भगवानाह—'गोयमे'त्यादि, ज्योतिष्का हि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्विविधाः–मायिमिथ्यादृष्टयुपपन्नकाः अमायिसम्यग्दृष्टयुपपन्नकाश्च, तत्र मायानिर्वर्त्तितं यत्कर्म मिथ्यात्वादिकं तदपि माया, कार्ये कारणोपचारात्, माया विद्यते येषां ते मायिनः, अत एव मिथ्यात्वोदयात् मिथ्या–विपर्यस्ता दृष्टिः–वस्तुतत्त्वप्रतिपत्तिर्येषां ते मिथ्यादृष्टयो मायिनश्च ते मिथ्यादृष्टयश्च मायिमिथ्यादृष्टयस्ते च ते उपपन्नकाश्च मायिमिथ्यादृष्टयुपपन्नकाः तद्विपरीता अमायिसम्यग्दृष्टयुपपन्नकाः, तत्र ये ते मायिमिथ्यादृष्टयुपपन्नकास्तेऽपि मिथ्यादृष्टित्वादेव व्रतविराधनातोऽज्ञानतपोवशाद्वा वयमेवंविधा उत्पन्ना इति न जानते, ततः सम्यग्यथावस्थितपरिज्ञानाभावादनिदां वेदनां वेदयमानास्ते वेदितव्याः, ये त्वमायिसम्यग्दृष्टयुपपन्नास्ते सम्यग्दृष्टित्वात् यथावस्थितं स्वरूपं जानन्ति, ततो यां काञ्चन वेदनां वेदयन्ते तां सर्वामपि निदामिति, 'एवं चेव वेमाणियावि' इति एवं—ज्योतिष्कोक्तेन प्रकारेण वैमानिका अपि निदामनिदां च वेदनां वेदयमाना वेदितव्याः, तेषामपि मिथ्यादृष्टिसम्यग्दृष्टिभेदतो द्विविधत्वात् ॥ इति श्रीमलयगिरिविरचितायां प्रज्ञापनाटीकायां वेदनाख्यं पञ्चत्रिंशत्तमं पदं समाप्तं ॥ ३५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र पद (३५) "वेदना" परिसमाप्तम्

अथ षट्त्रिंशत्तमं समुद्घाताख्यं पदं ॥ ३६ ॥

तदेवं व्याख्यातं पञ्चत्रिंशत्तमं पदं, सम्प्रति षट्त्रिंशत्तममारभ्यते, तस्य चायमभिसम्बन्धः—इहानन्तरपदे गतिपरिणामविशेषो वेदना प्रतिपादिता, इहापि गतिपरिणामविशेष एव समुद्घातश्चिन्त्यते, तत्र समुद्घातवक्तव्यतायां विषये इयमादौ सङ्ग्रहणिगाथा—

वेयणकसायमरणे वेउव्वियतेयए य आहारे । केवलिए चेव भवे जीवमणुस्साण सत्तेव ॥ १ ॥

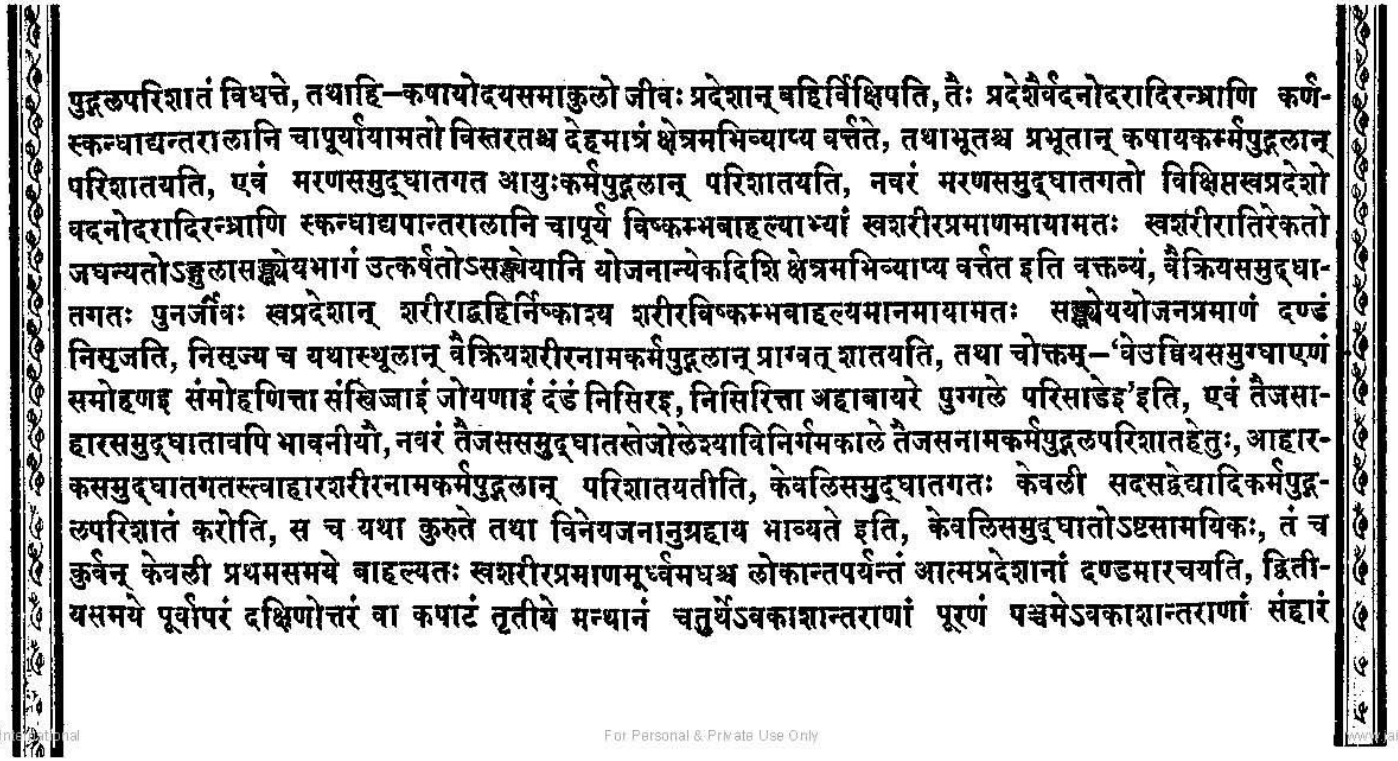
‘वेयणे’त्यादि, इह समुद्घाताः सप्त भवन्ति, तद्यथा—‘वेयणकसायमरणे’ इति, वेदनं कषायाश्च मरणं च वेदनकषायमरणं समाहारो द्वन्द्वस्तस्मिन् विषये त्रयः समुद्घाता भवन्ति, तद्यथा–वेदनासमुद्घातः कषायसमुद्घातो मरणसमुद्घातश्च, ‘वेउव्विय’त्ति वैक्रियविषयश्चतुर्थः समुद्घातः, तैजसः पञ्चमः समुद्घातः, षष्ठ आहार इति—आहारकशरीरविषयः, सप्तमः केवलिकः–केवलिषु भवति, ‘जीवमणुस्साण सत्तेव’त्ति सामान्यतो जीवचिन्तायां मनुष्यद्वारचिन्तायां सप्तैव–सप्तपरिमाणाः समुद्घाता वक्तव्याः, न न्यूनाः, सप्तानामपि तत्र सम्भवात्, ‘सत्तेव’त्ति एवकारोऽत्र परिमाणे, वर्त्तते च परिमाणे एवशब्दः, यदाह शाकटायनन्यासकृत्–‘एवोऽवधारणपृथक्त्वपरिमाणे-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ पद (३६) “समुद्घातः” आरब्धम्

ष्वि'ति, शेषद्वारचिन्तायां तु यथासम्भवं वाच्याः, ते चाग्रे स्वयमेव सूत्रकृताऽभिधास्यन्ते इत्येष सङ्ग्रहणिगाथासङ्क्षेपार्थः । अथ समुद्घात इति कः शब्दार्थः ?, उच्यते, समित्येकीभावे उत्प्राबल्ये, एकीभावेन प्राबल्येन घातः समुद्घातः, केन सह एकीभावगमनमिति चेत्, उच्यते, अर्थाद्वेदनादिभिः, तथाहि—यदाऽऽत्मा वेदनादिसमुद्घात गतो भवति तदा वेदनाद्यनुभवज्ञानपरिणत एव भवति, नान्यज्ञानपरिणतः, प्राबल्येन कथं घात इति चेत्, उच्यते, इह वेदनादिसमुद्घातपरिणतो बहून् वेदनीयादिकर्मप्रदेशान् कालान्तरानुभवयोग्यानुदीरणाकरणेनाकृष्योदयावलिकायां प्रक्षिप्यानुभूय च निर्जरयति, आत्मप्रदेशैस्सह सङ्क्लिष्टान् सातयतीति भावः, 'पुव्वकयकम्मसाडणं तु निज्जरा' [पूर्वकृतकर्मशाटनं तु निर्जरा] इति वचनात्, तथाहि—वेदनासमुद्घातोऽसद्वेद्यकर्माश्रयः, कषायसमुद्घातः कषायाख्यचारित्रमोहनीयकर्माश्रयः, मारणान्तिकसमुद्घातः अन्तर्मुहूर्त्तशेषायुःकर्माश्रयः, वैकुर्विकतैजसाहारकसमुद्घाता यथाक्रमं वैक्रियशरीरतैजसशरीराहारकशरीरनामकर्माश्रयाः, केवलिसमुद्घातः सदसद्वेद्यशुभाशुभनामोच्चनीचैर्गोत्रकर्माश्रयः, तत्र वेदनासमुद्घातगत आत्मा असातवेदनीयकर्मपुद्गलपरिशातं करोति, तथाहि—वेदनापीडितो जीवः स्वप्रदेशाननन्तानन्तकर्मस्कन्धवेष्टितान् शरीराद्बहिरपि विक्षिपति, तैश्च प्रदेशैर्वदनजठरादिरन्ध्राणि कर्णस्कन्धाद्यपान्तरालानि चापूर्यायामतो विस्तरतश्च शरीरमात्रं क्षेत्रमभिव्याप्यान्तर्मुहूर्त्तं यावदवतिष्ठते, तस्मिंश्चान्तर्मुहूर्त्ते प्रभूतासातावेदनीयकर्मपुद्गलपरिशातं करोति, कषायसमुद्घातसमुद्गतः कषायाख्यचारित्रमोहनीयकर्म-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



पुद्गलपरिशातं विधत्ते, तथाहि–कषायोदयसमाकुलो जीवः प्रदेशान् बहिर्विक्षिपति, तैः प्रदेशैर्वदनोदरादिरन्ध्राणि कर्ण-स्कन्धाद्यन्तरालानि चापूर्यायामतो विस्तरतश्च देहमात्रं क्षेत्रमभिव्याप्य वर्त्तते, तथाभूतश्च प्रभूतान् कषायकर्म्मपुद्गलान् परिशातयति, एवं मरणसमुद्घातगत आयुःकर्मपुद्गलान् परिशातयति, नवरं मरणसमुद्घातगतो विक्षिप्तस्वप्रदेशो वदनोदरादिरन्ध्राणि स्कन्धाद्यपान्तरालानि चापूर्य विष्कम्भबाहल्याभ्यां स्वशरीरप्रमाणमायामतः स्वशरीरातिरेकतो जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागं उत्कर्षतोऽसङ्ख्येयानि योजनान्येकदिशि क्षेत्रमभिव्याप्य वर्त्तत इति वक्तव्यं, वैक्रियसमुद्घा-तगतः पुनर्जीवः स्वप्रदेशान् शरीराद्बहिर्निष्काश्य शरीरविष्कम्भबाहल्यमानमायामतः सङ्ख्येययोजनप्रमाणं दण्डं निसृजति, निसृज्य च यथास्थूलान् वैक्रियशरीरनामकर्मपुद्गलान् प्राग्वत् शातयति, तथा चोक्तम्–'वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ संमोहणित्ता संखिज्जाइं जोयणाइं दंडं निसिरइ, निसिरित्ता अहाबायरे पुग्गले परिसाडेइ'इति, एवं तैजसा-हारसमुद्घातावपि भावनीयौ, नवरं तैजससमुद्घातस्तेजोलेश्याविनिर्गमकाले तैजसनामकर्मपुद्गलपरिशातहेतुः, आहार-कसमुद्घातगतस्त्वाहारशरीरनामकर्मपुद्गलान् परिशातयतीति, केवलिसमुद्घातगतः केवली सदसद्वेद्यादिकर्मपुद्ग-लपरिशातं करोति, स च यथा कुरुते तथा विनेयजनानुग्रहाय भाव्यते इति, केवलिसमुद्घातोऽष्टसामयिकः, तं च कुर्वन् केवली प्रथमसमये बाहल्यतः स्वशरीरप्रमाणमूर्ध्वमधश्च लोकान्तपर्यन्तं आत्मप्रदेशानां दण्डमारचयति, द्वितीय-समये पूर्वापरं दक्षिणोत्तरं वा कपाटं तृतीये मन्थानं चतुर्थेऽवकाशान्तराणां पूरणं पञ्चमेऽवकाशान्तराणां संहारं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३३०...] + गाथा

दीप अनुक्रम [५९९]

षष्ठे मथः सप्तमे कपाटस्य अष्टमे स्वशरीरस्थो भवति, वक्ष्यति च–"पढमे समये दंडं करेइ, बीए कवाडं करेइ" इत्यादि, तत्र दण्डसमयात् प्राक् या पल्योपमासङ्ख्येयभागमात्रा वेदनीयनामगोत्राणां स्थितिरासीत् तस्या बुद्धया असङ्ख्येयभागाः क्रियन्ते, ततो दण्डसमये दण्डं कुर्वन् असङ्ख्येयान् भागान् हन्ति, एकोऽसङ्ख्येयो भागोऽवतिष्ठते, यश्च प्राक्कर्मत्रयस्यापि रसस्तस्याप्यनन्ता भागाः क्रियन्ते, ततस्तस्मिन् दण्डसमये असातवेदनीय १प्रथमवर्जसंस्थान ६ संहननपञ्चका ११ प्रशस्तवर्णादिचतुष्टयो १५ पघाता १६ प्रशस्तविहायोगति १७ दुःस्वर १८ दुर्भगा १९ स्थिरा- २० पर्याप्तका २१ शुभा २२ नादेया २३ यशः कीर्त्ति २४ नीचैर्गोत्ररूपाणां २५ पञ्चविंशतिप्रकृतीनामनन्तान् भागान् हन्ति, एकोऽनन्तभागोऽवशिष्यते, तस्मिन्नेव च समये सातवेदनीय १ देवगति २ मनुष्यगति ३ देवानु- पूर्वी ४ मनुष्यानुपूर्वी ५ पञ्चेन्द्रियजाति ६ शरीरपञ्चको ११ पाङ्गत्रय १४ प्रथमसंस्थान १५ संहनन १६ प्रशस्तव- र्णादिचतुष्टया २० गुरुलघु २१ पराघातो२२च्छ्वास १३ प्रशस्तविहायोगति २४ त्रस २५ बादर २६ पर्याप्त २७ प्रत्ये- कातपो २९ द्योत ३० स्थिर ३१ शुभ ३२ सुभग ३३ सुस्वरा ३४ देय ३५ यशःकीर्त्ति ३६ निर्माण ३७ तीर्थकरो- ३७ चैर्गोत्ररूपाणा ३९ मेकोनचत्वारिंशतः प्रकृतीनामनुभागोऽप्रशस्तप्रकृत्यनुभागमध्यप्रवेशनेनोपहन्यते, समुद्घा- तमाहात्म्यमेतत्, तस्य चोद्धरितस्य स्थितेरसङ्ख्येयभागस्यानुभागस्य चानन्तभागस्य पुनर्यथाक्रमं असङ्ख्येया अनन्ताश्च भागाः क्रियन्ते, ततो द्वितीये कपाटसमये स्थितेरसङ्ख्येयान् भागान् हन्ति, एकोऽवशिष्यते, अनुभागस्य चानन्तान्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भागान् हन्ति एकं मुञ्चति, अत्राप्यप्रशस्तप्रकृत्यनुभागमध्यप्रवेशनेन प्रशस्तप्रकृत्यनुभागघातो द्रष्टव्यः, पुनरप्येततसमयेऽवशिष्टस्य स्थितेरसङ्ख्येयभागस्यानुभागस्य चानन्ततमभागस्य पुनर्बुद्ध्या यथाक्रममसङ्ख्येया अनन्ताश्च भागाः क्रियन्ते, ततस्तृतीये समये स्थितेरसङ्ख्येयान् भागान् हन्ति, एकं मुञ्चति, अनुभागस्य चानन्तान् भागान् हन्ति, एकमनन्तभागं मुञ्चति, अत्रापि प्रशस्तप्रकृत्यनुभागघातोऽप्रशस्तप्रकृत्यनुभागमध्यप्रवेशनेनावसेयः, ततः पुनरपि तृतीयसमयावशिष्टस्य स्थितेरसङ्ख्येयभागस्यानुभागस्य चानन्ततमभागस्य बुध्या यथाक्रममसङ्ख्येया अनन्ताश्च भागाः क्रियन्ते, ततश्चतुर्थसमये स्थितेरसङ्ख्येयान् भागान् हन्ति, एकस्तिष्ठति, अनुभागस्याप्यनन्तान् भागान् हन्त्येकोऽवशिष्यते, प्रशस्तप्रकृत्यनुभागघातश्च पूर्ववदवसेयः, एवं च स्थितिघातादि कुर्वतश्चतुर्थसमये स्वप्रदेशापूरितसमस्तलोकस्य भगवतः केवलिनो वेदनीयादिकर्मत्रयस्थितिरायुषः सङ्ख्येयगुणा जाता, अनुभागस्त्वद्याप्यनन्तगुणः, चतुर्थसमयावशिष्टस्य च स्थितेरसङ्ख्येयभागस्यानुभागस्य चानन्ततमभागस्य भूयोऽपि बुद्धया यथाक्रमं सङ्ख्येया अनन्ताश्च भागाः क्रियन्ते, ततोऽवकाशान्तरसंहारसमये स्थितेः सङ्ख्येयभागान् हन्ति, एकं सङ्ख्येयभागं शेषीकरोति, अनुभागस्यानन्तान् भागान् हन्ति एकं मुञ्चति, एवमेतेषु पञ्चसु दण्डादिसमयेषु प्रत्येकं सामयिकं कण्डकमुत्कीर्णं, समये २ स्थितिकण्डकानुभागकण्डकघातनात्, अतः परं षष्ठसमयादारभ्य स्थितिकण्डकमनुभागकण्डकं चान्तर्मुहूर्त्तेन कालेन विनाशयति, प्रयत्नमन्दीभावात्, षष्ठादिषु च समयेषु कण्डकस्य प्रतिसमयमेकैकं शकलं तावदु-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३३०...] + गाथा

दीप अनुक्रम [५९९]

तिकरति यावदन्तर्मुहूर्त्तचरमसमये सकलमपि तत्कण्डकमुत्कीर्णं भवति, एवमान्तर्मौहूर्त्तिकानि स्थितिकण्डकान्यनुभागकण्डकानि च घातयन् तावद्वेदितव्यः यावत् सयोग्यवस्थाचरमसमयः, सर्वाण्यपि चामूनि स्थित्यनुभागकण्डकान्यसङ्ख्येयान्यवगन्तव्यानीति कृतं प्रसङ्गेन, प्रकृतं प्रस्तुमः । तत्र संग्रहणिगाथोक्तमर्थं स्पष्टयन् प्रथमतः समुद्घातसङ्ख्याविषयं प्रश्नसूत्रमाह—

कति णं भंते! समुग्घाया पं०?, गो०! सत्त समुग्घाया पं०, तं०–वेदणासमुग्घाते १ कसायसमुग्घाते २ मारणंतियसमु० ३ वेउव्वियस० ४ तेयास० ५ आहारस० ६ केवलिसमुग्घाते ७। वेदणासमुग्घाए णं भंते! कतिसमइए पं०?, गो०! असंखेज्जसमइए अंतोमुहुत्तिते पं०, एवं जाव आहारसमुग्घाते, केवलिसमुग्घाए णं भंते! कतिसमइए पं०?, गो०! अट्ठसमइए पं०। नेरइयाणं भंते! कति समुग्घाया पं०?, गो०! चत्तारि समुग्घाया पं०, तं०–वेदणासमुग्घाए कसायस० मारणंतियस० वेउव्वियस०, असुरकुमाराणं भंते! कति समुग्घाया पं०?, गो०! पंच समुग्घाया पं०, तं०–वेदणास० कसायस० मारणंतियस० वेउव्वियस० तेयासमुग्घाए, एवं जाव थणियकुमाराणं, पुढविकाइयाणं भंते! कति समुग्घाया पं०?, गो०! तिण्णि समुग्घाया पं०, तं०–वेदणास० कसायस० मारणंतियस०, एवं जाव चउरिंदियाणं, नवरं वाउकाइयाणं चत्तारि समुग्घाया पं०, तं०–वेदणास० कसायस० मारणंतियस० वेउव्वियस०, पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं जाव वेमाणियाणं भंते! कति समुग्घाया पं०?, गो०! पंच समुग्घाया पं०, तं०–वेयणास० कसायस० मारणंतियस०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३३१]

दीप अनुक्रम [६००]

वेउव्वियस० तेयास०, नवरं मणूसाणं सत्तविहे समुग्घाए पं०, तं०–वेदणास० कसायस० मारणंतियस० वेउ० तेया० आहार० केवलिसमुग्घाते (सूत्रं ३३१)

'कइ ण'मित्यादि, कति–किंपरिमाणा णमिति वाक्यलङ्कारे 'भदन्ते'ति भगवतो वर्द्धमानस्वामिन आमन्त्रणं, भदन्तत्वं च भगवतः परमकल्याणयोगित्वात्, यदिवा भवान्तेति द्रष्टव्यं, सकलसंसारपर्यन्तवर्त्तित्वात्, अथवा भयान्त ! इहपरलोकादिभेदभिन्नसप्तप्रकारभयविनाशकत्वात्, समुद्घाताः–उक्तशब्दार्थाः प्रज्ञप्ताः, भगवानाह—'गोयमे'त्यादि, गौतम ! सप्त समुद्घाताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–वेदनासमुद्घात इत्यादि, वेदनायाः समुद्घातो वेदनासमुद्घातः, एवं यावदाहारकसमुद्घात इति, 'केवलिसमुद्घात' इति केवलिनः समुद्घातः केवलिसमुद्घातः सम्प्रति कः समुद्घातः कियन्तं कालं यावद्भवतीत्येतन्निरूपणार्थमाह—'वेयणे'त्यादि, सुगमं, नवरं 'जावे'त्यादि, एवमुक्तप्रकारेणाभिलापेनान्तर्मुहूर्त्तप्रमाणतया च समुद्घाताः क्रमेण तावद्वाच्याः यावदाहारकसमुद्घातः, एते षड्वाच्या आन्तर्मुहूर्त्तिकाः, केवलिसमुद्घातस्त्वष्टसामयिकः, स चानन्तरमेव भावितः, एतानेव समुद्घातान् चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण चिचिन्तयिषुराह—'नेरइयाण'मित्यादि, नैरयिकाणामाद्याश्चत्वारः, तेषां तेजोलब्ध्याहारकलब्धिकेवलित्वाभावतः शेषसमुद्घातत्रयासम्भवात्, असुरकुमारादीनां दशानामपि भवनपतीनां तेजोलेश्यालब्धिभावात् आद्याः पञ्च समुद्घाताः, पृथिवीकायिकाप्कायिकतैजस्कायिकवनस्पतिकायिकद्वित्रिचतुरिन्द्रिया-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णामाद्यास्त्रयः, तेषां वैक्रियादिलब्ध्यभावतः उत्तरेषां चतुर्णामपि समुद्घातानामसम्भवात्, वायुकायिकानामाद्याश्चत्वारस्तेषां वैक्रियलब्धिसम्भवेन वैक्रियसमुद्घातस्यापि सम्भवात्, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानामाद्याः पञ्च, केषांचित्तेषां तेजोलब्धेरपि भावात्, मनुष्याणां सप्त, मनुष्येषु सर्वसम्भवात्, व्यन्तरज्योतिष्कवैमानिकानामाद्याः पञ्च, वैक्रियतेजोलब्धिभावाद्, उत्तरौ तु द्वौ न सम्भवतः, आहारकलब्धिकेवलित्वायोगात् ॥ सम्प्रति चतुर्विंशतिदण्डकमधिकृत्य एकैकस्य जीवस्य कति वेदनादयः समुद्घाता अतीताः कति भाविन इति चिचिन्तयिषुराह—

एगमेगस्स णं भंते! नेरइयस्स केवइया वेदणासमुग्घाया अतीता?, गो०! अणंता, केवइया पुरेक्खडा?, गो०! कस्सइ अत्थि कस्सइ नत्थि, जस्सत्थि तस्स जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्कोसेणं संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा, एवमसुरकुमारस्सवि निरंतरं जाव वेमाणियस्स, एवं जाव तेयगसमुग्घाते, एवमेते पंच चउवीसा दंडगा। एगमेगस्स णं भंते! नेरइयस्स केवइया आहारसमुग्घाया अतीता?, कस्सइ अत्थि कस्सइ नत्थि, जस्स अत्थि तस्स जह० एक्को वा दो वा उक्को० तिण्णि, केवइया पुरेक्खडा?, कस्सइ अत्थि कस्सइ नत्थि, जस्सत्थि जह० एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्को० चत्तारि, एवं निरंतरं जाव वेमाणियस्स, नवरं मणूसस्स अतीताविं पुरेक्खडाविं जहा नेरइयस्स पुरेक्खडा, एगमेगस्स णं भंते! नेरइयस्स केवतिया केवलिसमुग्घाया अतीता?, गो०! नत्थि, केवइया पुरेक्खडा?, गो०! कस्सइ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३३२]

दीप अनुक्रम [६०१]

अत्थि कस्सइ नत्थि, जस्सत्थि एक्को, एवं जाव वेमाणियस्स, नवरं मणुस्सस्स अतीता कस्सइ अत्थि कस्सइ नत्थि, जस्सत्थि एक्को, एवं पुरेक्खडावि (सूत्रं ३३२)

'एगमेगस्स णं भंते!' इत्यादि, एकैकस्य सूत्रे मकारोऽलाक्षणिकः, भदन्त ! नैरयिकस्य सकलमतीतं कालमधिकृत्य 'केवइय'त्ति कियन्तो वेदनासमुद्घाता अतीता—अतिक्रान्ताः ?, भगवानाह—गौतम! अनन्ताः, नारकादिस्थानानामनन्तशः प्राप्तत्वादेकैकस्मिंश्च नारकादिस्थानप्राप्तिकाले प्रायोऽनेकशो वेदनासमुद्घातानां भावात्, एतच्च बाहुल्यापेक्षयोच्यते, बहवो हि जीवा अनन्तकालमसंव्यवहारराशेरुद्वृत्ता वर्त्तन्ते, ततस्तदपेक्षया एकैकस्य नैरयिकस्यानन्ता अतीता वेदनासमुद्घाता उपपद्यन्ते, ये तु स्तोककालमसंव्यवहारराशेरुद्वृत्तास्तेषां यथासम्भवं सङ्ख्येया असङ्ख्येया वा प्रतिपत्तव्याः, केवलं ते कतिपये इति न विवक्षिताः, 'केवइया पुरेक्खड'त्ति इदं सूत्रं पाठसूत्रामात्रं, सूत्रपाठस्त्वेवम्—'एगमेगस्स णं भंते! नेरइयस्स केवइया वेयणासमुग्घाया पुरेक्खडा'? इति, सुगमं, नवरं पुरेअग्रे कृताः—तत्परिणामप्राप्तियोग्यतया व्यवस्थापिताः, सामर्थ्यात् तत्कर्तृजीवेनेति गम्यते, पुरस्कृता—अनागतकालभाविन इति तात्पर्यार्थः, अत्र भगवानाह—कस्यापि सन्ति कस्यापि न सन्ति, यस्यापि सन्ति तस्यापि जघन्यत एको द्वौ वा त्रयो वा, उत्कर्षतः सङ्ख्येया वा असङ्ख्येया वा अनन्ता वा, इयमत्र भावना—यो नाम विवक्षितप्रश्नसमयानन्तरं वेदनासमुद्घातमन्तरेणैव नरकादुद्वृत्यानन्तरमनुष्यभवे वेदनासमुद्घातमप्राप्त एव सेत्स्यति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तस्य पुरतो वेदनासमुद्घात एकोऽपि नास्ति, यस्तु विवक्षितप्रश्नसमयानन्तरमायुःशेषे कियत्कालं नरकभवे स्थित्वा तदनन्तरं मनुष्यभवमागत्य सेत्स्यति तस्य एकादिसम्भवः, सङ्ख्यातकालसंसारावस्थायिनः सङ्ख्याता असङ्ख्यातकालसंसारावस्थायिनोऽसङ्ख्याताः अनन्तकालसंसारावस्थायिनोऽनन्ताः, 'एव'मित्यादि, एवं नैरयिकोक्तप्रकारेणासुरकुमारस्यापि यावत् स्तनितकुमारस्य वाच्यं, ततश्चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण निरन्तरं तावद्वाच्यं यावद्वैमानिकस्य, किमुक्तं भवति?–सर्वेष्वपि असुरकुमारादिषु स्थानेषु अतीता वेदनासमुद्घाता अनन्ता वाच्याः, पुरस्कृतास्तु कस्यापि सन्ति कस्यापि न सन्ति, यस्यापि सन्ति तस्यापि जघन्यत एको द्वौ वा त्रयो वा उत्कर्षतः सङ्ख्येया असङ्ख्येया अनन्ता वा इति वाच्याः, भावनापि पूर्वोक्तानुसारेण स्वयं परिभावनीया, एवं चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण कषायसमुद्घातो मारणान्तिकसमुद्घातो वैक्रियसमुद्घातस्तैजससमुद्घातश्च प्रत्येकं, तत एव पञ्च चतुर्विंशतिदण्डकसूत्राणि भवन्ति, तथा चाह—'एवं जाव तेयगसमुग्घाए'इत्यादि, एवं वेदनासमुद्घातप्रकारेण शेषसमुद्घातेष्वपि प्रत्येकं तावद्वक्तव्यं यावत्तैजससमुद्घातः, शेषं सुगमं, 'एगमेगस्स ण'मित्यादि, एकैकस्य भदन्त! नैरयिकस्य पाश्चात्यं सकलमतीतं कालमपेक्ष्य कियन्त आहारकसमुद्घाता अतीताः?, भगवानाह—गौतम! कस्यापि 'अत्थि'त्ति अस्तीति निपातः सर्वलिङ्गवचनो, यदाह शाकटायनन्यासकृत्—"अस्तीति निपातः सर्वलिङ्गवचनेष्वि"ति, ततोऽयमर्थः–कस्यापि अतीता आहारकसमुद्घाताः सन्ति कस्यापि न सन्ति, येन पूर्वं मानुष्यं प्राप्य तथाविधसामग्र्यभावतश्चतुर्दश

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३३२]

दीप अनुक्रम [६०१]

पूर्वाणि नाधीतानि, चतुर्दशपूर्वाधिगमे वा आहारकलब्ध्यभावतः तथाविधप्रयोजनाभावतो वा आहारकशरीरं न कृतं तस्य न सन्तीति, यस्यापि सन्ति तस्यापि जघन्यतः एको वा द्वौ वा उत्कर्षतस्तु त्रयो, न तु चत्वारः, चतुःकृत्वः कृताहारकशरीरस्य नरकगमनाभावात्, आह च मूलटीकाकारः—"आहारसमुग्घाया उक्कोसेणं तिन्नि, तदुवरि नियमा नरगं न गच्छइ जस्स चत्तारि भवन्ति" इति, पुरस्कृता अपि कस्यापि सन्ति कस्यापि न सन्ति, तत्र यो मानुष्यं प्राप्य तथाविधसामग्र्यभावतश्चतुर्दशपूर्वाधिगममाहारकसमुद्घातं चान्तरेण सेत्स्यति तस्य न सन्ति, शेषस्य तु यथासम्भवं जघन्यत एको द्वौ वा त्रयो वा उत्कर्षतश्चत्वारः, तत ऊर्ध्वमवश्यं गत्यन्तरासंक्रमेणाहारकसमुद्घातमन्तरेण च सिद्धिगमनभावात्, 'एव'मित्यादि, एवं नैरयिकोक्तेन प्रकारेण चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण निरन्तरं तावद् वाच्यं यावद्वैमानिकस्य सूत्रं, नवरं मनुष्यस्यातीता अपि पुरस्कृता अपि यथा नैरयिकस्य पुरस्कृतास्तथा वाच्याः, अतीता अपि चत्वारः पुरस्कृता अपि चत्वार उत्कर्षतो वाच्या इत्यर्थः, सूत्रपाठश्चैवम्—'एगमेगस्स णं मणूसस्स भंते! केवइया आहारसमुग्घाया अतीता?, गोयमा! कस्सइ अत्थि कस्सइ नत्थि, जस्स अत्थि जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिन्नि वा उक्कोसेणं चत्तारि, केवइया पुरेक्खडा?, गोयमा! कस्सइ अत्थि कस्सइ नत्थि, जस्स अत्थि जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिन्नि वा उक्कोसेणं चत्तारि' अत्र भावना–इह यश्चतुर्थवेलमाहारकशरीरं करोति स नियमात् तद्भव एव मुक्तिमासादयति, न गत्यन्तरं, कथमेतदवसीयते इति चेत्?, उच्यते, सूत्रपौर्वापर्यपर्या-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लोचनात्, तथाहि—यदि चतुर्थवेलमप्याहारकशरीरं कृत्वा गत्यन्तरं संक्रामेत ततो नैरयिकादावन्यतरस्यां गतौ उत्कर्षतश्चत्वारोऽप्याहारकस्य समुद्घाता उच्येरन्, न चोच्यन्ते, ततोऽवसीयते—चतुर्थवेलमाहारकशरीरं कृत्वा नियमात् तद्भव एव मुक्तो भवति, न गत्यन्तरगामी, तत्र यः प्रागाहारकशरीरं कदाचनापि न कृतवान् तस्यातीत आहारकसमुद्घातो नास्ति, ततस्तदपेक्षयोक्तं 'कस्सइ नत्थि'त्ति, यस्यापि सन्ति सोऽपि यदि पूर्वमेकवारमाहारकशरीरं कृतवान् तस्यैकोऽतीत आहारकस्य समुद्घातः द्वौ वारौ कृतवतो द्वौ त्रीन् वारान् कृतवतस्त्रयो यश्चतुर्थवेलमाहारकशरीरं कृत्वा आहारकसमुद्घाताच्चतुर्थात्प्रतिनिवृत्तो वर्त्तते न चाद्यापि मनुजभवं विजहाति तस्य चत्वारः, पुरस्कृता अपि समुद्घाताः कस्यापि सन्ति कस्यापि न सन्ति, तत्र यश्चतुर्थवेलमाहारकशरीरं कृत्वा आहारकसमुद्घातात् प्रतिनिवृत्तो यदिवा पूर्वमकृताहारकशरीरोऽप्यथवा एकवारकृताहारकशरीरोऽपि यदिवा द्विकृत्वः कृताहारकशरीरोऽपि यदिवा त्रिकृत्वः कृताहारकशरीरोऽपि तथाविधसामग्र्यभावात् उत्तरकालमाहारकशरीरमकृत्वैव मुक्तिमवाप्स्यति तस्य पुरस्कृता आहारकसमुद्घाता न सन्ति, यस्यापि सन्ति तस्यापि जघन्यत एको वा द्वौ वा त्रयो वा उत्कर्षतश्चत्वारः, तत्र एकादिसम्भवः पूर्वोक्तभावनानुसारेण स्वयं भावनीयः, यस्तु पूर्वकालमेकवारमपि आहारकशरीरं न कृतवान् अथ चोत्तरकालं तथाविधसामग्रीभावतो यावत्सम्भवमाहारकशरीरकर्त्ता तस्य चत्वारो न शेषस्य। सम्प्रति केवलिसमुद्घातविषयं दण्डकसूत्रमाह—'एगमेगस्स ण'मित्यादि, एकैकस्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भदन्त! नैरयिकस्य निरवधिकमतीतं कालमधिकृत्य कियन्तः केवलिसमुद्घाता अतीताः?, भगवानाह—'नत्थि'त्ति नास्त्यतीत एकोऽपि केवलिसमुद्घातः, केवलिसमुद्घातानन्तरं ह्यन्तर्मुहूर्त्तेन नियमतो जीवाः परमपदमश्नुवते, ततो यद्यभविष्यत्केवलिसमुद्घातस्तर्हि नरकमेव नागमिष्यद्, अथ च सम्प्रति नरकगामिनो वर्त्तन्ते तस्मान्नास्त्येकस्याप्यतीतः केवलिसमुद्घातः, 'केवइया पुरेक्खड'त्ति कियन्तः पुरस्कृताः केवलिसमुद्घाता इति प्रश्नः, भगवानाह—'गोतमा! कस्सइ अत्थि कस्सइ नत्थि'त्ति, इह केवलिसमुद्घात एकस्य प्राणिन आकालमेक एव भवति, न द्वित्राः, ततोऽस्तीति निपातोऽत्र एकवचनान्तो वेदितव्यः, ततश्चायमर्थः—कस्यापि केवलिसमुद्घातः पुरस्कृतोऽस्ति, यो दीर्घतरेणापि कालेन मुक्तिपदप्राप्त्यवसरे विषमस्थितिकर्मा इति, कस्यापि नास्ति, यो मुक्तिपदमवाप्तुमयोग्यो योग्यो वा केवलिसमुद्घातमन्तरेणैव मुक्तिपदं गन्ता, तथा च वक्ष्यति—"अगंतूण समुग्घायमणंता केवलीजिणा। जरमरणविप्पमुक्का, सिद्धिं वरगइं गया ॥ १ ॥" [अगत्वा समुद्घातमनन्ताः केवलिनो जिनाः । जरामरणविप्रमुक्ताः सिद्धिं वरगतिं गताः॥ १ ॥] इति, इह अस्तीति निपातः सर्वलिङ्गवचन इत्यविदितसिद्धान्तस्य बहुत्वाशङ्कापि कस्यचित् स्यात् ततस्तदपनोदार्थमाह—'जस्स अत्थि' एको यस्यास्ति पुरस्कृतः केवलिसमुद्घातस्तस्य एको, भूयः संसाराभावात्, 'एवं जाव वेमाणियस्स'त्ति एवं—नैरयिकगताभिलापप्रकारेण चतुर्विंशतिदण्डकक्रममनुसृत्य तावद् वक्तव्यं यावद्वैमानिकस्य सूत्रं, तच्चेदम्—'एगमेगस्स णं भंते! वेमाणियस्स केवइया केवलिसमुग्घाया अतीता?,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा ! नत्थि, केवइया पुरेक्खडा ?, गोयमा ! कस्सइ अत्थि कस्सइ नत्थि, जस्सत्थि एको' इति, तत्रैव विशेषमाह—'नवर'मित्यादि, नवरमयं विशेषः—मनुष्यस्य केवलिसमुद्घातस्य चिन्तायामतीतः कस्याप्यस्ति कस्यापि नास्तीति वक्तव्यः, तत्र यः केवलिसमुद्घातात् प्रतिनिवृत्तो वर्त्तते न चाद्यापि मुक्तिपदमवाप्नोति तस्यास्त्यतीतः केवलिसमुद्घातः, ते च सर्वसङ्ख्यया उत्कर्षपदे शतपृथक्त्वप्रमाणा वेदितव्याः, कस्यापि नास्ति अतीतः केवलिसमुद्घातो, यो न समुद्घातं गतवान्, ते च सर्वसङ्ख्यया असङ्ख्येया द्रष्टव्याः, शतपृथक्त्वव्यतिरेकेणान्येषां सर्वेषामप्यसम्प्राप्तकेवलिसमुद्घातत्वात्, अत्राप्यस्तीति निपातस्य सर्वलिङ्गवचनत्वात्, 'कस्सइ अत्थि कस्सइ नत्थि' इत्युक्तौ बहुत्वाशङ्का स्यात् ततस्तद्व्यवच्छेदार्थमाह—यस्य मनुष्यस्यातीतः केवलिसमुद्घातस्तस्य नियमादेको न द्वित्राः, एकेनैव समुद्घातेन प्रायः समस्तघातिकर्मणां निर्मूलकाषंकषितत्वात्, 'एवं पुरेक्खडावि'त्ति एवं अतीतगतेन प्रकारेण पुरस्कृता अपि केवलिसमुद्घाता वाच्याः, ते चैवम्—'कस्सइ अत्थि कस्सइ नत्थि, जस्सत्थि एको' इति, अत्र भावना पूर्वोक्तानुसारेण स्वयं भावनीया ॥ तदेवमतीतमनागतं च कालमधिकृत्य एकैकस्य नैरयिकादेर्वेदनादिसमुद्घातचिन्ता कृता, सम्प्रति नैरयिकादेः प्रत्येकं समुदायरूपस्य तच्चिन्तां चिकीर्षुराह—

नेरइयाणं भंते ! केवइया वेदणासमुग्घाया अतीता ?, गो० ! अणंता, केवइया पुरेक्खडा ?, गो० ! अणंता, एवं जाव वेमाणियाणं, एवं जाव तेयगसमुग्घाए, एवं एतेवि पंच चउवीसदंडगा, नेरइयाणं ! भंते ! केवइया आहारगसमुग्घाया

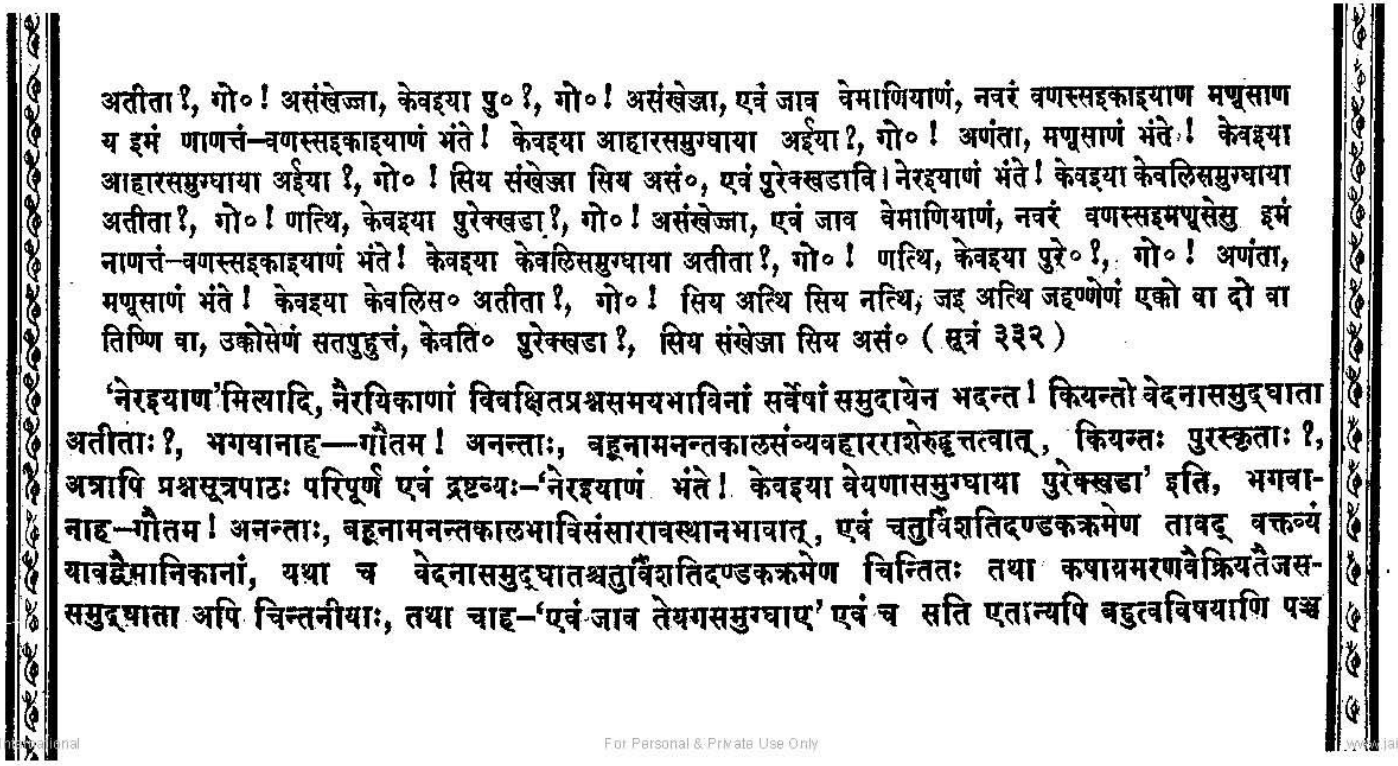
३६ समुद्घातपदं सू.३३२

॥५६५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३३२R]

दीप अनुक्रम [६०२]



अतीता?, गो०! असंखेज्जा, केवइया पु०?, गो०! असंखेज्जा, एवं जाव वेमाणियाणं, नवरं वणस्सइकाइयाण मणूसाण य इमं णाणत्तं–वणस्सइकाइयाणं भंते! केवइया आहारसमुग्घाया अईया?, गो०! अणंता, मणूसाणं भंते! केवइया आहारसमुग्घाया अईया?, गो०! सिय संखेज्जा सिय असं०, एवं पुरेक्खडावि। नेरइयाणं भंते! केवइया केवलिसमुग्घाया अतीता?, गो०! णत्थि, केवइया पुरेक्खडा?, गो०! असंखेज्जा, एवं जाव वेमाणियाणं, नवरं वणस्सइमणूसेसु इमं नाणत्तं–वणस्सइकाइयाणं भंते! केवइया केवलिसमुग्घाया अतीता?, गो०! णत्थि, केवइया पुरे०?, गो०! अणंता, मणूसाणं भंते! केवइया केवलिस० अतीता?, गो०! सिय अत्थि सिय नत्थि, जइ अत्थि जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं सतपुहुत्तं, केवति० पुरेक्खडा?, सिय संखेज्जा सिय असं० (सूत्रं ३३२)

'नेरइयाण'मित्यादि, नैरयिकाणां विवक्षितप्रश्नसमयभाविनां सर्वेषां समुदायेन भदन्त! कियन्तो वेदनासमुद्घाता अतीताः?, भगवानाह—गौतम! अनन्ताः, बहूनामनन्तकालसंव्यवहारराशेरुद्वृत्तत्वात्, कियन्तः पुरस्कृताः?, अत्रापि प्रश्नसूत्रपाठः परिपूर्ण एवं द्रष्टव्यः–'नेरइयाणं भंते! केवइया वेयणासमुग्घाया पुरेक्खडा' इति, भगवानाह–गौतम! अनन्ताः, बहूनामनन्तकालभाविसंसारावस्थानभावात्, एवं चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण तावद् वक्तव्यं यावद्वैमानिकानां, यथा च वेदनासमुद्घातश्चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण चिन्तितः तथा कषायमरणवैक्रियतैजससमुद्घाता अपि चिन्तनीयाः, तथा चाह–'एवं जाव तेयगसमुग्घाए' एवं च सति एतान्यपि बहुत्वविषयाणि पञ्च

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मूल-संपादने अत्र सूत्र-क्रमांकने मुद्रण-दोषात् (सूत्रं ३32) इति '(सूत्रं ३३२)' क्रम द्विवारान् मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [३३२R]

दीप अनुक्रम [६०२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१५],उपांगसूत्र-[४] "प्रज्ञापना" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

चतुर्विंशतिदण्डकसूत्राणि भवन्ति, एतदेवाह—'एवमेएवि य पंच चउवीसदंडगा' इति, आहारकसमुद्घातचिन्तां कुर्वन्नाह—'नेरइयाण'मित्यादि, अत्र प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! असङ्ख्येयाः, इयमत्र भावना—इह नैरयिकाः सर्वदाऽपि प्रश्नसमयभाविनः सर्वसङ्ख्ययाऽप्यसङ्ख्येयाः, तेषामपि मध्ये कतिपयाः सङ्ख्यातीताः कृतपूर्वाहारकसमुद्घातास्ततोऽसङ्ख्येया एव तेषामतीताहारसमुद्घाता घटन्ते, नानन्ता नापि सङ्ख्येयाः, एवं पुरस्कृता अपि भावनीयाः, एवं चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण तावद्वाच्यं यावद्वैमानिकानां, आह च—'एवं जाव वेमाणियाणं' अत्रैव यो विशेषस्तं दिदर्शयिषुराह—'नवर'मित्यादि, नवरं वनस्पतिकायिकचिन्तायां मनुष्यचिन्तायां च नैरयिकापेक्षया नानात्वमवसेयं, तदेव नानात्वमाह—'वणप्फइकाइयाण'मित्यादि,अत्र प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! अनन्ताः, अनन्तानामधिगतचतुर्दशपूर्वाणां कृताहारकसमुद्घातानां प्रमादवशतः उपचितसंसाराणां वनस्पतिषु भावात्, पुरस्कृता अनन्ताः,अनन्तानां वनस्पतिकायादुद्धृत्य चतुर्दशपूर्वाधिगमपुरस्सरं कृताहारकसमुद्घातानां भाविसिद्धिगमनभावात्,'मणुस्साणं भंते!' इत्यादि,अत्रापि प्रश्नसूत्रं प्रतीतं,भगवानाह—गौतम! स्यादिति निपातोऽनेकान्तद्योती, ततोऽयमर्थः—कदाचित् सङ्ख्येयाः कदाचिदसङ्ख्येयाः, कथमिति चेत्, उच्यते, इह सम्मूर्च्छिमगर्भव्युत्क्रान्तसमुदायचिन्तायां उत्कृष्टपदे मनुष्या अङ्गुलमात्रक्षेत्रे यावान् प्रदेशराशिस्तस्य यत्प्रथमं वर्गमूलं तत् तृतीयवर्गमूलेन गुणितं सत् यावत्प्रमाणं भवति एतावत्प्रदेशप्रमाणानि खण्डानि घनीकृतस्य लोकस्य एकप्रादेशिक्यां श्रेणौ यावन्ति भवन्ति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१५],उपांगसूत्र-[४] "प्रज्ञापना" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३३२R]

दीप अनुक्रम [६०२]

एतावत्प्रमाणा एकहीनाः, ते चातीव शेषनारकादिजीवराश्यपेक्षया स्तोकाः, तत्रापि ये पूर्वभवेषु कृताहारकशरीरास्ते कतिपयाः, ते च कदाचित् विवक्षितप्रश्नसमये सङ्ख्येयाः कदाचिदसङ्ख्येयाः, तत उक्तम्—'सिय संखेज्जा सिय असंखेज्जा'इति, अनागतेऽपि काले विवक्षितप्रश्नसमयभाविनां मध्ये कतिसङ्ख्या एवाहारकशरीरमारप्स्यन्ति तेऽपि कदाचित् सङ्ख्येयाः कदाचिदसङ्ख्येयाः, तत आह—'एवं पुरेक्खडावि'त्ति एवं अतीतगतेन प्रकारेण वनस्पतिकायिकानां मनुष्याणां च पुरस्कृता अपि आहारकसमुद्घाता वेदितव्याः,ते चैवम्—'वणप्फइकाइयाणं भंते ! केवइया आहारगसमुग्घाया पुरेक्खडा ?, गो० ! अणंता, मणुस्साणं भंते ! केवइया आहारगसमुग्घाया पुरेक्खडा ?, गो०! सिय संखेज्जा सिय असंखेज्जा'इति,केवलिसमुद्घातविषयं प्रश्नसूत्रमाह—'नेरइयाणं भंते !' इत्यादि सुगमं,भगवानाह—गौतम ! न सन्ति केचनातीता नैरयिकाणां केवलिसमुद्घाताः, कृतकेवलिसमुद्घातानां नारकादिगमनासम्भवात्, कियन्तः पुरस्कृता इति प्रश्नः, भगवानाह—गौतम ! असङ्ख्येयाः, सर्वदा विवक्षितप्रश्नसमयभाविनां मध्येऽसङ्ख्यातानां भाविकेवलिसमुद्घातत्वात्, तथा केवलवेदसोपलब्धेः, एवं चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण निरन्तरं तावद् वाच्यं यावद् वैमानिकानां सूत्रं, तथा चाह—'एवं जाव वेमाणियाणं' अत्रैव विशेषमाह—'नवर'मित्यादि, नवरं—वनस्पतिकायिकेषु मनुष्येषु चेदं वक्ष्यमाणलक्षणं नानात्वं, तदेवाह—'वणप्फइकाइयाण'मित्यादि, अत्र प्रश्नसूत्रं सुप्रतीतं, उत्तरसूत्रे निर्वचनं—अनन्ताः, अनन्तानां भाविकेवलिसमुद्घातानां तत्र भावात्, 'मणुस्साण'मित्यादि, अत्रापि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गौतम! स्यात् सन्ति स्यान्न सन्ति, किमुक्तं भवति?–यदा प्रश्नसमये समुद्घातान्निवृत्ताः प्राप्यन्ते तदा सन्ति, शेषकालं न सन्ति, तत्र 'जइ अत्थि'त्ति यदि प्रश्नसमये कृतकेवलिसमुद्घाता मनुष्यत्वमनुभवन्तः प्राप्यन्ते तदा जघन्यत एको द्वौ त्रयो वा उत्कर्षतः शतपृथक्त्वं, एतावतामेककालमुत्कृष्टपदे केवलिनां केवलिसमुद्घातासादनात् 'केवइया पुरेक्खड'त्ति कियन्तो मनुष्याणां केवलिसमुद्घाताः पुरस्कृताः?, भगवानाह—स्यात् सङ्ख्येयाः स्यादसङ्ख्येया, मनुष्या हि सम्मूर्च्छिमा गर्भव्युत्क्रान्ताश्च सर्वसमुदिता उत्कृष्टपदे प्रागुक्तप्रमाणास्तत्रापि विवक्षितप्रश्नसमयभाविनां मध्ये कदाचित्केवलिसमुद्घाताः सङ्ख्येयाः, बहूनामभव्यानां भावात्, कदाचिदसङ्ख्येयाः, बहूनां भाविकेवलिसमुद्घातानां भावात्। सम्प्रति एकैकस्य नैरयिकत्वादिभावेषु वर्त्तमानस्य प्रत्येकं कति वेदनासमुद्घाता अतीताः कति भाविन इति निरूपयितुकाम आह—

एगमेगस्स णं भंते! नेरइयस्स नेरइयत्ते केवइया वेदणास० अतीता?, गो०! अणंता, केवइया पुरेक्खडा?, गो०! कस्सइ अत्थि कस्सइ नत्थि, जस्स अत्थि जह० एको वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा, एवं असुरकुमारत्ते जाव वेमाणियत्ते। एगमेगस्स णं भंते! असुरकुमारस्स नेरइयत्ते केवइया वेदणासमुग्घाया अतीता?, गो०! अणंता, केवइया पु०?, गो०! कस्सइ अत्थि कस्सति नत्थि, जस्सत्थि तस्स सिय सं० सिय अ० सिय अणंता, एगमेगस्स णं भंते! असुरकुमारस्स असुरकुमारत्ते केवइया वेदणासमुग्घाया अतीता?, गो०! अणंता, केवइया पु०?,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गो० ! कस्सइ अत्थि कस्सइ नत्थि, जस्सत्थि जह० एक्को वा दो वा तिण्णि वा उ० संखे० असंखे० अणंता वा, एवं नाग-कुमारत्तेवि जाव वेमाणियत्ते, एवं जहा० वेयणासमुग्घातेणं असुरकुमारे नेरइयादिवेमाणियपज्जवसाणेसु भणितो तहा नागकुमारादिया अवसेसेसु सट्ठाणेसु परट्ठाणेसु भाणितव्वा जाव वेमाणियस्स वेमाणियत्ते, एवमेते चउवीसा चउवीसं दंडगा भवंति । (सूत्रं ३३३)

'एगमेगस्स ण'मित्यादि, एकैकस्य भदन्त! नैरयिकस्य सकलमतीतं कालमवधीकृत्य तदा तदा नैरयिकत्वे वृत्तस्य सतः सर्वसङ्ख्यया कियन्तः वेदनासमुद्घाता अतीताः?, भगवानाह—गौतम! अनन्ताः, नरकस्थानस्यानन्तशः प्राप्तत्वादेकैकस्मिंश्च नरकभवे जघन्यपदेऽपि सङ्ख्येयानां वेदनासमुद्घातानां भावात्, 'केवइया पुरेक्खड'त्ति कियन्तो भदन्त! एकैकस्य नैरयिकस्यासंसारमोक्षमनागतं कालमवधीकृत्य नैरयिकत्वे भाविनः सतः सर्वसङ्ख्या पुरस्कृता वेदनासमुद्घाताः?, भगवानाह—'गौतम! कस्सइ अत्थि'इत्यादि, तत्र य आसन्नमृत्युर्वेदनासमुदघातमप्राप्या-न्तिकमरणेन नरकादुद्धृत्य सेत्स्यति तस्य नास्ति नैरयिकत्वे भावी एकोऽपि पुरस्कृतो वेदनासमुद्घातः, शेषस्य तु सन्ति, तस्यापि जघन्यत एको द्वौ वा त्रयो वा, एतच्च क्षीणशेषायुषां तद्भवजानामनन्तरं सेत्स्यतां द्रष्टव्यं, न भूयो नरकेषूत्पत्स्यमानानां, भूयो नरकेषूत्पत्तौ जघन्यपदेऽपि सङ्ख्येयानां प्राप्यमाणत्वात्, यदाह मूलटीकाकारः— "नरकेषु जघन्यस्थितिषूत्पन्नस्य नियमतः सङ्ख्येया एव वेदनासमुद्घाता भवन्ति, वेदनासमुद्घातप्रचुरत्वान्नारका-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१५],उपांगसूत्र-[४] "प्रज्ञापना" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

णा"मिति, उत्कर्षतः संख्येया असंख्येया वा अनन्ता वा, तत्र सकृत् नरकेषु जघन्यस्थितिषूत्पत्स्यमानस्य संख्येयाः अनेकशो दीर्घस्थितिषु असकृद्वा उत्पत्स्यमानस्य असंख्येयाः अनन्तशः उत्पत्स्यमानस्य अनन्ताः, 'एव'मित्यादि, एवं–नैरयिकगतेनाभिलापप्रकारेणासुरकुमारत्वेन तदनन्तरं चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण निरन्तरं तावद्वाच्यं यावद्वैमानिकत्वे, तच्चैवम्—'एगमेगस्स णं भंते ! नेरइयस्स असुरकुमाराओ केवइया वेयणासमुग्घाया अतीता ?, गो० ! अनंता, केवइया पुरेक्खडा ?, गो० ! कस्सइ अत्थि कस्सइ नत्थि, जस्स अत्थि जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिन्नि वा उक्कोसेणं संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा' तत्रातीतसूत्रेऽनन्तशोऽसुरकुमारत्वस्य प्राप्तत्वादुपपद्यते तद्भावमापन्नस्यानन्ता अतीता वेदनासमुद्घाताः, पुरस्कृतचिन्तायां योऽनन्तरभवेन नरकादुद्वृत्तो मानुष्यं प्राप्य सेत्स्यति प्राप्तो वा परम्परया सकृदसुरकुमारभवं न वेदनासमुद्घातं गमिष्यति तस्य नास्त्येकोऽपि पुरस्कृतो असुरकुमारत्वे वेदनासमुद्घातः, यस्तु सकृदसुरकुमारत्वं प्राप्तः सन् सकृदेव वेदनासमुद्घातं गन्ता तस्य जघन्यत एको द्वौ वा त्रयो वा, शेषस्य संख्येयान् वारान् असुरकुमारत्वं यास्यतः संख्येया असंख्येयान् वारान् असंख्येया अनन्तान् वारान् अनन्ताः, एवं चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण नागकुमारत्वादिषु स्थानेषु निरन्तरं सूत्रपाठस्तावद् वक्तव्यो यावद्वैमानिकत्वविषयं सूत्रं, 'एगमेगस्स ण'मित्यादि, एकैकस्य भदन्त ! असुरकुमारस्य पूर्वं नैरयिकत्वेन वृत्तस्य सतः सकलमतीतं कालमपेक्ष्य सर्वसंख्यया कियन्तो वेदनासमुद्घाता अतीताः ?, भगवानाह—गौतम ! अनन्ता अतीताः,अनन्तशो नैरयिकत्वस्य प्राप्तत्वात्, एकै-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कस्मिंश्च नैरयिकस्य भवे जघन्यपदेऽपि सङ्ख्येयानां वेदनासमुद्घातानां भावात्, कियन्तः पुरस्कृताः?, स्यात् सन्ति स्यान्न सन्ति, कस्यचित्सन्ति कस्यचिन्न सन्ति इति भावः, अत्रापीयं भावना—योऽसुरकुमारभवादुद्वृत्तो न नरकं यास्यति किन्त्वनन्तरं परम्परया वा मनुजभवं प्राप्य सेत्स्यति तस्य नैरयिकत्वावस्थाभाविनः पुरस्कृता वेदनासमुद्घाता न सन्ति, नैरयिकत्वावस्थाया एवासम्भवात्, यस्तु तद्भवादूर्ध्वं पारम्पर्येण नरकं गमिष्यति तस्य सन्ति, तत्रापि कस्यचित्सङ्ख्येयाः कस्यचिदसङ्ख्येयाः कस्यचिदनन्ताः, तत्र यः सकृज्जघन्यस्थितिषु मध्ये समुत्पत्स्यते तस्य जघन्यपदेऽपि सङ्ख्येयाः, सर्वजघन्यस्थितावपि नरकेषु सङ्ख्येयानां वेदनासमुद्घातानां भावात्, वेदनाबहुलत्वान्नारकाणां, असकृद् जघन्यस्थितिषु दीर्घस्थितिषु सकृदसकृद्वा गमने असङ्ख्येयाः, अनन्तशो नरकगमने अनन्ताः, तथा एकैकस्य भदन्त! असुरकुमारस्यासुरकुमारत्वे स्थितस्य सतः सकलमतीतकालमधिकृत्य कियन्तो वेदनासमुद्घाता अतीताः?, भगवानाह—गौतम! अनन्ताः, पूर्वमप्यनन्तशस्तद्भावस्य प्राप्तत्वात्, प्रतिभवं च वेदनासमुद्घातस्य प्रायो भावात्, पुरस्कृतचिन्तायां कस्यचित् सन्ति कस्यचिन्न सन्ति, यस्य प्रश्नसमयादूर्ध्वमसुरकुमारत्वेऽपि वर्त्तमानस्य न भावी वेदनासमुद्घातो नापि तत उद्वृत्त्य भूयोऽप्यसुरकुमारत्वं प्राप्स्यति तस्य न सन्ति, यस्तु सकृत् प्राप्स्यति तस्य जघन्यपदे एको द्वौ वा त्रयो वा उत्कर्षतः सङ्ख्येया असङ्ख्येया अनन्ता वा, सङ्ख्येयान् वारान् उत्पत्स्यमानस्य सङ्ख्येयाः असङ्ख्येयान् वारान् असङ्ख्येयाः अनन्तान् वारान् अनन्ताः, एवं चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण नाग-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कुमारत्वादिषु स्वस्थानेष्वसुरकुमारस्य निरन्तरं तावद्वक्तव्यं यावद्वैमानिकत्वे, तथा चाह—'एवं नागकुमारत्तेवि' इत्यादि, तदेवमसुरकुमाराणां वेदनासमुद्घातश्चिन्तितः, सम्प्रति नागकुमारादिष्वतिदेशमाह—'एव'मित्यादि, उपदर्शिताभिलापेन यथा चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण असुरो नैरयिकादिषु वैमानिकपर्यवसानेषु भणितस्तथा नागकुमारादयोऽवशेषेषु समस्तेषु स्वस्थानपरस्थानेषु भणितव्या यावद्वैमानिकस्य वैमानिकत्वे,एवं चैतानि नैरयिकचतुर्विंशतिदण्डकसूत्रादीनि वैमानिकचतुर्विंशतिदण्डकसूत्रपर्यवसानानि चतुर्विंशतिः सूत्राणि भवन्ति, तदेवं चतुर्विंशत्या चतुर्विंशतिदण्डकसूत्रैर्वेदनासमुद्घातश्चिन्तितः, सम्प्रति चतुर्विंशत्यैव चतुर्विंशतिदण्डकसूत्रैः कषायसमुद्घातं चिचिन्तयिषुरिदमाह—

एगमेगस्स णं भंते! नेरइयस्स नेरइयत्ते केवइया कसायसमुग्घाया अतीता?, गो० ! अणंता, केवइया पु०?, गो० ! क० अत्थि क० नत्थि, जस्सत्थि एगुत्तरियाते जाव अणंता । एगमेगस्स णं भंते ! नेरइयस्स असुरकुमारत्ते केवइया कसायसमुग्घाया अतीता?, गोयमा ! अणंता, केवइया पु०?, गो० ! कस्सति अत्थि कस्सति नत्थि, जस्सत्थि सिय संखेज्जा सिय असंखेज्जा सिय अणन्ता, एवं जाव नेरइयस्स थणियकुमारत्ते, पुढविकाइयत्ते एगुत्तरियाए नेतव्वं, एवं जाव मणुयत्ते, वाणमंतरत्ते जहा असुरकुमारत्ते, जोइसियत्ते अतीता अणंता, पुरेक्खडा कस्सति अत्थि कस्सति नत्थि, जस्सत्थि सिय असंखेज्जा सिय अणंता, एवं वेमाणियत्तेवि सिय असंखेज्जा सिय अणंता, असुरकुमारस्स नेरइयत्ते अतीता अणंता, पुरेक्खडा कस्सति अत्थि कस्सति नत्थि, जस्सत्थि सिय संखेज्जा सिय असंखेज्जा सिय अणंता, असुरकुमारस्स असुरकु-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मारत्ते अतीता अणंता पुरेक्खडा एगुत्तरिया, एवं नागकुमारत्ते जाव निरंतरं वेमाणियत्ते जहा नेरइयस्स भणितं तहेव भाणितव्वं, एवं जाव थणियकुमारस्सवि वेमाणियत्ते, नवरं सव्वेसिं सट्ठाणे एगुत्तरियाए परट्ठाणे जहेव असुरकुमारस्स, पुढविकाइयस्स नेरइयत्ते जाव थणियकुमारत्ते अतीता अणंता, पुरेक्खडा कस्सति अत्थि कस्सति नत्थि, जस्सत्थि सिय संखेज्जा सिय असंखेज्जा सिय अणंता, पुढविकाइयस्स पुढविकाइयत्ते जाव मणूसत्ते अतीता अणंता पुरे० क० अत्थि क० नत्थि जस्स अत्थि एगुत्तरिया, वाणमंतरत्ते जहा णेरइयत्ते, जोतिसियवेमाणियत्ते अतीता अणंता, पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि कस्सइ नत्थि, जस्स अत्थि सिय असंखेज्जा सिय अणंता, एवं जाव मणूसत्तेवि नेयव्वं, वाणमंतरजोइसियवेमाणिया जहा असुरकुमारा, णवरं सट्ठाणे एगुत्तरियाए भाणितव्वे जाव वेमाणियस्स वेमाणियत्ते, एवं एते चउवीसं चउवीसा दंडगा, (सूत्रं३३४)

'एगमेगस्स ण'मित्यादि, तत्र नैरयिकस्य नैरयिकत्वविषयं प्रश्नसूत्रं सुगमं, पुरस्कृतचिन्तायां तु कस्यचित् सन्ति कस्यचिन्न सन्ति, तत्र यः क्षीणशेषायुः प्रश्नसमये भवपर्यन्ते वर्त्तमानः कषायसमुद्घातमप्राप्त एव नरकभवादुद्वृत्यानन्तरं पारम्पर्येण वा सेत्स्यति न भूयो नरकवासगामी तस्य न सन्ति पुरस्कृता नैरयिकत्वे कषायसमुद्घाताः, शेषस्य तु सन्ति, तस्यापि जघन्यत एको द्वौ वा त्रयो वा, ते च क्षीणायुःशेषाणां तद्भावभाजामवसेयाः, उत्कर्षतः सङ्ख्येया असङ्ख्येया वा अनन्ता वा, तत्र सङ्ख्येयवर्षायुःशेषाणां सङ्ख्येयाः असङ्ख्येयवर्षायुःशेषाणामसङ्ख्येयाः, यदिवा सकृत् जघन्यस्थितौ उत्पत्स्यमानानां सङ्ख्येयाः असकृत् जघन्यस्थितौ सकृदसकृद्दीर्घस्थितावुत्पत्स्यमानानामस-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३३४]

दीप अनुक्रम [६०४]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१५],उपांगसूत्र-[४] "प्रज्ञापना" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

ज्ञेयाः अनन्तश उत्पत्स्यमानानामनन्ताः, तथा नैरयिकस्येवासुरकुमारत्वविषयेऽतीतसूत्रं, तथैव पुरस्कृतसूत्रे 'कस्सइ अत्थि कस्सइ नत्थि'त्ति यो नरकादुद्वृत्तोऽसुरकुमारत्वं न प्राप्स्यति तस्य न सन्ति पुरस्कृता असुरकुमारत्वविषयाः कषायसमुद्घाताः, यस्तु प्राप्स्यति तस्य सन्ति, ते च जघन्यपदे सङ्ख्येया जघन्यस्थितावप्यसुरकुमाराणां सङ्ख्येयानां कषायसमुद्घातानां भावात्, लोभादिकषायबहुलत्वात् तेषां, उत्कृष्टपदेऽसङ्ख्येया अनन्ता वा, तत्र सकृद्दीर्घस्थितावसकृज्जघन्यस्थितिषु वा उत्पत्स्यमानानामसङ्ख्येयाः, अनन्तश उत्पत्स्यमानानामनन्ताः, एवं नैरयिकस्य नागकुमारत्वादिषु स्थानेषु निरन्तरं तावद्वक्तव्यं यावत् स्तनितकुमारत्वे, तथा चाह—'एवं जावे'त्यादि, पृथिवीकायिकत्वेऽतीतसूत्रं तथैव, पुरस्कृतचिन्तायां तु कस्यचित् सन्ति कस्यचिन्न सन्ति, तत्र यो नरकादुद्वृत्तो न पृथिवीकायभवं गमी तस्य न सन्ति, योऽपि गन्ता तस्यापि जघन्यपदे एको द्वौ वा त्रयो वा उत्कर्षतः सङ्ख्येया असङ्ख्येया वा अनन्ता वा, ते चैवं–तिर्यक्पञ्चेन्द्रियभवान्मनुष्यभवाद्देवभवाद्वा कषायसमुद्घातसमुद्गतः सन् य एकवारं पृथिवीकायिकेषु गन्ता तस्य एको द्वौ वारौ गन्तुर्द्वौ त्रीन् वारान् त्रयः सङ्ख्येयान् वारान् सङ्ख्येया असङ्ख्येयान् वारान् असङ्ख्येया अनन्तान् वारान् अनन्ताः, तथा चाह—'पुढविकाइयत्ते एगुत्तरियाए नेयव्वं'ति तथा 'एवं ताव मणूसत्ते' इति एवं पृथिवीकायिकगतेनाभिलापप्रकारेण तावद् वक्तव्यं यावन्मनुष्यत्वे, तच्चैवम्—'एगमेगस्स णं भंते! नेरइयस्स आउकाइयत्ते केवइया कसायसमुग्घाया अईया?, गोयमा! अणंता, केवइया पुरेक्खडा?, गो०! कस्सइ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्थि कस्सइ नत्थि, जस्सत्थि जहण्णेणं एको वा दो वा तिन्नि वा उक्कोसेणं सङ्खेज्जा वा असङ्खेज्जा वा अणंता वा' एवं यावन्मनुष्यसूत्रं, तत्राप्कायादिवनस्पतिपर्यन्तसूत्रभावना पृथिवीकायसूत्रवत्, द्वीन्द्रियसूत्रे पुरस्कृतचिन्तायां जघन्येन एको द्वौ वा त्रयो वेति सकृत् जघन्यस्थितिकं द्वीन्द्रियभवं प्रासुकामस्य, सङ्ख्येयान् वारान् प्रासुकामस्य सङ्ख्येया असङ्ख्येयानसङ्ख्येया अनन्तान् अनन्ताः, एवं त्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियसूत्रे अपि भावनीये, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्यसूत्रविषया त्वेवं भावना–सकृत्पञ्चेन्द्रियभवं प्रासुकामस्य स्वभावत एवाल्पकषायस्य जघन्यत एको द्वौ त्रयो वा शेषस्य सङ्ख्येयान् वारान् तिर्यक्पञ्चेन्द्रियभवं प्रासुकामस्य सङ्ख्येया असङ्ख्येयान् वारान् असङ्ख्येया अनन्तान् वारान् अनन्ताः, मनुष्यसूत्रे तु पुरस्कृतविषया भावनैवं—यो नरकभवादुद्वृत्तोऽल्पकषायः सन् मनुष्यभवं प्राप्य कषायसमुद्घातमप्राप्त एव सिद्धिपुरं गन्ता तस्य न सन्ति, शेषस्य सन्ति, तस्यापि एकं द्वौ त्रीन् वारान् कषायसमुद्घातान् प्राप्य सेत्स्यत एको द्वौ त्रयो वा सङ्ख्येयान् भवान् यदिवा एकस्मिन्नपि भवे सङ्ख्येयान् कषायसमुद्घातान् गन्तुः सङ्ख्येया असङ्ख्येयान् भवान् प्रासुकामस्यासङ्ख्येयाः अनन्तान् अनन्ताः, 'वाणमंतरत्ते जहा असुरकुमारत्ते' प्रागुक्तं, किमुक्तं भवति?—पुरस्कृतचिन्तायां एवं वक्तव्यं—'जस्सत्थि सिय सङ्खेज्जा सिय असङ्खेज्जा सिय अणंता वा' इति न त्वेकोत्तरिका वक्तव्याः, व्यन्तराणामप्यसुरकुमाराणामिव जघ यस्थितावपि सङ्ख्येयानां कषायसमुद्घातानां लभ्यमानत्वात्, असङ्ख्येयानन्तभावनाप्यसुरकुमारवत्, 'जोइसियत्ते' इत्यादि, ज्योतिष्क-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

त्वेऽतीता अनन्ता वक्तव्याः, पुरस्कृतास्तु कस्यापि सन्ति कस्यापि न सन्ति, एतदपि प्राग्वद् भावनीयं, यस्यापि सन्ति तस्यापि कस्यचिदसङ्ख्येयाः कस्यचिदनन्ताः, न तु स्यात् सङ्ख्येया इति वक्तव्यं, कुत इति चेत् ?, उच्यते, ज्योतिष्काणां जघन्यपदेऽप्यसङ्ख्येयकालायुष्कतया जघन्यतोऽपि असङ्ख्येयानां कषायसमुद्घातानां लभ्यमानत्वात्, अनन्तशस्तत्र जिगमिषूणामनन्ताः, एवं वैमानिकत्वेऽपि पुरस्कृतचिन्तायां स्यादसङ्ख्येयाः स्यादनन्ता इति वक्तव्यं, भावना प्राग्वत् । तदेवं नैरयिकस्य स्वस्थाने परस्थाने च कषायसमुद्घाताश्चिन्तिताः, सम्प्रत्यसुरकुमारेषु तान् चिचिन्तयिषुराह—'एगमेगस्स ण'मित्यादि, एकैकस्य असुरकुमारस्य नैरयिकत्वे कषायसमुद्घाता अतीता अनन्ताः, भाविनः कस्यचित्सन्ति कस्यचिन्न सन्ति, तत्र योऽसुरकुमारभवादुद्वृत्तो नरकं न यास्यति तस्य न सन्ति, यस्तु यास्यति तस्य सन्ति, तस्यापि जघन्यतः सङ्ख्येयाः, जघन्यस्थितावपि सङ्ख्येयानां कषायसमुद्घातानां नरकेषु भावात्, उत्कर्षतोऽसङ्ख्येया अनन्ता वा, तत्र जघन्यस्थितिष्वसकृद्दीर्घस्थितिषु सकृदसकृद्वा जिगमिषोरसङ्ख्येया अनन्तशो जिगमिषोरनन्ताः, असुरकुमारस्यासुरकुमारत्वे अतीता अनन्ताः, 'पुरेक्खडा एगुत्तरिया' इत्यादि, पुरस्कृतास्तु कस्यापि सन्ति कस्यापि न सन्ति, तत्र योऽसुरकुमारभवे पर्यन्तवर्त्ती न च कषायसमुद्घातं याता नापि तत्र प्रभ्रष्टो भूयोऽसुरकुमारभवं लब्धा किन्त्वनन्तरं पारम्पर्येण वा सेत्स्यति तस्य सन्ति, शेषस्य तु न सन्ति, यस्यापि सन्ति तस्यापि जघन्यत एको द्वौ वा त्रयो वा उत्कर्षतः सङ्ख्येया असङ्ख्येया अनन्ता वा, तत्र एकादयः क्षीणायुःशेषाणां तद्भव-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भाजां भूयस्त्रैवानुत्पत्स्यमानानामवगन्तव्याः, सङ्ख्येयादयो नैरयिकत्वे इव भावनीयाः, 'एव'मित्यादि, एवं—उक्तेन प्रकारेण नागकुमारत्वे तत ऊर्द्धं चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण निरन्तरं यावद्वैमानिकत्वे—वैमानिकत्वविषयं सूत्रं, यथा नैरयिकस्य भणितं तथैव भणितव्यं, किमुक्तं भवति ?—नागकुमारत्वादिषु स्तनितकुमारपर्यवसानेषु पुरस्कृतचिन्तायां 'कस्सइ अत्थि कस्सइ नत्थि, जस्स अत्थि सिय संखेज्जा सिय असंखेज्जा सिय अणंता' पृथिवीकायिकत्वादिषु मनुष्यत्वपर्यवसानेषु 'जस्स अत्थि जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिन्नि वा उक्कोसेणं संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा' व्यन्तरत्वे 'जस्स अत्थि सिय संखेज्जा सिय असंखेज्जा सिय अणंता' ज्योतिष्कत्वे 'जस्स अत्थि सिय असंखेज्जा सिय अणंता' वैमानिकत्वेऽप्येवमेवेति वक्तव्यमिति, 'एवं जावे'त्यादि, एवं—उक्तेन प्रकारेण असुरकुमारवन्नागकुमारस्य यावत् स्तनितकुमारस्य प्रत्येकं यावद् वैमानिकत्वे—वैमानिकत्वविषयं सूत्रं तावद्वक्तव्यं, अत्रैव विशेषमाह—नवरं सर्वेषां नागकुमारादीनां स्तनितकुमारपर्यवसानानां स्वस्थाने नियमतः पुरस्कृता एकोत्तरिकाः, परस्थाने यथैवासुरकुमारस्य तथैव वक्तव्याः, 'पुढविकाइयस्स नेरइयत्ते' इत्यादि, पृथिवीकायिकस्य नैरयिकत्वे यावत् स्तनितकुमारत्वे अतीता अनन्ताः, अत्र भावना प्रागिव, पुरस्कृताः कस्यापि सन्ति कस्यापि न सन्ति, तत्र यः पृथिवीकायभवादुद्वृत्तो नरकेष्वसुरकुमारेषु यावत् स्तनितकुमारेषु न गमिष्यति किन्तु मनुष्यभवं प्राप्य सिद्धिं गन्ता तस्य न सन्ति, शेषस्य तु सन्ति, यस्यापि सन्ति तस्यापि जघन्यतः सङ्ख्येयाः, जघन्यस्थितावपि नरकादिषु सङ्ख्येयानां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कषायसमुद्घातानां भावात्, उत्कर्षतोऽसङ्ख्येया अनन्ता वा, ते च प्राग्वद् भावयितव्याः, पृथिवीकायिकत्वे यावन्मनुष्यत्वेऽतीतास्ते तथैव, भाविन एकोत्तरिकया वक्तव्याः, ते चैवम्—'कस्सइ अत्थि कस्सइ नत्थि, जस्स अत्थि जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्कोसेणं संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा' ते च नैरयिकस्य पृथिवीकायिकत्व इव भावनीयाः, 'वाणमंतरत्ते जहा नेरइयत्ते' इति व्यन्तरत्वे यथा नैरयिकत्वे तथा वक्तव्यं, किमुक्तं भवति ?—एकोत्तरिका न वक्तव्याः, किन्तु 'सिय संखेज्जा सिय असंखेज्जा सिय अणंता' इति वक्तव्यं, 'जोइसिय' इत्यादि, ज्योतिष्कत्वे वैमानिकत्वे चातीतास्तथैव, पुरस्कृता यदि सन्ति ततो जघन्यपदे असङ्ख्येयाः उत्कृष्टपदे अनन्ताः, एवमप्कायिकस्य यावन्मनुष्यत्वे नेतव्यं, व्यन्तरज्योतिष्कवैमानिकानां यथा असुरकुमारस्य, नवरं पुरस्कृतचिन्तायां सर्वे स्वस्थाने एकोत्तरिकया वक्तव्यं, परस्थाने यथा असुरकुमारस्य सूत्रं, सूत्रपर्यन्तं दर्शयति—'जाव वेमाणियस्स वेमाणियत्ते' इति यावद्वैमानिकस्य वैमानिकत्वे—वैमानिकत्वविषयं सूत्रं, एवमेते कषायसमुद्घातगताश्चतुर्विंशतिः—चतुर्विंशतिसङ्ख्याश्चतुर्विंशतिदण्डकाः भणितव्याः २४ । तदेवमुक्तश्चतुर्विंशत्या चतुर्विंशतिदण्डकसूत्रैः कषायसमुद्घातः, सम्प्रति चतुर्विंशत्यैव चतुर्विंशतिदण्डकसूत्रैर्मारणान्तिकसमुद्घातमाह—

मारणंतियसमुग्घातो सट्ठाणेवि परट्ठाणेवि एगुत्तरियाए नेयव्वो जाव वेमाणियस्स वेमाणियत्ते, एवमेते चउवीसं चउवीसदंडगा भाणियव्वा वेउव्वियसमुग्घातो जहा कसायस० तहा निरवसेसो भाणितव्वो, नवरं जस्स नत्थि तस्स

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३३५]

दीप अनुक्रम [६०५]

न वुच्चति, एत्थवि चउवीसं चउवीसा दंडगा भाणियव्वा । तेयगसमु० जहा मारणंतियस०, णवरं जस्सऽत्थि, एवं एतेवि चउवीसं चउवीसा दंडगा भाणितव्वा । एगमेगस्स णं भंते ! नेरइयस्स नेरइयत्ते केवइया आहारसमुग्घाया अतीता ?, गो० ! णत्थि, केवइया पु० ?, गो० ! णत्थि, एवं जाव वेमाणियत्ते, नवरं मणूसत्ते अतीता कस्सइ अत्थि कस्सइ नत्थि, जस्सत्थि जह० एक्को वा दो वा उ० तिन्नि, केवइया पु० ?, गो० ! कस्सति अत्थि क० नत्थि, जस्सत्थि जह० एक्को वा दो वा तिण्णि वा उ० चत्तारि, एवं सव्वजीवाणं मणुस्साणं भाणियव्वं, मणूसस्स मणूसत्ते अतीता कस्सति अत्थि कस्सति नत्थि, जस्सत्थि जह० एक्को वा दो वा तिण्णि वा उ० चत्तारि, एवं पुरेक्खडावि, एवमेते चउवीसं चउवीसा दंडगा जाव वेमाणियत्ते । एगमेगस्स णं भंते ! नेरइयस्स नेरइयत्ते के० केवलिसमुग्घाया अतीता ?, गो० ! णत्थि, केवइया पुरेक्खडा ?, गो० ! नत्थि, एवं जाव वेमाणियत्ते, णवरं मणूसत्ते अतीता नत्थि, पुरेक्खडा क० अत्थि क० नत्थि, जस्सत्थि इक्को, मणूसस्स मणूसत्ते अतीता कस्सति अत्थि क० नत्थि, जस्सत्थि एक्को, एवं पुरेक्खडावि, एवमेते चउवीसं चउवीसा दंडगा (सूत्रं ३३५)

'मारणंतिए'त्ति मारणान्तिकसमुद्घातः पुरस्कृतचिन्तायां स्वस्थाने परस्थाने वा एकोत्तरिकया नेतव्यो यावद्वैमानिकस्य वैमानिकत्वे—वैमानिकत्वविषयं सूत्रं, तच्चैवम्—एगमेगस्स णं भंते ! नेरइयस्स नेरयत्ते केवइया मारणंतियसमुग्घाया अतीता ?, गोयमा ! अणंता, केवइया पुरेक्खडा ?, गोयमा ! कस्सइ अत्थि कस्सइ नत्थि,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जस्सत्थि जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्कोसेणं संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा' तत्र यो मारणान्तिकसमुद्घातमन्तरेण कालं कृत्वा नरकादुद्वृत्तः अनन्तरं पारम्पर्येण वा मनुष्यभवं प्राप्य सेत्स्यति न भूयो नरकगामी तस्य न सन्ति पुरस्कृता मारणान्तिकसमुद्घाताः, यः पुनस्तद्भवे वर्त्तमानो मारणान्तिकसमुद्घातेन कालं कृत्वा नरकादुद्वृत्तः सेत्स्यति तस्यैकः पुरस्कृतो मारणान्तिकसमुद्घातो, यः पुनर्भूयोऽपि नरकमागत्य सर्वसङ्ख्यया द्वौ मारणान्तिकसमुद्घातौ गन्ता तस्य द्वौ, एवं त्रिप्रभृतयोऽपि भावनीयाः, सङ्ख्येयान् वारान् नरकमागन्तुः सङ्ख्येयाः असङ्ख्येयान् वारान् असङ्ख्येयाः अनन्तान् वारान् अनन्ताः, एवमसुरकुमारत्वे आलापको वाच्यः, नवरमत्रैवं भावनायो नरकादुद्वृत्तो मनुष्यभवं प्राप्य सेत्स्यति यदिवा तस्मिन् भवे मारणान्तिकसमुद्घातमगत्वा मृत्युमासाद्य ततोऽन्यभवे सिद्धिं गन्ता तस्यैव न सन्ति, शेषस्य त्वेकादिभावना प्रागिव, व्यन्तरज्योतिष्कवैमानिकेषु यथा नैरयिकस्य, (यथा नैरयिकस्य) नैरयिकादिषु चतुर्विंशतिस्थानेषु चिन्ता कृता तथाऽसुरकुमारादीनां वैमानिकपर्यवसानानां चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण कर्त्तव्या, तदेवमन्यान्यपि चतुर्विंशतिर्दण्डकसूत्राणि भवन्ति, तथा चाह—'एवं एए चउवीसं चउवीसा दंडगा भाणियव्वा' इति, उक्तो मारणान्तिकसमुद्घातश्चतुर्विंशत्या चतुर्विंशतिदण्डकसूत्रैः, साम्प्रतमेतावत्सङ्ख्याकैरेव सूत्रैर्वैक्रियसमुद्घातं विवक्षुराह—'वेउव्विए' इत्यादि, वैक्रियसमुद्घातो यथा कषायसमुद्घातः प्राक् प्रतिपादितः तथा निरवशेषो भणितव्यः, केवलं यस्य वैक्रियसमुद्घातो नास्ति वैक्रियलब्धेरेवासम्भवात् तस्य नोच्यते, शेषस्य उच्यते, स

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३३५]

दीप अनुक्रम [६०५]

चैवं—'एगमेगस्स णं भंते ! नेरइयस्स नेरइयत्ते केवइया वेउव्वियसमुग्घाया अतीता ?, गो ! अणंता, केवइया पुरेक्खडा ?, गो० ! कस्सइ अत्थि कस्सइ नत्थि, जस्स अत्थि जहण्णेणं एको वा दो वा तिण्णि वा उक्कोसेणं सिय संखेज्जा वा सिय असंखेज्जा वा सिय अणंता वा । एगमेगस्स णं भंते ! नेरइयस्स असुरकुमारत्ते केवइया वेउव्वियसमुग्घाया अतीता ?, गो० ! अणंता, केवइया पुरेक्खडा ?, गो० ! कस्सइ अत्थि कस्सइ नत्थि, जस्सत्थि सिय संखिज्जा सिय असंखिज्जा सिय अणंता वा, एवं नेरइयस्स जाव थणियकुमारत्ते । एगमेगस्स णं भंते ! नेरइयस्स पुढविकाइयत्ते केवइया वेउव्वियसमुग्घाया अतीता ?, गो० ! नत्थि, केवइया पुरेक्खडा ?, गो० ! नत्थि, एवं जाव तेउक्काइयत्ते, एगमेगस्स णं भंते ! नेरइयस्स वाउकाइयत्ते केवइया वेउव्वियसमुग्घाया अतीता ?, गो० ! अणंता, केवइया पुरेक्खडा ?, गो० ! कस्सइ अत्थि कस्सइ नत्थि, जस्सत्थि जहण्णेणं एको वा दो वा तिण्णि वा उक्को० संखेज्जा वा असं० अणंता वा, वणस्सइकाइयत्ते जाव चउरिंदियत्ते जहा पुढविकाइयत्ते, तिरिक्खपंचिंदियत्ते मणुसत्ते जहा वाउकाइयत्ते, वाणमंतरजोइसियवेमाणियत्तेसु जहा असुरकुमारत्ते' इह यत्र वैक्रियसमुद्घातसम्भवस्तत्र भावना कषायसमुद्घातवद् भावनीया, अन्यत्र तु प्रतिषेधः सुप्रतीतो, वैक्रियलब्धेरेवासम्भवात्, यथा च नैरयिकस्य चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण सूत्रमुपदर्शितमेवमसुरकुमारादीनामपि चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण प्रत्येकं सूत्रमवगन्तव्यं, नवरमसुरकुमारादिषु स्तनितकुमारपर्यवसानेषु व्यन्तरादिषु च परस्परं स्वस्थाने एकोत्तरिका पर-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्थाने सङ्ख्येयादयो वक्तव्याः, वायुकायिकतिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्येषु तु परस्परं स्वस्थाने परस्थाने वा एकोत्तरिकाः, शेषं तथैव, एवमेतान्यपि चतुर्विंशतिश्चतुर्विंशतिदण्डकसूत्राणि भवन्ति, तथा चाह—'एवमेते चउवीसं चउवीसगा दंडगा भाणितव्वा' एवं—उपदर्शितेन प्रकारेण अत्रापि—वैक्रियसमुद्घातविषयेऽपि चतुर्विंशतिः—चतुर्विंशतिसङ्ख्याः 'चउवीसा' इति चतुर्विंशतिः—चतुर्विंशतिस्थानपरिमाणा दंडका—दण्डकसूत्राणि भणितव्याः। सम्प्रति तैजससमुद्घातमतिदेशत आह—'तेयगे'त्यादि, तैजससमुद्घातो यथा मारणान्तिकसमुद्घातस्तथा वक्तव्यः, किमुक्तं भवति ?—स्वस्थाने परस्थाने च एकोत्तरिकया स वक्तव्य इति, नवरं यस्य नास्ति—न सम्भवति तैजससमुद्घातस्तस्य न वक्तव्यः, तत्र नैरयिकपृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिद्वित्रिचतुरिन्द्रियेषु न सम्भवतीति न वक्तव्यः, शेषेषु तु वक्तव्यः, स चैवम्—'एगमेगस्स णं भंते ! नेरइयस्स नेरइयत्ते केवइया तेउसमुग्घाया अतीता ?, गो० ! नत्थि, केवइया पुरेक्खडा ?, गो० ! नत्थि, एगमेगस्स णं भंते ! नेरइयस्स असुरकुमारत्ते केवइया तेयगसमुग्घाया अतीता ?, गो० ! अणंता, केवइया पुरेक्खडा ?, गो० ! कस्सइ अत्थि कस्सइ नत्थि, जस्सत्थि जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्कोसेणं संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा' इत्यादि सूत्रोक्तं विशेषमुपजीव्य स्वयं परिभावनीयं, अत्रापि सूत्रसङ्ख्यामाह—'एव'मित्यादि, एवं—मारणान्तिकसमुद्घातगतेन क्वचित् सर्वथा निषेधरूपेण च प्रकारेण एतेऽपि—तैजससमुद्घातगता अपि चतुर्विंशतिः चतुर्विंशतिका—दण्डका भणितव्याः। सम्प्रत्याहारकसमुद्घातं चिन्तयन्नाह—'एगमे-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गस्स ण'मित्यादि, इह सर्वेष्वपि स्थानेषु मनुष्यत्वचिन्तायामतीता जघन्यत एको द्वौ वा उत्कर्षतस्त्रयश्च, पुरस्कृता जघन्यत एको वा द्वौ वा त्रयो वा उत्कर्षतश्चत्वारः, शेषेषु स्थानेषु अतीताः पुरस्कृताश्च प्रतिषेद्धव्याः, मनुष्यस्य मनुष्यत्वचिन्तायामतीताः पुरस्कृताश्च जघन्यत एको वा द्वौ वा त्रयो वा उत्कर्षतश्चत्वारः, अत्रार्थे च कारणं प्रागेवोक्तं, अत्रापि सूत्रसङ्ख्यामाह—'एव'मित्यादि, एवम्—उपदर्शितेन प्रकारेण एते आहारकसमुद्घातविषयाश्चतुर्विंशतिसङ्ख्याकाः दण्डका वक्तव्याः, कियद्दूरं यावदित्याह—यावद्वैमानिकस्य वैमानिकत्वे—वैमानिकत्वविषयं सूत्रं, तच्चैवम्—'एगमेगस्स णं भंते ! वेमाणियस्स वेमाणियत्ते केवइया आहारगसमुग्घाया अतीता ?, गो० ! नत्थि, केवइया पुरेक्खडा ?, गो० ! नत्थि' इति । अधुना केवलिसमुद्घातमभिधित्सुराह—'एगमेगस्स णं भंते' इत्यादि, अत्राप्ययं तात्पर्यार्थः—सर्वेष्वपि स्थानेषु मनुष्यत्वचिन्ताव्यतिरेकेणातीताः पुरस्कृताश्च प्रतिषेद्धव्याः, मनुष्यवर्जेषु मनुष्यत्वचिन्तायामतीताः प्रतिषेद्धव्याः, पुरस्कृतस्तु कस्याप्यस्ति कस्यापि नास्ति, यस्याप्यस्ति तस्याप्येक एवेति वक्तव्यः, मनुष्यस्य मनुष्यत्वचिन्तायामतीतः कस्यापि अस्ति कस्यापि नास्ति, यस्याप्यस्ति तस्याप्येक एव, एतच्च प्रश्नसमये केवलिसमुद्घातादुत्तीर्णं केवलिनमधिकृत्य, पुरस्कृतोऽपि कस्यापि अस्ति कस्यापि नास्ति, यस्याप्यस्ति तस्याप्येक इति वक्तव्यं, अत्रापि सूत्रसङ्ख्यामाह—'एव'मित्यादि एवम्—उपदर्शितेन प्रकारेण एते केवलिसमुद्घातविषयाश्चतुर्विंशतिश्चतुर्विंशतिसङ्ख्याका दण्डका भवन्ति, तदेवं सर्वसङ्ख्यया एकत्वविषयाणां चतुर्विंशतिदण्डकसूत्राणाम-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३३६]

दीप अनुक्रम [६०६]

षष्ठ्यधिकं शतं जातं, एतावत्सङ्ख्याकान्येव बहुत्वविषयाण्यपि सूत्राणि भवन्ति, तान्युपदिदर्शयिषुराह—

नेरइयाणं भंते ! नेरइयत्ते० के० वेदणास० अतीता ?, गो० ! अणंता, के० पुरे० ?, गो० ! अणंता, एवं जाव वेमाणियत्ते, एवं सव्वजीवाणं भाणितव्वं जाव वेमाणियाणं वेमाणियत्ते, एवं जाव तेयगस०, णवरं उवउज्जिऊण नेयव्वं जस्सत्थि वेउव्विय-तेयगा । नेरइयाणं भंते ! नेरइयत्ते केवतिता आहारगस० अतीता ?, गो० ! नत्थि, केवतिता पु० ?, गो० ! णत्थि एवं जाव वेमाणियत्ते, णवरं मणूसत्ते अतीता असं० पुरेक्खडा असंखेज्जा एवं जाव वेमाणियाणं, णवरं वणस्सइकाइयाणं मणूसत्ते अतीता अणंता पुरेक्खडा अणंता, मणूसाणं मणूसत्ते अतीता सिय संखेज्जा सिय असंखेज्जा, एवं पुरेक्खडावि, सेसा सव्वे जहा नेरइया, एवं एते चउवीसं चउवीसा दंडगा । नेरइयाणं भंते ! नेरइयत्ते केव० केवलिसमुग्घाया अतीता ?, गो० ! नत्थि, के० पु० ?, गो० ! नत्थि, एवं जाव वेमाणियत्ते, णवरं मणूसत्ते अतीता णत्थि, पुरे० असंखेज्जा, एवं जाव वेमाणिया, नवरं वणस्सइकाइयाणं मणूसत्ते अतीता नत्थि, पु० अणंता, मणूसाणं मणूसत्ते अतीता सिय अत्थि सिय णत्थि, जइ अत्थि जह० एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्को० सतपुहुत्तं, केवइया पुरे० ?, गो० ! सिय संखेज्जा सिय असंखेज्जा, एवं एते चउवीसं चउवीसा दंडगा सव्वे पुच्छाए भाणितव्वा जाव वेमाणियाणं वेमाणियत्ते (सूत्रं ३३६)

'नेरइयाण'मित्यादि, नैरयिकाणां विवक्षितप्रश्नसमयभाविनां सर्वेषां भदन्त ! पूर्वं सकलमतीतं कालमवधीकृत्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३३६]

दीप अनुक्रम [६०६]

यथासम्भवं नैरयिकत्वे वृत्तानां सतां समुदायेन सर्वसङ्ख्यया कियन्तो वेदनासमुद्घाता अतीताः ?, भगवानाह—गौतम ! अनन्ताः, बहूनामनन्तकालमसंव्यवहारराशेरुद्वृत्तत्वात्, कियन्तः पुरस्कृताः ?, एतच्च सूत्रं सूचामात्रं, परिपूर्णस्तु पाठ एवं–'नेरइयाणं भंते ! नेरइयत्ते केवइया वेयणासमुग्घाया पुरेक्खडा ?' इति भगवानाह—गौतम ! अनन्ताः, बहूनामनन्तशो भूयोऽपि नरकेष्वागमनसम्भवात्, 'एव'मित्यादि, एवमुक्तेन प्रकारेणासुरकुमारत्वादिषु स्थानेषु क्रमेण तावद् वक्तव्यं यावद्वैमानिकत्वे–वैमानिकत्वविषयं सूत्रं, तच्चेदं—'नेरइयाणं भंते ! वेमाणियत्ते केवइया वेयणासमुग्घाया अतीता ?, गो० ! अणंता, केवइया पुरेक्खडा ?, गो० ! अणंता' इति, अत्र अतीता अनन्ताः सुप्रतीताः, सर्वसांव्यवहारिकजीवैः प्रायोऽनन्तशो वैमानिकत्वस्य प्राप्तत्वात्, पुरस्कृतास्त्वनन्ताः, प्रश्नसमयभाविनां नैरयिकाणां मध्ये बहुभिरनन्तशो वैमानिकत्वस्य प्राप्स्यमानत्वात्, एवमपान्तरालवर्त्तिष्वपि असुरकुमारत्वादिषु स्थानेषु भावना भावनीया, यथा च नैरयिकाणां नैरयिकत्वादिषु चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेणातीताः पुरस्कृताश्च वेदनासमुद्घाता भणिता एवं सर्वजीवानामसुरकुमारादीनां भणितव्याः, कियदूरं यावदित्याह—यावद्वैमानिकानां वैमानिकत्वे–वैमानिकत्वविषयाः, ते चैवं—'वेमाणियाणं भंते ! वेमाणियत्ते केवइया वेयणासमुग्घाया अतीता ?, गो० ! अणंता, केवइया पुरे० ?, गो० ! अणंता' इति, एवं कषायमरणवैक्रियतैजससमुद्घाता अपि नैरयिकादीनां वैमानिकपर्यवसानानां सर्वेषु नैरयिकत्वादिषु स्थानेषु चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण वक्तव्याः, तथा चाह–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३३६]

दीप अनुक्रम [६०६]

'एवं जावे'त्यादि, एवं–वेदनासमुद्घातगतेन प्रकारेण कषायादिसमुद्घाता अपि तावद्वक्तव्याः यावत्तैजससमुद्घातः, किमविशेषेण वक्तव्याः ?, नेत्याह—'नवर'मित्यादि, नवरमुपयुज्य–उपयोगं कृत्वा सर्वं सूत्रं बुद्ध्या नेतव्यं, किमुक्तं भवति ?—ये यत्र समुद्घाता घटन्ते ते तत्रातीताः पुरस्कृताश्चानन्ता वक्तव्याः, शेषेषु च स्थानेषु प्रतिषेद्धव्याः, एतदेव वैविक्त्येनाह–'जस्स अत्थी'त्यादि, यस्य जीवराशेर्नैरयिकादेरसुरकुमारादेश्च सन्ति वैक्रियतैजससमुद्घातास्ते तस्य वक्तव्याः, शेषेषु पृथिव्यादिषु स्थानेषु प्रतिषेद्धव्या इति सामर्थ्यलभ्यं, कषायमारणान्तिकसमुद्घाताः पुनः सर्वत्रापि वेदनासमुद्घातवदविशेषेणातीताः पुरस्कृताश्चानन्ता वक्तव्याः, न तु क्वापि निषेद्धव्याः । सम्प्रति आहारसमुद्घातविषयं सूत्रमाह—'नेरइयाण'मित्यादि, आहारकसमुद्घातो ह्याहारकलब्धौ सत्यामाहारकशरीरप्रारम्भकाले भवति, नान्यथा, आहारकलब्धिश्चोपजायते चतुर्दशपूर्वाधिगमे, तेषां चतुर्दशानां पूर्वाणामधिगमो मनुष्यत्वावस्थायां न शेषायामवस्थायामिति मनुष्यत्ववर्जासु शेषास्ववस्थास्वतीतानां पुरस्कृतानां चाहारकसमुद्घातानां प्रतिषेधः, मनुष्यत्वावस्थायामपि पूर्वमतीता असङ्ख्येयाः, प्रश्नसमयभाविनां नारकाणां मध्ये बहूनामसङ्ख्येयानां नारकाणां पूर्वं तदा २ मनुष्यत्वमवाप्य अधिगतचतुर्दशपूर्वाणां प्रत्येकं सकृद् द्विः त्रिर्वा कृताहारकसमुद्घातत्वात्, पुरस्कृता अपि असङ्ख्येयाः, प्रश्नसमयभाविनां नारकाणां मध्ये बहुभिरसङ्ख्येयैर्नारकैर्नरकादुद्वृत्यानन्तर्येण पारम्पर्येण वा तदा तदा मनुष्यत्वावासौ चतुर्दश पूर्वाण्यधीत्य प्रत्येकमाहारकसमुद्घातानामेकशो द्विः त्रिश्चतुर्वा करिष्यमाणत्वात्, 'एवं जाव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३३६]

दीप अनुक्रम [६०६]

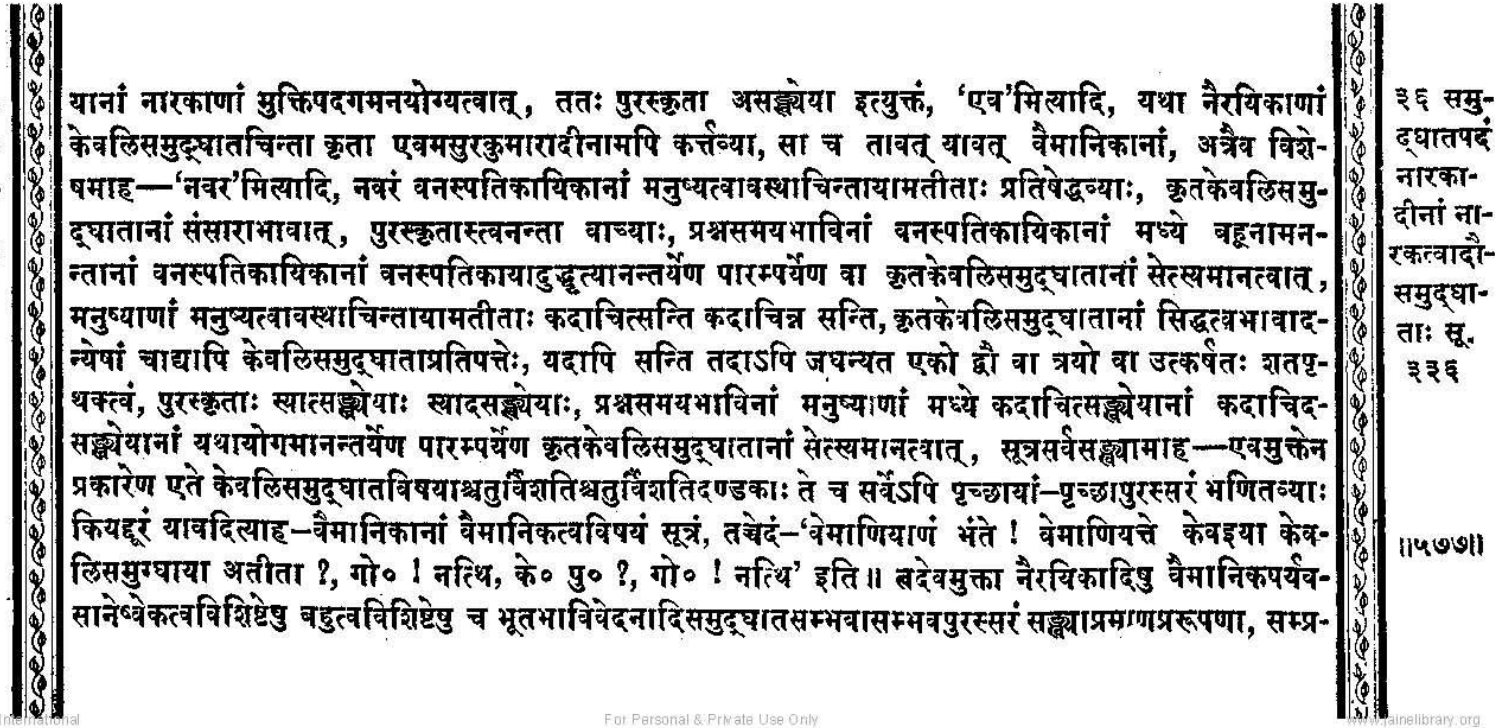
वेमाणियाण'मिति नैरयिकाणां चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण चिन्ता कृता एवमसुरकुमारादीनामपि प्रत्येकं चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण तावद्वक्तव्या यावद्वैमानिकानां, केवलं यत्रास्ति विशेषस्तं दर्शयति–'नवर'मित्यादि, नवरं वनस्पतिकायिकानां मनुष्यत्वचिन्तायामतीताः पुरस्कृताश्च प्रत्येकमनन्ता वक्तव्याः, अनन्तानां पूर्वमधिगतचतुर्दशपूर्वाणां यथायोगमेकशो द्विः त्रिर्वा कृताहारकसमुद्घातानां वनस्पतिष्ववस्थानात् अनन्तरमेव वनस्पतिकायादुद्वृत्यानन्तर्येण पारम्पर्येण वा मानुषत्वमवाप्य यथायोगमेकशो द्विः त्रिश्चतुर्वाऽऽहारकसमुद्घातानां निर्वर्त्तयिष्यमाणत्वात्, मनुष्याणां मनुष्यत्वावस्थायामतीताः पुरस्कृताश्च स्यात्सङ्ख्येयाः स्यादसङ्ख्येयाः,कथमिति चेत्,उच्यते, ते हि प्रश्नसमयभाविनः उत्कर्षपदेऽपि सर्वस्तोकाः, श्रेण्यसङ्ख्येयभागगतप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, ततो विवक्षितप्रश्नसमयभाविनां मध्ये कदाचिदसङ्ख्येयाः–यथायोगं प्रत्येकमेकशो द्विः त्रिश्चतुर्वा कृतकरिष्यमाणाहारकसमुद्घाताः प्राप्यन्ते, उपसंहारमाह—'एव'मित्यादि, एवमुक्तेन प्रकारेण एते आहारकसमुद्घातविषयाश्चतुर्विंशतिश्चतुर्विंशतिसङ्ख्याका दण्डका वक्तव्याः, सम्प्रति केवलिसमुद्घातं चिन्तयति—'नेरइयाण'मित्यादि, केवलिसमुद्घातोऽपि मनुष्यत्वावस्थायां भवति, न शेषास्ववस्थासु, न च कृतकेवलिसमुद्घातः संसारं पर्यटति, केवलिसमुद्घातानन्तरमन्तर्मुहूर्त्तेनावश्यं निःश्रेयसपदाधिगमात्, ततो नारकाणां मनुष्यत्ववर्ज्यासु शेषास्ववस्थास्वतीताः पुरस्कृताश्च केवलिसमुद्घाताः प्रतिषेद्धव्याः, मनुष्यत्वावस्थायामप्यतीताः प्रतिषेद्धव्याः, कृतकेवलिसमुद्घातानां नरके गमनाभावात्, भाविनश्च भविष्यन्ति, प्रश्नसमयभाविनां मध्ये बहूनामसङ्ख्ये-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१५],उपांगसूत्र-[४] "प्रज्ञापना" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३३६]

दीप अनुक्रम [६०६]



प्रज्ञापनायाः मलय० वृत्तौ. ॥५७७॥

यानां नारकाणां मुक्तिपदगमनयोग्यत्वात्, ततः पुरस्कृता असङ्ख्येया इत्युक्तं, 'एव'मित्यादि, यथा नैरयिकाणां केवलिसमुद्घातचिन्ता कृता एवमसुरकुमारादीनामपि कर्त्तव्या, सा च तावत् यावत् वैमानिकानां, अत्रैव विशेषमाह—'नवर'मित्यादि, नवरं वनस्पतिकायिकानां मनुष्यत्वावस्थाचिन्तायामतीताः प्रतिषेद्धव्याः, कृतकेवलिसमुद्घातानां संसाराभावात्, पुरस्कृतास्त्वनन्ता वाच्याः, प्रश्नसमयभाविनां वनस्पतिकायिकानां मध्ये बहूनामनन्तानां वनस्पतिकायिकानां वनस्पतिकायादुद्धृत्यानन्तर्येण पारम्पर्येण वा कृतकेवलिसमुद्घातानां सेत्स्यमानत्वात्, मनुष्याणां मनुष्यत्वावस्थाचिन्तायामतीताः कदाचित्सन्ति कदाचिन्न सन्ति, कृतकेवलिसमुद्घातानां सिद्धत्वभावादन्येषां चाद्यापि केवलिसमुद्घाताप्रतिपत्तेः, यदापि सन्ति तदाऽपि जघन्यत एको द्वौ वा त्रयो वा उत्कर्षतः शतपृथक्त्वं, पुरस्कृताः स्यात्सङ्ख्येयाः स्यादसङ्ख्येयाः, प्रश्नसमयभाविनां मनुष्याणां मध्ये कदाचित्सङ्ख्येयानां कदाचिदसङ्ख्येयानां यथायोगमानन्तर्येण पारम्पर्येण कृतकेवलिसमुद्घातानां सेत्स्यमानत्वात्, सूत्रसर्वसङ्ख्यामाह—एवमुक्तेन प्रकारेण एते केवलिसमुद्घातविषयाश्चतुर्विंशतिश्चतुर्विंशतिदण्डकाः ते च सर्वेऽपि पृच्छायां—पृच्छापुरस्सरं भणितव्याः कियद्दूरं यावदित्याह—वैमानिकानां वैमानिकत्वविषयं सूत्रं, तच्चेदं—'वेमाणियाणं भंते ! वेमाणियत्ते केवइया केवलिसमुग्घाया अतीता ?, गो० ! नत्थि, के० पु० ?, गो० ! नत्थि' इति॥ एवमुक्ता नैरयिकादिषु वैमानिकपर्यवसानेष्वेकत्वविशिष्टेषु बहुत्वविशिष्टेषु च भूतभाविवेदनादिसमुद्घातसम्भवासम्भवपुरस्सरं सङ्ख्याप्रमाणप्ररूपणा, सम्प्र-

३६ समुद्घातपदं नारकादीनां नारकत्वादौ समुद्घाताः सू. ३३६

॥५७७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१५],उपांगसूत्र-[४] "प्रज्ञापना" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३३७-३३८]

दीप अनुक्रम [६०७-६०८]

ति तेन तेन समुद्घातेन यावत् केवलिसमुद्घातेन समुद्धतानामसमुद्धतानां च परस्परमल्पबहुत्वमभिधित्सुराह—

एतेसि णं भंते ! जीवाणं वेदणासमुग्घातेणं कसायस० मारणंतिय० वेउव्वियस० तेयस० आहारगस० केवलिस० समोहयाणं असमोहयाण य कयरे२हिंतो अ० ब० तु० वि० ?, गो० ! सव्वत्थोवा जीवा आहारगसमुग्घाएणं समोहया केवलिसमुग्घाएणं संमोहता संखे० तेयगसमुग्घाएणं समोहया असं० वेउव्वियसमुग्घाएणं समो० असं० मारणंतियसमु० समो० अणंतगुणा कसायस० स० असं० वेदणास० विसेसाहिया असंमोहया असंखिज्जगुणा (सूत्रं ३३७) एतेसि णं भंते ! नेरइयाणं वेदणासमुग्घाएणं कसायस० मारणंतियस० वेउव्वियस० समोहयाणं असमोहयाण य कतरे२हिंतो अप्पा वा ४, गो० ! सव्वत्थोवा नेरइया मारणंतियसमुग्घातेणं समोहया वेउव्वियसमुग्घातेणं समोहया असं० कसायसमुग्घाएणं समोहता संखे० वेदणासमुग्घा० समो० संखे० असमोहया० संखे०। एतेसि णं भंते ! असुरकुमाराणं वेदणासमुग्घातेणं कसायस० मारणंतियस० वेउव्वियस० तेयगस० समोहताणं असमोहताण य कयरे२हिंतो अप्पा वा ४ ?, गो० ! सव्वत्थोवा असुरकुमारा तेयगसमुग्घाएणं समोहया मारणंतियस० स० असं० वेदणास० स० असं० कसायसमु० स० सं० वेउव्वियसमु० स० संखे० असमोहया असंखेज्जगुणा एवं जाव थणियकुमारा। एएसि णं भंते ! पुढविकाइयाणं वेदणास० ३ ?, गो० ! सव्वत्थोवा पुढविकाइया मारणंतियसमुग्घाएणं समोहया कसायसमुग्घाएणं समोहया सं० वेदणासमु० स० विसेसाहिया असमोहया असं०, एवं जाव वणस्सइकाइया, णवरं सव्वत्थोवा वाउकाइया वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहया मारणंतियसमु० समो० असंखेज्जगुणा कसायसमुग्घा० स० सं० वेदणास० स० विसेसाहिया असमो-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हया असंखेज्जगुणा । बेइंदियाणं भंते ! वेदणासमुग्घाएणं कसायस० मारणंतियस० समोहयाणं असमोहयाण य कतरे-२ हिंतो अप्पा वा ४ ?, गो० ! सव्वत्थोवा बेइंदिया मारणंतियसमुग्घाएणं समोहया वेदणासमुग्घातेणं समोहया असंखे० कसायस० समो० असंखे० असमोहया संखे०, एवं जाव चउरिंदिया । पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते ! वेदणास० समो० कसायसमुग्घातेणं मारणंतियस० वेउव्वियस० तेयासमु० समोहयाणं असंमोहयाण य कतरे२हिंतो अप्पा वा ४ ?, गो० ! सव्वत्थोवा पंचिंदियतिरि० तेयासमु० समोहया वेउ० समु० समो० असं० मारणंतियस० समो० असं० वेदणास० समो० असं० कसायस० समो० संखे० असमवहता संखे० । मणुस्साणं भंते ! वेदणासमुग्घातेणं समोहयाणं कसायसमु० मारणंतियस० वेउव्वियस० तेयगस० आहारगसमुग्घाएणं केवलिस० समोहयाणं असमोहयाण य कयरे २-हिंतो अप्पा वा ४ ?, गो० ! सव्वत्थोवा मणुस्सा आहारगस० समोहया केवलिस० स० संखे० तेयगस० समो० संखे० वेउ-व्वियस० समो० संखे० मारणंतियस० समो० असं० वेदणास० स० असं० कसायस० स० संखे० असमोहया असं० । वाणमंतरजोइसियवेमाणियाणं जहा असुरकुमाराणं (सूत्रं ३३८)

'एएसि ण'मित्यादि, एतेषां–यथायोगं प्राक् समवहतासमवहतत्वेन निरूपितानां भदन्त ! सामान्यतो जीवानां वेदनासमुद्घातेन यावत् केवलिसमुद्घातेन समवहतानामसमवहतानां च मध्ये कतरे कतरेभ्योऽल्पाः कतरे कतरे-भ्यो बहुकाः—सङ्ख्येयासङ्ख्येयादिगुणतया प्रभूताः कतरे कतरैस्तुल्याः—समसङ्ख्याकाः, अत्रार्थे सूत्रे विभक्तिपरिणामः स्वयं योजनीयः, कतरे कतरेभ्यो विशेषाधिकाः—मनागधिकाः, वाशब्दाः सर्वेऽपि विकल्पार्थाः, भगवानाह—गौतम !

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सर्वस्तोका जीवा आहारकसमुद्घातेन समुद्घताः, आहारकशरीरिणो हि कदाचिदिह लोके षण्मासान् यावन्न भवन्त्यपि, यदापि भवन्ति तदापि जघन्यत एको द्वौ त्रयो वा उत्कर्षतः सहस्रपृथक्त्वं, केवलमाहाकसमुद्घात आहारकशरीरप्रारम्भकाले न शेषकालं ततः स्तोका एव युगपदाहारकसमुद्घाताः प्राप्यन्ते इति सर्वस्तोका आहारकसमुद्घोतन समुद्घताः, तेभ्यः केवलिसमुद्घातेन समुद्घताः सङ्ख्येयगुणाः, तेषामेककालं शतपृथक्त्वेन प्राप्यमाणत्वात्, यद्यप्याहारकशरीरिणः सत्तया समकालं एको द्वौ वा त्रयो वा उत्कर्षतः सहस्रपृथक्त्वमानाः प्राप्यन्ते तथाप्या(पि स्तोकानामा)हारकसमुद्घातसम्भवात् एककालमतिस्तोकाः प्राप्यन्ते इति न तेभ्यः केवलिसमुद्घातसमुद्घतानां सङ्ख्येयगुणत्वविरोधः, केवलिसमुद्घातसमुद्घतेभ्यः तैजससमुद्घातेन समवहताः असङ्ख्येयगुणाः, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां मनुष्याणां देवानामपि च तैजससमुद्घातसम्भवात्, तेभ्योऽपि वैक्रियसमुद्घातेन समुद्घताः असङ्ख्येयगुणाः, नारकवातकायिकानामपि वैक्रियसमुद्घातसम्भवात्, वातकायिकाश्च वैक्रियलब्धिमन्तो न स्तोकाः, किन्तु देवेभ्योऽप्यसङ्ख्येयगुणाः, कथमेतदिति चेत्, उच्यते, इह बादरपर्याप्तवायुकायिकाः स्थलचरपञ्चेन्द्रियेभ्योऽसङ्ख्येयगुणाः, महादण्डके तथा पठितत्वात्, स्थलचरपञ्चेन्द्रियाश्च देवेभ्योऽप्यसङ्ख्येयगुणाः, ततो यद्यपि बादरपर्याप्तवायुकायिकानां सङ्ख्येयभागमात्रस्य वैक्रियलब्धिसम्भवो, यत उक्तम्—"तिण्हं ताव रासीणं वेउव्वियलद्धी चेव नत्थि, बायरपज्जत्ताणंपि संखेज्जइभागमेत्ताणं"ति, तथापि सङ्ख्येयभागमात्रा वैक्रियलब्धिमन्तो देवेभ्योऽप्यसङ्ख्येयगुणा भवन्ति,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ततो नैरयिकाणां वायुकायिकानां च वैक्रियसमुद्घातसम्भवादुपपद्यन्ते तैजससमुद्घातसमुद्धतेभ्यो वैक्रियसमुद्घातेन समुद्धताः असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि मारणान्तिकसमुद्घातेन समुद्धता अनन्तगुणाः, कथं ?, उच्यते, इह निगोदजीवानामनन्तानामसङ्ख्येयो भागः सदा विग्रहगतौ वर्त्तमानः प्राप्यते, ते च प्रायो मारणान्तिकसमुद्घातसमुद्धता इति पूर्वेभ्योऽनन्तगुणाः, तेभ्योऽपि कषायसमुद्घातसमुद्धता असङ्ख्येयगुणाः, निगोदजीवानामेवानन्तानां विग्रहगत्यापन्नेभ्योऽसङ्ख्येयगुणानां कषायसमुद्घातसमुद्धतानां सदा प्राप्यमाणत्वात्, तेभ्योऽपि वेदनासमुद्घातेन समुद्धता विशेषाधिकाः,तेषामेव निगोदजीवानामनन्तानां कषायसमुद्घातसमुद्धतेभ्यो मनाक् विशेषाधिकानां सदा वेदनासमुद्घातेन समुद्धततयाऽवाप्यमानत्वात्, तेभ्योऽपि एकेनापि समुद्घातेनासमुद्धता असङ्ख्येयगुणाः,वेदनाकषायमरणसमुद्घातसमुद्धतेभ्यो निगोदजीवानामेवासङ्ख्येयगुणानामसमवहतानां सदा लभ्यमानत्वात् । सम्प्रत्येतदेवाल्पबहुत्वं जीवविशेषेषु नैरयिकादिषु चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण यथायोगं चिचिन्तयिषुराह—'नेरइयाण'मित्यादि प्रश्नसूत्रं, भगवानाह—सर्वस्तोका नैरयिका मारणान्तिकसमुद्घातेन समुद्धताः, मारणान्तिको हि समुद्घातो मरणकाले भवति, मरणं च शेषजीवन्नारकराश्यपेक्षयाऽतिस्तोकानां, न च सर्वेषां म्रियमाणानामविशेषेण मारणान्तिकसमुद्घातः, किन्तु कतिपयानां, 'समोहयावि मरंति असमोहयावि मरंती'ति वचनात्, अतः सर्वस्तोका मारणान्तिकसमुद्घातसमुद्धताः, तेभ्योऽपि वैक्रियसमुद्घातेन समुद्धताः असङ्ख्येयगुणाः, सप्तस्वपि पृथिवीषु प्रत्येकं बहूनां परस्परवेदनो-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दीरणाय निरन्तरमुत्तरवैक्रियसमारम्भसम्भवात्, तेभ्योऽपि कषायसमुद्घातेन समुद्धताः सङ्ख्येयगुणाः, कृतोत्तरवैक्रियाणामकृतोत्तरवैक्रियाणां च सर्वसङ्ख्ययोत्तरवैक्रियारम्भकेभ्योऽसङ्ख्येयगुणानां कषायसमुद्घातसमुद्धतत्वेन प्राप्यमाणत्वात्, तेभ्योऽपि वेदनासमुद्घातेन समुद्धताः सङ्ख्येयगुणाः, यथायोगं क्षेत्रजपरमाधार्मिकोदीरितपरस्परोदीरितवेदनाभिः प्रायो बहूनां सदा समुद्धतत्वेन प्राप्यमाणत्वात्, तेभ्योऽप्येकेनापि समुद्घातेनासमवहताः सङ्ख्येयगुणाः, वेदनासमुद्घातमन्तरेणाप्यतिबहूनां सामान्यतो वेदनामनुभवतां सम्भवात्। सम्प्रत्यसुरकुमाराणामल्पबहुत्वमाह—'एएसि ण'मित्यादिप्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! सर्वस्तोकाः असुरकुमारास्तैजससमुद्घातेन समुद्धताः, तैजसो हि समुद्घातो महति कोपावेशे क्वचित् कदाचित्केषाञ्चिद्भवति, ततस्तेन समुद्घातेन समुद्धताः सर्वस्तोकाः, तेभ्यो मारणान्तिकसमुद्घातेन समुद्धताः असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यो वेदनासमुद्घातेन समुद्धताः असङ्ख्येयगुणाः, परस्परं युद्धादौ बहूनां वेदनासमुद्घातेन समुद्धतानां प्राप्यमाणत्वात्, तेभ्योऽपि कषायसमुद्घातेन समुद्धताः सङ्ख्येयगुणाः, येन तेन वा कारणेन बहूनां कषायसमुद्घातगमनसम्भवात्, तेभ्योऽपि वैक्रियसमुद्घातेन समुद्धताः सङ्ख्येयगुणाः, परिचारणाद्यनेकनिमित्तमतिबहूनामुत्तरवैक्रियकरणारम्भसम्भवात्, तेभ्योऽप्यसमवहता असङ्ख्येयगुणाः, बहूनामुत्तमजातीनां सुखसागरावगाढानां पूर्वोक्तेभ्योऽसङ्ख्येयगुणानां केनापि समुद्घातेनासमवहतानां सदा लभ्यमानत्वात्, 'एव'मित्यादि, यथा असुरकुमाराणामल्पबहुत्वमुक्तमेवं सर्वेषां भवनपतीनां द्रष्टव्यं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यावत् स्तनितकुमाराणामिति । सम्प्रति पृथिवीकायिकगतमल्पबहुत्वमाह—'एएसि ण'मित्यादि, अत्र कषायसमुद्घातसमुद्गतानां वेदनासमुद्घातसमुद्गतानां च सङ्ख्येयगुणत्वे असमवहतानां चासङ्ख्येयगुणत्वे भावना स्वयं भावनीया, सुगमत्वात्, 'एव'मित्यादि, पृथिवीकायिकगतेन प्रकारेणाल्पबहुत्वं तावद्वक्तव्यं यावद्वनस्पतिकायिकाः, वायुकायिकान् प्रति विशेषमभिधित्सुराह—'नवर'मित्यादि, नवरं वातकायिकानामल्पबहुत्वचिन्तायामेवं वक्तव्यं—सर्वस्तोका वातकायिका वैक्रियसमुद्घातेन समुद्गताः, बादरपर्याप्तसङ्ख्येयभागस्य वैक्रियलब्धेः सम्भवात्, तेभ्योऽपि मारणान्तिकसमुद्घातेन समुद्गता असङ्ख्येयगुणाः, पर्याप्तापर्याप्तसूक्ष्मबादरभेदभिन्नानां सर्वेषामपि वातकायिकानां मरणसमुद्घातसम्भवात्, तेभ्योऽपि कषायसमुद्घातेन समुद्गताः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि वेदनासमुद्घातेन समुद्गता विशेषाधिकाः, तेभ्योऽसमवहता असङ्ख्येयगुणाः, सकलसमुद्घातगतवातकायिकापेक्षया स्वभावस्थानां वातकायिकानां स्वभावत एवासङ्ख्येयगुणतया प्राप्यमाणत्वात् । द्वीन्द्रियसूत्रे सर्वस्तोकाः द्वीन्द्रिया मारणान्तिकसमुद्घातेन समुद्गताः, प्रतिनियतानामेव प्रश्नसमये मरणसद्भावात्, तेभ्यो वेदनासमुद्घातेन समुद्गता असङ्ख्येयगुणाः, शीतातपादिसम्पर्कतोऽतिप्रभूतानां वेदनासमुद्घातभावात्, तेभ्यः कषायसमुद्घातेन समुद्गता असङ्ख्येयगुणाः, अतिप्रभूततराणां लोभादिकषायसमुद्घातभावात्, तेभ्योऽप्यसमवहताः सङ्ख्येयगुणाः, 'एव'मित्यादि, एवं द्वीन्द्रियगतेन प्रकारेण तावद् वक्तव्यं यावच्चतुरिन्द्रियाः । तिर्यक्पञ्चेन्द्रियसूत्रे सर्वस्तोकास्तैजससमुद्घातेन समुद्गताः, कतिपयाना-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मेव तेजोलब्धिभावात्, तेभ्यो वेदनासमुद्घातेनासमवहताः असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि वैक्रियसमुद्घातेन समवहताः असङ्ख्येयगुणाः, प्रभूतानां वैक्रियलब्धेर्भावात्, तेभ्योऽपि मारणान्तिकसमुद्घातेन समवहता असङ्ख्येयगुणाः, सम्मूर्च्छिमजलचरस्थलचरखचराणामपि सर्वेषां वैक्रियलब्धिरहितानां प्रत्येकं पूर्वोक्तेभ्योऽसङ्ख्येयगुणानां केषाञ्चित् गर्भजानामपि वैक्रियलब्धिरहितानां वैक्रियलब्धिमतां च मरणसमुद्घातसम्भवात्, तेभ्योऽपि वेदनासमुद्घातेन समुद्घताः असङ्ख्येयगुणाः, म्रियमाणजीवराश्यपेक्षया अपि अम्रियमाणानामसङ्ख्येयगुणानां वेदनासमुद्घातभावात्, तेभ्यः कषायसमुद्घातेन समुद्घताः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽप्यसमवहताः सङ्ख्येयगुणाः, अत्र भावना प्रागिव। मनुष्यसूत्रे सर्वस्तोका आहारकसमुद्घातेन समुद्घताः, अतिस्तोकानामेककालमाहारकशरीरप्रारम्भसंभवात्, तेभ्यः केवलिसमुद्घातेन समुद्घताः सङ्ख्येयगुणाः, शतपृथक्त्वसङ्ख्यया प्राप्यमाणत्वात्, तेभ्यस्तैजससमुद्घातेन समवहताः सङ्ख्येयगुणाः, शतसहस्रसङ्ख्यया तेषां प्राप्यमाणत्वात्, तेभ्योऽपि वैक्रियसमुद्घातेन समुद्घताः सङ्ख्येयगुणाः, कोटीसङ्ख्यया लभ्यमानत्वात्, तेभ्योऽपि मारणान्तिकसमुद्घातेन समवहता असङ्ख्येयगुणाः, सम्मूर्च्छिममनुष्याणामपि तद्भावात्, तेषां चासङ्ख्येयत्वात्, तेभ्योऽपि वेदनासमुद्घातेन समुद्घता असङ्ख्येयगुणाः, म्रियमाणराश्यपेक्षया असङ्ख्येयगुणानाम-म्रियमाणानां तद्भावसम्भवात्, तेभ्यः कषायसमुद्घातेन समुद्घताः सङ्ख्येयगुणाः, प्रभूततया तेषां प्राप्यमाणत्वात्, तेभ्योऽप्यसमवहता असङ्ख्येयगुणाः, सम्मूर्च्छिममनुष्याणामल्पकषायाणामुत्कटकषायिभ्योऽसङ्ख्येयगुणानां सदा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३३७--३३८]

दीप अनुक्रम [६०७--६०८]

लभ्यमानत्वात्। व्यन्तरज्योतिष्कवैमानिका यथा असुरकुमारास्तथा वक्तव्याः। तदेवमुक्तं समुद्घतासमुद्घतविषयमल्पबहुत्वं, अधुना कषायसमुद्घातगतां विशेषवक्तव्यतामभिधित्सुराह—

कति णं भंते ! कसायसमुग्घाया पण्णत्ता ?, गो० ! चत्तारि कसायसमुग्घाया पं० तं–कोहसमुग्घाते माणस० मायास० लोहस०, नेरइयाणं भंते ! कतिकसायसमुग्घाया पं० ?, गो० ! चत्तारि कसायसमुग्घाता पं० एवं जाव वेमाणियाणं, एगमेगस्स णं भंते ! नेरइयस्स केवतिता कोहसमुग्घाता अतीता ?, गो० ! अणंता, केवतिता पुरे० ?, गो० ! कस्सइ अत्थि कस्सइ नत्थि, जस्सत्थि जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्को० संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा, एवं जाव वेमाणियस्स, एवं जाव लोभसमुग्घाते एते चत्तारि दंडगा। नेरइयाणं भंते ! केवइया कोहसमु० अतीता ?, गो० ! अणंता, के० पु० ?, गो० ! अणंता, एवं जाव वेमाणियाणं, एवं जाव लोभसमुग्घाए, एवं एएवि चत्तारि दंडगा। एगमेगस्स णं भंते ! नेरइयस्स नेरइयत्ते केवइया कोहस० अतीता ?, गो० ! अणंता, एवं जहा वेदणासमुग्घातो भणितो तहा कोहसमुग्घातोवि निरवसेसं जाव वेमाणियत्ते, माणसमुग्घाए मायासमुग्घातेवि निरवसेसं जहा मारणंतियसमुग्घाते लोहसमुग्घातो जहा कसायसमुग्घातो नवरं सव्वजीवा असुरादिनेरइएसु मोहकसाएणं एगुत्तरियाते नेतव्वा। नेरइयाणं भंते ! नेरइयत्ते केवइया कोहसमु० अतीता ?, गो० ! अणंता, के० पु० ?, गो० ! अणंता, एवं जाव वेमाणियत्ते, एवं सट्ठाणपरट्ठाणेसु सव्वत्थ भाणियव्वा, सव्वजीवाणं चत्तारिवि समुग्घाया जाव लोभसमुग्घातो जाव वेमाणियाणं वेमाणियत्ते (सूत्रं ३३९)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३३९]

दीप अनुक्रम [६०९]

'कइ ण'मित्यादि, इदं सामान्यतः कषायसमुद्घातविषयं चतुर्विंशतिदण्डकक्रमगतं च सूत्रं सुप्रतीतं, सम्प्रत्येकैककस्य नैरयिकादेश्चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण वैमानिकपर्यवसानस्य तद्वक्तव्यतामाह—'एगमेगस्स णं भंते !' इत्यादि, अत्रातीतसूत्रं सुप्रतीतं, पुरस्कृतसूत्रे 'कस्सइ अत्थि कस्सइ नत्थि'त्ति यो नरकभवप्रान्ते वर्त्तमानः स्वभावत एवाल्पकषायः कषायसमुद्घातमन्तरेण कालं कृत्वा नरकादुद्वृत्तो मनुष्यभवं प्राप्य कषायसमुद्घातमगत एव सेत्स्यति तस्य नास्ति पुरस्कृत एकोऽपि कषायसमुद्घातो, यस्यापि सन्ति तस्यापि जघन्यत एको द्वौ त्रयो वा, ते च प्रागुक्तस्वरूपस्य सकृत्कषायसमुद्घातगामिनो वेदितव्याः, उत्कर्षतः सङ्ख्येया असङ्ख्येया अनन्ता वा, तत्र सङ्ख्येयं कालं संसारावस्थायिनः सङ्ख्येयाः असङ्ख्येयं कालमसङ्ख्येयाः अनन्तकालमनन्ताः, एवमसुरकुमारादिक्रमेण तावद् वाच्यं यावद्वैमानिकस्य, 'एव'मित्यादि, एवं—चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण मानादिकषायसमुद्घातसमुद्गतास्तावद्वक्तव्याः यावल्लोभसमुद्घातः, एवमेते चत्वारः चतुर्विंशतिदण्डका भवन्ति, एते चैकैकनैरयिकादिविषया उक्ताः, सम्प्रत्येतानेव चतुश्चतुर्विंशतिदण्डकान् सकलनारकादिविषयानाह—'नेरइयाण'मित्यादि, अतीतसूत्रं सुप्रतीतं, पुरस्कृता अनन्ताः, प्रशस्तसमयभाविनां नारकाणां मध्ये बहूनामनन्तकालमवस्थायित्वात्, एवं—नैरयिकोक्तेन प्रकारेण तावद् वक्तव्यं यावद्वैमानिकानां । यथा चैषः क्रोधसमुद्घातश्चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेणोक्तः एवं मानादिसमुद्घाता अपि तावद् वक्तव्या यावल्लोभसमुद्घातः । एवमेतेऽपि सकलनारकादिविषयाश्चत्वारश्चतुर्विंशतिदण्डका भवन्ति, साम्प्रतमेकैकस्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३३९]

दीप अनुक्रम [६०९]

नैरयिकादेर्नैरयिकादिषु भावेषु वर्त्तमानस्य कति क्रोधसमुद्घाता अतीताः कति भाविन इति निरूपयितुकाम आह—'एगमेगस्स ण'मित्यादि, एकैकस्य भदन्त ! नैरयिकस्य विवक्षितप्रश्नसमयकालात् पूर्वं सकलमतीतं कालमवधीकृत्य तदा तदाऽस्य नैरयिकत्वं प्राप्तस्य सतः सर्वसङ्ख्यया कियन्तः क्रोधसमुद्घाता अतीताः ?, भगवानाह—गौतम ! अनन्ताः, नरकगतेरनन्तशः प्राप्तत्वात्, एकैकस्मिंश्च नरकभवे जघन्यपदेऽपि सङ्ख्येयानां क्रोधसमुद्घातानां भावात्, 'एवं जहे'त्यादि, एवमुपदर्शितेन प्रकारेण यथा वेदनासमुद्घातः प्राग् भणितः तथा क्रोधसमुद्घातोऽपि भणितव्यः, कथं भणितव्य इत्याह—निरवशेषं, क्रियाविशेषणमेतत्, सामस्त्येनेत्यर्थः, कियद्दूरं यावत् भणितव्यमित्याह—यावद् वैमानिकत्वे, वैमानिकस्य वैमानिकत्व इत्यालापकं यावदित्यर्थः, स चैवं—'केवइया पुरेक्खडा ?, गोयमा ! कस्सइ अत्थि कस्सइ नत्थि, जस्सत्थि जहण्णेणं एको वा दो वा तिण्णि वा उक्कोसेणं संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा, एवमसुरकुमारत्ते जाव वेमाणियत्ते,' 'एगमेगस्स णं भंते ! असुरकुमारस्स नेरइयत्ते केवइया कोहसमुग्घाया अईया ?, गो० ! अणंता, केवइया पुरेक्खडा ?, गो० ! कस्सइ अत्थि कस्सइ नत्थि, जस्सत्थि तस्स सिय संखेज्जा सिय असं० सिय अणंता, एगमेगस्स णं भंते ! असुरकुमारस्स असुरकुमारत्ते केवइया कोहसमुग्घाया अतीता ?, गो० ! अणंता, केव० पुरे० ?, गो० ! क० अत्थि क० नत्थि, जस्सत्थि जह० एको वा दो वा तिण्णि वा उक्को० संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा, एवं नागकुमारत्ते जाव वेमाणियत्ते, एवं जहा असुरकुमारेसु नेर-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३३९]

दीप अनुक्रम [६०९]

इया वेमाणियपज्जवसाणेसु भणिया तहा णागकुमारादिया सट्ठाणपरट्ठाणेसु भणियव्वा जाव वेमाणियत्ते' इति, अस्यार्थः–कियन्तो भदन्त ! एकैकस्य नारकस्यासंसारमोक्षमनन्तं कालं मर्यादीकृत्य नैरयिकत्वे भाविनः सतः सर्वसङ्ख्यया पुरस्कृताः क्रोधसमुद्घाताः ?, भगवानाह—'कस्सइ अत्थि' इत्यादि,यं आसन्नमरणः क्रोधसमुद्घातमनासाद्यात्यन्तिकमरणेन नरकादुद्वृत्तः सेत्स्यति तस्य नास्ति नैरयिकत्वभाविन एकोऽपि पुरस्कृतः क्रोधसमुद्घातः, शेषस्य तु सन्ति, यस्यापि सन्ति तस्यापि जघन्यत एको द्वौ त्रयो वा, एतच्च क्षीणशेषायुषां तद्भवस्थानां भूयो नरकेषु उ(प्व)त्पद्यमानानां वेदितव्यं, भूयो नरकेषूत्पत्तौ हि जघन्यपदेऽपि सङ्ख्येयाः प्राप्यन्ते, नैरयिकाणां क्रोधसमुद्घातप्रचुरत्वात्, उत्कर्षतः सङ्ख्येया वा असङ्ख्येया वा अनन्ता वा, तत्र सकृन्नरकेषु जघन्यस्थितिकेषूत्पत्स्यमानस्य सङ्ख्येया अनेकशो यदिवा दीर्घस्थितिकेषु सकृदपि उत्पत्स्यमानस्यासङ्ख्येयाः अनन्तश्च उत्पत्स्यमानस्यानन्ताः, 'एव'मित्यादि, एवं—नैरयिकोक्तप्रकारेणासुरकुमारत्वे तदनन्तरं चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण तावद् वक्तव्यं यावद्वैमानिकत्वविषयं सूत्रं, तच्चैवं–'एगमेगस्स णं भंते ! नेरइयस्स वेमाणियत्ते केवइया कोहसमुग्घाया अईया ?, गो० ! अणंता, केवइया पुरे० ?, गो० ! कस्सइ अत्थि क० नत्थि, जस्सत्थि जह० एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्को० संखेज्जा वा असं० अणंता वा,' अत्राप्ययं भावार्थः—अतीतचिन्तायामनन्ताः, अनन्तशो वैमानिकत्वस्य प्राप्तत्वात्, पुरस्कृतचिन्तायां योऽनन्तरभवे नरकादुद्वृत्तो मानुषत्वमवाप्य सेत्स्यति प्राप्तो वा परम्परया सकृद्वैमानिकभवं न क्रोधस-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुद्घातं गन्ता तस्यैकोऽपि पुरस्कृतः क्रोधसमुद्घातो वैमानिकत्वे न विद्यते, यस्त्वसकृद्वैमानिकत्वं प्राप्तः सन् सकृदेव क्रोधसमुद्घातं याता तस्य जघन्यत एको द्वौ वा त्रयो वा, शेषस्य सङ्ख्यातान् वारान् वैमानिकत्वं प्राप्स्यतः सङ्ख्येयाः असङ्ख्येयान् वारान् असङ्ख्येयाः अनन्तान् वारान् अनन्ताः, 'एगमेगस्स ण'मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, 'गो० ! अणंता' इति, अनन्तशो नैरयिकत्वं प्राप्तस्य, एकैकस्मिंश्च नैरयिकभवे जघन्यपदेऽपि सङ्ख्येयानां क्रोधसमुद्घातानां भावात्, पुरस्कृताः कस्यचित्सन्ति कस्यचिन्न सन्ति, किमुक्तं भवति ?—योऽसुरकुमारभवादुद्वृत्तो न नरकं यास्यति किन्त्वनन्तरं परम्परया वा मनुष्यभवमवाप्य सेत्स्यति तस्य नैरयिकावस्थाभाविनः पुरस्कृताः क्रोधसमुद्घाता न सन्ति, नैरयिकत्वावस्थाया एवासम्भवात्, यस्तु तद्भवादूर्ध्वं पारम्पर्येण नरकगामी तस्य सन्ति, तस्यापि कस्यचित् सङ्ख्येयाः कस्यचिदसङ्ख्येयाः कस्यचिदनन्ताः, तत्र यः सकृज्जघन्यस्थितिकेषु नरकमध्येषु समुत्पत्स्यते तस्य जघन्यपदेऽपि सङ्ख्येयाः दशवर्षसहस्रप्रमाणायामपि स्थितौ सङ्ख्येयानां क्रोधसमुद्घातानां भावात्, क्रोधबहुलत्वान्नारकाणां, असकृत् दीर्घस्थितिषु सकृद्वा गमनेऽसङ्ख्येयाः अनन्तशो नरकगमनेऽनन्ताः, तथा एकैकस्य भदन्त ! असुरकुमारस्य असुरकुमारत्वे स्थितस्य सतः सकलमतीतकालमधिकृत्य कियन्तः क्रोधसमुद्घाता अतीताः?, भगवानाह—अनन्ताः अनन्तशोऽसुरकुमारभावस्य प्राप्तत्वात्, प्रतिभवं च क्रोधसमुद्घातस्य प्रायो भावात्, पुरस्कृतचिन्तायां कस्यापि सन्ति कस्यापि न सन्ति, यस्य प्रश्नकालादूर्ध्वं असुरकुमारत्वेऽपि वर्त्तमानस्य न भावी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३३९]

दीप अनुक्रम [६०९]

क्रोधसमुद्घातो नापि तत उद्वृत्तो भूयोऽप्यसुरकुमारत्वं याता तस्य न सन्ति, यस्तु सकृदसुरकुमारत्वमागामी तस्य जघन्यपदे एको वा द्वौ वा त्रयो वा उत्कर्षतः सङ्ख्येया असङ्ख्येया अनन्ता वा, सङ्ख्येयान् वारान् आगामिनः सङ्ख्येया असङ्ख्येयान् वारान् असङ्ख्येयाः अनन्तान् वारान् अनन्ताः, एवं चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण नागकुमारत्वादिषु स्थानेषु असुरकुमारस्य निरन्तरं तावद्वक्तव्यं यावद्वैमानिकत्वे, तथा चाह—'एवं नागकुमारत्तेऽवी'त्यादि, तदेवमसुरकुमारेषु क्रोधसमुद्घातश्चिन्तितः, सम्प्रति नागकुमारादिष्वतिदेशमाह—'एव'मित्यादि, एवमुक्तेनाभिलापगतेन प्रकारेण यथा चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण असुरकुमारो नैरयिकादिषु वैमानिकपर्यवसानेषु भणितः तथा नागकुमारादयः समस्तेषु स्वस्थानपरस्थानेषु भणितव्याः यावद्वैमानिकस्य वैमानिकत्वे आलापकः, एवमेतानि नैरयिकचतुर्विंशतिदण्डकादिसूत्राणि वैमानिकचतुर्विंशतिदण्डकपर्यवसानानि चतुर्विंशतिः सूत्राणि वेदितव्यानि । तदेवं चतुर्विंशतिदण्डकसूत्रैः क्रोधसमुद्घातश्चिन्तितः, सम्प्रति चतुर्विंशत्यैव चतुर्विंशतिदण्डकसूत्रैर्मानसमुद्घातं मायासमुद्घातं चाभिधित्सुरतिदेशमाह—'माणसमुग्घाए मायासमुग्घाए निरवसेसं जहा मारणंतियसमुग्घाए' इति, यथा—प्राक् मारणान्तिकसमुद्घातेऽभिहितं सूत्रं तथा मानसमुद्घाते मायासमुद्घाते च निरवशेषमभिधातव्यं, तच्चैवं—'एगमेगस्स णं भंते ! नेरइयस्स नेरइयत्ते केवइया माणसमुग्घाया अईया ?, गोयमा ! अणंता, केवइया पुरेक्खडा ?, गो० ! कस्सइ अत्थि कस्सइ नत्थि, जस्स अत्थि जहन्नेणं एको वा दो वा तिण्णि वा उक्कोसेणं संखे-

वा वा असंखेज्जा वा अणंता वा, एवमसुरकुमारत्ते जाव वेमाणियत्ते, एगमेगस्स णं भंते ! असुरकुमारस्स नेरइयत्ते केवइया माणसमुग्घाया अतीता ?, गोयमा ! अणंता, केवइया पुरेक्खडा ?, गो० ! कस्सइ अत्थि कस्सइ नत्थि, जस्सत्थि जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिन्नि वा उक्को० संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा, एवं नागकुमारत्ते जाव वेमाणियत्ते, एवं जहा असुरकुमारे नेरइया वेमाणियपज्जवसाणेसु भणिया तहा नागकुमाराइया सट्ठाणसरट्ठाणेसु भाणियव्वा जाव वेमाणियस्स वेमाणियत्ते' अस्यायमर्थः—अतीतेषु सूत्रेषु सर्वत्राप्यनन्तत्वं सुप्रतीतं, नैरयिकत्वादिस्थानानि प्रत्येकमनन्तशः प्राप्तत्वात्, पुरस्कृतचिन्तायां त्वेवं नैरयिकस्य नैरयिकत्वे भावना—यो नैरयिकः प्रश्नकालादूर्ध्वं मानसमुद्घातमन्तरेण कालं कृत्वा नरकादुद्वृत्तोऽनन्तरं पारम्पर्येण वा मनुष्यभवमवाप्य सेत्स्यति न भूयो नरकमागन्ता तस्य न सन्ति पुरस्कृता मानसमुद्घाताः, यः पुनस्तद्भवे वर्त्तमानो भूयो वा नरकमागस्यैकं वारं मानसमुद्घातं गत्वा कालकरणेन नरकादुद्वृत्तः सेत्स्यति तस्यैकः पुरस्कृतो मानसमुद्घातः, एवमेव कस्यापि द्वौ कस्यापि त्रयः सङ्ख्येयान् वारान् नरकमागन्तुः सङ्ख्येयाः असङ्ख्येयान् वारान् असङ्ख्येयाः अनन्तान् वारान् अनन्ताः, नैरयिकस्यैवासुरकुमारत्वे पुरस्कृतचिन्तायामियं भावना—यो नरकादुद्वृत्तो असुरकुमारत्वं न यास्यति तस्य न सन्ति पुरस्कृता मानसमुद्घाताः, यस्त्वेकं वारं गन्ता तस्य एको द्वौ त्रयादयो वा सङ्ख्येयान् वारान् गन्तुः सङ्ख्येयाः असङ्ख्येयान् वारान् असङ्ख्येयाः अनन्तान् वारान् अनन्ता, एवं तावद् भणनीयं यावत् तिर्यक्पञ्चेन्द्रियत्वे पुरस्कृत-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चिन्ता, मनुष्यचिन्तायां चैवं भावना—यो नरकादुद्वृत्तो मनुष्यभवं प्राप्य मानसमुद्घातमगत्वा सेत्स्यति तस्य नास्त्येकोऽपि पुरस्कृतो मानसमुद्घातो, यस्तु मनुष्यत्वं गतः सङ्ख्येयं वारं मानसमुद्घातं गन्ता तस्यैकोऽपरस्य द्वावन्यस्य त्र्यादयः सङ्ख्येयान् वारान् गन्तुः सङ्ख्येयाः असङ्ख्येयान् वारान् असङ्ख्येयाः अनन्तान् वारान् अनन्ताः, व्यन्तरज्योतिष्कवैमानिकत्वेषु भावना यथा असुरकुमारत्वे यथा च नैरयिकस्य नैरयिकत्वादिषु चतुर्विंशतिस्थानेषु भावना कृता तथा असुरकुमारादीनामपि वैमानिकपर्यवसानानां चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण कर्त्तव्या, यथा च मानसमुद्घातस्य चतुर्विंशतिः सूत्राणि चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेणोक्तानि तथा मायासमुद्घातस्यापि चतुर्विंशतिसूत्राणि चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण वक्तव्यानि, तुल्यगमकत्वात्, अधुना लोभसमुद्घातमतिदेशत आह—'लोभसमुग्घातो जहा कसायसमुग्घातो, नवरं सव्वजीवा असुराई नेरइएसु लोभकसाएणं एगुत्तरियाए नेतव्वा' इति, यथा प्राक् कषायसमुद्घात उक्तस्तथा लोभकषायोऽपि वक्तव्यः, नवरं तत्रासुरकुमारादीनां नैरयिकत्वे पुरस्कृतचिन्तायां स्यात् सङ्ख्येयाः स्यादसङ्ख्येया स्यादनन्ता इत्युक्तं अत्र तु सर्वे जीवा असुरकुमारादयो नैरयिकेषु पुरस्कृतचिन्तायां चिन्त्यमाना एकोत्तरिकया ज्ञातव्याः, एकोत्तरस्य भाव एकोत्तरिका 'द्वन्द्वचुरादिभ्यो वु'ञिति चौरादेराकृतिगणतया वुञिति, एको द्वौ त्रय इत्यादिरूपा तया, एकोत्तरतया इत्यर्थः, नैरयिकाणां निरतिशयदुःखवेदनाभिभूततया नित्यमुद्विग्नानां प्रायो लोभसमुद्घातासम्भवात्, सूत्रालापकश्चैवम्—'एगमेगस्स णं भंते ! नेरइयस्स नेरइयत्ते केव० लोभसमु० अतीता ?,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३३९]

दीप अनुक्रम [६०९]

गो० ! अणंता, के० पु० ?, गो० ! कस्सइ अत्थि कस्सइ नत्थि, जस्स अत्थि एगो वा दो वा तिण्णि वा उक्कोसेणं संखेज्जा वा असं० अनंता वा, एगमेगस्स णं भंते ! नेरइयस्स असुरकुमारत्ते केव० लोभस० अतीता ?, गो० ! अणंता, के० पु० ?, गो० ! क० अत्थि क० नत्थि, जस्सत्थि सिय संखेज्जा सिय असं० सिय अणंता, एवं जाव नेरइयस्स थणियकुमारत्ते, एगमेगस्स णं भंते ! नेरइयस्स पुढविकाइयत्ते के० लोभस० अतीता ?, गो० ! अणंता, के० पुरे० ?, गो० ! क० अत्थि क० नत्थि, जस्स अत्थि जह० एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्को० संखे० असं० अणंता वा, एवं जाव मणूसत्ते, वाणमंतरत्ते जहा असुरकुमारत्ते, एगमेगस्स णं भंते ! नेरइयस्स जोइसियत्ते के० लोभस० अतीता ?, गो० ! अणंता, केवइया पुरे० ?, गो० ! कस्सइ अत्थि कस्सइ नत्थि जस्सत्थि जह० एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्कोसेणं सिय संखेज्जा सिय असंखेज्जा सिय अणंता, एवं जाव वेमाणियत्तेऽवि भाणियव्वं, एगमेगस्स णं भंते ! असुरकुमारस्स नेरइयत्ते के० लोभस० अतीता ?, गो० ! अणंता, केवइया पुरे० ?, गो० ! कस्सइ अत्थि कस्सइ नत्थि, जस्सत्थि जह० एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्को० सं० असं० अणंता वा, एगमेगस्स णं भंते ! असुरकुमारस्स असुरकुमारत्ते के० लोभस० अतीता ?, गो० ! अणंता, के० पु० ?, गो० ! क० अ० क० नत्थि, जस्सत्थि जह० एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्को० सं० असं० अणंता वा, एगमेगस्स णं भंते ! असुरकुमारस्स नागकुमारत्ते पुच्छा, गो० ! अणंता, के० पु० ?, गो० ! क० अत्थि कस्सइ नत्थि, जस्सत्थि सिय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सं० सिय असं० सिय अणंता, एवं जाव थणियकुमारत्ते । पुढविकाइयत्ते जाव वेमाणियत्ते जहा नेरइयस्स भणितं तहेव भाणियव्वं, एवं जाव थणियकुमारस्स वेमाणियत्ते । एगमेगस्स णं भंते ! पुढविकाइयस्स नेरइयत्ते केव० लोभस० अतीता ?, गो० ! अणंता, केवइ० पु० ?, गो० ! क० अत्थि क० नत्थि, जस्सत्थि जह० एक्को वा दो वा तिन्नि वा उक्को० संखेज्जा वा असं० अणं०, पुढवि० असुरकुमारत्ते अतीता अणंता, केव० पु० ?, गो० ! कस्सइ अत्थि क० नत्थि, जस्स अत्थि सिय सं० सिय असं० सिय अणंता, एवं जाव थणियकुमारत्ते, पुढविकाइयत्ते अतीता अणंता, पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि क० नत्थि, जस्सत्थि जह० एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्को० सं० असं० अणंता वा, एवं जाव मणूसत्ते, वाणमंतरत्ते जहा असुरकुमारत्ते, जोइसियत्ते वेमाणियत्ते अतीता अणंता, पुरेक्ख० क० अत्थि क० नत्थि, जस्सत्थि सिय संखे० सिय असं० सिय अणंता, एवं जाव मणूसस्स वेमाणियत्ते, वाणमंतरस्स जहा असुरकुमारस्स एवं जोइसियवेमाणियाणंपि' अस्यायमर्थः–नैरयिकस्य नैरयिकत्वे अतीता लोभसमुद्घाता अनन्ताः, अनन्तशो नैरयिकत्वस्य प्राप्तत्वात्, पुरस्कृतचिन्तायां कस्यचित् सन्ति कस्यचिन्न सन्ति, तत्र यः प्रशस्तमयादूर्द्धं लोभसमुद्घातमप्राप्त एव नरकभवादुद्वृत्यानन्तरं पारम्पर्येण वा सेत्स्यति न च भूयो नरकमागामी न चागतोऽपि लोभसमुद्घातं गन्ता तस्य नैकोऽपि पुरस्कृतो लोभसमुद्घातः, शेषस्य तु भावी, तस्यापि कस्यचिदेकः कस्यचित् द्वौ कस्यचित् त्रयः, एतच्च प्रशस्तमयादूर्द्धमपि तद्भवभाजां सकृन्नरकभवगामिनां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वा वेदितव्यं, उत्कर्षतः सङ्ख्येया वा असङ्ख्येया वा अनन्ता वा, तत्र सङ्ख्येयान् वारान् नरकभवमागामिनः सङ्ख्येयाः असङ्ख्येयान् वारान् असङ्ख्येयाः अनन्तान् वारान् अनन्ताः, तथा नैरयिकत्वस्यासुरकुमारत्वविषयेऽतीतसूत्रं तथैव भावनीयं, पुरस्कृतसूत्रे 'कस्सइ अत्थि क० णत्थि'त्ति यो नरकभवादुद्वृत्तो नासुरकुमारत्वं प्राप्स्यति तस्य न सन्त्यसुरकुमारत्वविषयाः पुरस्कृताः लोभसमुद्घाताः, यस्तु प्राप्स्यति तस्य सन्ति, ते च जघन्यपदे सङ्ख्येयाः, जघन्यस्थितावप्यसुरकुमाराणां सङ्ख्येयानां लोभसमुद्घातानां भावात्, लोभबहुलत्वात् तेषां, उत्कृष्टपदेऽसङ्ख्येया अनन्ता वा, तत्र सकृद्दीर्घस्थितावसकृज्जघन्यस्थितिषु दीर्घस्थितिषु वा उत्पत्स्यमानानामवसेयं, अनन्तश उत्पत्स्यमानानामनन्ताः, एवं नैरयिकस्य नागकुमारत्वादिषु स्थानेषु निरन्तरं तावद्वक्तव्यं यावत्स्तनितकुमारत्वे, तथा चाह–'एवं जाव थणियकुमारत्ते' पृथिवीकायिकत्वेऽतीतसूत्रं तथैव, पुरस्कृतचिन्तायां तु कस्यापि सन्ति कस्यापि न सन्ति, तत्र नरकादुद्वृत्तो यो न पृथिवीकायिकत्वं प्राप्स्यति तस्य न सन्ति, योऽपि गन्ता तस्य जघन्यपदे एको द्वौ वा त्रयो वा उत्कर्षतः सङ्ख्येया असङ्ख्येया अनन्ता वा, ते चैवम्–तिर्यक्पञ्चेन्द्रियभवात् मनुष्यभवाद्वा लोभसमुद्घातेन समुद्धतः सन् य एकं वारं पृथिवीं गन्ता तस्य एको द्वौ वारौ गन्तुर्द्वौ त्रीन् वारान् गन्तुस्त्रयः सङ्ख्येयान् वारान् सङ्ख्येयाः असङ्ख्येयान् वारान् असङ्ख्येयाः अनन्तान् वारान् अनन्ताः, 'एवं जाव मणूसत्ते' इति एवं–पृथिवीकायिकगतेनाभिलापप्रकारेण तावद्वक्तव्यं यावन्मनुष्यत्वे, तचैवं–'एगमेगस्स णं भंते ! नेरइयस्स आउकाइयत्ते' इत्यादि, याव-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

न्मनुष्यसूत्रं, तत्राप्कायिकादिवनस्पतिपर्यन्तसूत्रभावना पृथिवीकायसूत्रवत्, द्वीन्द्रियसूत्रे पुरस्कृतचिन्तायां जघन्येन एको द्वौ वा त्रयो वेति एतत् सकृत् द्वीन्द्रियभवं प्रागुकामस्य वेदितव्यं, उत्कर्षेण सङ्ख्येया असङ्ख्येया अनन्ता वा, तत्र सङ्ख्येयान् वारान् द्वीन्द्रियभवं प्रागुकामस्य सङ्ख्येया असङ्ख्येयान् वारान् असङ्ख्येयाः अनन्तान् वारान् अनन्ताः, एवं त्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियसूत्रे अपि भावनीये, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियसूत्रविषया त्वेवं भावना–सकृत् पञ्चेन्द्रियभवं गन्तुकामस्य स्वभावत एवाल्पलोभस्य जघन्यतः एको द्वौ त्रयो वा, शेषस्य तूत्कर्षतः सङ्ख्येयान् वारान् तिर्यक्पञ्चेन्द्रियभवं गन्तुः सङ्ख्येयाः असङ्ख्येयान् वारान् असङ्ख्येयाः अनन्तान् वारान् अनन्ताः, मनुष्यसूत्रे तु पुरस्कृतविषया भावना मूलत एवं–यो नरकभवादुद्वृत्तोऽल्पलोभकषायः सन् मनुष्यभवं प्राप्य लोभसमुद्घातमगत्वा सिद्धिपुरं यास्यति तस्य न सन्ति पुरस्कृता लोभसमुद्घाताः, शेषस्य तु सन्ति, यस्य सन्ति तस्यापि जघन्यत एको द्वौ वा त्रयो वा, ते च एकं द्वौ त्रीन् वा लोभसमुद्घातान् प्राप्य सेत्स्यतो वेदितव्याः, सङ्ख्येयादयः प्राग्वद् भावनीयाः, 'वाणमंतरत्ते जहा असुरकुमारा' इति यथा नैरयिकस्यासुरकुमारत्वे पुरस्कृतविषये सूत्रमुक्तं तथा व्यन्तरेष्वपि वक्तव्यं, किमुक्तं भवति ?–पुरस्कृतचिन्तायामेवं वक्तव्यं—'कस्सइ अत्थि क० नत्थि, जस्स अत्थि सिय संखेज्जा सिय असं० सिय अणंता' इति, नत्वेकोत्तरिका वक्तव्या, व्यन्तराणामप्यसुरकुमाराणामिव जघन्यस्थितावपि सङ्ख्येयानां लोभसमुद्घातानां भावात्, 'जोइसियत्ते' इत्यादि, ज्योतिष्कत्वे अतीता अनन्ताः, अनन्तशो ज्योतिष्कत्वस्य प्राप्त-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

त्वात्, पुरस्कृताः कस्यापि सन्ति कस्यापि न सन्ति, एतत् प्राग्वद् भावनीयं, यस्यापि सन्ति तस्यापि कस्यचिदसङ्ख्येयाः कस्यचिदनन्ताः, न तु जातुचित् सङ्ख्येयाः, ज्योतिष्काणां जघन्यपदेऽप्यसङ्ख्येयवर्षायुष्कतया जघन्यतोऽप्यसङ्ख्येयानां लोभसमुद्घातानां भावात्, लोभबहुलत्वात्तज्जातेः, एवं वैमानिकत्वेऽपि पुरस्कृतचिन्तायां वक्तव्यं। तदेवं स्वस्थाने परस्थाने च लोभसमुद्घातश्चिन्तितः, सम्प्रत्यसुरकुमारस्य तं चिचिन्तयिषुरिदमाह—'एगमेगस्स ण'मित्यादि, एकैकस्य असुरकुमारस्य नैरयिकत्वे लोभसमुद्घाता अतीता अनन्ताः, नैरयिकत्वस्यानन्तशः प्राप्तत्वात्, पुरस्कृताः कस्यचित् सन्ति कस्यचिन्न सन्ति, तत्र योऽसुरकुमारभवादुद्वृत्तो न नरकं याता नापि सकृद् गतोऽपि लोभसमुद्घातं गन्ता तस्य न सन्ति, यस्तु यास्यति तस्य जघन्यत एको द्वौ त्रयो वा उत्कर्षतः सङ्ख्येया असङ्ख्येया अनन्ताः, तत्र सकृन्नरकगामिनः एकादयो नैरयिकाणामिष्टद्रव्यसंयोगाभावतः प्रायो लोभसमुद्घातस्यासम्भवात्, उक्तं च मूलटीकायाम्—"नेरइयाणं लोभसमुग्घाया थोवा चेव भवन्ति, तेसिमिट्ठदव्वसंजोगाभावातो एगादिसंभव" इति, सङ्ख्येयान् वारान् नरकं गन्तुः सङ्ख्येयाः असङ्ख्येयान् वारान् असङ्ख्येया अनन्तान् वारान् अनन्ताः, असुरकुमारस्यासुरकुमारत्वे अतीता अनन्ताः सुप्रतीताः, पुरस्कृताः कस्यापि सन्ति कस्यापि न सन्ति, तत्र योऽसुरकुमारभवे पर्यन्तवर्त्ती न च लोभसमुद्घातं याता नापि तत उद्वृत्तो भूयोऽप्यसुरकुमारत्वं याता किन्त्वनन्तरं पारम्पर्येण वा सेत्स्यति तस्य न सन्ति, यस्य तु सन्ति तस्यापि जघन्यत एको द्वौ वा त्रयो वा उत्कर्षतः सङ्ख्येया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

असङ्ख्येया अनन्ताः, तत्र एकादयः क्षीणायुःशेषाणां तद्भवभाजां भूयस्तथैवानुत्पद्यमानानामवगन्तव्याः, सङ्ख्येयादयो नैरयिकस्येव भावनीयाः, असुरकुमारस्य नागकुमारत्वेऽतीताः प्राग्वत्, पुरस्कृताः कस्यापि सन्ति कस्यापि न सन्ति, तत्र योऽसुरकुमारभवादुद्वृत्तो न नागकुमारभवं गन्ता तस्य न सन्ति, शेषस्य तु सन्ति, यस्यापि सन्ति तस्यापि स्यात् सङ्ख्येयाः स्यादसङ्ख्येयाः स्यादनन्ताः, तत्र सकृन्नागकुमारभवं प्राप्तुकामस्य सङ्ख्येयाः, जघन्यस्थितावपि सङ्ख्येयानां लोभसमुद्घातानां भावात्,असङ्ख्येयान् वारान् प्राप्तुकामस्य असङ्ख्येयाः अनन्तान् वारान् अनन्ताः, एवं यावत् स्तनितकुमारत्वे, पृथिवीकायिकत्वे यावद्वैमानिकत्वे यथा नैरयिकस्य भणितं तथैव भणितव्यं, एवमसुरकुमारस्येव नागकुमारादेरपि तावद्वक्तव्यं यावत्स्तनितकुमारस्य वैमानिकत्वे–वैमानिकत्वविषयं सूत्रं, तच्चैवं—'एगमेगस्स णं भंते ! थणियकुमारस्स वेमाणियत्ते केवइया लोभसमुग्घाया अतीता ?' इत्यादि, एवं 'एगमेगस्स णं भंते ! पुढविकाइयस्स नेरइयत्ते' इत्याद्यपि सूत्रं पूर्वोक्तभावनानुसारेण स्वयं भावनीयं, तदेवं नैरयिकादेरेकत्वविषयाः क्रोधादिसमुद्घाताः प्रत्येकं चतुर्विंशत्या चतुर्विंशतिदण्डकसूत्रैर्विचिन्तिताः, सम्प्रति तानेव नैरयिकादिबहुत्वविषयान् चिचिन्तयिषुरिदमाह—'नेरइयाणं भंते' इत्यादि, नैरयिकाणां भदन्त ! नैरयिकत्वे कियन्तः क्रोधसमुद्घाता अतीताः ?, भगवानाह—गौतम ! अनन्ताः, अनन्तशो नैरयिकत्वस्य सर्वजीवैः प्राप्तत्वात्, कियन्तः पुरस्कृताः ?, गौतम ! अनन्ताः, प्रश्नसमयभाविनां मध्ये बहूनामनन्तशो नैरयिकत्वं प्राप्तुकामत्वात् 'एव'मित्यादि,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं–नैरयिकगतेनाभिलापप्रकारेण चतुर्विंशत्या चतुर्विंशतिदण्डकसूत्रैर्निरन्तरं तावद्वक्तव्यं यावद्वैमानिकस्य वैमानिकत्वे—वैमानिकविषयं सूत्रं, तच्चैवं–'वेमाणियाणं भंते ! वेमाणियत्ते केवइया कोहसमुग्घाया अतीता ?, गो० ! अणंता, केवइया पुरेक्खडा ?, गो० ! अणंता' भावना प्राग्वत्, यथा च क्रोधसमुद्घाताः सर्वेषु जीवेषु स्वस्थाने परस्थाने चातीताः पुरस्कृताश्चानन्तत्वेनाभिहिताः तथा मानादिसमुद्घाता अपि वाच्याः, तथा चाह—'एव'मित्यादि, एवं–क्रोधसमुद्घातगतेन प्रकारेण चत्वारोऽपि समुद्घाताः सर्वत्रापि स्वस्थानपरस्थानेषु वाच्याः, यावल्लोभसमुद्घातो वैमानिकत्वविषय उक्तो भवति, स चैवं—'वेमाणियाणं भंते ! वेमाणियत्ते केवइया लोभसमुग्घाया अतीता ?, गो० ! अणंता, केवइया पुरेक्खडा ?, गो० ! अणंता' सुगमं । तदेवं नैरयिकादिबहुत्वविषया अपि क्रोधादिसमुद्घाताः प्रत्येकं चतुर्विंशत्या चतुर्विंशतिदण्डकसूत्रैश्चिन्तिताः,सम्प्रति क्रोधादिसमुद्घातैः शेषसमुद्घातैश्च समवहतानामसमवहतानां च परस्परमल्पबहुत्वमभिधित्सुः प्रथमतः सामान्यतो जीवविषयं तावदाह—

एतेसि णं भंते ! जीवाणं कोहसमुग्घातेणं माणसमुग्घातेणं मायासमुग्घातेणं लोभसमुग्घातेणं य समोहयाणं अकसायसमुग्घातेणं समोहयाणं असमोहयाण य कयरे२हिंतो अप्पा वा ४ ?, गो० ! सव्वत्थोवा जीवा अकसायसमुग्घाएणं समो०, माणसमुग्घाएणं समोहया अणंत०, कोहस० समो० विसेसाहिया मायासमुग्घाएणं स० विसे० लोभसमु० स० वि० असमोहया संखेज्जगुणा, एतेसि णं भंते ! नेरइयाणं कोहस० माणस० मायास० लोभस० समोहयाणं असमोहयाण य

३६ समुद्घातपदे क्रोधादिसमुद्घाताल्पबहुत्वं सू. ३४०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कयरे२हिंतो अप्पा वा ४ ?, गो० ! सव्वत्थोवा नेरइया लोभसमुग्घाएणं समोहया मायास० स० संखेज्ज० माणस० स० संखे० कोहस० संखे० असमोहया संखे०, असुरकुमाराणं पुच्छा, गो० ! सव्वत्थोवा असुरकुमाराणं कोहस० समो० माणसमुग्घाएणं स० संखे० मायास० स० सं० लोभस० समो० संखे० असमोहया संखेज्जगुणा, एवं सव्वदेवा जाव वेमाणिया, पुढविकाइयाणं पुच्छा, गो० ! सव्वत्थोवा पुढविकाइया माणसमुग्घाएणं समोहया कोहसमु० स० विसे० मायासमु० स० विसे० लोभस० स० विसे० असमो० संखे, एवं जाव पंचिंदियतिरिक्खजोणिया, मणुस्सा जहा जीवा, णवरं माणसमु० स० असं० (सूत्रं ३४०)

'एएसि ण'मित्यादि, एतेषां भदन्त ! जीवानां क्रोधसमुद्घातेन मानसमुद्घातेन मायासमुद्घातेन लोभसमुद्घातेन च समवहतानां 'अकषायेण'ति कषायव्यतिरेकेण शेषेण समुद्घातेन समवहतानामसमवहतानां च कतरे कतरेभ्यः अल्पा वा बहवो वा 'अर्थवशाद्विभक्तिपरिणाम'इति न्यायात् पञ्चम्याः स्थाने तृतीयापरिणामनात्तु कतरैः कतरैस्तुल्या वा, तथा कतरे२भ्यो विशेषाधिकाः, एवं गौतमेन पृष्टे भगवानाह—गौतम ! सर्वस्तोका जीवा अकषायसमुद्घातेन–कषायव्यतिरिक्तेन शेषवेदनादिसमुद्घातषट्केन समवहताः,कषायव्यतिरिक्तसमुद्घातसमुद्घता हि क्वचित् कदाचित् केचिदेव प्रतिनियता लभ्यन्ते, ते चोत्कर्षपदेऽपि कषायसमुद्घातसमवहतापेक्षया अनन्तभागे वर्त्तन्ते, ततः स्तोकाः, तेभ्यो मानसमुद्घातसमवहता अनन्तगुणाः, अनन्तानां वनस्पतिजीवानां पूर्वभवसं-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्कारानुवृत्तितो मानसमुद्घाते वर्त्तमानानां प्राप्यमाणत्वात्, तेभ्यः क्रोधसमुद्घातेन समवहता विशेषाधिकाः, मानापेक्षया क्रोधिनां प्रचुरत्वात्, तेभ्यो मायासमुद्घातेन समवहता विशेषाधिकाः, क्रोध्यपेक्षया मायाविनां प्रचुरत्वात्, तेभ्योऽपि लोभसमुद्घातेन समवहता विशेषाधिकाः, मायाविभ्यो लोभवतामतिप्रभूतत्वात्, तेभ्योऽपि केनाप्यसमवहता सङ्ख्येयगुणाः, चतसृष्वपि गतिषु प्रत्येकं समवहतेभ्योऽसमवहतानां सदा सङ्ख्येयगुणतया प्राप्यमाणत्वात्, सिद्धास्त्वेकेन्द्रियापेक्षयानन्तभागवर्त्तिन इति ते सन्तोऽपि न विवक्षिताः, एतदेवाल्पबहुत्वं चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण चिन्तयन्नाह—'एएसि ण'मित्यादि सुगमं, नवरं सर्वस्तोका नैरयिका लोभसमुद्घातेन समवहता इति, नैरयिकाणामिष्टद्रव्यसंयोगाभावात् प्रायो लोभसमुद्घातस्तावन्नोपपद्यते, येषामपि च केषाञ्चिद्भवति ते कतिपया इति शेषसमुद्घातसमवहतापेक्षया सर्वस्तोकाः, असुरकुमारविषयाल्पबहुत्वचिन्तायां सर्वस्तोकाः क्रोधसमुद्घातसमुद्धता इति, देवा हि स्वभावतो लोभबहुलास्ततोऽल्पतरा मानादिमन्तः ततोऽपि कदाचित्कतिपये क्रोधवन्त इति शेषसमुद्घातसमवहतापेक्षया सर्वस्तोकाः, 'एवं सव्वदेवा जाव वेमाणिया' इति एवं—असुरकुमारगतेनाल्पबहुत्वप्रकारेण सर्वे देवा नागकुमारादयस्तावद्वक्तव्याः यावद्वैमानिकाः, पृथिवीकायिकचिन्तायां सामान्यतो जीवपदे इव भावना भावनीया, समानत्वात्, 'एवं जावे'त्यादि, एवं—पृथिवीकायिकोक्तेन प्रकारेण तावद्वक्तव्यं यावत् तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाः, मनुष्या यथा जीवाः, नवरमकषायसमुद्घातसमवहतापेक्षया मानसमुद्घातेन समवहता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३४१]

दीप अनुक्रम [६११]

असङ्ख्येयगुणा वक्तव्याः । सम्प्रति कति छाद्मस्थिकाः समुद्घाता इति निरूपणार्थमाह—

कइ णं भंते ! छाउमत्थिया समुग्घाया पं० ?, गो० ! छ छाउमत्थिया स० पं०, तं०—वेदणास० कसायस० मारणंतियस० वेउव्वियस० तेयास० आहारगसमुग्घाते, नेरइयाणं भंते ! कति छाउमत्थिया स० पं० ?, गो० ! चत्तारि छाउमत्थिया स० पं०, तं०—वेदणास० कसायस० मारणंतियस० वेउव्वियस०, असुरकुमाराणं पुच्छा, गो० ! पंच छाउ० समु० पं०, तं०—वेदणासमु० कसायसमु० मारणंतियस० वेउव्वियस० तेयगसमु०, एगिंदियविगलिंदियाणं पुच्छा, गो० ! तिण्णि छाउ० समु० पं०, तं०—वेदणासमु० कसायस० मारणंतियस०, णवरं वाउकाइयाणं चत्तारि स० पं०, तं०—वेदणास० कसायस० मारणंतियस० वेउव्वियस०, पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा, गो० ! पंच० स० पं०, तं०—वेदणास० कसायस० मारणंतियस० वेउव्वियस० तेयगस०, मणूसाणं कति छाउमत्थिया समु० पं० ?, गो० ! छ छाउमत्थिया स० पं०, तं०—वेदणास० कसायस० मारणंतियस० वेउव्वियस० तेयगस० आहारगस० (सूत्रं ३४१)

'कइ णं भंते !' इत्यादि सुगमं, अथ कति केषां छाद्मस्थिकाः समुद्घाता इति चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण निरूपयति—'नेरइयाण'मित्यादि, नैरयिकाणामाद्याश्चत्वारो वेदनादिसमुद्घाताः, तेषां तेजोलब्ध्याहारकलब्ध्यभावतस्तैजससमुद्घाताहारकसमुद्घातासम्भवात्, असुरकुमारादीनां सर्वेषामपि देवानामाहारकसमुद्घातवर्जाः शेषाः पञ्च समुद्घाताः, तेषां तेजोलब्धिसम्भवात् तैजससमुद्घातस्यापि सम्भवात्, यस्त्वाहारकसमुद्घातः स तेषां न

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्भवति, चतुर्दशपूर्वाधिगमाभावतो भवप्रत्ययाच्च तेषामाहारकलब्ध्यभावात्, वायुकायवर्जैकेन्द्रियविकलेन्द्रियाणामाद्या वेदनाकषायमरणलक्षणास्त्रयः समुद्घाताः, तेषां वैक्रियाहारकतेजोलब्ध्यभावतस्तत्समुद्घातासम्भवात्, वायुकायिकानां पूर्वे त्रयो वैक्रियसमुद्घातसहिताश्चत्वारः समुद्घाताः, तेषां बादरपर्याप्तानां वैक्रियलब्धिसम्भवतो वैक्रियसमुद्घातस्यापि सम्भवात्, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानामाहारकसमुद्घातवर्जाः शेषाः पञ्च छाद्मस्थिकाः समुद्घाताः, यस्त्वाहारकसमुद्घातः स तेषां न सम्भवति, चतुर्दशपूर्वाधिगमाभावतस्तेषामाहारकलब्ध्यसम्भवात्, मनुष्याणां षडपि, मनुष्येषु सर्वभावसम्भवात् । तदेवं यति येषां छाद्मस्थिकाः समुद्घातास्तति तेषां निरूपिताः, सम्प्रति यस्मिन् समुद्घाते वर्त्तमानो यावत् क्षेत्रं समुद्घातवशतस्तैस्तैः पुद्गलैर्व्याप्नोति तदेतन्निरूपयति—

जीवे णं भंते ! वेदणासमुग्घाएणं समोहते समोहणित्ता जे पोग्गले निच्छुभति तेहि णं भंते ! पोग्गलेहिं केवइते खेत्ते अफुण्णे केवतिते खेत्ते फुडे ?, गो० ! सरीरप्पमाणमेत्ते विक्खंभबाहल्लेणं नियमा छद्दिसिं एवतिते खेत्ते अफुण्णे एवतितें खेत्ते फुडे, से णं भंते ! खित्ते केवतिकालस्स अप्फुडे केव० फुडे ?, गो० ! एगसमइएण वा दुसमइएण वा तिसमइएण वा विग्गहेणं एवतिकालस्स अफुण्णे एवइयकालस्स फुडे, ते णं भंते ! पोग्गले केवतिकालस्स निच्छुभति ?, गो० ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तस्स उक्को० वि० अंतो०, ते णं भंते ! पोग्गला निच्छूढा समाणा जातिं तत्थ पाणातिं भूयातिं जीवातिं सत्तातिं अभिहणंति वत्तेंति लेसेंति संघाएंति संघट्टेंति परितावेंति किलामेंति उद्दवेंति तेहिंतो णं भंते ! से जीवे कतिकिरिए ?,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३४२]

दीप अनुक्रम [६१२]

गो० ! सिय तिकिरिए सिय चउकिरिए सिय पंचकिरिए, ते णं भंते ! जीवा तातो जीवाओ कतिकिरिया ?, गो० ! सिय तिकिरिया सिय चउकिरिया सिय पंचकिरिया, से णं भंते ! जीवे ते य जीवा अण्णेसिं जीवाणं परंपराघाएणं कतिकिरिया ?, गो० ! तिकिरियावि चउकिरियावि पंचकिरियावि, नेरइए णं भंते ! वेदणासमुग्घाएणं समोहते, एवं जहेव जीवे, णवरं नेरइयाभिलावो, एवं निरवसेसं जाव वेमाणिते । एवं कसायसमुग्घातोवि भाणितव्वो । जीवे णं भंते ! मारणंतियसमुग्घातेणं समोहणइ समोहणित्ता जे पोग्गले णिच्छुभति तेहि णं भंते ! पोग्गलेहिं केवतिते खेत्ते अप्फुण्णे केवतिते खेत्ते फुडे ?, गो० ! सरीरप्पमाणमेत्ते विक्खंभबाहल्लेणं आयामेणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं उक्कोसेणं असंखेज्जातिं जोयणातिं एगदिसिं एवतिते खेत्ते अफुण्णे एवतिए खेत्ते फुडे, से णं भंते ! खेत्ते केवतिकालस्स अफुण्णे केवतिकालस्स फुडे ?, गो० ! एगसमइएण वा दुसमइएण वा तिसमइएण वा चउसमइएण वा विग्गहेणं एवतिकालस्स अफुण्णे एवतिकालस्स फुडे, सेसं तं चेव जाव पंचकि०, एवं नेरइएवि, णवरं आयामेणं जहण्णेणं साइरेगं जोयणसहस्सं उक्को० असंखेज्जातिं जोअणातिं, एगदिसिं एवतिते खेत्ते अप्फुण्णे एवतिते खित्ते फुडे, विग्गहेणं एगसमइएण वा दुसमइएण वा तिसमइएण वा चउसमतिएण वा भन्नति, सेसं तं चेव जाव पंचकिरियावि, असुरकुमारस्स जहा जीवपदे, णवरं विग्गहो तिसमइओ जहा नेरइयस्स, सेसं तं चेव जहा असुरकुमारे, एवं जाव वेमाणिते, णवरं एगिंदिये जहा जीवे निरवसेसं (सूत्रं ३४२)

'जीवे णं भंते !' इत्यादि, जीवो णमिति वाक्यालङ्कारे–वेदनासमुद्घाते वर्त्तमानः तस्मिन् समवहतो भवति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समवहत्य च यान् पुद्गलान् वेदनायोग्यान् स्वशरीरान्तर्गतान् 'निच्छुभइ' इति विक्षिपति आत्मविश्लिष्टान् करोतीत्यर्थः, 'तेहि ण'मिति तैः पुद्गलैः कियत् क्षेत्रमापूर्णं, आपूर्णत्वमपान्तराले कियदाकाशप्रदेशासंस्पर्शनेऽपि व्यवहारत उच्यते तत आह—कियत् क्षेत्रं स्पृष्टं–प्रतिप्रदेशापूरणेन व्याप्तं, एवं गौतमेन प्रश्ने कृते सति भगवानाह—'सरीरे'त्यादि नियमात्—नियमेन 'छद्दिसिं'ति षड् दिशो यत्रापूरणे स्पर्शने वा षड्दिक् तद्यथा भवति एवं विष्कम्भतो—विस्तरेण बाहल्यतः–पिण्डतः शरीरप्रमाणमात्रं, यावत्प्रमाणः स्वशरीरस्य विष्कम्भो यावत्प्रमाणं च बाहल्यं एतावन्मात्रमापूर्णं स्पृष्टं चेति वाक्यशेषः, तदेव निगमनद्वारेणाह—'एवइए खेत्ते अफुण्णे एवइए खेत्ते फुडे' इति, इह वेदनासमुद्घातो वेदनातिशयात्, वेदनातिशयश्च लोकनिष्कुटेषु जीवानां न भवति, निरुपद्रवस्थानवर्त्तित्वात् तेषां, किन्तु त्रसनाड्या अन्तः, तत्र परोदीरणसम्भवात्, तत्र च षड्दिक्सम्भव इति नियमाच्छद्दिशिमित्युक्तं, अन्यथा 'सिय तिदिसिं सिय चउदिसिं सिय पंचदिसि'मित्याद्युच्येत, अथ स्वशरीरप्रमाणविष्कम्भबाहल्यमेव क्षेत्रमापूर्णं स्पृष्टं च विग्रहगतौ जीवस्य गतिमधिकृत्य कियद्दूरं यावद्भवति कियन्तं च कालमित्येतन्निरूपणार्थमाह—'से णं भंते !' इत्यादि, नपुंसकत्वे पुंस्त्वं प्राकृतत्वात्, तत्—अनन्तरोक्तप्रमाणं णमिति प्राग्वत् भदन्त ! क्षेत्रं कालस्स इति–प्राकृतत्वात् तृतीयार्थे षष्ठी कियता कालेन पूर्णं कियता कालेन स्पृष्टं, किमुक्तं भवति ?–कियन्तं कालं यावत् स्वशरीरप्रमाणविष्कम्भबाहल्यं क्षेत्रं निरन्तरं विग्रहगतौ जीवस्य गतिमधिकृत्यापूर्णं स्पृष्टं च

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लभ्यते इति ?, भगवानाह—गौतम ! एकसमयेन वा द्विसमयेन वा त्रिसमयेन वा विग्रहेण, किमुक्तं भवति ?—एकसमयेन वा द्विसमयेन वा त्रिसमयेन वा विग्रहेण यावन्मात्रं क्षेत्रं व्याप्यते इयद्दूरं यावत् स्वशरीरप्रमाणविष्कम्भबाहल्यं क्षेत्रं वेदनाजननयोग्यैः पुद्गलैरापूर्णं—भृतं जीवस्य गतिमधिकृत्याव्याप्यते, तत एतद्गतमुत्कर्षतस्त्रिसामयिकेन विग्रहेण यावन्मात्रं क्षेत्रमभिव्याप्यते एतावदात्मविश्लिष्टैर्वेदनाजननयोग्यैः पुद्गलैरापूर्णं लभ्यते, इह चतुःसामयिकः पञ्चसामयिकश्च विग्रहो यद्यपि सम्भवति तथापि वेदनासमुद्घातः प्रायः परोदीरितवेदनावशत उपजायते, परोदीरिता च वेदना त्रसनाड्यां व्यवस्थितस्य न बहिः, त्रसनाडीव्यवस्थितस्य च विग्रह उत्कर्षतोऽपि त्रिसामयिक इति उत्कर्षतोऽपि त्रिसामयिकेन विग्रहेणेत्युक्तं, न चतुःसामयिकेन पञ्चसामयिकेन चेति, उपसंहारवाक्यमाह—'एवइयकालस्स अफुण्णे एवइयकालस्स फुडे' एतावता उत्कर्षतोऽपि त्रिसमयप्रमाणेनेत्यर्थः कालेनापूर्णमेतावता कालेन स्पृष्टं, किमुक्तं भवति ?–विग्रहगतावुत्कर्षतः त्रीन् समयान् यावत् त्रिभिश्च समयैर्यावन्मात्रं व्याप्यते इयन्तीं सीमामभिव्याप्य स्वशरीरप्रमाणविष्कम्भबाहल्यं क्षेत्रं वेदनाजननयोग्यैः पुद्गलैरापूर्णं भृतं च जीवस्य गतिमधिकृत्य व्याप्यते, अथवा 'केवइय कालस्स'त्ति षष्ठ्येव व्याख्येया, ततः स्वशरीरप्रमाणविष्कम्भबाहल्यं क्षेत्रं वेदनाजननयोग्यैः पुद्गलैरापूर्णं भृतं च जीवस्य विग्रहगतिमधिकृत्य कियतः कालस्य सम्बन्धि, कियन्तं कालं यावदवाप्यते इत्यर्थः, भगवानाह–एकसमयेन द्विसमयेन त्रिसमयेन वा विग्रहेणापूर्णं स्पृष्टं च लभ्यते इति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वाक्यशेषः, तत एतावता उत्कर्षतः त्रिसमयप्रमाणस्य कालस्य सम्बन्धि यथोक्तप्रमाणं क्षेत्रं वेदनाजननयोग्यैः पुद्गलैरापूर्णमेतावता कालस्य सम्बन्धि स्पृष्टमिति । सम्प्रति यावन्तं कालं वेदनाजननयोग्यान् पुद्गलान् विक्षिपति तावत्कालप्रमाणं प्रतिपादनार्थमाह–'ते णं भंते !' इत्यादि, तान् वेदनाजननयोग्यान् पुद्गलान् णमिति वाक्यालङ्कारे भदन्त !–परमकल्याणयोगिन् परमसुखयोगिन् वा पुद्गलान् कियतः कालस्य सम्बन्धिनो विक्षिपति ?, कियत्कालं वेदनाजननयोग्यान् विक्षिपतीति भावः, भगवानाह–जघन्येनाप्यन्तर्मुहूर्त्तस्य सम्बन्धिन उत्कर्षतोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तस्य, केवलं मनाक् बृहत्तरस्य सम्बन्धिनः विक्षिपति, किमुक्तं भवति ?–ये पुद्गला जघन्यत उत्कर्षतश्चान्तर्मुहूर्त्तं यावत् वेदनाजननसमर्थाः तान् तथा २ वेदनार्त्तः सन् स्वशरीरगतान् स्वशरीराद्बहिरात्मप्रदेशेभ्योऽपि विश्लिष्टान् विक्षिपति, यथाऽत्यन्तदाहज्वरपीडितः सन् सूक्ष्मपुद्गलान्, प्रत्यक्षसिद्धं चैतदिति, 'ते णं भंते !' इत्यादि, ते णमिति पूर्ववत् भदन्त ! पुद्गला विक्षिप्ताः सन्तः शरीरसम्बद्धा असम्बद्धा वा 'जाइं तत्थे'त्यादि प्राकृतत्वात् पुंस्त्वेऽपि नपुंसकता यान् तत्र वेदनासमुद्घातगतपुरुषसंस्पृष्टे क्षेत्रे प्राणान्–द्वित्रिचतुरिन्द्रियान् शङ्खकीटिकामक्षिकादीन् भूतान्–वनस्पतीन् जीवान्–पञ्चेन्द्रियान् गृहगोधिकासर्प्पादीन् सत्त्वान्–शेषपृथिवीकायिकादीन् अभिघ्नन्ति–अभिमुखमागच्छन्तो घ्नन्ति वर्त्तयन्ति–आवर्त्तपतितान् कुर्वन्ति लेशयन्ति–मनाक् स्पृशन्ति सङ्घातयन्ति–परस्परं तान् सङ्घातमापन्नान् कुर्वन्ति सङ्घट्टयन्ति—अतीव सङ्घातविशेषमापादितान् कुर्वन्ति परितापयन्ति–पीडयन्ति क्लमय-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

न्ति–मूर्च्छापन्नान् कुर्वन्ति अपद्रावयन्ति–जीवितात् व्यपरोपयन्ति, तेभ्यः पुद्गलेभ्यः तेषां प्राणादीनां विषये भदन्त ! सः–अधिकृतो वेदनासमुद्घातगतो जीवः कतिक्रियः प्रज्ञप्तः ?, भगवानाह—गौतम ! 'सिय तिकिरिए' इति, स्यात्शब्दः कथञ्चित्पर्यायः, कथञ्चित् कदाचित् काँश्चिच्च जीवानधिकृत्येत्यर्थः त्रिक्रियः, किमुक्तं भवति ?—यदा न केषाञ्चित् सर्वथा परितापनं जीविताद् व्यपरोपणं वा करोति तदा सर्वथा त्रिक्रिय एव, यदापि केषाञ्चित्परितापं मरणं वाऽऽपादयति तदापि येषां नाबाधामुत्पादयति तदपेक्षया त्रिक्रियः, 'सिय चउकिरिए' इति केषाञ्चित्परितापकरणे तदपेक्षया चतुष्क्रिय इति, केषाञ्चिदपद्रावणे तदपेक्षया पञ्चक्रिय इति, सम्प्रति तमेवाधिकृतं वेदनासमुद्घातगतं जीवमधिकृत्य तेषां वेदनासमुद्घातगतपुरुषपुद्गलस्पृष्टानां जीवानां क्रिया निरूपयति—'ते णं भंते !' इत्यादि, ते–वेदनासमुद्घातगतपुद्गलस्पृष्टा णमिति पूर्ववत् भदन्त ! जीवास्ततो–वेदनासमुद्घातपरिगतान् जीवान् अत्र 'स्थानियपः कर्माधारयोः' इति स्थानिनं यपमधिकृत्य पञ्चमीयं, अयमर्थः–तं वेदनासमुद्घातपरिगतं जीवमधिकृत्य कतिक्रियाः प्रज्ञप्ताः ?, भगवानाह—गौतम ! स्यात्त्रिक्रियाः यदा न काञ्चित्तस्याबाधामापादयितुं प्रभविष्णवः, स्याच्चतुष्क्रिया यदा तं परितापयन्ति, दृश्यन्ते शरीरेण स्पृश्यमानाः परितापयन्तो वृश्चिकादयः, स्यात् पञ्चक्रियाः ये तं जीवितादपि व्यपरोपयन्ति, सिद्धाश्च प्रत्यक्षतः शरीरेण स्पृश्यमाना जीविताच्यावयन्तः सर्पादय इति, सम्प्रति तेन वेदनासमुद्घातगतेन जीवेन व्यापाद्यमानैर्जीवैर्येऽन्ये जीवा व्यापाद्यन्ते ये चान्यैर्जी-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वैर्व्यापाद्यमाना वेदनासमुद्घातगतेन जीवेन व्यापाद्यन्ते तानधिकृत्य तस्य वेदनासमुद्घातपरिगतस्य तेषां च समुद्घातगतजीवसम्बन्धिपुद्गलस्पृष्टानां जीवानां क्रियानिरूपणार्थमाह—'से णं भंते ! जीवे ते य जीवा' इत्यादि, सः—अधिकृतो वेदनासमुद्घातगतो जीवः ते च वेदनासमुद्घातपरिगतजीवसम्बन्धिपुद्गलस्पृष्टाः अन्येषां जीवानामुपदर्शितेन प्रकारेण यः परम्पराघातस्तेन परम्पराघातेन कतिक्रियाः प्रज्ञप्ताः ?, भगवानाह—गौतम ! स्यात् त्रिक्रिय इत्यादि पूर्ववत् भावयितव्यः, एनमेव वेदनासमुद्घातमुक्तेन प्रकारेण नैरयिकादिषु चतुर्विंशतिस्थानेषु चिन्तयन्नाह—'नेरइए णं भंते !' इत्यादि, एवं—उक्तेन प्रकारेण यथैव प्राक् सामान्यतो जीवो वेदनासमुद्घातमधिकृत्य चिन्तितः तथा नैरयिकोऽपि चिन्तयितव्यः, नवरं जीवाभिलापस्थाने नैरयिकाभिलापः कर्त्तव्यो, यथा 'नेरइए णं भंते ! वेयणासमुग्घाएणं समोहए समोहणित्ता जे पोग्गले निच्छुभइ' इत्यादि, 'एवं निरवसेसं जाव वेमाणिए' इति एवं—नैरयिकोक्तेन प्रकारेण शेषेष्वपि स्थानेषु स्वस्वाभिलापपूर्वकं निरवशेषं तावद्वक्तव्यं यावद्वैमानिकाः—वैमानिकाभिलापः। तदेवमुक्तो वेदनासमुद्घातः, सम्प्रति कषायसमुद्घातं समानवक्तव्यत्वादतिदेशतोऽभिधित्सुराह—'एवं कसायसमुग्घाओऽवि भाणियव्वो' इति, एवं—वेदनासमुद्घातगतेन प्रकारेण सामान्यतो जीवपदे चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण च कषायसमुद्घातोऽपि वक्तव्यः, स चैवम्—'जीवे णं भंते ! कसायसमुग्घाएणं समोहए समोहणित्ता जे पोग्गले निच्छुभइ' यान् पुद्गलान् शरीरान्तर्गतान् कषायसमुद्घातवशसमुत्थप्रयत्नविशेषतः स्वशरीराद्-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बहिरात्मप्रदेशेभ्योऽपि विश्लिष्टान् करोति, 'तेहि णं भंते ! पोग्गलेहिं केवइए खेत्ते अप्फुण्णे केवइए खित्ते फुडे?, गो० ! सरीरप्पमाणमेत्ते विक्खंभबाहल्लेणं नियमा छद्दिसिं एवइए खेत्ते अफुण्णे एवइए खेत्ते फुडे' कषायसमुद्घातो हि प्रथमं उद्भवति त्रसजीवानां, तेषामेव तीव्रतराध्यवसायसम्भवाद्, एकेन्द्रियाणां तु पूर्वभवानुवृत्तितः, त्रसजीवाश्च त्रसनाड्यां न ततो बहिः, त्रसनाड्यां च व्यवस्थितः स्वशरीरप्रमाणं विष्कम्भबाहल्यं क्षेत्रमात्मविश्लिष्टैः पुद्गलैः भृतं षड्दिक्त्वमवश्यमुपपद्यते इति 'नियमा छद्दिसि'मित्युक्तम्, 'एवइए खेत्ते अफुण्णे एवइए खेत्ते फुडे' इत्यादि सर्वं समानं। सम्प्रति मरणसमुद्घातमभिधित्सुराह—'जीवे णं भंते ! मारणंतियसमुग्घाएण'मित्यादि, इति पूर्ववत्, भदन्त ! कश्चिन्मारणान्तिकसमुद्घातेन समवहतः समवहत्य च यान् पुद्गलान् तैजसादिशरीरान्तर्गतान् 'निच्छुभइ' इति विक्षिपति, आत्मप्रदेशेभ्यो विश्लिष्टान् करोति तैर्भदन्त ! पुद्गलैः कियत् क्षेत्रमापूर्णं कियत् क्षेत्रं भृतम्?, भगवानाह–गौतम ! विष्कम्भबाहल्यतः शरीरप्रमाणमायामतो जघन्यतः स्वशरीरातिरेकाङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रं यदा तावन्मात्रे क्षेत्रे उत्पद्यते उत्कर्षतोऽसङ्ख्येयानि योजनानि एतच्च यदा तावति क्षेत्रे अन्यथा वा द्रष्टव्यम्, एकदिशि–एकस्यां दिशि न तु विदिशि स्वभावतो जीवप्रदेशानां दिशि गमनसम्भवात्, एतावत् क्षेत्रमापूर्णमेतावत् क्षेत्रं स्पृष्टं, जघन्यतः उत्कर्षतो वा आत्मप्रदेशैरपि एतावत् क्षेत्रस्य पूरणसम्भवात्, सम्प्रति विग्रहगतिमधिकृत्यापूरणविषयं स्पर्शनविषयं च कालप्रमाणमाह—'से णं भंते !' इत्यादि, तत् उत्कर्षेणायामतोऽनन्तरोक्तप्रमाणं भद-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

न्त ! क्षेत्रं विग्रहगतिमधिकृत्य 'केवइयकालस्स'त्ति तृतीयार्थे षष्ठ्या भावात् कियता कालेनापूर्णं कियता कालेन स्पृष्टं, किमुक्तं भवति ?—विग्रहगतिमधिकृत्य कियता कालेनोत्कर्षतोऽसङ्ख्येययोजनप्रमाणं क्षेत्रमायामतः पुद्गलैरापूर्णं स्पृष्टं भवतीति, भगवानाह—गौतम ! एकसमयेन वा द्विसमयेन वा त्रिसमयेन वा चतुःसमयेन वा विग्रहेणापूर्णं स्पृष्टं, इह पञ्चसामयिकोऽपि विग्रहः सम्भवति परं स कादाचित्क एव इति न विवक्षितः, इयमत्र भावना—उत्कृष्टपदे आयामतोऽसङ्ख्येययोजनप्रमाणं क्षेत्रं विग्रहगतिमधिकृत्योत्कर्षतः चतुर्भिः समयैरापूर्णं स्पृष्टं वा भवतीति, अथ कथं चतुःसामयिकः पञ्चसामयिको वा विग्रहः सम्भवति ?, उच्यते, त्रसनाड्या बहिरधस्तनभागादुपरितने भागे यद्वोपरितनभागादधस्तने भागे समुत्पद्यमानो जीवो विदिशो वा दिशि दिशो वा विदिशि यदोत्पद्यते तदा एकेन समयेन त्रसनाडीं प्रविशति द्वितीयेनोपरि अधो वा गमनं तृतीयेन बहिर्निःसरणं चतुर्थेन दिशि उत्पत्तिदेशप्राप्तिः, अयं चतुःसामयिको विग्रहः, एवं पञ्चसामयिकस्तु त्रसनाड्या बहिरेव विदिशो विदिशि उत्पत्तौ लभ्यते, तद्यथा—प्रथमसमये त्रसनाड्या बहिरेव विदिशो दिशि गमनं द्वितीये त्रसनाड्या मध्ये प्रवेशः तृतीये उपर्यधो वा गमनं चतुर्थे बहिर्निस्सरणं पञ्चमे विदिश्युत्पत्तिदेशगमनमिति, उपसंहारमाह—'एवइयकालस्स अप्फुण्णे एवइयकालस्स फुडे' इति एतावता कालेनापूर्णमेतावता कालेन स्पृष्टमिति, 'सेसं तं चेव जाव पंचकिरिए' इति अत ऊर्द्धं शेषं तदेव सूत्रं—'ते णं भंते ! पुग्गला निच्छूढा समाणा जाइं तत्थ पाणाइं इत्यादि यावत्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३४२]

दीप अनुक्रम [६१२]

पंचकिरिया' इति पदं, तदेवं सामान्यतो जीवपदे मारणान्तिकसमुद्घातश्चिन्तितः, सम्प्रति एनमेव चतुर्विंशति-दण्डककमेण चिन्तयन् प्रथमतो नैरयिकातिदेशमाह—'एव'मित्यादि, एवं—सामान्यतो जीवपद इव नैरयिकेऽपि वक्तव्यं, नवरमयं विशेषः—सामान्यतो जीवपदे क्षेत्रमायामतो जघन्येनाङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रमुक्तं इह तु जघन्यतः सातिरेकं योजनसहस्रं, किमत्र कारणमिति चेत् ?, उच्यते, इह नैरयिकाः नरकादुद्वृत्ताः स्वभावत एव पञ्चेन्द्रिय-तिर्यक्षु मध्ये उत्पद्यन्ते मनुष्येषु वा नान्यत्र, सर्वजघन्यचिन्ता चात्र क्रियते, ततो यदा पातालकलशसमीपवर्त्ती नैरयिकः पातालकलशमध्ये द्वितीये तृतीये वा त्रिभागे मत्स्यतयोत्पद्यते तदा पातालकलशठिक्करिकाया योजनस-हस्रमानत्वात् यथोक्तं जघन्यमानं नातोऽपि न्यूनतरं कथंचनेति, उत्कर्षतोऽसङ्ख्येयानि योजनानि, तानि सप्तम-पृथिवीगतनारकापेक्षया भावनीयानि, अत्रैवोपसंहारमाह—'एगदिसिं एवइए' इत्यादि, एकस्यां दिशि जघन्यत उत्कर्षतश्च एतावत्—अनन्तरोक्तप्रमाणं क्षेत्रमापूर्णमेतावत् क्षेत्रं स्पृष्टं, विग्रहगतिमधिकृत्य विशेषमाह—'विग्गहे-णे'त्यादि, विग्रहेणापूर्णं स्पृष्टं वा वक्तव्यमेकसामयिकेन द्विसामयिकेन त्रिसामयिकेन वा, नन्वेतत् सामान्यतो जीवपदेऽप्युक्तं तत्कोऽत्र विशेषस्तत आह—'नवरं चउसमइएण वा ण भन्नइ' इति नवरमत्र सामान्यजीवपद इव चतुःसामयिकेनेति न भण्यते, नैरयिकाणामुत्कर्षतोऽपि विग्रहस्य त्रिसामयिकत्वात्, ते च त्रयः समया एवं भवन्ति—इह कश्चिन्नैरयिको वायव्यां दिशि वर्त्तमानो भरतक्षेत्रे पूर्वस्यां दिशि तिर्यक्पञ्चेन्द्रियतया मनुष्यतया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३४२]

दीप अनुक्रम [६१२]

वोत्पित्सुः प्रथमसमये ऊर्द्धमागच्छति द्वितीयसमये वायव्या दिशः पश्चिमदिशं तृतीये ततः पूर्वदिशमिति, एवमसुरकुमारादिष्वपि यथायोगं त्रिसमयविग्रहभावना कार्या, 'सेसं तं चेव जाव पंचकिरियावि' इति शेषं सूत्रं तदेव वेदनासमुद्घातगतं, 'ते णं भंते! पोग्गला केवइया कालस्स निच्छुभंति ?, गो० ! जहन्नेणवि अंतो० उक्को० अंतोमुहुत्तस्से'त्यादि तावद्वक्तव्यं यावदन्तिमं पदं 'पंचकिरियावि' इति, असुरकुमारविषये अतिदेशमाह—'असुरकुमारस्स जहा जीवपदे' इति यथा सामान्यतो जीवपदेऽभिहितं तथा असुरकुमारस्याप्यभिधातव्यं, एतावता किमुक्तं भवति ?—यथा जीवपदे आयामतः क्षेत्रं जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रं उत्कर्षतोऽसङ्ख्येयानि योजनानि तथाऽत्रापि वक्तव्यं, कथं जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रमिति चेत्, उच्यते, इहासुरकुमारादय ईशानदेवपर्यन्ताः पृथिव्यम्बुवनस्पतिष्वप्युत्पद्यन्ते, ततो यदा कोऽप्यसुरकुमारः सङ्क्लिष्टाध्यवसायी स्वकुण्डलाद्येकदेशे पृथिवीकायिकत्वेनोत्पित्सुर्मरणसमुद्घातमादधाति तदा जघन्येनायामतः क्षेत्रमङ्गुलासङ्ख्येयभागप्रमाणमवाप्यते इति यथा जीवपदे इत्युक्तं, ततोऽत्रापि विग्रहगतिश्चतुःसामयिकी प्राप्नोति तत आह—नवरं विग्रहस्त्रिसामयिको यथा नैरयिकस्य, शेषं सूत्रं तदेव यत् सामान्यतो जीवपदे, नागकुमारादिष्वतिदेशमाह—'जहा असुरकुमारे' इत्यादि, यथा असुरकुमारेऽभिहितमेवं नागकुमारादिषु तावद् वक्तव्यं यावद्वैमानिकविषयं सूत्रं, नवरमेकेन्द्रिये पृथिव्यादिरूपे यथा जीवे—सामान्यतो जीवपदे तथा निरवशेषं वक्तव्यं, किमुक्तं भवति ?—यथा जीवपदे चतुःसामयिकोऽपि विग्रह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३४२]

दीप अनुक्रम [६१२]

उक्तः तथा पृथिव्यादिष्वपि पञ्चसु स्थानेषु वक्तव्यः । शेषं तथैवेति, तदेवमुक्तो मारणान्तिकसमुद्घातः, साम्प्रतं वैक्रियसमुद्घातमभिधित्सुराह—

जीवे णं भंते ! वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहते समोहणित्ता जे पुग्गले निच्छुभति तेहि णं भंते ! पोग्गलेहिं केवतिते खेत्ते अफुण्णे केवतिए खित्ते फुडे ?, गो० ! सरीरप्पमाणमेत्ते विक्खंभबाहल्लेणं आयामेणं जह० अंगुलस्स संखेज्जतिभागं उक्को० सखिज्जाति जोअणाति एगदिसिं विदिसिं वा एवइए खित्ते अफुण्णे एवतिते खेत्ते फुडे, से णं भंते ! केवतिकालस्स अफुण्णे केवतिकालस्स फुडे ?, गो० ! एगसमइएण वा दुसमइएण वा तिसमइएण वा विग्गहेणं एवतिकालस्स अफुण्णे एवतिकालस्स फुडे, सेसं तं चेव जाव पंचकिरियावि, एवं नेरइएवि, णवरं आयामेणं जह० अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं उक्को० संखिज्जाइं जोअणाइं एगदिसिं, एवतिते खेत्ते, केवतिकालस्स ?, तं चेव जहा जीवपदे, एवं जहा नेरइयस्स तहा असुरकुमारस्स, नवरं एगदिसिं विदिसिं वा, एवं जाव थणियकुमारस्स, वाउकाइयस्स जहा जीवपदे, णवरं एगदिसिं, पंचिंदियतिरिक्खजोणियस्स निरवसेसं जहा नेरइयस्स, मणुसवाणमंतरजोइसियवेमाणियस्स निरवसेसं जहा असुरकुमारस्स । जीवे णं भंते ! तेयगसमुग्घाएणं समोहते समोहणित्ता जे पोग्गले निच्छुभति तेहि णं भंते ! पोग्गलेहिं केवतिते खेत्ते अफुण्णे केवइए खित्ते फुडे, एवं जहेव वेउव्विते समुग्घाते तहेव, नवरं आयामेणं जह० अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं सेसं तं चेव एवं जाव वेमाणियस्स, णवरं पंचिंदियतिरिक्खजोणियस्स एगदिसिं एवतिते खेत्ते अफुण्णे एवइखित्त-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्स फुडे । जीवे णं भंते ! आहारगसमुग्घातेणं समोहते समोहणित्ता जे पोग्गले निच्छुब्भति तेहि णं भंते ! पोग्गलेहिं केवइए खित्ते अफुण्णे केवइए खेत्ते फुडे ?, गो० ! सरीरप्पमाणमेत्ते विक्खंभबाहल्लेणं आयामेणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं उक्को० संखेज्जाइं जोयणाइं एगदिसिं, एवतिते खेत्ते एगसमतिएण वा दुसम० तिसम० विग्गहेणं एवतिकालस्स अफुण्णे एवतिकालस्स फुडे, ते णं भंते ! पोग्गला केवतिकालस्स निच्छुब्भति ?, गो० ! जह० अंतो० उक्को० अंतोमुहुत्तस्स, ते णं भंते ! पोग्गला निच्छूढा समाणा जातिं तत्थ पाणातिं भूयातिं जीवातिं सत्तातिं अभिहणंति जाव उद्दवेंति, ते णं भंते ! जीवे कतिकिरिए ?, गो० ! सिय तिकि० सिय चउ० सिय पंचकिरिए, ते णं भंते ! जीवाओ कतिकिरिया ?, गो० ! एवं चेव, से णं भंते ! ते य जीवा अण्णेसिं जीवाणं परंपराघातेणं कतिकिरिया ?, गो० ! तिकिरियावि चउकिरियावि पंचकि०, एवं मणूसेवि (सूत्रं ३४३)

'जीवे णं भंते ! वेउव्विए' इत्यादि प्राग्वत्, नवरमायामत उत्कर्षतः सङ्ख्येयानि योजनानि, एतच्च वायुकायिकवर्जनैरयिकाद्यपेक्षया द्रष्टव्यं, ते हि वैक्रियसमुद्घातमारभमाणास्तथाविधप्रयत्नविशेषभावतः सङ्ख्येयान्येव योजनान्युत्कर्षतोऽप्यात्मप्रदेशानां दण्डमारचयन्ति, नासङ्ख्येयानि योजनानि, वायुकायिकास्तु जघन्यतो वा उत्कर्षतो वा अङ्गुलासङ्ख्येयभागं, तावत्प्रमाणं चोत्कर्षतो दण्डमारचयन्तस्तावति प्रदेशे तैजसादिशरीरपुद्गलान् आत्मप्रदेशेभ्यो विक्षिपन्ति, ततस्तैः पुद्गलैर्भृतं क्षेत्रमायामत उत्कर्षतोऽपि सङ्ख्येयान्येव योजनान्यवाप्यन्ते, एतच्चैवं क्षेत्रप्रमाणं

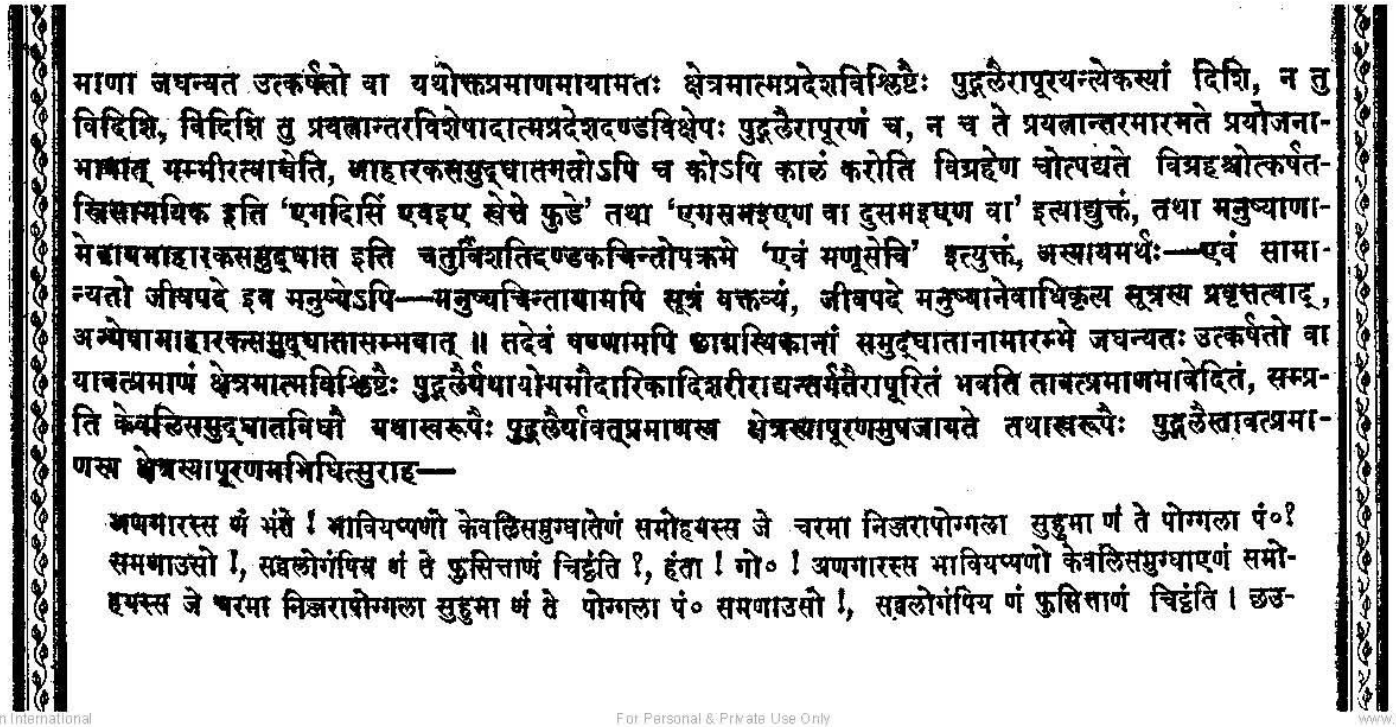
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

केवलं वैक्रियसमुद्घातसमुद्भवं प्रयत्नमधिकृत्योक्तं, यदा तु कोऽपि वैक्रियसमुद्घातमधिरूढो मरणमुपश्लिष्टः कथमप्युत्कृष्टदेशेन त्रिसामयिकेन विग्रहेणोत्पत्तिदेशमभिगच्छति तदा सङ्ख्यातीतान्यपि योजनानि यावदायामक्षेत्रमवसेयं, तावत्प्रमाणं क्षेत्रापूरणं मरणसमुद्घातप्रयत्नसमुद्भवमिति सदपि न विवक्षितं, 'एकदिसिं विदिसिं वा' इति, तत् जघन्यत उत्कर्षतो वा यथोक्तप्रमाणमायामक्षेत्रमेकस्यां दिशि विदिशि वा द्रष्टव्यं, तत्र नैरयिकाणां पञ्चेन्द्रियतिरश्चां वायुकायिकानां च नियमादेकदिशि, नैरयिका हि परवशा अल्पर्द्धयश्च तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाश्चाल्पर्द्धय एव वायुकायिका विशिष्टचेतनाविकलास्ततस्तेषां वैक्रियसमुद्घातमारभमाणानां यदि परं तथास्वाभाव्यादेवात्मप्रदेशदण्डविनिर्गमस्तेभ्यश्चात्मप्रदेशेभ्यो विश्लिष्य पुद्गलानां च स्वभावतोऽनुश्रेणिगमनं न तु विश्रेणितः ततो दिश्येव नैरयिकतिर्यक्पञ्चेन्द्रियवायुकायिकानामायामतः क्षेत्रं द्रष्टव्यं, नतु विदिशि, ये तु भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कवैमानिका मनुष्याश्च ते स्वेच्छाचारिणो विशिष्टलब्धिसम्पन्नाश्च भवन्ति ततस्ते कदाचित्प्रयत्नविशेषतो विदिश्यप्यात्मप्रदेशानां दण्डं विक्षिपन्तस्तत्र तेभ्य आत्मप्रदेशेभ्यः पुद्गलान् विक्षिपन्तीति तेषामेकस्यां दिशि विदिशि वा प्रत्येतव्यं । वैक्रियसमुद्घातगतश्च कोऽपि कालमपि करोति विग्रहेण चोत्पत्तिदेशमभिसर्प्पति ततो विग्रहगतिमधिकृत्य कालनिरूपणार्थमाह—'से णं भंते ! ' इत्यादि, तत् भदन्त ! क्षेत्रं विग्रहगतिमधिकृत्योत्पत्तिदेशं यावत् 'केवइकालस्स'त्ति तृतीयार्थे षष्ठी कियता कालेनापूर्णं कियता कालेन स्पृष्टं ?, भगवानाह—गौतम ! एकसामयिकेन वा द्विसाम-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

थिकेन वा त्रिसामयिकेन वा विग्रहेण आपूर्णं स्पृष्टमिति गम्यते, किमुक्तं भवति ?—विग्रहगतिमधिकृत्य मरणदेशादारभ्य उत्पत्तिदेशं यावत् क्षेत्रस्यापूरणमुत्कर्षतः त्रिभिः समयैरवाप्यते न चतुर्थेनापि समयेन, वैक्रियसमुद्घातगतो हि वायुकायिकोऽपि प्रायस्त्रसनाड्यामेवोत्पद्यते, त्रसनाड्यां च विग्रह उत्कर्षतोऽपि त्रिसामयिक इति, उपसंहारमाह—'एवइकालस्स' इत्यादि सुगमं, 'सेसं तं चेवे'त्यादि अत ऊर्ध्वं शेषं सूत्रं तदेव—यत्प्राक् वेदनासमुद्घाते उक्तं, तच्च तावत् यावदन्तिमपदं 'पंचकिरियावि' इति, एवं 'नेरइएणवि' इत्यादि सूत्रं तु स्वयं भावनीयं, यस्तु दिग्विदिगपेक्षया विशेषः स प्रागेव दर्शितः । सम्प्रति तैजससमुद्घातमभिधित्सुराह—'जीवे णं भंते! तेयगसमुग्घाएणं'इत्यादि, सुगमं, नवरमयं तैजससमुद्घातश्चतुर्देवनिकायतिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्याणां सम्भवति न शेषाणां, ते च महाप्रयत्नवन्त इति तेषां तैजससमुद्घातमारभमाणानां जघन्यतोऽपि क्षेत्रमायामतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागप्रमाणं भवति, न तु सङ्ख्येयभागमानं, उत्कर्षतः सङ्ख्येययोजनप्रमाणं, तच्च जघन्यत उत्कर्षतो वा यथोक्तप्रमाणं क्षेत्रं तिर्यक्पञ्चेन्द्रियवर्जानामेकस्यां दिशि विदिशि वा वक्तव्यं, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाणां तु दिश्येव, अत्र युक्तिः प्रागुक्तैवानुसर्तव्या, तथा चाह—'एवं जहा वेउव्वियसमुग्घाए' इत्यादि । तदेवमुक्तस्तैजससमुद्घातः, साम्प्रतमाहारकसमुद्घातं प्रतिपिपादयिषुराह—'जीवे णं भंते!' इत्यादि, एतच्च सूत्रं तैजससमुद्घातवद्भावनीयं, नवरमयमाहारकसमुद्घातो मनुष्याणां तत्राप्यधीतचतुर्दशपूर्वाणं तत्रापि केषाञ्चिदेवाहारकलब्धिमतां न शेषाणां, ते चाहारकसमुद्घातमारभ-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



माणा जघन्यत उत्कर्षतो वा यथोक्तप्रमाणमायामतः क्षेत्रमात्मप्रदेशविश्लिष्टैः पुद्गलैरापूरयन्त्येकस्यां दिशि, न तु विदिशि, विदिशि तु प्रयत्नान्तरविशेषादात्मप्रदेशदण्डविक्षेपः पुद्गलैरापूरणं च, न च ते प्रयत्नान्तरमारभते प्रयोजनाभावात् गम्भीरत्वाचेति, आहारकसमुद्घातगतोऽपि च कोऽपि कालं करोति विग्रहेण चोत्पद्यते विग्रहश्चोत्कर्षतस्त्रिसामयिक इति 'एगदिसिं एवइए खेत्ते फुडे' तथा 'एगसमइएण वा दुसमइएण वा' इत्याद्युक्तं, तथा मनुष्याणामेवायमाहारकसमुद्घात इति चतुर्विंशतिदण्डकचिन्तोपक्रमे 'एवं मणूसेवि' इत्युक्तं, अस्यायमर्थः—एवं सामान्यतो जीवपदे इव मनुष्येऽपि—मनुष्यचिन्तायामपि सूत्रं वक्तव्यं, जीवपदे मनुष्यानेवाधिकृत्य सूत्रस्य प्रवृत्तत्वाद्, अन्येषामाहारकसमुद्घातासम्भवात् ॥ तदेवं षण्णामपि छाद्मस्थिकानां समुद्घातानामारम्भे जघन्यतः उत्कर्षतो वा यावत्प्रमाणं क्षेत्रमात्मविश्लिष्टैः पुद्गलैर्यथायोगमौदारिकादिशरीराद्यन्तर्गतैरापूरितं भवति तावत्प्रमाणमावेदितं, सम्प्रति केवलिसमुद्घातविधौ यथास्वरूपैः पुद्गलैर्यावत्प्रमाणस्य क्षेत्रस्यापूरणमुपजायते तथास्वरूपैः पुद्गलैस्तावत्प्रमाणस्य क्षेत्रस्यापूरणमभिधित्सुराह—

अणगारस्स णं भंते ! भावियप्पणो केवलिसमुग्घातेणं समोहयस्स जे चरमा निज्जरापोग्गला सुहुमा णं ते पोग्गला पं० ? समणाउसो !, सव्वलोगंपिय णं ते फुसित्ताणं चिट्ठंति ?, हंता ! गो० ! अणगारस्स भावियप्पणो केवलिसमुग्घाएणं समोहयस्स जे चरमा निज्जरापोग्गला सुहुमा णं ते पोग्गला पं० समणाउसो !, सव्वलोगंपिय णं फुसित्ताणं चिट्ठंति । छउ-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१५],उपांगसूत्र-[४] "प्रज्ञापना" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३४४]

दीप अनुक्रम [६१४]

मत्थे णं भंते ! मणूसे तेसिं णिज्जरापोग्गलाणं किंचि वण्णेणं वण्णं गंधेणं गंधं रसेण वा रसं फासेण वा फासं जाणति पासति ?, गो० ! णो इणट्ठे समट्ठे, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुचति छउमत्थे णं मणूसे तेसिं णिज्जरापोग्गलाणं णो किंचि वण्णेणं २ गंधेणं २ रसेणं २ फासेणं २ णो जाणति पासति ?, गो० ! अयण्णं जंबूद्दीवे दीवे सव्वदीवसमुद्दाणं सव्वब्भंतराए सव्वखुड्डाए वट्टे तेल्लापूयसंठाणसंठिते वट्टे रहचक्कवालसंठाणसंठिए वट्टे पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिए वट्टे पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिए एगं जोअणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं तिण्णि जोयणसयसहस्साइं सोलस सहस्साइं दोण्णि सत्तावीसे जोयणसते तिण्णि य कोसे अट्ठावीसं च धणुसतं तेरस य अंगुलाइं अद्धंगुलं च किंचिविसेसाहिते परिक्खेवेणं पं०, देवे णं महिड्ढीते जाव महासोक्खे एगं महं सविलेवणं गंधसमुग्गतं गहाय तं अवदालेति तं महं एगं सविलेवणं गंधसमुग्गतं अवदालइत्ता इणामेव कट्टु केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं तिहिं अच्छराणिवातेहिं तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्टित्ताणं हव्वमागच्छेज्जा, से नूणं गो० ! से केवलकप्पे जंबुद्दीवे दीवे तेहिं घाणपोग्गलेहिं फुडे ?, हंता ! फुडे, छउमत्थे णं गोतमा ! मणूसे तेसिं घाणपुग्गलाणं किंचि वण्णेणं वण्णं गंधेणं गंधं रसेणं रसं फासेणं फासं जाणति पासति ?, भगवं ! नो इणट्ठे समट्ठे, से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुचइ–छउमत्थे णं मणूसे तेसिं निज्जरापोग्गलाणं नो किंचि वण्णेणं वण्णं गंधेणं गंधं रसेणं रसं फासेणं फासं जाणति पासति, सुहुमा णं ते पोग्गला पं० समणाउसो !, सव्वलोगंपिय णं फुसित्ताणं चिट्ठंति (सूत्रं ३४४)

'अणगारस्स णं भंते !' इत्यादि, इह केवलिसमुद्घातः केवलिनो भवति, न छद्मस्थस्य, केवली निश्चयनयमते-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३४४]

दीप अनुक्रम [६१४]

नानगारो न गृहस्थो नापि पाखण्डी, स च नियमाद् भावितात्मा विशिष्टशुभाध्यवसायकलितत्वात्, अन्यथा केवलित्वानुपपत्तेः, तत उक्तमनगारस्य भावितात्मन इति, केवलिसमुद्घातेन–उक्तस्वरूपेण समवहतस्य ये चरमाः–चरमसमयभाविनश्चतुर्थसमयभाविन इत्यर्थः, तैरेव सकललोकापूरणात्, 'निर्जरापुद्गला' इति निर्जरागुणयोगात् निर्जराः–निर्जीर्णा इत्यर्थः ते च ते पुद्गलाश्चेति विशेषणसमासः, किमुक्तं भवति ?–ये लोकापूरणसमये पुद्गला आत्मप्रदेशेभ्यो विश्लिष्टाः परित्यक्तकर्मत्वपरिणामा इति, 'सुहुमा णं ते पुग्गला' इति णमिति निश्चये नियतमेतत् सूक्ष्माः–चक्षुरादीन्द्रियपथमतिक्रान्तास्ते पुद्गलाः प्रज्ञप्ताः भगवद्भिर्हे श्रमण हे आयुष्मन् !, गौतमकृतं भगवतः सम्बोधनमेतत्, तथा णमिति निश्चितमेतत् सर्वलोकमपि ते पुद्गलाः स्पृष्टा णमिति वाक्यालङ्कारे तिष्ठन्ति ? इति गौतमेन प्रश्ने कृते भगवानाह–'हंता गोयमा !' इत्यादि, हन्तेति प्रीतौ, यदाह शाकटायनः–'हन्तेति सम्प्रदानप्रीतिविषादादिष्वि'ति, प्रीतिश्चात्र यथावस्थितस्वरूपप्रतिपादकत्वात् प्रश्नसूत्रस्य साम्मत्यलक्षणा वेदितव्या, न तु हर्षरूपा, क्षीणमोहत्वेन भगवतो हर्षविषादातीतत्वात् साम्मत्यमेव ख्यापयति, यदुक्तं गौतमेन तदेवानुवदति–'अणगारस्से'त्यादि भावितार्थं । सूक्ष्माः पुद्गला इत्युक्तं, तच्च सूक्ष्मत्वमापेक्षिकमपि भवति यथा बदरादीनामामलकाद्यपेक्षया, ततश्चक्षुरादीन्द्रियगोचरातिक्रान्तरूपं तत्प्रतिपिपादयिषुरिदमाह–'छउमत्थे णं भंते !' इत्यादि, छद्मस्थो भदन्त ! मनुष्यः तेषां–अनन्तरोद्दिष्टानां निर्जरापुद्गलानां किञ्चिदिति प्रथमतः सामान्येन प्रयुक्तं जानाति पश्यतीति सम्बध्यते,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१५],उपांगसूत्र-[४] "प्रज्ञापना" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३४४]

दीप अनुक्रम [६१४]

एतदेव विशेषतो व्याचष्टे–'वर्णेन' वर्णग्राहकेण चक्षुरिन्द्रियेण वर्ण्यते–यथावस्थितं वस्तुस्वरूपं निर्णीयते अनेनेति वर्ण इति व्युत्पत्तेः वर्णः–कृष्णादिरूपं 'गन्धेन' गन्धग्राहकेण नासिकेन्द्रियेण 'गन्ध आघ्राणे' 'चुरादिभ्यो णिच्' गन्ध्यते—आघ्रायते शुभोऽशुभो वा गन्धोऽनेनेति गन्ध इति व्युत्पादनात् गन्धं शुभमशुभं वा 'रसेन' रसग्राहकेण रसनेन्द्रियेण रस्यते—आस्वाद्यतेऽनेनेति शब्दार्थत्वात् रसं–तिक्तादिरूपं, 'स्पर्शेन' स्पर्शग्राहकेण स्पर्शनेन्द्रियेण स्पृश्यते कर्कशादिरूपः परिच्छेद्यवस्तुगतः स्पर्शोऽनेनेति स्पर्श इति व्युत्पादनात् 'स्पर्शं' कर्कशादिरूपं जानाति पश्यतीति ?, भगवानाह—गौतम ! नायमर्थः समर्थः उपपन्न इत्यर्थः, पुनर्गौतमः प्रश्नयति—'से केणट्ठेणं भंते !' इत्यादि, उक्तानार्थं, भगवानाह—गौतम ! 'अयण्ण'मित्यादि, अयं–प्रत्यक्षत उपलभ्यमानः, णमिति वाक्यालङ्कारे, अष्टयोजनोच्छ्रितया रत्नमय्या जम्ब्वा उपलक्षितो द्वीपो जम्बूद्वीपो द्वीपः, 'सर्वाभ्यन्तरक' इति सर्वेषामभ्यन्तरो–मध्यवर्त्ती सर्वाभ्यन्तरः सर्वाभ्यन्तर एव सर्वाभ्यन्तरकः "जातौ वा स्वार्थे क" इति प्राकृतलक्षणवशात् स्वार्थे कप्रत्ययः, केषां सर्वेषामभ्यन्तर इत्याह—सर्वद्वीपसमुद्राणां, तथाहि—सर्वे–अशेषा द्वीपसमुद्रा जम्बूद्वीपादारभ्यागमाभिहितेन क्रमेण द्विगुणद्विगुणविस्तारा व्यवस्थिताः ततो भवति द्वीपसमुद्राणामेव जम्बूद्वीपोऽभ्यन्तरः, तथा 'सव्वखुड्डागे' इति सर्वेभ्यो द्वीपसमुद्रेभ्यः क्षुल्लको—ह्रस्वः सर्वक्षुल्लकः, तथाहि–सर्वे लवणादयः समुद्राः सर्वे च धातकीखण्डादयो द्वीपाः जम्बूद्वीपादारभ्य प्रवचनोक्तेन क्रमेण द्विगुणद्विगुणचक्रवालविष्कम्भाः ततः शेष-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वीपसमुद्रापेक्षयाऽयं सर्वलघुरिति, तथा वृत्तो–वर्तुलो, यतस्तैलापूपसंस्थानसंस्थितः, तैलेन हि पक्वोऽपूपः प्रायः परिपूर्णवृत्तो भवति न घृतपक्व इति तैलविशेषणं, तस्येव संस्थानसंस्थितः, तथा वृत्तो जम्बूद्वीपो द्वीपो यतो रथचक्रवालसंस्थानसंस्थितः, रथस्य–रथाङ्गस्य चक्रस्य चक्रवालं–मण्डलं तस्येव यत् संस्थानं तेन संस्थितः, एवं सूत्रोक्तमप्यदपि पदद्वयं भावनीयं,'आयामविक्खंभेणं'ति आयामश्च विष्कम्भश्चेति समाहारो द्वन्द्वः तेन आयामेन विष्कम्भेन च प्रत्येकमेकं योजनशतसहस्रमित्यर्थः,परिधिपरिमाणानयनगणितं च जम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्यादावनेकशो भावितमिति ततोऽवधार्यं 'देवे ण'मित्यादि, देवश्च णमिति वाक्यालङ्कारे 'महर्द्धिक' इति महती ऋद्धिः–विमानपरिवारादिका यस्यासौ महर्द्धिकः 'जाव महासोक्खे' इति यावत्शब्दकरणात् 'महज्जुइए महाबले महायसे' इति द्रष्टव्यं, तत्र महती द्युतिः–शरीराभरणविषया यस्य स महाद्युतिः, महद्बलं–शारीरः प्राणो यस्य स महाबलः, महत् यशः—ख्यातिर्यस्य स महायशाः, तथा महत्–प्रभूतं सौख्यं यस्य प्रभूतसद्वेद्यकर्मोदयभावादिति महासौख्यः, क्वचित्–'महेसक्खे' इति पाठः, तत्र महान् ईश–ईश्वर इत्याख्या–शब्दप्रथा यस्य लोके स महेशाख्यः, अथवा ईशनमीशो, भावे घञ्प्रत्ययः, ऐश्वर्यमित्यर्थः, 'ईश ऐश्वर्ये' इति वचनात्, तत ईशं—ऐश्वर्यमात्मनः ख्याति–अन्तर्भूतण्यर्थतया ख्यापयति प्रकाशयति तथा परिवारादिस्फीत्या वर्त्तते इति ईशाख्यः महांश्चासावीशाख्यश्च महेशाख्यः, अन्यत्र 'महासक्खे' इति वा पाठः, तत्रैवं वृद्धव्याख्या–आशुगमनादर्भं–मनः अक्षाणि–इन्द्रियाणि स्वस्वविषयव्यापकत्वात्, अक्ष-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दो हि प्रायेणाशुङ् व्याप्तावित्यस्य धातोर्निष्पाद्यते, अश्वश्राक्षाणि च अश्वाक्षाणि, महान्ति–स्फीतिमन्ति अश्वाक्षाणि यस्यासौ महाश्वाक्षः, स्फीतमनाः स्फूर्त्तिमच्चक्षुरादीन्द्रियश्चेत्यर्थः, एकं महान्तं–अतिगुरुकमन्यथा स्तोकतया तद्गतैर्गन्धपुद्गलैः सकलस्य जम्बूद्वीपस्य व्याप्तुमशक्यत्वात्, 'सविलेवण'मिति सह विशिष्टं–अतिसूक्ष्मरंश्राणामपि स्थगनात् लेपनं लेपो–जत्वादिकृतं पिधानमुपरि वर्त्तते येन स तथा तं, विशिष्टलेपप्रदानाभावे हि बहवः सूक्ष्मरन्ध्रैर्गन्धपुद्गला निर्गच्छन्ति तत उद्घाटनवेलायां तेषां स्तोकीभावेन सकलजम्बूद्वीपापूरणं नोपपद्यते, 'गंधसमुग्गयं'ति गन्धद्रव्यैरतिविशिष्टैः परिपूर्णं भृतः समुद्गको गन्धसमुद्गकस्तं 'अवदालेइ'त्ति अवदालयति उत्पाटयतीत्यर्थः, 'इणामेवे'ति एवमेवेत्यर्थः 'केवलकप्पं'ति केवलं—केवलज्ञानं तत्कल्पं परिपूर्णतया तत्सदृशं परिपूर्णमित्यर्थः, जम्बूद्वीपं द्वीपं त्रिभिः अप्सरोनिपातो नाम–चप्पुटिका ततस्तिसृभिः चप्पुटिकाभिरिति द्रष्टव्यं, चप्पुटिकाश्च कालोपलक्षणं, ततोऽयमर्थः—यावता कालेन तिस्रश्चप्पुटिकाः पूर्यन्ते तावत्कालमध्ये इति, त्रिसप्तकृत्वः–एकविंशतिवारान् अतिपरिवर्त्त्य—सामस्त्येन परिभ्रम्य 'हवं' शीघ्रमागच्छेत्—समागच्छेत् 'से नूणं'इत्यादि, सेशब्दो मगधदेशप्रसिद्धया अथशब्दार्थे, अथशब्दस्य चार्थो वाक्योपन्यासादयः, उक्तं च–'अथ प्रक्रियाप्रश्नानन्तर्यमङ्गलाधिकारवाक्योपन्यासेषु' तत्रायं वाक्योपन्यासे, तद्भावना च एवं—उक्तस्वावत् विवक्षितार्थप्रतिपत्तिहेतोर्दृष्टान्तस्य पीठिकाबन्धः, सम्प्रति विवक्षितार्थप्रतिपत्तिहेतुदृष्टान्तवाक्यमुपन्यस्यते, नूनं—निश्चितं, गौतम ! स केवलकल्पो जम्बूद्वीपस्तैर्ग-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

न्धसमुद्रकाद्विनिर्गतैः घ्राणपुद्गलैः–गन्धपुद्गलैः स्पृष्टो–व्याप्तः, काका चेदं सूत्रमधीयते ततः प्रश्नोऽवगम्यते, अथवा प्रश्नार्थः सेशब्दस्ततोऽअसा प्रश्नयतीति, गौतम ! आह—हंत ! स्पृष्टो गन्धपुद्गलानां सर्वतोऽगिसर्प्पणशीलत्वात्, पुनरपि भगवानाह—'छउमत्थे ण'मित्यादि सुगमम्, एष चात्र भावार्थः–यथा ते सकलजम्बूद्वीपव्यापिनो गन्धपुद्गलाः सूक्ष्मत्वात् न छद्मस्थानां चक्षुरादीन्द्रियगम्यास्तथा सकललोकव्यापिनो निर्जरापुद्गला अपीति, उपसंहारमाह–'एसुहुमाणं'ति एतावत्सूक्ष्माः अथ यन्निमित्तं केवली समुद्घातमारभते तत्पिपृच्छिषुरिदं प्रश्नसूत्रमाह—

कम्हा णं भंते ! केवली समुग्घायं गच्छति ?, गो० ! केवलिस्स चत्तारि कम्मंसा अक्खीणा अवेदिया अणिज्जिण्णा भवंति, तं०—वेदणिज्जे आउए नामे गोए, सव्वबहुप्पएसे से वेदणिज्जे कम्मे हवति सव्वत्थोवे आउए कम्मे हवइ, विसमं समं करेति बंधणेहिं ठितीहि य, विसमसमीकरणयाए बंधणेहिं ठितीहि य एवं खलु केवली समोहणति, एवं खलु समुग्घायं गच्छति, सव्वेवि णं भंते ! केवली समोहणंति सव्वेवि णं भंते ! केवली समुग्घातं गच्छंति ?, गो० ! णो इणट्ठे समट्ठे, "जस्साउएण तुल्लाइं, बंधणेहिं ठितीहि य । भवोवग्गहकम्माइं, समुघातं से ण गच्छति ॥ १ ॥ अगंतूणं समुग्घातं, अणंता केवली जिणा । जरमरणविप्पमुक्का, सिद्धिं वरगतिं गता ॥ २ ॥ (सूत्रं ३४५) कतिसमतिए णं भंते ! आउज्जीकरणे पं० ?, गो० ! असंखेज्जसमतिए अंतोमुहुत्तिए आउजीकरणे पं० (सूत्रं ३४६) कतिसमतिए णं भंते ! केवलिसमुग्घाए पं० ?, गो० ! अट्ठसमतिते पं०, तं०—पढमे समए दंडं करेति बीए समए कवाडं करेति ततिए समए मंथं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१५],उपांगसूत्र-[४] "प्रज्ञापना" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३४४-३४७] + गाथाः

दीप अनुक्रम [६१४--६१९]

करेति चउत्थे समए लोगं पूरेति पंचमे समए लोयं पडिसाहरति छट्ठे समए मंथं पडिसाहरति सत्तमए समए कवाडं पडिसाहरति अट्ठमे समए दंडं पडिसाहरति, दंडं पडिसाहरेत्ता तओ पच्छा सरीरत्थे भवति। से णं भंते! तहा समुग्घायगते किं मणजोगं जुंजति वइजोगं जुंजति कायजोगं जुंजति?, गो०! नो मणजोगं जुंजति नो वइजोगं जुंजति कायजोगं जुंजति, कायजोगे णं भंते! जुंजमाणे किं ओरालियकायजोगं जुंजति ओरालियमीसासरीरकायजो० किं वेउव्वियसरीरकायजोगं वेउव्वियमीसासरीरकायजोगं० किं आहारगसरीरका० आहारगमीसासरीरका० किं कम्मगसरीरका०?, गो०! ओरालियसरीरकायजोगंपि जुंजति ओरालियमीसासरीरकायजोगंपि जुंजइ, नो वेउव्वियसरीरका० नो वेउव्वियमीसा० नो आहारसरीरका० नो आहारगमीसास० कम्मगसरीरकायजोगंपि जुंजति, पढमट्ठमेसु समएसु ओरालियसरीरकायजोगं जुंजति बितियछट्ठसत्तमेसु समएसु ओरालियमीसासरीरकायजोगं जुंजति, ततियचउत्थपंचमेसु समएसु कम्मगसरीरकायजोगं जुंजति (सूत्रं ३४७)

'कम्हा ण'मित्यादि, कस्मात् कारणात् णमिति वाक्यालङ्कारे भदन्त! 'केवली' केवलज्ञानोपेतः समुद्घातं गच्छति—आरभते, कृतकृत्यत्वात् किल तस्येति भावः, भगवानाह—'गोयमे'त्यादि, गौतम! केवलिनश्चत्वारः 'कर्मांशाः' कर्मभेदाः 'अक्षीणाः' क्षयमनुपगताः, कुत इत्याह—अवेदिताः, अत्र 'निमित्तकारणहेतुषु सर्वासां विभक्तीनां प्रायो दर्शन'मिति न्यायात् हेतौ प्रथमा, ततोऽयमर्थः—यतोऽवेदिताः ततोऽक्षीणाः, कर्मणां हि क्षयो नियमतः

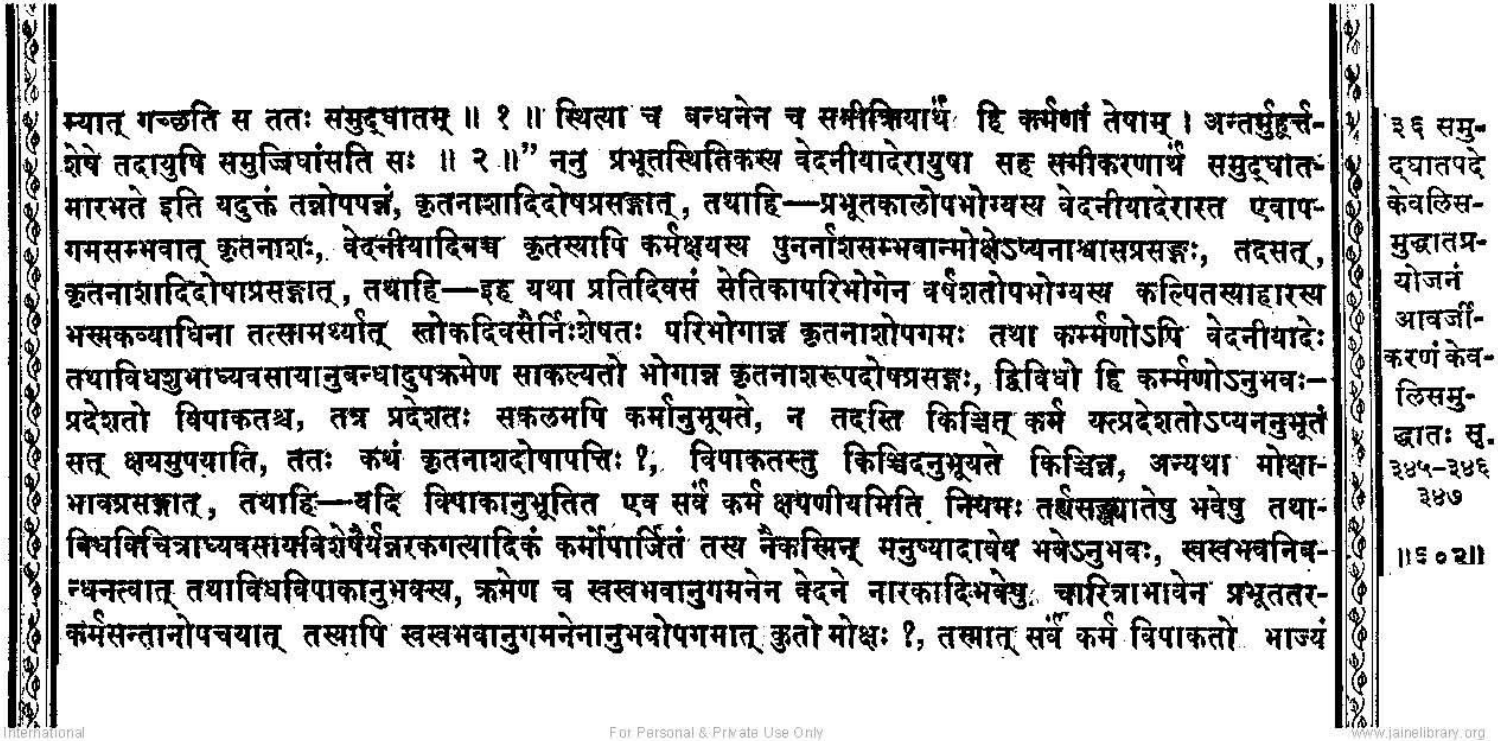
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रदेशतो विपाकतो वा वेदनाद् भवति, 'सव्वं च पएसतया भुज्जइ कम्ममणुभावतो भइय' [सर्वं च प्रदेशतया भुज्यते कर्मानुभावतो भक्तं] मित्यादि वचनात्, ते चत्वारः कर्मांशा अपि अवेदिता अतोऽक्षीणाः, एतदेव पर्यायेण व्याचष्टे—'अनिर्जीर्णाः' सामस्त्येनात्मप्रदेशेभ्योऽपरिशाटिताः 'भवन्ति' तिष्ठन्ति, तानेव नामग्राहमभिधित्सुराह—'तंजहे'त्यादि सुगमं, तत्र यदा 'से' तस्य केवलिनः सर्वबहुप्रदेशं वेदनीयमुपलक्षणमेतत् नामगोत्रे च तथा सर्वस्तोकप्रदेशमायुःकर्म तदा स 'बंधणेहिं ठिइहि'न्ति बध्यते—भवचारकात् विनिर्गच्छन् प्रतिबद्ध्यते यैस्ते बन्धनाः, 'करणाधारे' इति करणेऽनट्प्रत्ययः, अथवा बध्यन्ते—आत्मप्रदेशैः सह लोलीभावेन संश्लिष्टाः क्रियन्ते योगवशात् ये ते बन्धनाः 'कृद्ग्रहुल'मिति वचनात् कर्मणि अनट्, उभयत्रापि कर्मपरमाणवो वाच्याः, स्थितयो—वेदनाकालाः, तथा चोक्तं भाष्यकृता—"विसमं स करेइ समं समोहओ बंधणेहि ठिइए य । कम्मद्दव्वाइं बंधणाति कालो ठिई तेसिं ॥ १ ॥" [विषमं स करोति समं समवहतो बन्धनैः स्थित्या च। कर्मद्रव्याणि बन्धनानि कालः स्थितिस्तेषाम् ॥ १ ॥] ततश्च तैर्बन्धनैः स्थितिभिश्च विषमं सत् वेदनीयादिकं समुद्घातविधिना सममायुषा सह करोति, स एवं खलु केवली बन्धनैः स्थितिभिश्च विषमस्य सतो वेदनीयादिकस्य कर्मणः 'समीकरणयाए' इति अत्र ताप्रत्ययः स्वार्थिकः, ततोऽयमर्थः—समकरणाय, 'समोहन्नइ' इति समवहन्ति—समुद्घाताय प्रयतते, एवं खलु समुद्घातं गच्छति, उक्तं च—"आयुषि समाप्यमाने शेषाणां कर्म्मणां च यदि समाप्तिः। न स्यात् स्थितिवैष-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१५],उपांगसूत्र-[४] "प्रज्ञापना" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [३४४-३४७] + गाथा: दीप अनुक्रम [६१४--६१९]



प्रज्ञापनायाः मलय०वृत्तौ ॥६०२॥

म्यात् गच्छति स ततः समुद्घातम् ॥ १ ॥ स्थित्या च बन्धनेन च समीक्रियार्थं हि कर्मणां तेषाम् । अन्तर्मुहूर्त्तशेषे तदायुषि समुज्जिघांसति सः ॥ २ ॥" ननु प्रभूतस्थितिकस्य वेदनीयादेरायुषा सह समीकरणार्थं समुद्घातमारभते इति यदुक्तं तन्नोपपन्नं, कृतनाशादिदोषप्रसङ्गात्, तथाहि—प्रभूतकालोपभोग्यस्य वेदनीयादेरास्त एवापगमसम्भवात् कृतनाशः, वेदनीयादिनच्च कृतस्यापि कर्मक्षयस्य पुनर्नाशसम्भवान्मोक्षेऽप्यनाश्वासप्रसङ्गः, तदसत्, कृतनाशादिदोषाप्रसङ्गात्, तथाहि—इह यथा प्रतिदिवसं सेतिकापरिभोगेन वर्षशतोपभोग्यस्य कल्पितस्याहारस्य भस्मकव्याधिना तत्सामर्थ्यात् स्तोकदिवसैर्निःशेषतः परिभोगान्न कृतनाशोपगमः तथा कर्म्मणोऽपि वेदनीयादेः तथाविधशुभाध्यवसायानुबन्धादुपक्रमेण साकल्यतो भोगान्न कृतनाशरूपदोषप्रसङ्गः, द्विविधो हि कर्म्मणोऽनुभवः—प्रदेशतो विपाकतश्च, तत्र प्रदेशतः सकलमपि कर्मानुभूयते, न तदस्ति किञ्चित् कर्म यत्प्रदेशतोऽप्यननुभूतं सत् क्षयमुपयाति, ततः कथं कृतनाशदोषापत्तिः ?, विपाकतस्तु किञ्चिदनुभूयते किञ्चिन्न, अन्यथा मोक्षाभावप्रसङ्गात्, तथाहि—यदि विपाकानुभूतित एव सर्वं कर्म क्षपणीयमिति नियमः तर्ह्यसङ्ख्यातेषु भवेषु तथाविधविचित्राध्यवसायविशेषैर्यन्नरकगत्यादिकं कर्मोपार्जितं तस्य नैकस्मिन् मनुष्यादावेव भवेऽनुभवः, स्वस्वभवनिबन्धनत्वात् तथाविधविपाकानुभवस्य, क्रमेण च स्वस्वभवानुगमनेन वेदने नारकादिभवेषु चारित्राभावेन प्रभूततरकर्मसन्तानोपचयात् तस्यापि स्वस्वभवानुगमनेनानुभवोपगमात् कुतो मोक्षः ?, तस्मात् सर्वं कर्म विपाकतो भाज्यं

३६ समुद्घातपदे केवलिसमुद्घातप्रयोजनं आवर्जीकरणं केवलिसमुद्घातः सू. ३४५–३४६ ३४७

॥६०२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रदेशतोऽवश्यमनुभवनीयमिति प्रतिपत्तव्यं, एवं च न कश्चिद्दोषः, नन्वेवमपि दीर्घकालभोग्यतया तद्वेदनीयादिकं कर्मोपचितं अथ च परिणामविशेषादुपक्रमेणारादेव तदनुभवति ततः कथं न कृतनाशदोषापत्तिः ?, तदप्यसम्यक्, बन्धकाले तथाविधाध्यवसायवशादादावुपक्रमयोग्यस्यैव तेन बन्धनात्, अपिच—जिनवचनप्रामाण्यादपि वेदनीयादिकर्मणामुपक्रमो मन्तव्यः, यदाह भाष्यकृत्—"उदयक्खयक्खओवसमोवसमा जं च कम्मुणो भणिया। दवाइं पंचगं पइ जुत्तमुवक्कमणमेत्तोवि ॥ १ ॥" [उदयक्षयक्षयोपशमोपशमा यस्माच्च कर्मणो भणिताः। द्रव्यादिपञ्चकं प्रति युक्तमुपक्रमणमितोऽपि ॥ १ ॥] न चैवं मोक्षोपक्रमहेतुः कश्चिदस्ति येन तत्रानाश्वासप्रसङ्गः, यथा च न मोक्षोपक्रमहेतुः कश्चिदस्ति तथाऽन्तिमसूत्रे भावयिष्यते, ततो यदुक्तं 'वेदनीयादिवच्च कृतस्यापि कर्मक्षयस्ये'त्यादि न तत्सम्यगुपपन्नमिति स्थितं, अपर आह—ननु यदा वेदनीयादिकमतिप्रभूतं सर्वस्तोकं चायुस्तदा समधिकवेदनीयादिसमुद्घातार्थं समुद्घातमारभतां, वेदनीयादेः सोपक्रमत्वात्, यदा त्वधिकमायुः सर्वस्तोकं च वेदनीयादिकं तदा का वार्त्ता ?, न ह्यल्पायुषः समधिकस्य समुद्घाताय समुद्घातः कल्प्यते, चरमशरीरिणामायुषो निरुपक्रमत्वात् 'चरमसरीरा य निरुवक्कमा' इति वचनात्, तदयुक्तं, एवंविधभावस्य कदाचनाप्यभावात्, तथाहि—सर्वदैव वेदनीयाद्येवायुषः सकाशादधिकस्थितिकं भवति, न तु कदाचिदपि वेदनीयादेरायुः, अथैवंविधो नियमः कुतो लभ्यते ?, उच्यते, परिणामस्वाभाव्यात्, तथाहि—इत्थंभूत एवात्मनः परिणामो येनास्यायुर्वेदनीयादेः समं भवति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३४४-३४७] + गाथा: दीप अनुक्रम [६१४--६१९]

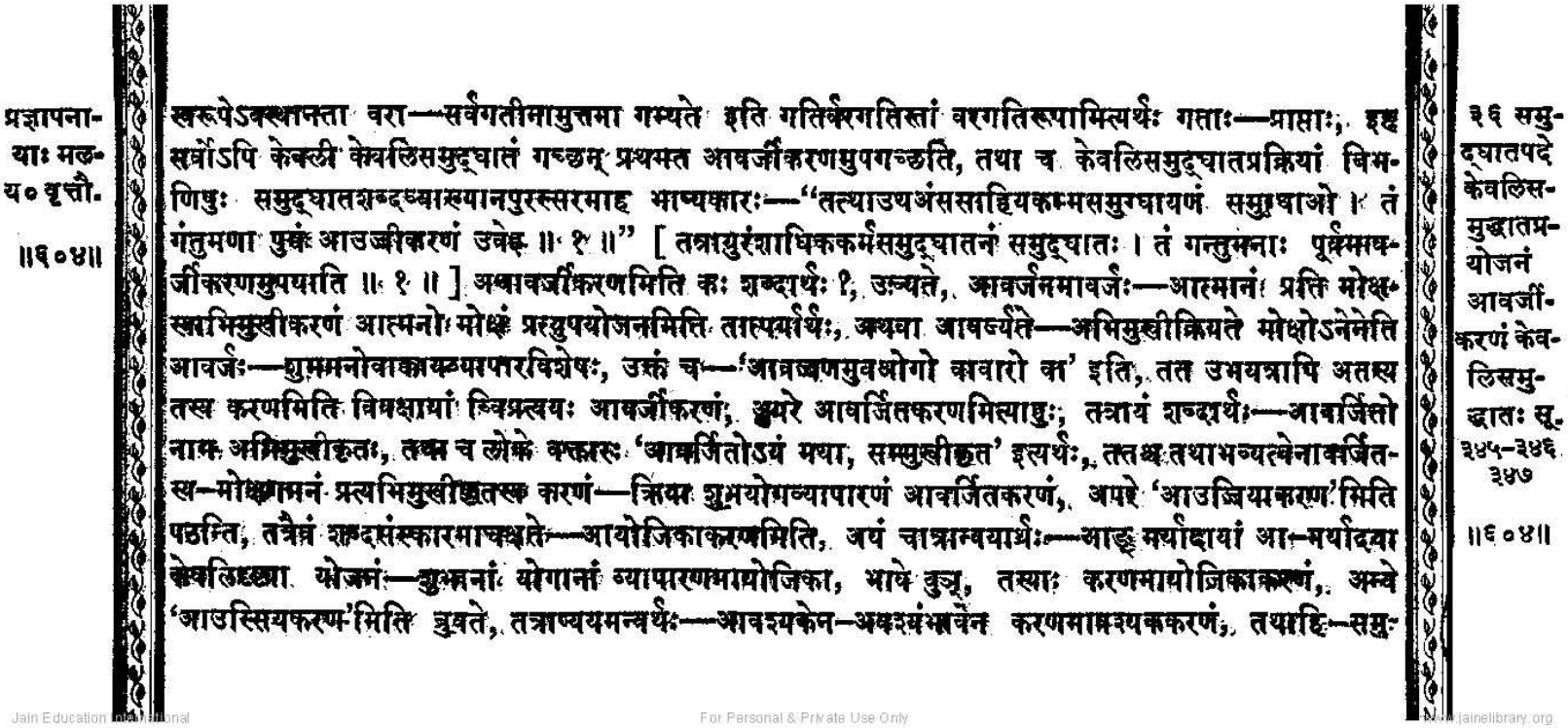
न्यूनं वा न तु कदाचनाप्यधिकं, यथैतस्यैवायुषः खल्वध्रुवबन्धः, तथाहि—ज्ञानावरणादीनि कर्माणि आयुर्वर्जानि सप्तापि सदैव बध्यन्ते, आयुस्तु प्रतिनियत एव काले स्वभवत्रिभागादिशेषरूपे, तत्र चैवंविधवैचित्र्यनियमे न स्वभावादृतेऽपरः कश्चिदस्ति हेतुरेवमिहापि स्वभावविशेष एव नियामको द्रष्टव्यः, आह च भाष्यकृत्—"असमठिईणं नियमो को थेवं आउयं न सेसंति। परिणामसहावाओ अद्धुवबंधोवि तस्सेव ॥ १ ॥" [असमस्थितिषु को नियमः–स्तोकमायुः न शेषाणि। परिणामस्वभावात् अध्रुवबन्धोऽपि तस्यैव ॥ १ ॥] अथ विशेषपरिज्ञानाय गौतमो भगवन्तं पृच्छति—'सवेवि ण'मित्यादि, णमिति निश्चये सर्वेऽपि खलु केवलिनः समवहन्ति—समुद्घाताय प्रयतन्ते, प्रयत्नानन्तरं च सर्वेऽपि खलु केवलिनः समुद्घातं गच्छन्ति ?, इति गौतमेन प्रश्ने कृते सति भगवान्निर्वचनमाह—'गोयमे'त्यादि, गौतम ! नायमर्थः समर्थः—नायमर्थः उपपन्नः, किमुक्तं भवति ?–सर्वेऽपि केवलिनः समुद्घाताय न प्रयतन्ते नापि समुद्घातं गच्छन्ति, किन्तु येषामायुषः समधिकं वेदनीयादिकं, यस्य पुनः स्वभावत एवायुषा सह समस्थितिकानि वेदनीयादीनि कर्माणि सोऽकृतसमुद्घात एव तानि क्षपयित्वा सिध्यति, तथा चाह—'जस्से'त्यादि, यस्य केवलिन आयुषा सह भवे–मनुष्यभवे उप–समीपेन गृह्यते–अवष्टभ्यते यैस्तानि भवोपग्राहाणि तानि च तानि कर्माणि च भवोपग्राहकर्माणि—वेदनीयनामगोत्राणि बन्धनैः—प्रदेशैः स्थितिभिश्च तुल्यानि–समानि भवन्ति स समुद्घातं न गच्छति, अकृतसमुद्घात एव तानि क्षपयित्वा स सिद्धिसौधमध्यास्ते इति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावः, उक्तं च—"जस्स उ तुल्लं भवइ य कम्मचउक्कं सभावतो जो य। सो अकयसमुग्घाओ सिज्झइ जुगवं खवेऊणं ॥१॥" [यस्य तु तुल्यं भवति तु कर्मचतुष्कं स्वभावतो यश्च (समकर्मा)। सोऽकृतसमुद्घातः सिध्यति युगपत् क्षपयित्वा ॥ १ ॥] अथायं कदाचित्को भाव उत बाहुल्यभावः?, तत आह—'अगंतूण समुग्घाय'मित्यादि, अगत्वा समुद्घातं—केवलिसमुद्घातं 'सिद्धिं' चरमगतिं गता इति सम्बन्धः, कियत्सङ्ख्याका इत्याह—अनन्ताः—अनन्तसङ्ख्याकाः 'केवलिनः' केवलज्ञानदर्शनोपेताः, अनेन ये नवानामात्मगुणानामत्यन्तोच्छेदो मोक्ष इति प्रतिपन्नास्तेऽपास्ता द्रष्टव्याः, ज्ञानस्य निरुपचरितात्मस्वभावत्वात्, तस्य च विनाशायोगाद्, अन्यथाऽऽत्मन एवाभावापत्तेः, न चात्मनो निरन्वयो विनाशः, सतः सर्वथा विनाशायोगात्, 'नासतो विद्यते भावो, नाभावो विद्यते सत' इति न्यायात्, तथा जिना–जितरागादिशत्रवः, अनेन गोशालकमतापाकरणमाह, ते हि मुक्तिपदमध्यासीनमपि न तत्त्वतो वीतरागमपि मन्यन्ते, 'अवासमुक्तिपदा अपि तीर्थनिकारदर्शनादिहागच्छन्ती'ति वचनात्, तत्त्वतो वीतरागस्य च पराभवबुद्धेरिहागमनस्य चासम्भवात्, पुनः कथंभूता इत्याह—'जरामरणविप्रमुक्ता' जरा च मरणं च जरामरणे ताभ्यां विप्रमुक्ता जरामरणविप्रमुक्ताः, जरामरणग्रहणमुपलक्षणं तेन समस्तरोगशोकादिसांसारिकक्लेशविमुक्ता इति द्रष्टव्यं, एतेन एकान्ततो मोक्षसौख्यस्योपादेयतामाह, अन्यस्यैवंविधस्वरूपस्य स्थानस्यासम्भवात्, नहि संसारे प्रकर्षसुखप्राप्तमपि स्थानमेवंविधमस्ति, सर्वस्यापि मरणपर्यवसानत्वात्, सेधनं सिद्धिः—अशेषकर्मांशापगमेनात्मनः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३४४-३४७] + गाथा: दीप अनुक्रम [६१४--६१९]



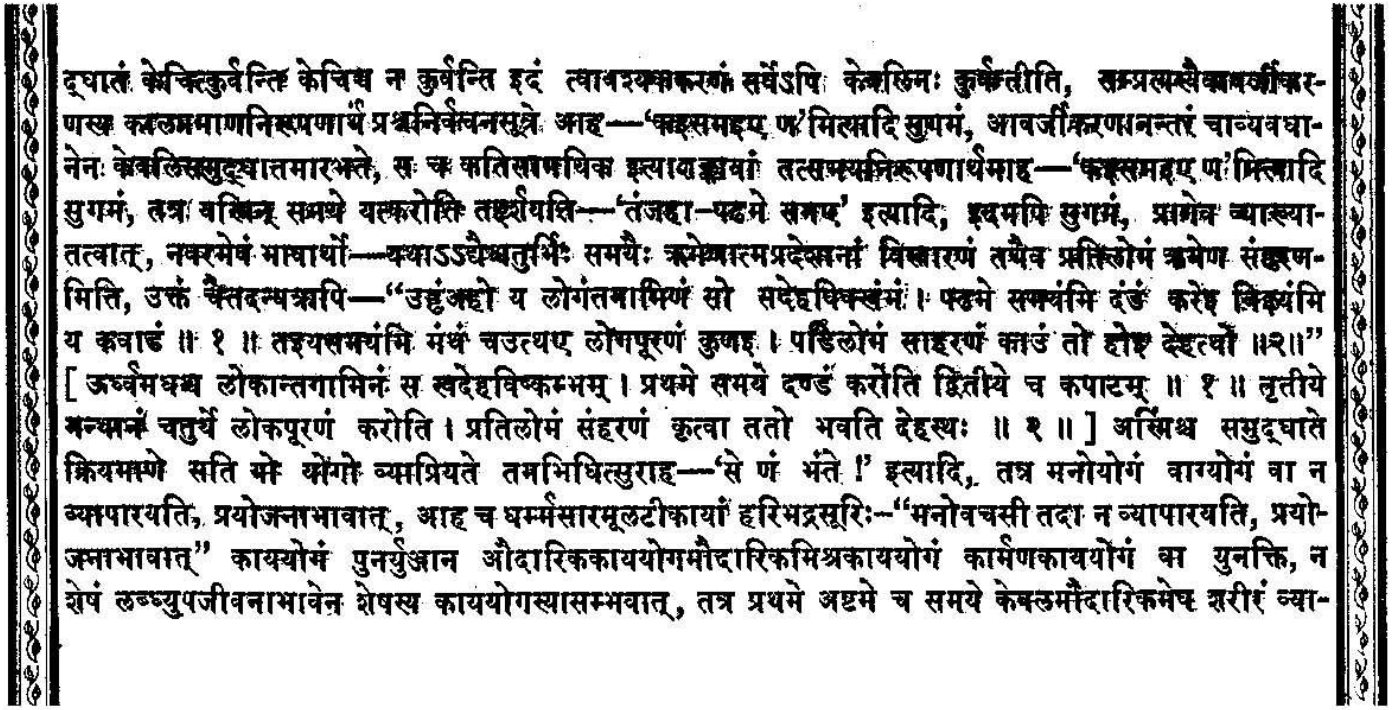
प्रज्ञापनायाः मल० वृत्तौ. ॥६०४॥

स्वरूपेऽवस्थानतो वरा—सर्वगतीनामुत्तमा गम्यते इति गतिर्वरगतिस्तां वरगतिरूपामित्यर्थः गताः—प्राप्ताः, इह सर्वोऽपि केवली केवलिसमुद्घातं गच्छन् प्रथमत आवर्जीकरणमुपगच्छति, तथा च केवलिसमुद्घातप्रक्रियां विभणिषुः समुद्घातशब्दव्युत्पत्त्यानपुरस्सरमाह भाष्यकारः—"तत्थाउयअंससमाहियकम्मसमुग्घायणं समुग्घाओ । तं गंतुमणा पुव्वं आउज्जीकरणं उवेइ ॥ १ ॥" [तत्रायुरंशाधिककर्मसमुद्घातनं समुद्घातः । तं गन्तुमनाः पूर्वमावर्जीकरणमुपयाति ॥ १ ॥] अथावर्जीकरणमिति कः शब्दार्थः ?, उच्यते, आवर्जनमावर्जः—आत्मानं प्रति मोक्षस्याभिमुखीकरणं आत्मनो मोक्षं प्रत्युपयोजनमिति तात्पर्यार्थः, अथवा आवर्ज्यते—अभिमुखीक्रियते मोक्षोऽनेनेति आवर्जः—शुभमनोवाक्कायव्यापारविशेषः, उक्तं च—'आवज्जणमुवओगो वावारो वा' इति, तत उभयत्रापि अतस्य तस्य करणमिति विवक्षायां ञिप्रत्ययः आवर्जीकरणं, अपरे आवर्जितकरणमित्याहुः, तत्रायं शब्दार्थः—आवर्जितो नाम अभिमुखीकृतः, तच्च लोके कथ्यते 'आवर्जितोऽयं मया, सम्मुखीकृत' इत्यर्थः, ततश्च तथाभव्यत्वेनावर्जितस्य—मोक्षगमनं प्रत्यभिमुखीकृतस्य करणं—क्रिया शुभयोगव्यापारणं आवर्जितकरणं, अपरे 'आउज्जियाकरण'मिति पठन्ति, तत्रैत्रं शब्दसंस्कारमाचक्षते—आयोजिकाकरणमिति, अयं चात्रान्वयार्थः—आङ् मर्यादायां आ—मर्यादया केवलिद्रव्या योजनं—शुभानां योगानां व्यापारणमायोजिका, भावे ण्वुञ्, तस्याः करणमायोजिकाकरणं, अन्ये 'आउस्सियकरण'मिति ब्रुवते, तत्राप्ययमन्वर्थः—आवश्यकेन—अवश्यंभावेन करणमावश्यककरणं, तथाहि—समु-

३६ समुद्घातपदे केवलिसमुद्घातप्रयोजनं आवर्जीकरणं केवलिसमुद्घातः सू. ३४५-३४६ ३४७

॥६०४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



दुघातं केचित्कुर्वन्ति केचिच्च न कुर्वन्ति इदं त्वावश्यकरणं सर्वेऽपि केवलिनः कुर्वन्तीति, तत्प्रसक्तस्यैवावर्जीकरणस्य कालप्रमाणनिरूपणार्थं प्रश्ननिर्वचनसूत्रे आह—'कइसमइए ण' मित्यादि सुगमं, आवर्जीकरणानन्तरं चाव्यवधानेन केवलिसमुद्घातमारभते, स च कतिसामयिक इत्यादावुक्ते तत्समयनिरूपणार्थमाह—'कइसमइए ण' मित्यादि सुगमं, तत्र यस्मिन् समये यत्करोति तद्दर्शयति—'तंजहा—पढमे समए' इत्यादि, इदमपि सुगमं, प्रागेव व्याख्यातत्वात्, नवरमेवं भावार्थो—यथाऽऽद्यैश्चतुर्भिः समयैः क्रमेणात्मप्रदेशानां विसारणं तथैव प्रतिलोमं क्रमेण संहरणमिति, उक्तं चैतदन्यत्रापि—"उड्ढमहो य लोगंतगामिणं सो सदेहविक्खंभं। पढमे समयंमि दंडं करेइ बिइयंमि य कवाडं ॥ १ ॥ तइयसमयंमि मंथं चउत्थए लोगपूरणं कुणइ। पडिलोमं साहरणं काउं तो होइ देहत्थो ॥२॥" [ऊर्ध्वमधश्च लोकान्तगामिनं स्वदेहविष्कम्भम्। प्रथमे समये दण्डं करोति द्वितीये च कपाटम् ॥ १ ॥ तृतीये मन्थानं चतुर्थे लोकपूरणं करोति। प्रतिलोमं संहरणं कृत्वा ततो भवति देहस्थः ॥ २ ॥] अस्मिंश्च समुद्घाते क्रियमाणे सति यो योगो व्याप्रियते तमभिधित्सुराह—'से णं भंते !' इत्यादि, तत्र मनोयोगं वाग्योगं वा न व्यापारयति, प्रयोजनाभावात्, आह च धर्मसारमूलटीकायां हरिभद्रसूरिः—"मनोवचसी तदा न व्यापारयति, प्रयोजनाभावात्" काययोगं पुनर्युञ्जान औदारिककाययोगमौदारिकमिश्रकाययोगं कार्मणकाययोगं वा युनक्ति, न शेषं लब्ध्युपजीवनाभावेन शेषस्य काययोगस्यासम्भवात्, तत्र प्रथमे अष्टमे च समये केवलमौदारिकमेव शरीरं व्या-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१५],उपांगसूत्र-[४] "प्रज्ञापना" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [३४४-३४७] + गाथा:

दीप अनुक्रम [६१४--६१९]

म्रियते इत्यौदारिककाययोगः, द्वितीये षष्ठे सप्तमे च समये कार्मणशरीरस्यापि व्याप्रियमाणत्वात् औदारिकमिश्रकाययोगः, तृतीयचतुर्थपञ्चमेषु तु समयेषु केवलमेव कार्मणशरीरव्यापारभागिति कार्मणकाययोगः, आह च भाष्यकृत्—"न किर समुग्घातगतो मणवइजोगप्पयोयणं कुणइ । ओरालियजोगं पुण जुंजइ पढमट्ठमे समए ॥ १ ॥ उभयद्धावाराओ तम्मीसं बीयछट्ठसत्तमए । तिचउत्थपंचमे कम्मगं तु तम्मत्तचेट्ठाओ ॥ २ ॥" अत्रैव विशेषपरिज्ञानायाह—

से णं भंते ! तहा समुग्घातगते सिज्झति बुज्झति मुच्चति परिनिव्वाति सव्वदुक्खाणं अंतं करेति ?, गो० ! नो इणट्ठे समट्ठे, से णं ततो पडिनियत्तति पडिनियत्तित्ता ततो पच्छा मणजोगंपि जुंजति वइजोगंपि जुंजइ कायजोगंपि जुंजति, मणजोगं जुंजमाणे किं सच्चमणजोगं जुंजति मोसमणजोगं जुंजति सच्चामोसमणजोगं जुंजति असच्चामोसमणजोगं जुंजति ?, गो० ! सच्चमणजो० नो मोसमणजो० नो सच्चामोसमणजोगं जुंजति असच्चामोसमणजोगं जुंजति, वतिजोगं जुंजमाणे किं सच्चवइजोगं जुंजति मोसवइजोगं जुं० सच्चामोसवइजोगं असच्चामोसवइजो० ?, गो० ! सच्चवतिजो० नो मोसवइजो० नो सच्चामोसवतिजो० असच्चामोसवइजोगंपि जुंजति, कायजोगं जुंजमाणे आगच्छेज्ज वा गच्छेज्ज वा चिट्ठेज्ज वा निसीएज्ज वा तुयट्टेज्ज वा उल्लंघेज्ज वा पलंघेज्ज वा पडिहारियं पीढफलगसेज्जासंथारगं पच्चप्पिणेज्जा । (सूत्रं ३४८)

'से णं भंते !' इत्यादि, स भदन्त ! केवली तथा–दण्डकपाटादिक्रमेण समुद्घातं गतः सन् सिद्ध्यति–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निष्ठितार्थो भवति ?, स च 'वर्त्तमानसामीप्ये वर्त्तमानवद्वे'ति वचनात् सेत्स्यन्नपि व्यवहारत उच्यते तत आह—बुध्यते–अवगच्छति केवलज्ञानेन यथाऽहं निश्चयतो निष्ठितार्थो भविष्यामि निःशेषकर्मांशापगमतः तत आह—मुच्यतेऽशेषकर्मांशैरिति गम्यते, मुच्यमानश्च कर्माणुवेदनापरितापरहितो भवति तत आह—परिनिर्वाति—सामस्त्येन शीतीभवति, समस्तमेतदेकेन पर्यायेण स्पष्टयति—सर्वदुःखानामन्तं करोतीति, भगवानाह—गौतम ! नायमर्थः समर्थो–नायमर्थः सङ्गतो यः समुद्घातं गतः सर्वदुःखानामन्तं करोतीति, योगनिरोधस्याद्याप्यकृतत्वात्, सयोगस्य च वक्ष्यमाणयुक्त्या सिद्धभावादिति भावः, ततः किं करोतीत्यत आह—'से ण'मित्यादि, सः–अधिकृतसमुद्घातगतः णमिति वाक्यालङ्कारे ततः समुद्घातात् प्रतिनिवर्त्तते, प्रतिनिवर्त्त्य च ततः—प्रतिनिवर्त्तनात् पश्चादनन्तरं मनोयोगमपि वाग्योगमपि काययोगमपि युनक्ति–व्यापारयति, यतः स भगवान् भवधारणीयकर्मसु नामगोत्रवेदनीयेष्वचिन्त्यमाहात्म्यसमुद्घातवशतः प्रभूतेष्वायुषा सह समीकृतेष्वप्यन्तर्मुहूर्त्तभाविपरमपदत्वतस्तस्मिन् काले यद्यनुत्तरोपपातिकादिना देवेन मनसा पृच्छ्यते तर्हि व्याकरणाय मनःपुद्गलान् गृहीत्वा मनोयोगं युनक्ति, तमपि सत्यमसत्यामृषारूपं वा, मनुष्यादिना पृष्टः सन्नपृष्टो वा कार्यवशतो वाक्पुद्गलान् गृहीत्वा वाग्योगं तमपि सत्यमसत्यामृषा वा, न शेषान् वाग्मनसोर्योगान्, क्षीणरागादित्वात्, आगमनादौ चौदारिकादिकाययोगं, तथाहि—भगवान् कार्यवशतः कुतश्चित् स्थानात् विवक्षिते स्थाने आगच्छेत्,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यदिवा क्वापि गच्छेत्, अथवा तिष्ठेत्–ऊर्द्धस्थानेन वाऽवतिष्ठेत् निषीदेद्वा तथाविधश्रमापगमाय त्वग्वर्त्तनं वा कुर्यात्, अथवा विवक्षिते स्थाने तथाविधसम्पातिमसत्त्वाकुलां भूमिमवलोक्य तत्परिहाराय जन्तुरक्षानिमित्तमुल्लङ्घनं प्रलङ्घनं वा कुर्यात्, तत्र सहजात् पादविक्षेपान्मनागधिकतरः पादविक्षेपः उल्लङ्घनं स एवातिविकटः प्रलङ्घनं, यदिवा प्रातिहारिकं पीठफलकशय्यासंस्तारकं प्रत्यर्पयेत्, यस्मादानीतं तस्मै समर्पयेत्, इह भगवता आर्यश्यामेन प्रातिहारिकपीठफलकादीनां प्रत्यर्पणमेवोक्तं ततोऽवसीयते नियमादन्तर्मुहूर्त्तमवशेषायुष्क एवावर्जीकरणादिकमारभते, न प्रभूतावशेषायुष्कः, अन्यथा ग्रहणस्यापि सम्भवात्तदप्युपादीयेत, एतेन यदाहुरेके—'जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्ते शेषे समुद्घातमारभते उत्कर्षतः षट्सु मासेषु शेषेष्वि'ति तदपास्तं द्रष्टव्यं, षट्सु मासेषु कदाचिदपान्तराले वर्षाकालसम्भवात् तन्निमित्तं पीठफलकादीनामादानमप्युपपद्येत, न च तत्सूत्रसम्मतमिति तत्प्ररूपणमुत्सूत्रमवसेयं, एतच्चोत्सूत्रं आवश्यकेऽपि समुद्घातानन्तरमव्यवधानेन शैलेश्यभिधानात्, (यतः) तत्सूत्रं 'दण्डकवाडे मंथंतरे य साहारणा सरीरत्थे। भासाजोगनिरोहे सेलेसी सिज्झणा चेव ॥ १ ॥' यदि पुनरुत्कर्षतः षण्मासरूपमपान्तरालं भवेत्तत्तदप्यभिधीयेत, न चोक्तं, तस्मादेव अयुक्तमेतदिति, तथा चाह भाष्यकारः—"कम्मलहुयाए समओ मिज्झमुदुत्तावसेसओ कालो। अन्ने जहन्नमेयं छम्मासुक्कोसमिच्छंति ॥ १ ॥ तत्तोऽनंतरसेलेसीवण्णओ जं च पाडिहारीणं। पच्चप्पणमेव सुए इहरा महणंपि होज्जाहि ॥ २ ॥" अत्र कर्म्मलघुतानिमित्तं समुद्घातस्य समयः—अक्षरो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भिन्नमुहूर्त्तावशेषकालः, शेषं सुगमं, तदेवमन्तर्मुहूर्त्तकालं यथायोगं योगत्रयव्यापारभाक् केवली भूत्वा तदनन्तरमत्यन्ताप्रकम्पं लेश्यातीतं परमनिर्जराकारणं ध्यानं प्रतिपित्सुरवश्यं योगनिरोधायोपक्रमते, योगे सति यथोक्तरूपस्य ध्यानस्यासम्भवात्, तथाहि—योगपरिणामो लेश्या, तदन्वयव्यतिरेकानुविधानात्, ततो यावद्योगस्तावदवश्यंभाविनी लेश्येति न लेश्यातीतध्यानसम्भवः, अपिच—यावद्योगस्तावत्कर्मबन्धोऽपि, 'जोगा पयडिपएसं ठिइअणुभागं कसायओ कुणइ' इति वचनात्, केवलं स कर्म्मबन्धः केवलयोगनिमित्तत्वात् समयत्रयावस्थायी, तथाहि—प्रथमसमये कर्म बध्यते, द्वितीयसमये वेद्यते, तृतीये तु समये तत्कर्माकर्मीभवति, तत्र यद्यपि समयद्वयरूपस्थितिकानि कर्माणि क्रियन्ते, पूर्वाणि २ कर्माणि प्रलयमुपगच्छन्ति, तथापि समये समये सन्तत्या कर्मादाने प्रवर्त्तमाने सति न मोक्षः स्याद्, अथ चावश्यं मोक्षं गन्तव्यं तस्मात् कुरुते स योगनिरोधमिति, उक्तं च—"स ततो योगनिरोधं करोति लेश्यानिरोधमभिकाङ्क्षन् । समयस्थितिं च बन्धं योगनिमित्तं स निरुरुत्सुः ॥ १ ॥ समये समये कर्मादाने सति सन्ततेर्न मोक्षः स्यात् । यद्यपि हि विमुच्यन्ते स्थितिक्षयात् पूर्वकर्म्माणि ॥ २ ॥ नाकर्मणो हि वीर्यं योगद्रव्येण भवति जीवस्य । तस्यावस्थानेन तु सिद्धः समयस्थितेर्बन्धः ॥ ३ ॥" अत्र बन्धस्य समयमात्रस्थितिकता बन्धसमयमतिरिच्य वेदितव्या, भाष्यमप्येनं पूर्वोक्तं सकलमपि प्रमेयं पुष्णाति, तथा च तद्गतो ग्रन्थः—"विणिवित्तसमुग्घाओ तिण्णिवि जोगे जिणो पउंजिज्जा । सञ्चमसच्चामोसं च सो मणं तह वईजोगं ॥ १ ॥ ओरा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

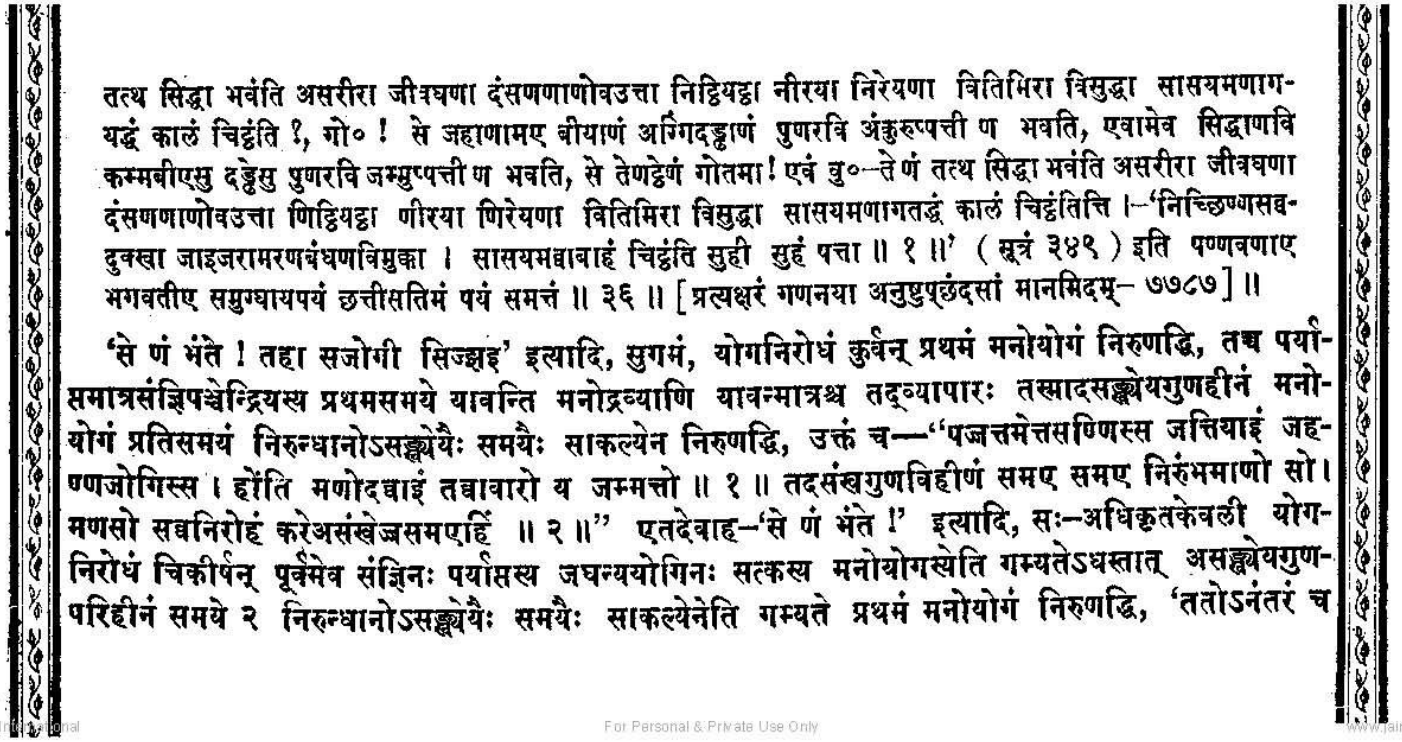
प्रत सूत्रांक [३४८]

दीप अनुक्रम [६२०]

लियकाययोगं गमणाईं पाडिहारियाणं वा। पचप्पणं करेज्जा जोगनिरोहं तओ कुणइ ॥ २ ॥ किन्न सयोगो सिज्झइ? स बंधहेउत्ति जं सजोगोऽयं। न समेइ परमसुक्कं स निज्जराकारणं परमं ॥ ३ ॥" अत एवाह—

से णं भंते ! तहा सजोगी सिज्झति जाव अंतं करेति ?, गो०! नो इणट्ठे समट्ठे, से णं पुव्वमेव सण्णिस्स पंचिंदियपज्जत्तयस्स जहण्णजोगिस्स हेट्ठा असंखेज्जगुणपरिहीणं पढमं मणजोगं निरुंभति, ततो अणंतरं बेइंदियपज्जत्तगस्स जहण्णजोगिस्स हेट्ठा असंखिज्जगुणपरिहीणं दोच्चं वतिजोगं निरुंभति, ततो अणंतरं च णं सुहुमस्स पणगजीवस्स अपज्जत्तयस्स जहण्णजोगिस्स हेट्ठा असंखेज्जगुणपरिहीणं तच्चं कायजोगं निरुंभति, से णं एतेण उवाएणं–पढमं मणजोगं निरुंभति मणजोगं निरुंभित्ता वतिजोगं निरुंभति वयजोगं निरुंभित्ता कायजोगं निरुंभइ कायजोगं निरुंभित्ता जोगनिरोहं करेति जोगनिरोहं करेत्ता अजोगतं पाउणति अजोगयं पाउणित्ता ईसिं हस्सपंचक्खरुच्चारणद्धाए असंखेज्जसमइयं अंतोमुहुत्तियं सेलेसिं पडिवज्जइ, पुव्वरइयगुणसेढीयं च णं कम्मं, तीसे सेलेसिमद्धाए असंखेज्जाहिं गुणसेढीहिं असंखेज्जे कम्मखंधे खवयति खवइत्ता वेदणिज्जाउणामगोत्ते इच्चेते चत्तारि कम्मंसे जुगवं खवेति, जुगवं खवेत्ता ओरालियतेयाकम्मगाइं सव्वाहिं विप्पजहण्णाहिं विप्पजहति, विप्पजहित्ता उज्जुसेढीपडिवण्णो अफुसमाणगतीए एगसमएणं अविग्गहेणं उड्ढं गंता सागारोवउत्ते सिज्झइ बुज्झइ० तत्थ सिद्धो भवति, ते णं तत्थ सिद्धा भवंति असरीरा जीवघणा दंसणणाणोवउत्ता णिट्ठियट्ठा णीरया णिरेयणा वितिमिरा विसुद्धा सासयमणागयद्धं कालं चिट्ठंति, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ते णं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



तत्थ सिद्धा भवंति असरीरा जीवघणा दंसणणाणोवउत्ता निट्ठियट्ठा नीरया निरेयणा वितिमिरा विसुद्धा सासयमणागयद्धं कालं चिट्ठंति ?, गो० ! से जहाणामए बीयाणं अग्गिदड्ढाणं पुणरवि अंकुरुप्पत्ती ण भवति, एवामेव सिद्धाणवि कम्मबीएसु दड्ढेसु पुणरवि जम्मुप्पत्ती ण भवति, से तेणट्ठेणं गोतमा! एवं वु०–तेणं तत्थ सिद्धा भवंति असरीरा जीवघणा दंसणणाणोवउत्ता णिट्ठियट्ठा णीरया णिरेयणा वितिमिरा विसुद्धा सासयमणागतद्धं कालं चिट्ठंतित्ति ।–'निच्छिण्णसव्वदुक्खा जाइजरामरणबंधणविमुक्का । सासयमव्वाबाहं चिट्ठंति सुही सुहं पत्ता ॥ १ ॥' (सूत्रं ३४९) इति पण्णवणाए भगवतीए समुग्घायपयं छत्तीसतिमं पयं समत्तं ॥ ३६ ॥ [प्रत्यक्षरं गणनया अनुष्टुप्छंदसां मानमिदम्– ७७८७] ॥

'से णं भंते ! तहा सजोगी सिज्झइ' इत्यादि, सुगमं, योगनिरोधं कुर्वन् प्रथमं मनोयोगं निरुणद्धि, तच्च पर्याप्तमात्रसंज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य प्रथमसमये यावन्ति मनोद्रव्याणि यावन्मात्रश्च तद्व्यापारः तस्मादसङ्ख्येयगुणहीनं मनोयोगं प्रतिसमयं निरुन्धानोऽसङ्ख्येयैः समयैः साकल्येन निरुणद्धि, उक्तं च—"पज्जत्तमेत्तसण्णिस्स जत्तियाइं जहण्णजोगिस्स । होंति मणोदव्वाइं तव्वावारो य जम्मत्तो ॥ १ ॥ तदसंखगुणविहीणं समए समए निरुंभमाणो सो। मणसो सव्वनिरोहं करेअसंखेज्जसमएहिं ॥ २ ॥" एतदेवाह–'से णं भंते !' इत्यादि, सः–अधिकृतकेवली योगनिरोधं चिकीर्षन् पूर्वमेव संज्ञिनः पर्याप्तस्य जघन्ययोगिनः सत्कस्य मनोयोगस्येति गम्यतेऽधस्तात् असङ्ख्येयगुणपरिहीनं समये २ निरुन्धानोऽसङ्ख्येयैः समयैः साकल्येनेति गम्यते प्रथमं मनोयोगं निरुणद्धि, 'ततोऽनंतरं च

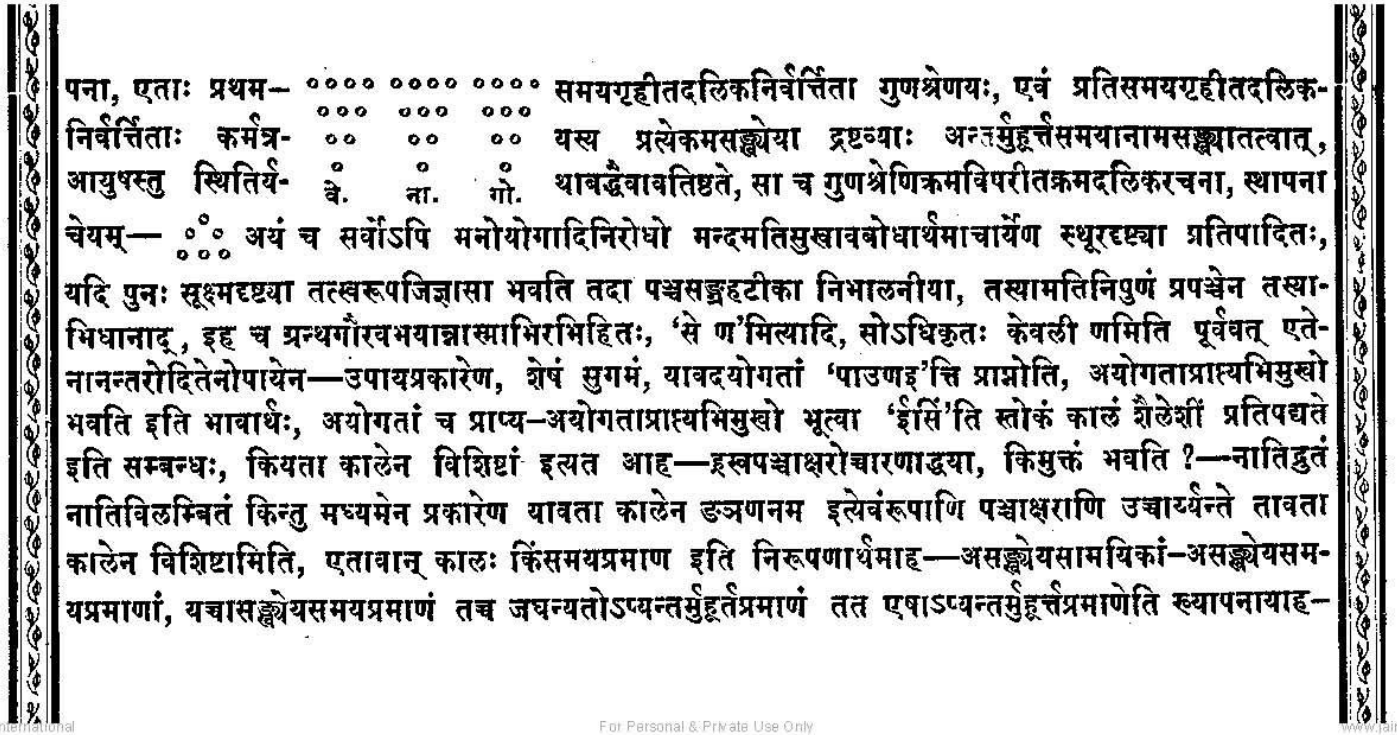
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३४९] + गाथा

दीप अनुक्रम [६२१--६२२]

ण'मित्यादि, तस्मात् मनोयोगनिरोधादनन्तरं चशब्दो वाक्यसमुच्चये णमिति वाक्यालङ्कारे द्वीन्द्रियस्य पर्याप्तस्य जघन्ययोगिनः सत्कस्य वाग्योगस्येति गम्यतेऽधस्तात् वाग्योगं असङ्ख्येयगुणपरिहीनं समये समये निरुन्धानोऽसङ्ख्येयैः समयैः साकल्येनेति गम्यते द्वितीयं वाग्योगं निरुणद्धि, आह च भाष्यकृत्—"पज्जत्तमित्तबिंदिय जहण्णवइजोगपज्जवा जे उ । तदसंखगुणविहीणं समये समये निरुंभंतो ॥ १ ॥ सव्ववइजोगरोहं संखाईएहिं कुणइ समएहिं" 'ततोऽणंतरं च ण'मित्यादि, ततो वाग्योगादनन्तरं च णं प्राग्वत् सूक्ष्मस्य पनकजीवस्य अपर्याप्तकस्य प्रथमसमयोत्पन्नस्येति भावार्थः जघन्ययोगिनः—सर्वाल्पवीर्यस्य पनकजीवस्य यः काययोगस्तस्याधस्तादसङ्ख्येयगुणहीनं काययोगं समये समये निरुन्धन् असङ्ख्येयैः समयैः समस्तमपीति गम्यते तृतीयं काययोगं निरुणद्धि, तं च काययोगं निरुन्धानः सूक्ष्मक्रियमप्रतिपाति ध्यानमधिरोहति, तत्सामर्थ्याच्च वदनोदरादिविवरपूरणेन सङ्कुचितदेहत्रिभागवर्त्तिप्रदेशो भवति, तथा चाह भाष्यकृत्—"तत्तो य सुहुमपणगस्स पढमसमयोववण्णस्स ॥ जो किर जहण्णजोगी तदसंखेज्जगुणहीणमेक्केक्के । समएहिं रुंभमाणो देहतिभागं च मुंचंतो ॥ १ ॥ रुंभइ स कायजोगं संखाईएहिं चेव समएहिं' काययोगनिरोधकालान्तरे चरमे अन्तर्मुहूर्त्ते वेदनीयादित्रयस्य प्रत्येकं स्थितिः सर्वापवर्त्तनया अपवर्त्तयायोग्यवस्थासमाना क्रियते गुणश्रेणिक्रमविरचितप्रदेशा, तद्यथा—प्रथमस्थितौ स्तोकाः प्रदेशाः, द्वितीयस्यां स्थितौ ततोऽसङ्ख्येयगुणाः, तृतीयस्यां ततोऽप्यसङ्ख्येयगुणाः, एवं तावद्वाच्यं यावच्चरमा स्थितिः, स्था-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



पना, एताः प्रथम– ०००० ०००० ०००० समयगृहीतदलिकनिर्वर्त्तिता गुणश्रेणयः, एवं प्रतिसमयगृहीतदलिक-
निर्वर्त्तिताः कर्मत्र- ००० ००० ००० यस्य प्रत्येकमसङ्ख्येया द्रष्टव्याः अन्तर्मुहूर्त्तसमयानामसङ्ख्यातत्वात्,
आयुष्यस्तु स्थितिर्य- ००० ००० ००० थाबद्धैवावतिष्ठते, सा च गुणश्रेणिक्रमविपरीतक्रमदलिकरचना, स्थापना
चेयम्— ०००० अयं च सर्वोऽपि मनोयोगादिनिरोधो मन्दमतिसुखावबोधार्थमाचार्येण स्थूरदृष्ट्या प्रतिपादितः,
यदि पुनः सूक्ष्मदृष्ट्या तत्स्वरूपजिज्ञासा भवति तदा पञ्चसङ्ग्रहटीका निभालनीया, तस्यामतिनिपुणं प्रपञ्चेन तस्या-
भिधानाद्, इह च ग्रन्थगौरवभयान्नास्माभिरभिहितः, 'से ण'मित्यादि, सोऽधिकृतः केवली णमिति पूर्ववत् एते-
नानन्तरोदितेनोपायेन—उपायप्रकारेण, शेषं सुगमं, यावदयोगतां 'पाउणइ'त्ति प्राप्नोति, अयोगताप्राप्त्यभिमुखो
भवति इति भावार्थः, अयोगतां च प्राप्य–अयोगताप्राप्त्यभिमुखो भूत्वा 'ईसिं'ति स्तोकं कालं शैलेशीं प्रतिपद्यते
इति सम्बन्धः, कियता कालेन विशिष्टां इत्यत आह—ह्रस्वपञ्चाक्षरोच्चारणाद्धया, किमुक्तं भवति ?—नातिद्रुतं
नातिविलम्बितं किन्तु मध्यमेन प्रकारेण यावता कालेन ङञणनम इत्येवंरूपाणि पञ्चाक्षराणि उच्चार्य्यन्ते तावता
कालेन विशिष्टामिति, एतावान् कालः किंसमयप्रमाण इति निरूपणार्थमाह—असङ्ख्येयसामयिकां–असङ्ख्येयसम-
यप्रमाणां, यच्चासङ्ख्येयसमयप्रमाणं तच्च जघन्यतोऽप्यन्तर्मुहूर्तप्रमाणं तत एषाऽप्यन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणेति ख्यापनायाह–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'आन्तर्मुहूर्त्तिकीं शैलेशी'मिति, शीलं–चारित्रं तच्चेह निश्चयतः सर्वसंवररूपं तद् ग्राह्यं, तस्यैव सर्वोत्तमत्वात्, तस्येशः शीलेशः तस्य याऽवस्था सा शैलेशी तां प्रतिपद्यते, तदानीं च ध्यानं ध्यायति व्यवच्छिन्नक्रियमप्रतिपाति, उक्तं च–"सीलं व समाहाणं निच्छयओ सव्वसंवरो सो य। तस्सेसो सीलेसो सेलेसी होइ तदवत्था ॥ १ ॥ हस्सक्खराइं मज्झेण जेण कालेण पंच भण्णंति। अच्छइ सेलेसिगतो तत्तियमित्तं तओ कालं ॥ २ ॥ तणुरोहारंभाओ झायइ सुहुमकिरियानियट्टिं सो। वोच्छिन्नकिरियमप्पडिवाई सेलेसिकालंमि ॥ ३ ॥" न केवलं शैलेशीं प्रतिपद्यते पूर्वरचितगुणश्रेणीकं च वेदनीयादिकं कर्म अनुभवितुमिति शेषः, प्रतिपद्यते च तत्पूर्वं काययोगनिरोधगते चरमेऽन्तर्मुहूर्त्ते रचिता गुणश्रेणयः–प्राग्निर्दिष्टस्वरूपा यस्य तत्तथा, ततः किं करोतीत्यत आह—'तीसे सेलेसिअद्धाए' इत्यादि, तस्यां शैलेश्यद्धायां वर्त्तमानोऽसङ्ख्येयाभिर्गुणश्रेणीभिः पूर्वनिर्वर्त्तिताभिः प्रापिता ये कर्मत्रयस्य पृथक् प्रतिसमयमसङ्ख्येयाः कर्मस्कन्धास्तान् 'क्षपयन्' विपाकतः प्रदेशतो वा वेदनेन निर्जरयन् चरमे समये वेदनीयमायुर्नाम गोत्रमित्येतान् चतुरः 'कर्मांशान्' कर्मभेदान् युगपत् क्षपयति, युगपच्च क्षपयित्वा ततोऽनन्तरसमये औदारिकतैजसकार्मणरूपाणि त्रीणि शरीराणि 'सव्वाहिं विप्पजहणाहिं' इति सर्वैर्विप्रहानैः, सूत्रे स्त्रीत्वं प्राकृतत्वात्, विप्रजहाति, किमुक्तं भवति ?–यथा प्राक् देशतस्त्यक्तवान् तथा न त्यजति, किन्तु सर्वैः प्रकारैः परित्यजतीति, उक्तं च–"ओरालियाइ चयइ सव्वाहिं विप्पजहणाहिं जं भणियं। निस्सेस तहा न जहा देसच्चाएण सो पुव्विं ॥ १ ॥"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परित्यज्य च तस्मिन्नेव समये कोशबन्धविमोक्षलक्षणसहकारिसमुत्थस्वभावविशेषादेरण्डफलमिव भगवानपि कर्मसम्बन्धविमोक्षणसहकारिसमुत्थस्वभावविशेषादूर्द्ध लोकान्ते गत्वेति सम्बन्धः, उक्तं च—"एरण्डफलं च जहा बंधच्छेदेरियं दुयं जाति। तह कम्मबंधणछेदणेरितो जाति सिद्धोवि ॥ १ ॥" कथं गच्छतीत्यत आह—'अविग्रहेण' विग्रहस्याभावोऽविग्रहः तेन एकेन समयेनास्पृशन्, समयान्तरप्रदेशान्तरास्पर्शनेनेत्यर्थः, ऋजुश्रेणिं च प्रतिपन्नः, एतदुक्तं भवति—यावत्स्वाकाशप्रदेशेष्विहावगाढस्तावत एव प्रदेशानूर्ध्वमृजुश्रेण्याऽवगाहमानो विवक्षिताच्च समयादन्यत् समयान्तरमस्पृशन् गत्वा, तथा चोक्तमावश्यकचूर्णौ—"जत्तिए जीवोऽवगाढो तावइयाए ओगाहणाए उड्ढं उज्जुगं गच्छति न वंकं, बिइयं च समयं न फुसइ" इति, भाष्यकारोऽप्याह—"रिउसेढिं पडिवन्नो समयपएसंतरं अफुसमाणो। एगसमएण सिज्झइ अह सागारोवउत्तो सो ॥ १ ॥" इत्थमूर्ध्वं गत्वा किमित्याह—साकारोपयुक्तः सन् सिद्ध्यति—निष्ठितार्थो भवति, सर्वा हि लब्धयः साकारोपयोगोपयुक्तस्य उपजायते नानाकारोपयुक्तस्य, सिद्धिरप्येषा सर्वलब्ध्युत्तमा लब्धिरिति साकारोपयोगोपयुक्तस्योपजायते, आह च—"सव्वाओ लद्धीओ जं सागारोवओगलाभाओ। तेणेह सिद्धिलद्धी उप्पज्जइ तदुवउत्तस्स ॥ १ ॥" तदनन्तरं तु क्रमेणोपयोगप्रवृत्तिः। तदेवं यथा केवली सिद्धो भवति तथा प्रतिपादितमिदानीं सिद्धा यथास्वरूपास्तत्रावतिष्ठन्ते तथा प्रतिपादयति—'ते णं तत्थ सिद्धा भवंती'त्यादि, ते—अनन्तरोक्तक्रमसम्भूता णमिति वाक्यालङ्कारे तत्र—लोकान्ते सिद्धा भवन्ति, अश-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३४९] + गाथा

दीप अनुक्रम [६२१--६२२]

रीराः—औदारिकादिशरीरविप्रमुक्ताः तेषां सिद्धत्वप्रथमसमये एव सर्वात्मना त्यक्तत्वात्, जीवघना—निचितीभूतजीवप्रदेशरूपाः, सूक्ष्मक्रियाऽप्रतिपातिध्यानप्रतिपत्तिकाले एव तत्सामर्थ्यतो वदनोदरादिविवराणामापूरितत्वात्, दर्शनज्ञानोपयुक्ता जीवस्वाभाव्यात्, निष्ठितार्थाः कृतकृत्यत्वात्, नीरजसो बध्यमानकर्माभावात्, निरेजनाः कम्पक्रियानिमित्तविरहात्, वितिमिराः कर्मतिमिरवासनापगमात्, विशुद्धास्त्रिविधसम्यग्दर्शनादिमार्गप्रतिपत्त्या अत्यन्तशुद्धीभूतत्वात्, ते चेत्थंभूतास्तत्र गतास्तिष्ठन्ति शाश्वतं यथा भवत्येवं 'अनागताद्धं' अनागता—भाविनी अद्धा समस्ता यत्र सोऽनागताद्धः तं कालं यावत्, अत्रैव मन्दमतिविबोधायाक्षेपपरिहारावाह—'से केणट्ठेणं भंते !' इत्यादि सुगमं, नवरं 'कम्मबीएसु'त्ति कर्म्मरूपाणि बीजानि—जन्मनः कारणानि कर्मबीजानि तेषु दग्धेषु—निर्मूलकाषंकषितेषु पुनरपि—भूयो जन्मन उत्पत्तिर्न भवति, कारणमन्तरेण कार्यासम्भवात्, अथ तान्येव कर्माणि भूयः कस्मान्न भवन्ति ?, उच्यते, रागादीनामभावात्, रागादयो ह्यायुःप्रभृतीनां कर्मणां कारणं, न च ते तेषां सन्ति, प्रागेव क्षीणमोहावस्थायां क्षीणत्वात्, न च तेऽपि क्षीणा अपि भूयः प्रादुर्भ्यन्ति, सहकारिकारणाभावात्, रागादीनां ह्युत्पत्तौ परिणामिकारणमात्मा सहकारिकारणं रागादिवेदनीयं कर्म, न चोभयकारणजन्यं कार्यमेकतरस्याप्यभावे भवति, अन्यथा तस्याकारणत्वप्रसङ्गात्, न च सिद्धानां रागादिवेदनीयं कर्मास्ति, तस्य प्रागेव शुक्लध्यानाग्निना भस्मीकृतत्वात्, न च वाच्यमत्रापि स एव प्रसङ्गः, यथा तदपि रागादिवेदनीयं कर्म भूयः कस्मान्न

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३४९] + गाथा

दीप अनुक्रम [६२१--६२२]

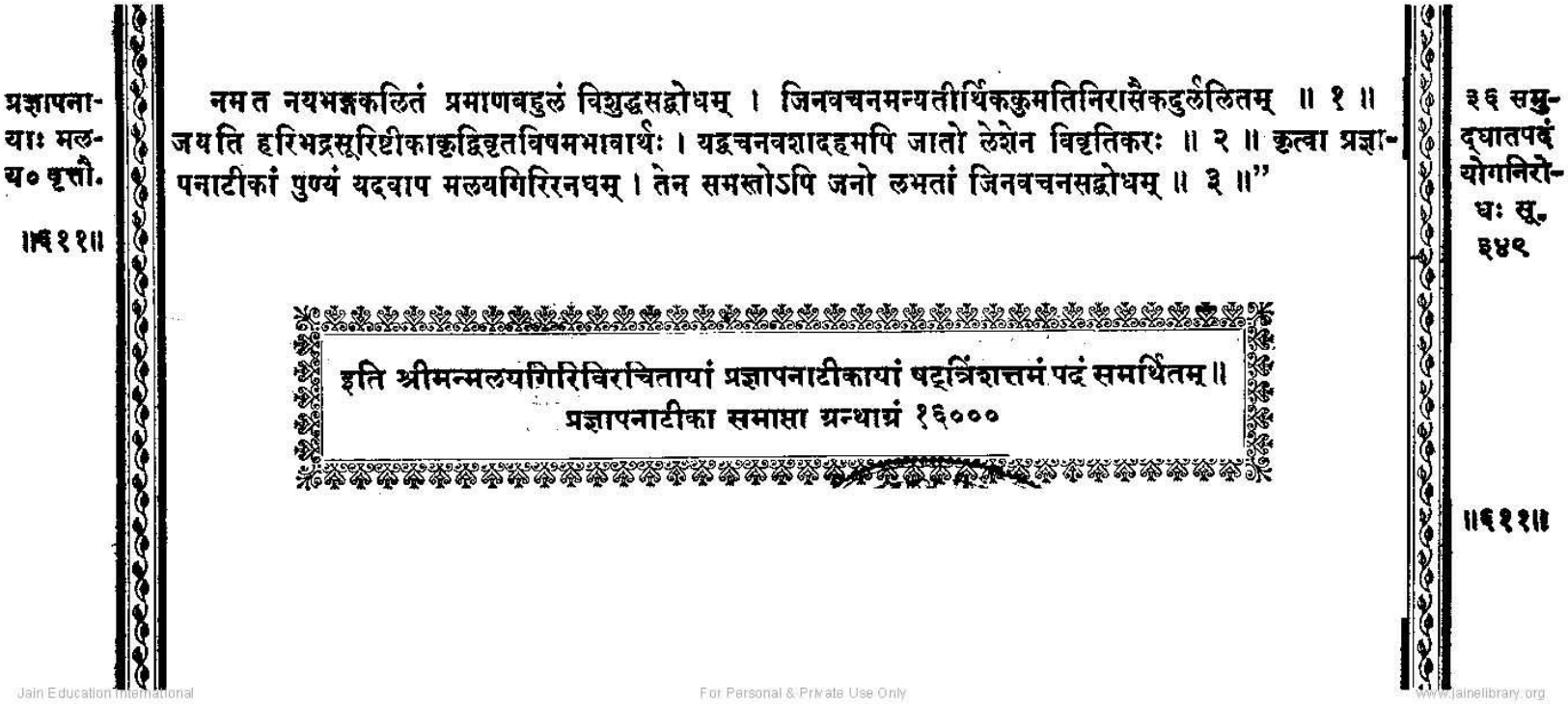
भवतीति ?, तत्कारणस्य सङ्क्लेशस्याभावात्, रागादिवेदनीयानां हि कर्मणामुत्पत्तौ रागादिपरिणतिरूपः सङ्क्लेशः, 'जं वेयइ से बंधइ' इति, न च रागादिवेदनीयकर्मविनिर्मुक्तस्य तथाभूतं सङ्क्लेशोत्थानमस्ति, ततस्तदभावाद्रागादिवेदनीयकर्माभावः, तदभावाच्च भूयो रागादीनामभावः, तथा च रागादीनामेव पुनरुत्पत्तिचिन्तायां धर्म्मसङ्ग्रहण्यामुक्तम्—"खीणा य ते न होंती पुणरवि सहकारिकारणाभावा। नहि होइ संकिलेसो तेहिं विउत्तस्स जीवस्स ॥ १ ॥ तयभावा न य बंधो तप्पाउग्गस्स होइ कम्मस्स। तदभावे तदभावो सबद्धं चेव विन्नेओ ॥२॥" इति, ततो रागादीनामभावादायुःप्रभृतीनां कर्म्मणां पुनरुत्पादाभावस्तदभावाच्च न भूयो जन्मोत्पत्तिः, अत एवोक्तमन्यत्रापि–"दग्धे बीजे यथाऽत्यन्तं, प्रादुर्भवति नाङ्कुरः। कर्मबीजे तथा दग्धे, न रोहति भवाङ्कुरः ॥ १ ॥" उपसंहारमाह–'से एएणट्ठेण'मित्यादि, एतदेव सिद्धस्वरूपं परममङ्गलभूतं शास्त्रस्य शिष्यप्रशिष्यादिवंशगतत्वेनाव्यवच्छित्तिर्भूयादित्यन्तमङ्गलत्वेनोपसंहारव्याजत आह—'निच्छिण्णे'त्यादि, निस्तीर्णं सर्वदुःखं यैस्ते तथा, सकलसांसारिकदुःखपारगता इत्यर्थः, कुत इत्याह—'जातिजरामरणबन्धनविप्रमुक्ताः' जातिश्च जरा च मरणं च बन्धनानि च—ज्ञानावरणीयादीनि कर्माणि तैर्विप्रमुक्ताः, अत्र हेतौ प्रथमा, यतो जातिजरामरणबन्धनविप्रमुक्ताः ततो निस्तीर्णसर्वदुःखाः, ते इत्थंभूताः परमस्वास्थ्यरूपं 'शाश्वतं' शश्वद्भावि 'अव्याबाधं' बाधारहितं, रागादयो हि न तद्बाधितुं प्रभविष्णवो न च तेषां ते सन्तीत्यनन्तरमेव भावितं, सुखं प्राप्ताः, अत एव सुखिनः सन्तस्तिष्ठन्ति ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र पद (३६) "समुद्घातः" परिसमाप्तम्

प्रत सूत्रांक [३४९] + गाथा

दीप अनुक्रम [६२१--६२२]



प्रज्ञापनायाः मलय० वृत्तौ. ॥६११॥

नमत नयभङ्गकलितं प्रमाणबहुलं विशुद्धसद्बोधम् । जिनवचनमन्यतीर्थिककुमतिनिरासैकदुर्ललितम् ॥ १ ॥ जयति हरिभद्रसूरिष्टीकाकृद्विवृतविषमभावार्थः । यद्वचनवशादहमपि जातो लेशेन विवृतिकरः ॥ २ ॥ कृत्वा प्रज्ञापनाटीकां पुण्यं यदवाप मलयगिरिरनघम् । तेन समस्तोऽपि जनो लभतां जिनवचनसद्बोधम् ॥ ३ ॥"

इति श्रीमन्मलयगिरिविरचितायां प्रज्ञापनाटीकायां षट्त्रिंशत्तमं पदं समर्थितम् ॥
प्रज्ञापनाटीका समाप्ता ग्रन्थाग्रं १६०००

३६ समुद्घातपदं योगनिरोधः सू. ३४९ ॥६११॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भाग 20	प्रज्ञापना -उवंगसूत्र [४/३] मूलं एवं मलयगिरिसूरिजी रचिता टीका परिसमाप्ता: मूल संशोधकः सम्पादकश्च पूज्य आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब किंचित् वैशिष्ट्य समर्पितेन सह पुन: संकलनकर्ता मुनि दीपरत्नसागरजी [M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

	सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि भाग १ से ४० में कहां क्या मिलेगा?		
भाग	इस भागमे समाविष्ट आगम के नाम और आगम-क्रम		कुलपृष्ठ
01	आगम ०१ आचार मूलं एवं वृत्ति भाग-१ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- १,२		३१४
02	आगम ०१ आचार मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- ३ से ९, श्रुतस्कन्ध- २		५८६
03	आगम ०२ सूत्रकृत मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- १ से १३		४९८
04	आगम ०२ सूत्रकृत मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन १४ से १६, श्रुतस्कन्ध-२		३९२
05	आगम ०३ स्थान मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ स्थान- १ से ४		५९४
06	आगम ०३ स्थान मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ स्थान- ५ से १० संपूर्ण		४९४
07	आगम ०४ समवाय मूलं एवं वृत्ति.		३३८
08	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ शतक- १ से ६		५९२
09	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ शतक- ७ से ११		५५२
10	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-३ शतक- १२ से २०		५१४
11	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-४ शतक- २१ से ४१ संपूर्ण		३८४
12	आगम ०६ ज्ञाताधर्मकथा मूलं एवं वृत्ति.		५२२
13	आगम-७,८,९,१०उपासकदशा, अंतकृतदशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण मूलं एवं वृत्ति.		५३८
14	आगम-११,१२, विपाक, उववाई मूलं एवं वृत्ति.		३८४
15	आगम १३ राजप्रश्नीय मूलं एवं वृत्ति.		३१४
16	आगम१४ जीवाजीवाभिगम भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. [प्रतिपत्ति-३-अतर्गत] सूत्र- १ से १३८		४८०
17	आगम१४ जीवाजीवाभिगम भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. [प्रतिपत्ति-३-अतर्गत] सूत्र- १३९ से प्रतिपत्ती-१० संपूर्ण		४८८
18	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. पद- १ से ५		४२६
19	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. पद- ६ से २२		५१४
20	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-३ मूलं एवं वृत्ति. पद- २३ से ३६ संपूर्ण		३३६
21	आगम १६ सूर्यप्रज्ञप्ति मूलं एवं वृत्ति.		६१०

	सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि भाग १ से ४० में कहां क्या मिलेगा?		
भाग	इस भागमे समाविष्ट आगम के नाम और आगम-क्रम		कुलपृष्ठ
22	आगम १७ चन्द्रप्रज्ञप्ति मूलं एवं वृत्ति.		६१४
23	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- १ एवं २.		३७६
24	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- ३ एवं ४.		४२६
25	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-३ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- ५ से ७.		३४४
26	आगम १९-३२ निरयावलिका, कल्पवतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा, चतु:शरण, आतुरपरत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान, भक्तपरिज्ञा, तंदुलवैचारिक, संस्तारक, गच्छाचार, गणिविदया, देवेन्द्रस्तव मूलं एवं छाया		३१२
27	आगम ३३ थी ३९ मरणसमाधि मूलं एवं छाया, निशीथ, बृहत्कल्प, व्यवहार, दशाश्रुतस्कंध, जीतकल्प/पंचकल्प, महानिशीथ मूलं एव		३३०
28	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-१, निर्युक्ति- १ से ५२१		४६६
29	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-२, निर्युक्ति- ५२२ से ९५१		४४२
30	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-३ निर्युक्ति- ९५२ से १२७३ अपूर्ण, [अध्ययन- १ से ४ अपूर्ण]		४६४
31	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-४ निर्युक्ति- १२७३ अपूर्ण से १६२३, [अध्ययन- ४ अपूर्ण से ६ संपूर्ण]		४२६
32	आगम ४१/१ ओघनिर्युक्ति मूलं एवं वृत्ति.		४७२
33	आगम ४१/२ पिंडनिर्युक्ति मूलं एवं वृत्ति.		३७६
34	आगम ४२ दशवैकालिक मूलं एवं वृत्ति.		५९०
35	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-१, अध्ययन- १ से ५		५२२
36	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-२, अध्ययन- ६ से २१		४८२
37	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-३, अध्ययन- २२ से ३६		४६६
38	आगम ४४ नन्दिसूत्र मूलं एवं वृत्ति.		५२८
39	आगम ४५ अनुयोगद्वार् मूलं एवं वृत्ति.		५६०
40	कल्प[बारसा]सूत्र... चतु:शरण, तन्दुलवैचारिक, गच्छाचार मूलं एवं वृत्ति.		३९४

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

आगम [15/3]

पूज्य आगमोध्धारक आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरेण संशोधित: संपादितश्च

प्रज्ञापना (उपांगसूत्र"-४/३) [मूलं एवं मलयगिरि-प्रणिता वृत्ति:]

(किंचित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित:

"प्रज्ञापना" मूलं एवं वृत्ति:" नामेण परिसमाप्त:

"सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि" श्रेणि, भाग- 20



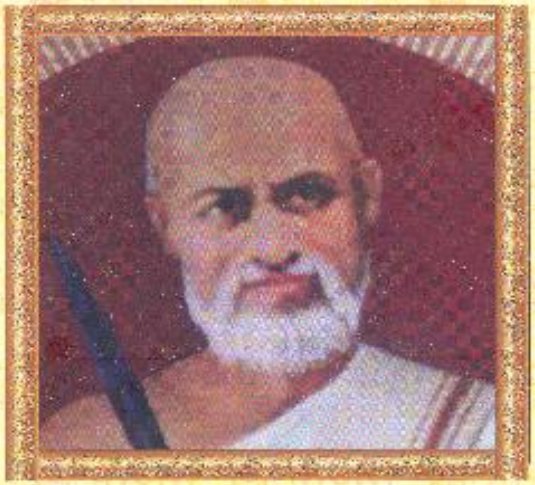
आगम

वाचना शताब्दी वर्ष

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

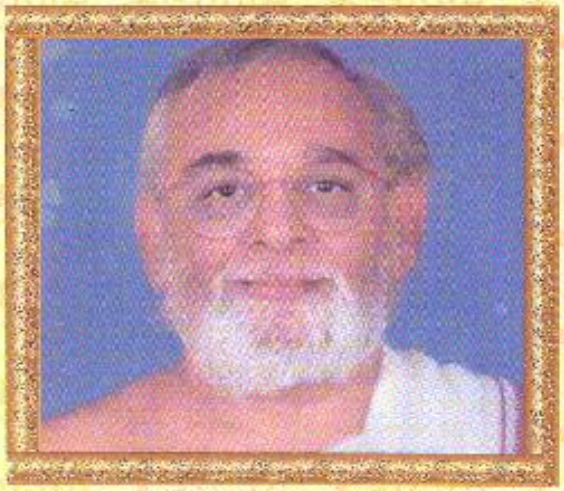
सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

मूल संशोधक



पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य
श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

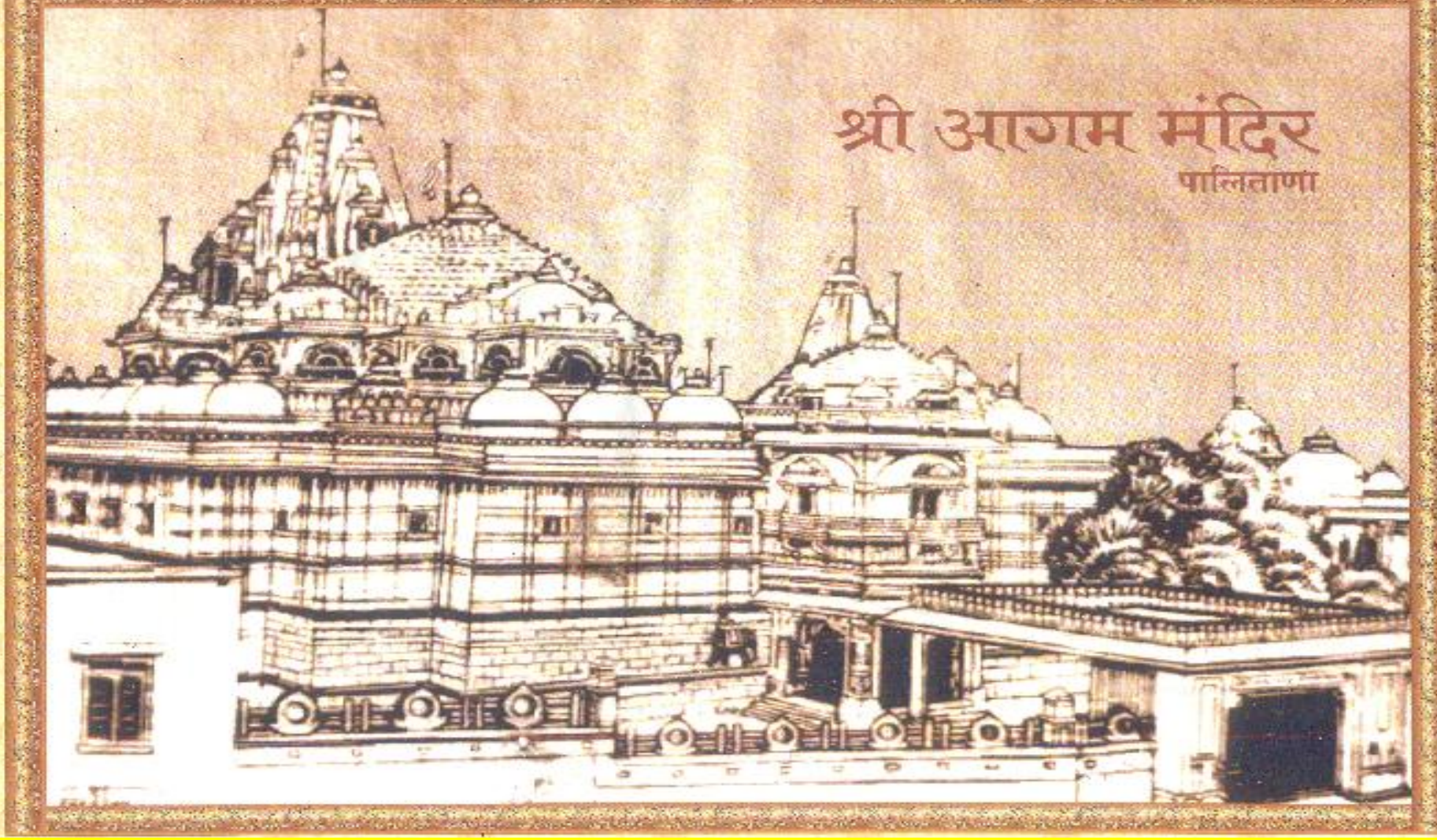
अभिनव-संकलनकर्ता

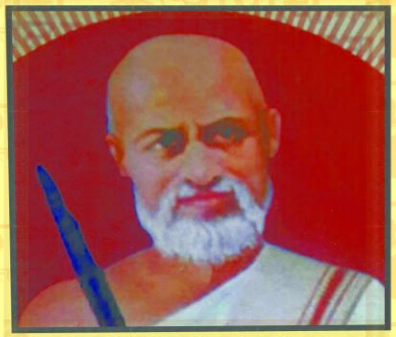


आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी
[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका
मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदाबाद Mo 9825598855 / 9825306275

ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता





मूल संशोधक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य

श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

आगम १५

"प्रज्ञापना" मूलं एवं वृत्तिः [3]

अभिनव-संकलनकर्ता

आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी

[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

